गुजराती साहित्य का इतिहास

हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—६८

गुजराती साहित्य का इतिहास

लेखक
श्री जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण दवे
एम्. ए., एल् एल् बी०, एडवोकेट

हिन्दी समिति, सूचना विभाग
उत्तर प्रदेश, लखनऊ

प्रथम संस्करण
१९६३

मूल्य
६.५० रुपये

मुद्रक
नरेन्द्र भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, वाराणसी

प्रकाशकीय

देश की एकता के लिए जहाँ इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि उत्तर से दक्षिण तथा पूरब से पश्चिम तक समूचे भारत में, कम से कम, राष्ट्रीय कार्यों तथा अन्त:प्रान्तीय व्यवहार के लिएं हिन्दी का ही प्रयोग हो, वहाँ यह भी उचित और वांछनीय है कि हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के निवासी भी एक या दो अन्य भाषाओं एवं उनके साहित्य की थोड़ी-बहुत जानकारी प्राप्त करें। इस लक्ष्य की सिद्धि में आंशिक योगदान करने के उद्देश्य से हिन्दी-समिति ने बँगला, मराठी, तेलगू आदि भाषाओं के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास हिन्दी में प्रकाशित करने की योजना बनायी थी। तदनुसार अभी तक मलयालम्, बँगला और उर्दू साहित्य के इतिहास प्रकाशित किये जा चुके हैं तथा अन्य भाषाओं के भी लिखाये जा रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन भी समिति की उक्त योजना का ही अंश है। इसके लेखक संस्कृत विश्व-परिषद् के मानद महामंत्री, भारतीय विद्या-भवन के मानद नियामक एवं गुजराती भाषा के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। उन्होंने बड़े परिश्रम से इसकी रचना की है और इसे यथेष्ट सरल और सुबोध बनाने का प्रयत्न किया है। आशा है, हिन्दी के पाठकों के हृदय में गुजराती साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न करने और गुजराती भाषा भाषियों से अधिक निकट का सम्बन्ध स्थापित कराने में श्री दवे की यह कृति यथेष्ट सहायक होगी।

ठाकुर प्रसाद सिंह
सचिव, हिन्दी-समिति

विषय-सूची

भाग—१

भाग—२

भाग १

मध्यकालीन
गुजराती साहित्य का इतिहास

अध्याय १

गुजराती और उसका मूल

गुजराती भाषा का व्याप्य क्षेत्र उत्तर में सिरोही मारवाड़ तक, जो कच्छ तथा सिंध के थर और पारकर जिलों को भी आवेष्टित कर लेते हैं, है। दक्षिण में उस क्षेत्र की सीमा दमण गंगा तक है। महाराष्ट्र राज्य के थाणा जिले, सालसेट द्वीप-समूह और बंबई शहर में भी गुजराती बोली जाती है। पूर्व में इसकी सीमा सह्याद्रि पर्वत श्रेणी तक, जो उत्तरवर्ती होकर धरमपुर, पालनपुर एवं अरावली पहाड़ियों तक पहुँचती है तथा भील बस्तियों का कुछ भाग भी जिसमें आ जाता है, है। पश्चिम ओर का सीमान्त स्वयं सागर ही है।

उपर्युक्त भागों में हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई तथा अन्य लोग भी गुजराती बोलते हैं। भारत के बाहर भी विश्व के अनेक भागों में, जहाँ गुजराती जाकर बस गये हैं, यह भाषा बोली जाती है। ऐसा आँका गया है कि वर्तमान समय में भारत के लगभग १ करोड़ ६३ लाख ११ हजार ९० व्यक्ति गुजराती भाषा बोलते हैं।

प्राचीन काल में यह भौगोलिक क्षेत्र, जिसका वर्णन ऊपर किया गया है, विभिन्न नामों से प्रसिद्ध था। किसी समय उत्तर गुजरात तथा सौराष्ट्र की राजधानी कुशस्थली थी और वह देश 'आनर्त' कहलाता था। कालान्तर में 'आनर्त' शब्द उत्तर गुजरात के लिए प्रयुक्त होने लगा, जिसकी राजधानी आनन्दपुर अथवा वडनगर थी। विभिन्न कालों में आनर्त, अर्बुद, सौराष्ट्र, कच्छ, शूर्पारक, नासिक्य आदि विभिन्न क्षेत्रों के लिए 'अपरान्त' शब्द का प्रयोग होता था और इसका पुराना अर्थ था 'पश्चिमी तट की भूमि'। मही और तापी के बीच के क्षेत्र को लाट नाम से पुकारा जाता था, जिसमें खानदेश भी आ जाता था। इब्न सईद के अनुसार तो थाणा भी इसके अन्तर्गत आता था। तट का समीपवर्ती प्रदेश 'अनूप' नाम से संबोधित किया जाता था और यही नाम

रेवा के दोनों तटों के क्षेत्र के लिए भी प्रयुक्त होता था, जिसकी राजधानी माहिष्मती थी।

इस सारे प्रदेश की संज्ञा गुजरात होने के पूर्व केवल भिन्नमाल क्षेत्र गुर्जरत्रा नाम से प्रसिद्ध था। हुआनसांग ने (६४१ ई०) इस नाम का उल्लेख किया है। सन् ८०८ ई० के मध्य में भड़ोंच के चारो ओर एक छोटा-सा गुर्जर राज्य था। प्रतिहार भोज प्रथम (८४४ से ८६२ ई० तक) के शिला लेखों के अनुसार भिन्नमाल के चारो ओर का क्षेत्र गुर्जर भूमि नाम से विख्यात था तथा लगभग ७०० ई० में आनर्त इस गुर्जरत्रा अथवा गुर्जरदेश अथवा गुर्जर मण्डल का एक भाग था। अल्बरूनी (ईसा की १० वीं शताब्दी) के काल में पश्चिमी राजस्थान का भाग भी गुजरात में सम्मिलित था। कुछ समय बाद गुजरात की सीमा दक्षिण में दमनगंगा तक पहुँच गयी, किन्तु राजस्थान वाला भाग इससे निकल गया। गुजरात की वर्तमान राजनीतिक सीमाओं द्वारा आवेष्टित क्षेत्र का आधुनिक नाम, गुजरात, लगभग १४०० ई० में पड़ा और इसमें कच्छ तथा सौराष्ट्र भी सम्मिलित हो गये।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ५५० ई० में आधुनिक मारवाड़ ही गुर्जर क्षेत्र था, जिसकी राजधानी भिन्नमाल अथवा श्रीमाल थी। यहाँ के राजा गुर्जर कहलाते थे, जो अपनी वंशावली का आरंभ हरिश्चन्द्र नामक ब्राह्मण तथा श्रीराम के भाई लक्ष्मण से मानते थे (मिहिरभोज की ग्वालियर-प्रशस्ति)। परंतु कुछ विद्वानों की मान्यता है कि गुर्जर एक विदेशी जाति—संभवतः शक—थी, जो भारत में ईसा की ५वीं शताब्दी में आयी। १०वीं शताब्दी में ये गुर्जर भिन्नमाल से चलकर उत्तर गुजरात में पहुँचे। उस समय ये जहाँ जाकर बसे, वह क्षेत्र गुजरात नाम से प्रसिद्ध हुआ। गुजराती इसी क्षेत्र की भाषा है।

यद्यपि 'गुजरात' शब्द का सम्बन्ध गुर्जरों से है, तथापि इसकी व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों का मतभेद है और इसके गुर्जर+त्रा, गुर्जर+रठ्ठ, गुर्जर+राष्ट्र आदि अनेक आदि रूप बताये जाते हैं। प्राचीन साहित्य में गुर्जरत्रा, गुर्जर देश तथा गुर्जर मंडल शब्दों का प्रयोग हुआ है, किन्तु इनमें से किसी भी शब्द के आधार पर गुजरात शब्द की संतोषजनक व्युत्पत्ति नहीं की जा सकती। श्री एन० वी० दिवेटिया ने अपने ग्रंथ 'गुजराती भाषा और साहित्य' भाग २,

पृष्ठ१९९–२०० में एक सुझाव दिया है कि संभवतः 'गुज्जर' शब्द में अरबी का प्रत्यय 'आत' जुड़ने पर ही गुजरात बना है, जैसे ज़ाहिर से ज़ाहिरात। 'आत' प्रत्यय स्थल का भी सूचक है, जैसे ठाकोर से ठकरात; अथवा भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए प्रयुक्त अरबी की अन्तिम ध्वनि भी यह हो सकती है, जैसे वकील से वकालत।

गुजरात की भाषा के लिए 'गुजरात' शब्द का प्रयोग १० वीं शताब्दी में अबू ज़ईद, अल्मसूदी तथा अल्बरूनी नामक ३ अरब-यात्रियों द्वारा किया गया है, किन्तु इस भाषा के लिए 'गुजराती' शब्द का प्रयोग, जहाँ तक ज्ञात हुआ है, सर्वप्रथम प्रेमानंद (१६४९ से १७५० ई० तक) ने अपने दशम स्कंध में किया है। भालण (१४२६-१५०० ई०) इसे अपभ्रंश या गुर्जर भाषा कहता है; मार्कण्डेय (१४५० ई०) अपने 'प्रक्रिया सर्वस्व' में इसे गौर्जरी अपभ्रंश की संज्ञा देता है; पद्मनाभ (१४५६ ई०) इसे प्राकृत, नरसिंह मेहता (१४५० ई०) अपभ्रंश गिरा तथा अखो (१६५०) इसे प्राकृत अथवा भाषा नाम से पुकारता है। प्रेमानंद का समकालीन बर्लिन पुस्तकालय का पुस्तकालयाध्यक्ष इसे गुजराती कहता है। इस प्रकार लगभग १७०० ई० में इस भाषा के लिए 'गुजराती' शब्द का प्रयोग प्रचलित हुआ।

विद्वानों ने उत्तर भारत की अनेक भाषाओं को उस परिवार के अन्तर्गत माना है, जिसे 'भारोपीय' परिवार कहते हैं। इस परिवार में कुछ तो ग्रीक-लैटिन आदि यूरोपीय भाषाएँ हैं और अवस्ती के समान कुछ एशियाई भाषाएँ हैं। इस परिवार की भारतीय शाखा का नाम भारतीय-आर्य-परिवार है, जिसमें वैदिक संस्कृत, उच्च साहित्यिक संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश आदि प्राचीन उत्तर भारतीय भाषाएँ सम्मिलित हैं, साथ ही कालान्तर में इन भाषाओं से विकसित भाषाएँ भी हैं, जैसे गुजराती, हिंदी, बंगला, मराठी आदि। ये आधुनिक भारतीय भाषाएँ नवीन भारतीय आर्य भाषाएँ कहलाती हैं।

उपर्युक्त भारतीय आर्य भाषाओं का विकास तीन सोपानों में विभक्त है–(१) प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ, जैसे वैदिक भाषा, वेदकालीन बोलचाल की भाषा, संस्कृत आदि; (२) मध्य भारतीय आर्य भाषाएँ, जैसे पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश; (३) नवीन भारतीय आर्य भाषाएँ, जो उत्तर भारत

की प्रादेशिक भाषाएँ हैं, जैसे हिंदी, गुजराती, बंगला आदि। ये तीन अवस्थाएँ संक्षेप में संस्कृत, प्राकृत तथा आधुनिक अवस्था अथवा प्राचीन, मध्य और नव भारतीय आर्य अवस्था के नामों से जानी जाती हैं।

द्वितीय अथवा मध्य भारतीय आर्य भाषाओं की विकास-अवस्था लगभग ६०० वर्ष ईसा पूर्व से आरंभ होती है। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के नमूने तथा बोलचाल की भाषाओं के प्रादेशिक अन्तर अशोक के पश्चिम (गिरनार), उत्तर और पूर्व के शिला-लेखों में सुरक्षित हैं। इन पश्चिमी शिला-लेखों की कुछ विशेषताएँ अपभ्रंश एवं गुजराती में मिलती हैं। भरत के नाट्यशास्त्र (२०० ई०) में आवन्ती बोली पायी जाती है, जो उस समय मालवा और गुजरात में प्रचलित थी। आभीर एक जाति थी, जो बहुत पहले (५०० ई०) राजस्थान तथा पश्चिमी तट पर बस गयी थी। भरत के नाट्यशास्त्र (१७–२४–५५) में इन आभीरों और दूसरे लोगों की देशभाषा का उल्लेख है। ईसा की पाँचवीं शताब्दी से पूर्व दक्षिण गुजरात के कुछ भाग में कन्नड़ भाषा का भी प्रयोग होता था। चौथी और पाँचवीं शताब्दी में जैन साधू जैन महाराष्ट्री प्राकृत बोलते थे। सौराष्ट्र में साहित्य-साधना के लिए गौर्जरी अपभ्रंश का उपयोग होता था, जिसके मूल में शौरसेनी प्राकृत का अंश था और संभवत: उत्तर गुजरात की बोली में स्पष्ट लक्षित होनेवाला अन्तर था। (मुंशी–गुजराती भाषा और साहित्य, पृष्ठ १८–१९)।

गुजराती का विकास अपभ्रंश से हुआ है, जो इसकी माँ कहलाती है और अपभ्रंश 'मध्य भारतीय आर्य' भाषाओं अर्थात् प्राकृत के विकास की अंतिम अवस्था है। अपभ्रंश ५०० ई० से लगभग एक हजार वर्षों तक साहित्य की भाषा बनी रही। हेमचन्द्र के कथनानुसार अपभ्रंश पर प्राकृत का सामान्य और शौरसेनी का विशेष प्रभाव था।

अपभ्रंश के मूल, स्वरूप, विभेद और परिभाषा के सम्बन्ध में विद्वानों में काफ़ी मतभेद है। गुजराती, राजस्थानी और हिन्दी का अपभ्रंश से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। कुछ विद्वानों का विश्वास है कि अपभ्रंश का ही एक रूप प्राचीन गुजराती में परिणत हो गया। डी० बी० के० एच० ध्रुव का कहना है कि १०वीं

और ११वीं शताब्दी के गुजरात की भाषा अपभ्रंश या प्राचीन गुजराती कही जा सकती है। श्री के० के० शास्त्री छठवीं से लेकर १४वीं शताब्दी तक के गुजरात की भाषा को प्राचीन गुजराती अथवा गौर्जर अपभ्रंश मानते हैं। श्री एन० वी० दिवेटिया भी ११वीं से १४वीं शताब्दी के गुजरात की भाषा को गौर्जर अपभ्रंश कहते हैं।

ग्रियर्सन की मान्यता थी कि अपभ्रंश प्राकृत और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच की अवस्था है, किन्तु अब इस मान्यता को स्वीकार नहीं किया जाता।

हेमचन्द्र ने अपने सिद्धहैम में व्याकरण के अपभ्रंश भाग की रचना ईसा की १२वीं शताब्दी में की। सबसे आधुनिक और विश्वसनीय धारणा यह है कि व्याकरण में हेमचन्द्र द्वारा दिये गये उद्धरण उस अपभ्रंश का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो साहित्य में प्रयुक्त होती थी, न कि तत्कालीन लोगों की बोल-चाल में; साथ ही आभीरों एवं अन्य लोगों की मूल भाषा तथा पश्चिमी तट पर बोली जानेवाली भाषा, जिसने हेमचन्द्र से बहुत पहले किसी प्रकार साहित्यिक महत्त्व प्राप्त कर लिया था, अपभ्रंश नाम से प्रसिद्ध हो गयी थी; हेमचन्द्र ने केवल नागर अपभ्रंश का व्यवहार किया है, जो शिष्ट लोगों द्वारा साहित्य की भाषा मान ली गयी थी और जो व्राचड तथा ग्राम्य अपभ्रंश से भिन्न थी। इस मत के अनुसार साहित्यारूढ़ अपभ्रंश केवल एक था, न कि क्षेत्रीय विभागों के अनुसार अनेक।

व्राचड का सम्बन्ध सिंधी से अधिक है। आभीरों की कहावतों से युक्त एक दूसरा विभेद गौर्जर है। प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी तथा व्रज भाषा का भी अपभ्रंश से बहुत अधिक संबंध है। इस प्रकार अपभ्रंश का जन्म सिंध, राजस्थान और गुजरात में हुआ।

यह अपभ्रंश प्राकृत की अंतिम विकसित अवस्था है। इसमें प्राकृत के लगभग ८०–९० प्रतिशत शब्द वही हैं, किन्तु इसका व्याकरण प्राकृत के व्याकरण से बहुत भिन्न है तथा इसके शब्दान्त की ध्वनियाँ या तो नवीन हैं या ध्वनि-विकास की सूचक हैं, जिनमें नवीन भारतीय आर्यभाषाओं की शब्दान्त-ध्वनियों का पूर्वरूप है।

लगभग १२वीं शताब्दी से अपभ्रंश से भिन्न रूप में गुजराती का विकास आरंभ हुआ। सुविधा के लिए हम गुजराती को दो मोटे भागों में बाँट सकते हैं—(१) प्राचीन गुजराती (११०० से १८५० ई० तक) और (२) आधुनिक गुजराती।

प्राचीन गुजराती को अपभ्रंश से भिन्न करनेवाली मुख्य विशेषताएँ ये हैं—संस्कृत और प्राकृत अपभ्रंश संयोजक वर्ग की भाषाएँ हैं, पर प्राचीन गुजराती विकसित होकर विभाजक वर्ग की हो जाती है और प्रत्यय तथा विभक्तियों को छोड़ देती है। पुरानी गुजराती में संयुक्त व्यंजनों को दबाकर उसके पहलेवाले स्वर को लंबा कर दिया जाता है। शब्द के आदि में अस्पष्ट रूप से उच्चरित स्वर लुप्त हो जाता है। अपभ्रंश शब्दों के स्थान पर संस्कृत पर्याय शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति है। लगभग १३५० ई० तक 'छइ' शब्द सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त होता आया। लगभग १५०० ई० में गुजरात एक पृथक् राज्य बना और राजस्थान पर से इसका प्रभुत्त्व हट गया। अतः इसकी भाषा में नये लक्षणों का विकास आरंभ हुआ और १६५० ई० तक गुजराती को उसका वर्तमान स्वरूप प्राप्त हो गया। (मुंशी—गुजराती भाषा और साहित्य, पृष्ठ १३८-१३९)।

डी० बी० के० एच० ध्रुव के अनुसार १०वीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी तक गुजरात की भाषा अपभ्रंश या पुरानी गुजराती नाम से कही जा सकती है; १५ वीं से १७वीं शताब्दी तक की भाषा को मध्यकालीन गुजराती तथा १७वीं शताब्दी से अब तक की भाषा को आधुनिक गुजराती कह सकते हैं। श्री एन० बी० दिवेटिया के अनुसार गुजरात की भाषा वि० सं० ९५० तक अपभ्रंश; वि० सं० ९५० से १३०० तक मध्यकालीन अपभ्रंश; वि० सं० १३०० से १५५० तक अंतिम अथवा गुर्जर अपभ्रंश (तेसीतोरी के अनुसार प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी की भाँति); वि० सं० १५५० से १७५० तक मध्य गुजराती और १७५० से आगे आधुनिक गुजराती थी। श्री मधुसूदन मोदी आधुनिक गुजराती का आरंभ एक शताब्दी पहले मानते हैं।

× × ×

अनेक वर्षों तक नरसिंह मेहता (१४१५ से १४८१ ई०) को गुजराती का आदि कवि माना जाता रहा, किन्तु बाद में उनसे पहले के पुरानी गुजराती के कई कवियों की कृतियाँ प्रकाश में आयीं। इसके अतिरिक्त ५०० से १४०० ई० तक के अनेक अपभ्रंश ग्रंथों का प्रकाशन हुआ। पहले कहा जा चुका है, कुछ विद्वानों की धारणा है कि अपने पुराने रूप में गुजराती अपभ्रंश ही थी; इससे भिन्न और श्रेष्ठ धारणा यह है कि लगभग १२०० ई० में गुजराती अपभ्रंश से भिन्न हो गयी। दोनों अवस्थाओं में गुजराती से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध अपभ्रंश के साहित्य पर एक दृष्टि डालना समीचीन होगा।

चण्ड के व्याकरण 'प्राकृत-लक्षण' में जो छठवीं शताब्दी का माना जाता है—अपभ्रंश सम्बन्धी उल्लेख सबसे पुराने हैं। ५८९ ई० के कुछ समय पूर्व भद्रबाहु द्वारा रचित 'वसुदेव-हिण्डी' में अपभ्रंश के सबसे प्राचीन रूप पाये जाते हैं। ७७९ ई० में उद्योतन द्वारा रचित 'कुवलय माला' में अपभ्रंश के कुछ पद्य हैं। इसमें १८ देशों, उनकी भाषा तथा वहाँ के निवासियों का वर्णन है, यथा—"मारवाड़ी बहुत स्थूल होते हैं तथा अप्पा-तुप्पा बोलते हैं"; "गुर्जर अत्यन्त स्वस्थ और बलिष्ठ तथा युद्ध और अनुरंजन में बड़े प्रवीण होते हैं एवं वे 'णउ रे भल्लउ' बोलते हैं; लाट-निवासी स्नान बहुत अच्छी तरह करते हैं, अपने शरीर पर चंदनलेप लगाते हैं और खूब सजे-बजे रहते हैं तथा ऐसा बोलते हैं, "आहम्ह काइं तुम्ह भित्तु"। रुद्रट के 'काव्यालंकार' (८०० ई०) में तथा आनन्दवर्धन के 'ध्वन्यालोक' में भी अपभ्रंश के उद्धरण पाये जाते हैं। कालिदास-रचित 'विक्रमोर्वशीय' के चतुर्थ अंक में महाराज पुरुरवा भीषण क्रोध प्रकट करते हुए अपभ्रंश में ही बोलते हैं; और यदि ये पंक्तियाँ क्षेपक नहीं हैं, तो अब तक के ज्ञात अपभ्रंश कवियों में कालिदास को सर्वप्रथम माना जा सकता है। छठवीं अथवा दसवीं शताब्दी में जोइन्दु नाम के एक ज्ञानी कवि थे, जिनके ग्रंथ 'परमात्मप्रकाश' और 'पाहुडदोहा' के अंशों को हेमचन्द्र ने उद्धृत किया है। चतुर्मुख स्वयंभू तथा उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू (नवीं से दसवीं शताब्दी तक) ने 'जैन हरिवंश' और 'पउमचरिय' की रचना की है। पुष्पदन्त तीन ग्रंथों के प्रणेता हैं, जिनमें से एक है 'महापुराण तिसठ्ठि महा पुरिस गुणालङ्कार'। धनपाल ने (हेमचन्द्र से लगभग २०० वर्ष पूर्व) २२ संधियों में 'भविस्सत्त कहा'

अथवा 'पंचमी कहा' की रचना की। वे धक्कड़वंश के दिगंबर जैन थे। उनका ग्रंथ अपभ्रंश में अबतक प्राप्त सर्व-प्रथम उत्तम लोकवार्ता है। जैकोबी ने उसकी भाषा को नागर अपभ्रंश माना है। धवल (दसवीं शताब्दी) ने १८ हजार पदों में हरिवंश पुराण की रचना की, जिसमें १२२ संधियों में जैन तीर्थंकरों का जीवन-चरित वर्णन है। लगभग दसवीं शताब्दी में चन्द्र मुनि ने ५३ संधियों में कथाकोश की रचना की। राजा भोज द्वारा प्रेरित होकर 'तिलक मञ्जरी' की रचना करनेवाले प्रसिद्ध कवि धनपाल ने भी 'पाइयलच्छीमाला' नामक प्राकृत कोश की रचना की थी। उन्होंने १५ गाथाओं से युक्त एक अपभ्रंश स्तोत्र की भी रचना की थी, जिससे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों का पता चलता है। उसमें वर्णित है कि तुर्कों ने (गज़नी का महमूद) सोमनाथ के मंदिर को तो नष्ट कर डाला, परंतु वे सत्यपुर (मारवाड़ स्थित सांचोर) के महावीर के जैनमंदिर को छू भी नहीं सके। दसवीं शताब्दी का धनिक मालवा के राजा मुंज का समकालीन था, उसने धनंजय के दशरूपक की टीका लिखी है, जिसमें कई अपभ्रंश पद्यों को उद्धृत किया गया है। सागरदत्त (सं० १०७६) ने 'जम्बु स्वामि चरित्र' तथा नयनंदी ने सुदर्शन-चरित एवं आराधना की रचना की। धार के राजा भोज ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'सरस्वती कंठाभरण' में कई अपभ्रंश उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। उनका कथन है कि गुर्जर केवल अपनी अपभ्रंश से ही संतुष्ट हैं, किसी अन्य वस्तु से नहीं। ऐसा कहा जाता है कि राजा सिद्धराज ने राजा भोज के ग्रंथों की होड़ में ही हेमचन्द्र को प्रसिद्ध व्याकरण 'सिद्ध हैम' की रचना करने को प्रेरित किया। ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास कनकामर ने दस संधियों का एक अपभ्रंश काव्य 'करकंडुचरिउ' लिखा। लगभग उसी समय एक श्वेतांबर जैन महेश्वर सूरि ने ३५ दोहों में 'संजम मंजरी' की रचना की।

हेमचन्द्र का जन्म १०८९ ई० में हुआ था और वे सन् ११७३ तक जीवित रहे। मोटे तौर पर ग्यारहवीं शताब्दी की अंतिम चौथाई और लगभग पूरी बारहवीं शताब्दी हेमचन्द्र का युग समझा जाता है। हेमचन्द्र से कुछ पहले अभय-देवसूरि ने पार्श्वनाथ की प्रशंसा में ३३ गाथाओं वाले 'जयतिहुअण' नाम के ग्रंथ की रचना की। कवि साधारण ने सं० ११२३ में 'विलासवइ कहा' की रचना

की। हेमचन्द्र के गुरुदेव चन्द्र ने सं० ११६० में १६ हजार पदों का एक अपभ्रंश काव्य 'शांतिनाथ चरित्र' लिखा। उन्होंने एक दूसरे छोटे अपभ्रंश काव्य 'सुलसाख्यान' की भी रचना की। 'पउसिरिचरिउ' के प्रणेता धाहिल थे। जिनदन्त सूरि ने तीन अपभ्रंश काव्यों की रचना की। 'पट्टावली' के रचयिता पल्ह थे। वादिदेव सूरि ने 'गुरुस्तवन' तथा लक्ष्मणगणी ने 'सुपासनाह चरित्र' प्राकृत में लिखा। इन दोनों काव्यों में अपभ्रंश के पद्य जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं। ये अंतिम दो कवि हेमचन्द्र के समकालीन थे।

आचार्य हेमचन्द्र गुजरात के सर्वश्रेष्ठ एवं महान् पंडित माने जाते हैं। उन्होंने 'अनेकार्थ संग्रह' तथा 'अभिधान चिन्तामणि'—जैसे कोशों की रचना की और 'छन्दानुशासन' एवं 'काव्यानुशासन' का सर्जन किया। हेमचन्द्र ने आयुर्वेद का एक ग्रंथ 'निघण्टुशेष', योग संबंधी ग्रंथ 'योगशास्त्र' तथा तीर्थंकरों और महात्माओं के चरित्रों से युक्त 'त्रिषष्टि-शलाका-पुरुषचरित' नामक ग्रंथ लिखा। उनका 'सिद्ध हैम' ग्रंथ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के व्याकरणों का वर्णन है। उन्हें अपभ्रंश का पाणिनि कहा जा सकता है। उनके उद्धरण अपभ्रंश के श्रेष्ठ काव्य हैं। उनका वास्तविक नाम चांगदेव था और वे धन्धूका के एक मोढ वणिक थे। उन्होंने खंभात में सं० ११५० में दीक्षा ग्रहण की, जबकि इस प्रान्त के सूबेदार उदा मेहता थे। सं० ११६६ में वे हेमचन्द्रसूरि हो गये। सं० ११८१ में वे सिद्धराज के सम्पर्क में आये। सं० ११९१ में मालवा पर विजय प्राप्त की गयी। जब सिद्धराज ने भोज के ग्रंथों को देखा, तब उसकी इच्छा हुई कि गुजरात के विद्वान् भी ऐसे विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ लिखें। हेमचन्द्र ने प्रसिद्ध व्याकरण 'सिद्ध हैम' की रचना आरंभ की, जिसका नामकरण उनके आश्रयदाता सिद्धराज और स्वयं हेमचन्द्र के अर्द्धनामों को मिलाकर हुआ। 'सिद्ध-हैम' में आये व्याकरण के अनेक नियमों की व्याख्या करते हुए उन्होंने 'द्वयाश्रय काव्य' की भी रचना की। उन्होंने 'देशी नाम माला' भी लिखी, जो देशी शब्दों का एक कोश है। अपभ्रंश तथा पुरानी गुजराती की शुद्ध रूप-रेखा और विकास को निश्चित करने में हेमचन्द्र के ये ग्रंथ बहुत बड़े सहायक हैं। युग का निर्माण करनेवाले उनके ग्रंथ 'सिद्ध हैम' का सिद्धराज ने बहुत अधिक आदर किया। उसकी अनेक प्रतिलिपियाँ कराकर उन्होंने भारत के विभिन्न भागों में भेजीं।

हेमचन्द्र के समकालीन अन्य कवियों में से हरिभद्रसूरि ने 'नेमिनाहचरिउ' की रचना की। इस ग्रंथ की भाषा को डा० जैकोबी ने गुर्जर अपभ्रंश की संज्ञा दी है। ये कवि संस्कृत एवं, प्राकृत के बहुत बड़े विद्वान् थे। देवसेनसूरि ने 'श्रावकाचार', वरदत्त ने 'वैरसामि चरिउ' तथा रत्नप्रभ ने 'अन्तरंग सन्धि' की रचना की। कवि सोमप्रभ हेमचन्द्र के समकालीन कवियों में छोटे थे और संस्कृत तथा प्राकृत के वे अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने 'कुमारपाल प्रतिबोध' की रचना की, जिससे हेमचन्द्र और राजा कुमारपाल के विषय की अच्छी ऐतिहासिक जानकारी मिलती है। उन्होंने अनेक दूसरे ग्रंथों की भी रचना की है। वाग्भट के ग्रंथ 'काव्यानुशासन' की टीका करनेवाले सिंहदेव गणी ने प्रादेशिक विभागों के अनुसार कई प्रकार की अपभ्रंशों का वर्णन किया है। एक नागर ब्राह्मण कवि, जो बाद में जैन हो गये थे, 'षट्कर्म प्रवेश' के रचयिता थे। जयदेव गणी का ग्रंथ 'भावना संधिप्रकरण' १३ वीं तथा १४वीं शताब्दी में प्रसिद्ध था। जयमंगलसूरि ने 'महावीर जन्माभिषेक' की रचना की। जिनप्रभसूरि के अनेक ग्रंथ हैं, जो छोटे होने पर भी पठनीय हैं। उनके शिष्यों में से एक ने 'नर्मदा सुन्दरी कथा' तथा 'गौतम स्वामिचरित्र' की रचना की। 'प्रबंध चिन्तामणि' के रचयिता मेरुतुङ्ग ने बहुत-से अपभ्रंश दोहों को उद्धृत किया है। उन्होंने वढवाण में सं० १३६१ में अपने ग्रंथ की रचना की। इसमें प्रसिद्ध लोक-कथाओं के बीच बहुत-से ऐतिहासिक तथ्य छुपे हैं। उनके अनेक अपभ्रंश-दोहे हेमचन्द्र के दोहों से मिलते-जुलते हैं। १६वीं शताब्दी तक हमें विभिन्न कवियों के ग्रंथों में बराबर साहित्यिक अपभ्रंश के दर्शन होते हैं।

गुजरात-कवियों द्वारा रचित अपभ्रंश-काव्यों के अतिरिक्त भारत के अन्य प्रान्तों में भी अनेक अपभ्रंश-ग्रंथों की रचना हुई है और वे भी बड़े महत्त्व के हैं। ग्यारहवीं शताब्दी में तिल्लोपाद, सरहपाद तथा कण्हपाद में से प्रत्येक ने एक-एक 'दोहाकोश' की रचना की। ये आसाम और बंगाल की कृतियाँ हैं तथा इनके रचयिता बौद्ध हैं। 'दुहा-संग्रह' भी एक अन्य बौद्ध कृति है। 'डाकार्णव' बंगाली अपभ्रंश का क तांत्रिक ग्रंथ है। विद्यापति की 'कीर्तिलता" (पन्द्रहवीं शताब्दी), 'प्राकृत पिङ्गल' (पन्द्रहवीं शताब्दी), त्रिविक्रम की 'प्राकृत व्याकरण', मार्कण्डेय की 'प्राकृत सर्वस्व', लक्ष्मीधर की 'षड्भाषा चन्द्रिका'

तथा सिंहराज की 'प्राकृत रूपावतार' ऐसी रचनाएँ हैं, जिनमें या तो अपभ्रंश के पदों को उद्धृत किया गया है अथवा जिनका विषय ही अपभ्रंश है। अधिक जानकारी के लिए अथवा भाषागत विशेषताओं के लिए पाठकों को श्री के० के० शास्त्री का ग्रंथ 'आपणा कवियों' देखना चाहिए।

अपभ्रंश-साहित्य मुख्यतः धार्मिक अथवा उपदेशात्मक है और प्रधान रूप से इसकी शैली वर्णनात्मक है। चरित्रों के रूप में धर्मकथा-साहित्य में ऐतिहासिक या पौराणिक महापुरुषों की जीवनियाँ हैं, जैसे 'महापुराण'। इसमें ६३ प्रसिद्ध जैन धार्मिक पुरुषों का जीवन-चरित वर्णित है। महाकाव्य के रूप में इसमें जैन दृष्टिकोण से राम-कृष्ण की कहानियाँ भी हैं तथा कथाकोश के रूप में भी यह पाया जाता है। अनेक उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि वीरता और प्रेम सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण अपभ्रंश-साहित्य भी प्रचुर मात्रा में था।

अपभ्रंश ने कड़वा में रचित एक काव्य-शैली गुजराती भाषा को प्रदान की है; छप्पय, दोहा और चौपाई-जैसे अनेक छन्द दिये; नवीन वाक्यालंकार दिये; गद्य-शैलियों में से एक शैली प्रदान की; पुरानी गुजराती का तो अपभ्रंश के साथ माँ-बेटी का सम्बन्ध है। (अपभ्रंश पाठावलि की भूमिका, ले०—मधुसूदन मोदी)।

मोटे तौर पर हम गुजराती साहित्य के इतिहास को दो भागों में बाँटेंगे। प्रथम भाग में दयाराम (१८५२ ई०) तक मध्यकालीन गुजराती साहित्य की चर्चा होगी तथा द्वितीय भाग में आधुनिक काल का गुजराती साहित्य होगा।

अगले अध्याय में हम ऐतिहासिक दृष्टि से इस विषय पर विचार करेंगे।

अध्याय २

ऐतिहासिक छानबीन

गुजरात एवं सौराष्ट्र के लोथल तथा अन्य स्थानों पर एक संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिसे सुविधा के लिए सिंधु घाटी की सभ्यता (३५०० से २७०० वर्ष ईसा पूर्व) का नाम दिया गया है। तापी और नर्मदा के उद्गम स्थल से लेकर भड़ोंच और खंभात के बन्दरगाह तथा गुजरात और सौराष्ट्र के तट इस सभ्यता के क्षेत्र हैं। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वैदिक आर्यों का गुजरात में कब आगमन हुआ। च्यवन का आश्रम नर्मदा के तट पर और वसिष्ठ का आबू पर्वत पर था। विश्वामित्रि नदी का संबंध महर्षि विश्वामित्र से है। कार्तवीर्य का साम्राज्य यहाँ था। हैहय क्षत्रियों के विरुद्ध परशुराम ने कई युद्ध यहाँ किये। महाकाव्य तथा पुराणों के अनुसार श्रीकृष्ण ने मथुरा छोड़कर सौराष्ट्र स्थित द्वारका में समुद्र के समीप एक दृढ़ दुर्ग का निर्माण कराया तथा यादवों के साथ वहीं बस गये। यह स्थान रैवतक पर्वत के पास था। वृष्णि, सात्वत और यादवों का शासन अल्प जन-शासित अथवा गणतंत्र की कोटि का था। युधिष्ठिर ने गुजरात की तीर्थयात्रा की थी। तापी के तट पर मार्कण्डेय का आश्रम था तथा सिद्धपुर में कपिल मुनि रहते थे। वडनगर आनर्तपुर कहलाता था, जो गुजरात की अति प्राचीन राजधानियों में से एक था और जिसकी विशिष्ट ख्याति ईसा की दसवीं शताब्दी तक बनी रही। आर्य संस्कृति का यह एक अति प्राचीन केन्द्र था। गिरिनगर, कुशस्थली, प्रभास, भृगुकच्छ तथा शूर्पारक कुछ प्राचीन आर्य-बस्तियाँ थीं।

अशोक के समय में रथ्थीक सौराष्ट्र में निवास करते थे और आभीरों ने भी इस क्षेत्र को अपना निवास-स्थान बना लिया था। ईसा पूर्व ३१९ से १९७ तक मौर्य साम्राज्य की प्रतिष्ठा थी, जिसमें गुजरात भी सम्मिलित था। अशोक ने (ईसा पूर्व २७२ से २३२ तक) अपने यूनानी शासक यवनथेर द्वारा

इस भाग पर शासन किया। मौर्यों के बाद बैक्ट्रिया के यूनानी आये, जिनमें मियन्दर (मिलिन्द) का नाम विशेष प्रसिद्ध है। उनके बाद क्षत्रप आये (७० से ३९८ ई०), जो विदेशी होते हुए भी हिन्दूपन में रँग गये थे। क्षत्रप नहपण (७८ से १२० ई०) के गुजरात में राज्य करने के बाद आंध्र शासक गौतमीपुत्र सतकरणी द्वारा इसका शासन हुआ, किन्तु रुद्रदमन प्रथम (१४३ से १५८ ई०) ने फिर से क्षत्रप-राज्य की स्थापना की। वह अत्यन्त कुशल और योग्य शासक था। गिरनार की चट्टानों पर अशोक और रुद्रदमन के लेख बगल-बगल खुदे मिलते हैं। गुप्त-काल में गुजरात गुप्त-साम्राज्य का एक अंश था और इसका शासन उज्जयिनी से होता था। स्कंदगुप्त (४६७ ई०) की मृत्यु के पश्चात् गुजरात पर से गुप्तों का अधिकार हट गया और त्रैकूटक (४५० से ४९५ ई०) दक्षिण गुजरात का शासन करने लगे।

गुप्त राजाओं के बाद गुजरात पर वलभी के मैत्रकों ने सन् ४७० से ७८९ ई० तक शासन किया। 'दश कुमारचरित' और 'कथा सरित सागर' में वलभी का वर्णन एक उन्नतिशील नगर के रूप में है। मैत्रक माहेश्वर थे और नकुलिष द्वारा स्थापित पशुपत संप्रदाय के अनुयायी थे। नकुलिष स्वयं शिव के अवतार माने जाते थे, जिन्होंने कायावरोह के समीप अथवा बड़ोदा के पास कारवण नामक ग्राम में एक मृत ब्राह्मण के शव में प्रवेश किया था। सोमनाथ मंदिर को—जिसके विषय में किंवदन्ती है कि उसकी स्थापना चन्द्र देवता ने की थी और बाद में श्रीकृष्ण ने नवीन रूप दिया था—गुजरात के शासकों द्वारा राज-प्रतिष्ठा प्राप्त थी। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में यह सर्वप्रथम है और समूचे भारत द्वारा इसकी पूजा-आराधना होती थी। मैत्रक राजाओं के लगभग १२५ ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं, जो दान-शासन के अंतर्गत आते हैं। इनमें से अधिकांश दान-पत्र ब्राह्मणों, मंदिरों या बौद्ध मठों के लिए हैं। आनन्दपुर, गिरिनगर तथा दूसरे स्थानों से ब्राह्मणों को आमंत्रित करके वलभी एवं दूसरे नगरों में बसाया गया था। प्रसिद्ध 'भट्टि काव्य' या 'रावणवध' छठवीं शताब्दी के अंतिम भाग में, धारसेन के शासन-काल में, भट्ट स्वामी अथवा भर्तृहरि द्वारा वलभी में रचा गया। वे बहुत बड़े वैयाकरण थे और रावणवध की कथा लिखते समय उन्होंने

संस्कृत-व्याकरण के नियमों का वर्णन किया है। इसी समय में बुद्ध धर्म का भी विशेष प्रचार था। दुद्दा विहार तथा बप्पापादीय विहार बहुत प्रसिद्ध थे। बोधिसत्व गुणमति और स्थिरमति अपनी यात्रा में वलभी में ही ठहरे थे और प्रसिद्ध ग्रंथों की रचना की थी। यद्यपि वलभी में हीनयान की प्रमुखता थी, तथापि बौद्धमत के दोनों संप्रदाय महायान और हीनयान का प्रचार वहाँ था। नालन्दा की भाँति वलभी की भी ख्याति एक महान् विश्वविद्यालय के रूप में भारत में तथा भारत के बाहर थी।

जैन-ग्रंथों को एकत्रित करने के लिए जैनों की एक सभा मथुरा में हुई थी और दूसरी नागार्जुन द्वारा वलभी में। जैन साधुओं की दूसरी सभा देवर्द्धिगणि द्वारा वलभी में हुई थी, जिसमें जैन धार्मिक ग्रंथों का लेखन हुआ था। इस घटना को पुस्तकारोहण की संज्ञा दी गयी थी। वलभी के शासन-काल में नागार्जुन, मल्लवादिन् तथा देवर्द्धिगणि विशिष्ट जैन विद्वान् थे। वलभी के अतिरिक्त शत्रुंजय तथा दूसरे स्थान भी जैन-केन्द्रों के रूप में विकसित हुए। आरंभ से ही जैनों का सम्बन्ध गुजरात से रहा था। बाईसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथ सौराष्ट्र के थे। बीसवें तीर्थङ्कर सुव्रत का शकुनिक विहार भड़ोंच में था। जैन साधुओं ने धर्मकथाओं और चरितों के साहित्य को आगे बढ़ाया। भद्रबाहु ने ४११ ई० में गुजरात के शासक को जैन कल्पसूत्रों की कथा आनन्दपुर में सुनायी। 'तरंगवती' प्राकृत का एक प्रेम काव्य था। इसके रचयिता पदलिप्त थे, जिन्होंने नेमिचन्द्र के 'पलितण' और 'तरंगालोक' को संक्षेप रूप में प्राप्त किया था। विमल का 'पउमचरिअम्' जैन महाराष्ट्र प्राकृत में लिखा हुआ है और जैन-सिद्धान्तों के अनुसार परिवर्तित वह रामायण की कहानी है। सिद्धसेन दिवाकर (५३३ ई०) एक प्रसिद्ध जैन तार्किक और अनेक प्रकरणों के लेखक थे। हरिभद्रसेन १४०० प्रकरणों तथा अनेक धर्मकथाओं के लेखक कहे जाते हैं, किन्तु उनमें से केवल 'समराइच्चकहा' और 'धूर्ताख्यान' ही हम तक पहुँचे। ये महाराष्ट्र प्राकृत में हैं। पहली कथा एक राजकुमार और पुरोहित की है कि द्वेष के कारण किस प्रकार पुरोहित का सर्वनाश हुआ। दूसरी कहानी ठगों की है। उद्योतन हरिभद्र के शिष्य थे, जिन्होंने झालोर (७७९ ई०) में 'कुवलयमाला'

नामक चम्पू काव्य की रचना की। रत्नप्रभ (१४०० ई०) ने इस प्रेमकाव्य का अनुवाद संस्कृत में किया। हरिवंश पुराण की रचना जिनसेनसूरि ने सन् ७८३ में की। इसका कुछ अंश वर्द्धमानपुर अर्थात् वढवाण में लिखा गया था। सिद्धर्षि ने 'उपमिति-भव प्रपञ्च-कथा' (९०६ ई०) की रचना की, जिसमें बड़े लम्बे-लम्बे उपदेश हैं। शिलादित्य का प्राकृतग्रंथ 'चौपन्न महापुरुष चरिअम्', विजयसिंह का 'सुन्दरी कथा', महेश्वरसूरि का 'कालकाचार्य कथानक' तथा हरिषेण का 'बृहत्कथा कोश' आदि इस काल के महत्त्वपूर्ण जैन ग्रंथों में से हैं।

वलभी का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय ४०० वर्षों तक सुविख्यात रहा। ८वीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में अरब-सेना ने सिंध से नौकाओं द्वारा वलभी पर आक्रमण किया, जिसमें वलभी-शासक को मार कर वलभी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया।

वनराज चवडा ने सन् ७४५ में पाटन की स्थापना की। इसके पूर्व पंचसर चावडा की राजधानी था।

गुर्जर प्रतिहार भिन्नमाल के थे, जो लगभग एक शताब्दी तक भारत के इतिहास पर छाये रहे। नागभट्ट प्रथम ८वीं शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में शक्ति-सम्पन्न हुआ और कन्नौज का प्रतिहार-साम्राज्य १०वीं शताब्दी के मध्य तक रह कर छिन्न-भिन्न हो गया। गुर्जर प्रतिहारों में मिहिरभोज का नाम विशेष प्रसिद्ध है। उसने लगभग आधी शताब्दी तक राज्य किया और एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना की, जिसमें पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, ग्वालियर, गुजरात, सौराष्ट्र, मालवा आदि सम्मिलित थे। उसकी राजधानी कन्नौज थी। वह आदिवराह के नाम से प्रख्यात था। उसी के काल में राजशेखर हुए; संभवतः मेधातिथि भी। राजशेखर लाट के उन लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो संस्कृत से घृणा और प्राकृत से प्रेम करते थे। लाट-शैली की एक विशेषता हास-विनोद भी है।

११वीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में धार के राजा भोज ने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। वाक्पतिराज मुंज भोज का चाचा था। वह स्वयं महा विद्वान्, विद्वानों का आश्रयदाता तथा मधुर व्यक्तित्व वाला था। 'नव

साहसाङ्क चरित' के रचयिता पद्मगुप्त अथवा परिमल; प्रसिद्ध नाट्य ग्रंथ 'दशरूपक' के लेखक धनंजय; 'दशरूपक' तथा 'हलायुध' की टीका करनेवाले धनिक—ये सब मुंज के समकालीन तथा सहयोगी थे। भोज के राज्य में गुजरात तथा सौराष्ट्र भी सम्मिलित थे और उसका विस्तार थानेश्वर से तुङ्गभद्र तक तथा द्वारका से कन्नौज तक था। भोज स्वयं श्रेष्ठ कवि, विद्वान् और विद्या-प्रेमी थे। वे लगभग ८४ ग्रंथों के रचयिता माने जाते हैं, जिनमें 'शृंगार प्रकाश' सबसे बड़ा गद्य-ग्रंथ है। 'तिलक मंजरी' तथा 'प्राकृत कोश रचना-शास्त्र' के रचयिता धनपाल और यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता पर 'मंत्रभाष्य' करनेवाले आनन्दपुर के उव्वट भोज के समय में ही हुए।

पाटण की वास्तविक उन्नति चालुक्य राजाओं के समय में हुई। इस वंश का आरंभ मूलराज से हुआ था। मूलराज ने कच्छ, सौराष्ट्र, लाट, चन्द्रावती और सिरोही के शासकों को परास्त करके अपने राज्य का विस्तार किया। उसने उत्तरापथ के ब्राह्मणों को आमंत्रित करके गुजरात में बसाया। राजा कर्णदेव ने, जो त्रैलोक्यमल्ल की पदवी से विभूषित था और प्रसिद्ध सिद्धराज का पिता था, ग्यारहवीं शताब्दी में कर्णावती नगर—आधुनिक अहमदाबाद—बसाया। काश्मीरी पंडित बिल्हण ने कर्णदेव की राजसभा में रहकर प्रेम-प्रसंगपूर्ण 'कर्णसुन्दरी' नामक नाटक की रचना की। गुजरात का आदि नाटक यही है। इसकी रचना सन् १०८० और १०९० के बीच हुई। उस समय तक पाटन एक भारत-प्रसिद्ध श्रेष्ठ संस्कृति-केन्द्र बन गया था। सन् १०२६ और १०५० के मध्य भृगु-कच्छ के कायस्थ सोड्ढल ने 'कादम्बरी' का अनुकरण करते हुए 'उदय-सुन्दरी कथा' नामक ग्रंथ की रचना की। गुजरात के प्रसिद्ध सम्राट् सिद्धराज जयसिंह (१०९४ से ११४३ ई०) ने पौष कृष्ण ३ संवत् ११५० को शासन-भार सँभाला। वह ५० वर्षों तक राज्य करता रहा। उसकी उपाधियाँ थीं—महाराजाधिराज, परमेश्वर, त्रिभुवनगण्ड, बर्बरक जिष्णु, सिद्ध चक्रवर्ती तथा अवन्तिनाथ। उसने सौराष्ट्र के खेंगार को पराजित करके मालवा को अपने राज्य में मिला लिया। पाटण, सिद्धपुर, वडनगर, खंभात, कर्णावती, वढवाण और डभोई उन्नत नगर थे। उसी के समय में श्वेताम्बर साधु देवसूरि

और दिगम्बर साधु कुमुदचन्द्र के बीच शास्त्रार्थ हुआ था। सिद्धराज ने मालवा के भोज के साथ प्रतिद्वन्द्विता की। वह विद्वानों का बहुत बड़ा आश्रयदाता बना। उसने परमारों के गुरु भाव वृहस्पति को गुजरात में बसने के लिए आमन्त्रित किया। हेमचन्द्र तथा उनके शिष्यगण सिद्धराज के समय में ही प्रसिद्ध हुए। गुजरात के राज्य-मंत्री मुख्यतः या तो वडनगर के नागर होते थे या जैन। ओसवाल और पारवड के जैन व्यापारी भिन्नमाल छोड़कर पाटण चले आये थे। जैन साधुओं को सिद्धराज की माता मीनलदेवी तथा कुछ जैन मंत्रियों की सहानुभूति प्राप्त थी; स्वयं हेमचन्द्र एक बहुज्ञ जैन साधु थे। सिद्धराज ने 'सिद्ध हैम' की प्रतिलिपियाँ कराकर भारत के सभी राजाओं के पास भेजीं। २० प्रतियाँ काश्मीर गयी थीं। व्याख्यासहित उस ग्रंथ में १ लाख २५ हजार पद हैं। उसके ८वें अध्याय में प्राकृत तथा अपभ्रंश पर विचार किया गया है। हेमचन्द्र के कोश तथा प्राकृत के अध्ययन बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। सिद्धराज ने नगर के बीचोबीच सहसलिङ्ग झील का निर्माण कराया और माघ कृष्ण १४ सं० १२०२ को सिद्धपुर के रुद्र महालय को पूरा कराया, जिसका निर्माण मूलराज ने आरंभ किया था। द्वयाश्रय में वैभवपूर्ण पाटण नगर का वर्णन है। सिद्धराज ने अपनी शक्ति को संगठित करके सौराष्ट्र, दक्षिण गुजरात, शाकंभरी एवं मालवा को जीत लिया और आधुनिक गुजरात का वास्तविक संस्थापक बन गया। उसका परवर्ती कुमारपाल (११४६–११७३ ई०) भी अत्यन्त प्रसिद्ध शासक था। आरंभ में उसे उत्तर और पश्चिम में युद्ध करना पड़ा, किन्तु शीघ्र ही उसने साम्राज्य को संगठित कर लिया। उसके शासन-काल में जैन धर्म की बहुत उन्नति हुई। कुमारपाल एक सदाचारी और भक्त पुरुष था। वह संयमपूर्ण तथा धार्मिक जीवन व्यतीत करता था। उसने अपने राज्य में पशु-वध का निषेध कर दिया। उस काल में हेमचन्द्र का पूर्ण प्रभाव था।

यहाँ गुजरात के कुछ संस्कृत ग्रंथों का उल्लेख भी किया जा सकता है। यद्यपि सांख्य शास्त्र के रचयिता कपिलमुनि का सम्बन्ध सिद्धपुर से बताया जाता है और न्याय तथा वैशेषिक सूत्रों के रचयिता पाशुपत कहे जाते हैं, किन्तु ये किवदंतियाँ हैं। यदि ये सत्य हैं, तो गुजरात गर्वपूर्वक यह दावा कर सकता है

कि नकुलिष पाशुपत, सांख्य, न्याय तथा वैशेषिक दर्शनों का उद्‌गाता वही है। पाँचवीं शताब्दी में देवर्द्धिगणि की अध्यक्षता में जैन संघ ने समस्त जैन-सिद्धान्तों को लिपिबद्ध किया। सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग ने वलभी का वर्णन एक समुन्नत विश्वविद्यालय के रूप में किया है। दो प्रसिद्ध बोधिसत्वों—गुणमति और स्थिरमति—का निवास स्थान वलभी ही था तथा वलभी में ही भट्टिकाव्य की रचना हुई। कवि माघ का 'शिशुपाल वध' भिन्नमाल में लिखा गया और उसने गिरनार पर्वत का अत्यन्त गौरवपूर्ण वर्णन किया है। यहाँ के सिद्धसेन दिवाकर तथा हरिभद्र, नामक दो ब्राह्मणों ने जैनधर्म स्वीकार किया। ये दोनों ही प्रकाण्ड विद्वान् थे। दोनों ने अनेक प्रकरण लिखे हैं। उव्वट ने प्रातिशाख्य सूत्रों तथा वाजसनेयी संहिता की टीकाएँ लिखी हैं। द्वाद्विवेद ने ग्यारहवीं शताब्दी में 'नीति मंजरी' की रचना की। विष्णु ने 'संखायन पद्धति' लिखी। ग्यारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र तथा उसके शिष्यों ने अनेक ग्रंथ लिखे। हेमचन्द्र ने 'सिद्धहैम', 'द्वयाश्रय', 'शब्दानुशासन', 'काव्यानुशासन', 'त्रिषष्टि-शलाकापुरुष-चरित्र' एवं अनेक अन्य ग्रंथों का सर्जन किया। उन्होंने आयुर्वेद संबंधी कोश 'निघंटुशेष' की रचना की। वाग्भट्ट ने 'वाग्भट्टालङ्कार' नामक ग्रंथ लिखा। हेमचन्द्र के अनेक शिष्य थे, जिनमें हैं प्रसिद्ध नाटककार रामचन्द्र, गुणचन्द्र, महेन्द्रसूरि, वर्द्धमानगणि, देवचन्द्र, उदयचन्द्र, यशस्चन्द्र तथा बालचन्द्र। रामचन्द्र ने संस्कृत के ग्यारह नाटक लिखे और 'नाटच दर्पण' नाम से नाटक शास्त्र का एक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ लिखा, जिसमें लुप्त हुए नाटकों के महत्त्वपूर्ण उद्धरण हैं। वे एक मौलिक लेखक थे, जिन्होंने नाटकों से चमत्कारों को निकालकर उनमें यथार्थवाद प्रविष्ट करने की चेष्टा की। गुजरात की यह शती नाटकों की शती थी, जबकि २३ संस्कृत नाटक लिखे गये। सिद्धराज के कवीन्द्र श्रीपाल थे। यशपाल (११७४ ई०) ने 'मोहराज-पराजय' लिखा, जिसका विषय था कुमारपाल का जैनधर्म ग्रहण करना। सोमप्रभ ने (११८५ ई०) 'कुमारपाल प्रतिबोध' की रचना की, जिसका कुछ अंश संस्कृत में तथा शेष प्राकृत और अपभ्रंश में है। पूर्णप्रभ का 'पंचाख्यान' (११९९ ई०) प्रसिद्ध 'पंचतंत्र' का संशोधित संस्करण है।

सोमेश्वर नागर ब्राह्मण और मूलराज के पुरोहित थे। वे कुमार के पुत्र

और सिद्धराज के पुरोहित अमिग के पौत्र थे। सोमेश्वर ने कई ग्रंथ लिखे—वस्तुपाल की प्रशंसा में 'कीर्तिकौमुदी', मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत चण्डी-माहात्म्य के आधार पर 'सुरथोत्सव' आठ अंकों का एक नाटक, 'उल्लाघ राघव', 'रामशतक' और दो प्रशस्तियाँ। वे कालिदास के ग्रंथों और उनकी शैली के बहुत बड़े प्रशंसक थे। उनके काव्य में सौन्दर्य, स्पष्टता और प्रसाद गुण हैं। उन्होंने तत्कालीन अवस्था का वर्णन संतुलित ढंग से किया है, अतः उनसे हमें निष्पक्ष एवं प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है। अपने समय के वे सर्वश्रेष्ठ कवि थे। तेरहवीं शताब्दी में नानाक, सुभट, अरिसिंह तथा अमरचन्द्र सूरि आदि दूसरे कवि भी थे।

प्रह्लादन परमार राजकुमार थे, जिन्होंने प्रह्लादनपुर अथवा पालनपुर की नींव डाली। उन्होंने व्यायोग नाटक 'पार्थ पराक्रम' की रचना की, जिसमें उन्होंने अर्जुन द्वारा राजा विराट् की गायें लौटाने के प्रसंग में दीप्तरस का वर्णन किया है।

स्वयं वस्तुपाल ने १६ सर्गों का एक महाकाव्य 'नरनारायणानन्द' लिखा, जिसमें अर्जुन द्वारा सुभद्रा के हरण का प्रसंग है। 'कीर्ति कौमुदी' का अनुकरण करते हुए अरिसिंह ने 'सुकृतसंकीर्तन' और बालचन्द्र ने 'वसंत विलास' में वस्तुपाल का यश-गान किया है। जयसिंह के नाटक 'हम्मीर मद-मर्दन' में एक मुसलमान आक्रान्ता पर वीरधवल की विजय का वर्णन है।

वस्तुपाल के पूर्ववर्ती उदयप्रभ ने 'संघाधिपतिचरित' तथा 'सुकृत कीर्ति-कल्लोलिनी' नामक ग्रंथ लिखे। ब्राह्मण कवि सुभट ने 'दूतांगद' नाम का नाटक लिखा। सोड्ढल एक गुजराती वैद्य थे, जिन्होंने 'गुण संग्रह' और 'गद निग्रह' की रचना की। गोविंदराज और यशोधर १३ वीं शताब्दी के प्रमुख वैद्य थे, जिन्होंने आयुर्वेद संबंधी ग्रंथ लिखे।

वघेल शासकों के दो प्रसिद्ध मंत्री वस्तुपाल और तेजपाल थे। वे महान् प्रशासक, अच्छे विद्वान् तथा विद्या एवं कला के प्रेमी थे। उन्होंने बहुत बड़े कलापूर्ण मंदिर बनवाये, जिनमें आबू का प्रसिद्ध मंदिर लूणसिंह वसाहिका भी है। उन्होंने अनेक ब्राह्मण-मंदिरों का भी निर्माण कराया और कई की मरम्मत करायी।

उन दिनों गुजरात असाधारण रूप से वैभव-सम्पन्न था। वहाँ के व्यापारी बड़े साहसी थे और गुजरात के बंदरगाहों पर बराबर काम चलता रहता था। नागर, ओसवाल, परवड, श्रीमाली—इनकी प्रमुखता थी। शिक्षा एवं राजनीति तथा युद्ध-कला में भी जैनों ने अच्छी प्रगति की थी। ब्राह्मण सोमेश्वर, राजकुमार प्रह्लादन और जैन साधु-समाज—इन सभी ने शिक्षा-क्षेत्र में सहयोग दिया। सहिष्णुता इस भूमि की एक दूसरी विशेषता थी। सूर्य-आराधक मागी यहाँ आये और मधेरा में बस गये। एशिया तथा अफ्रीका से मुसलमान आक्रामक आये। समयानुसार पारसी भी यहाँ आये और इसे अपना घर मान लिया।

यहाँ के अधिकांश शासक शैव थे तथा प्रमुख धर्म शैवमत था। भगवान् सोमनाथ यहाँ के अधिष्ठातृदेवता थे। वडनगर के सुसभ्य एवं सुशिक्षित नागर ब्राह्मण, जो गुजरात के इतिहास के प्रमुख पात्र हैं, शैव थे। चालुक्यों के राजपुरोहित वडनगर के एक ब्राह्मण थे। नागर ब्राह्मण पुरोहित, योद्धा और विद्वान् थे। नकुलिष का पाशुपत दर्शन गुजरात में ही प्राप्त हुआ था। श्री नन्दलाल दे अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'प्राचीन तथा मध्य भारत का भौगोलिक कोश' के पृष्ठ १९८ पर लिखते हैं कि आद्य शंकराचार्य का ब्रह्म सूत्र भाष्य सूरत में लिखा गया था। शंकराचार्य के गुरु गोविन्दपाद का आश्रम नर्मदा के किनारे पर था।

गुप्त-काल में विष्णु की आराधना आरंभ हुई; यहाँ तक कि द्वारका के रणछोड़जी की मूर्ति गुप्तकाल की मानी जाती है। यह विष्णु-पूजा कुछ लोगों में आगे भी चलती रही। पाटन में विष्णु के मंदिर भी थे। वस्तुपाल शंकर और केशव दोनों का उपासक था। 'सुरथोत्सव' में राधा-कृष्ण का प्रेम वर्णित है; और यह ग्रंथ शक्ति का गुणगान करने के लिए रचा गया था।

इन शताब्दियों में धनी जैनों द्वारा अनेक कलापूर्ण मंदिरों का निर्माण हुआ। गुजरात, मालवा तथा राजस्थान की भाषा और संस्कृति एक थी। पाटन एक सम्पन्न और शक्तिशाली नगर था। गुजरात की कला आबू एवं मधेरा के मंदिरों में व्यक्त हुई। वस्तुपाल का कलाकार सोलन संसार के श्रेष्ठतम कलाकारों में से एक था। गुजरात में बहुत बड़े-बड़े पुस्तकालय थे। पाशुपत और जैनों के भांडारों में अमूल्य ग्रंथ थे। इतनी शताब्दियों के बाद भी जैन

भांडार अनेक दुर्लभ एवं मूल्यवान् पांडुलिपियों को प्रकाश में ले आये। राजसभा की भाषा संस्कृत थी, जो उच्च संस्कृति की द्योतक थी। यह वीर युग था, जिसका आभास उस काल के साहित्य में मिलता है। जन-जीवन में आनंद का उचित स्थान था। किन्तु सन् १२९९ में मुसलमानी आक्रमणों ने इसे उजाड़ दिया और इसकी गौरवपूर्ण बहुक्षेत्रीय परम्परा को नष्ट कर दिया।

सन् १२९७ से १७६० तक गुजरात में मुसलमानी शासन था। लगभग प्रथम १०० वर्षों तक दिल्ली के सुल्तानों का और १४०३ से १५७३ तक गुजरात के सुल्तानों का राज था। १५७३ से १७६० तक गुजरात मुगल साम्राज्य का एक अंग बना रहा और मुग़ल प्रशासनाधिकारी द्वारा उसका शासन होता रहा।

अंतिम वघेला शासक कर्ण था, जिसे अलाउद्दीन ख़िलजी ने १२९७ में पराजित किया। गुजरात की स्वतन्त्रता छिन गयी और १०० वर्षों तक दिल्ली के सुलतानों ने इस पर राज्य किया। विदेशी आक्रमणों के कारण दिल्ली के सुल्तान निर्बल पड़े और गुजरात का मुसलमान सूबेदार ज़फरख़ां गुजरात का स्वतंत्र सुल्तान बन बैठा (१४०७ ई०)। उस समय बड़ी गड़बड़ मची। धर्म-परिवर्तन, लूट-खसोट और मंदिरों को तोड़ने की घटनाएँ बराबर होती रहीं। लोग एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने के लिए बाध्य किये गये। जैन साधुओं ने अपने धार्मिक ग्रन्थ-भंडार को भू-गर्भ में छिपा दिया। संस्कृत भाषा के सिर से राजाश्रय हट गया। विद्वानों को जनता की शरण लेनी पड़ी। फलतः साहित्यिक ग्रंथों की रचना जन-भाषा में होने लगी। अन्य कई वर्गों के लोगों के सम्पर्क में आने से भाषा में सुधार और विकास हुआ। आत्म-रक्षा की भावना से प्रेरित होकर लोगों ने अपनी जाति के अनेक भेद-उपभेद बना लिये। बाल-विवाह को प्रोत्साहन मिला। सामाजिक तथा धार्मिक उत्सवों के बीच साहित्य का सर्जन होने लगा। जिन राजपूतों ने बड़ी वीरता से मुसलमानों का सामना किया था, उनका यशगान किया गया। अधिकांश साहित्य भक्तिमय था। उत्तर में रामानन्द ने सब जातियों के लिए भक्ति का द्वार खोल दिया। भक्ति की वह लहर समस्त भारत में फैली और गुजरात में भी आयी। भागवत तथा अन्य पुराणों का प्रभाव लोगों पर बहुत पड़ा और उनका अनुवाद किया गया। इन्हीं संस्कृत ग्रंथों के आधार पर आख्यानों की रचना हुई। इन्हीं अनुवादों ने

जनता के धार्मिक विश्वास एवं चेतना की रक्षा की। लोक-कथाओं द्वारा लोगों का मनोरंजन होने लगा। जैन साधुओं ने अपने रासों तथा प्रबन्धों में मनोरंजक वर्णन और धार्मिक शिक्षाओं—दोनों का सम्मिश्रण करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार का साहित्य लगभग तीन सौ वर्षों तक चलता रहा।

गुजरात के सुल्तानों के समय में राज्य २५ छोटे-छोटे भागों में विभक्त था और प्रत्येक भाग 'सरकार' कहलाता था। उस समय खंभात एक उन्नत बंदरगाह था। गुजरात के सुल्तानों ने अनेक विशाल भवन, मसजिद और कलापूर्ण रोज़े बनवाये। अहमदाबाद और चांपानेर अत्यन्त वैभवशाली नगर थे। वस्तुतः दिल्ली और आगरा के मुगल सम्राटों ने गुजरात की वास्तुकला का अनुकरण कुछ अंशों में किया। अहमदशाह ने १४१२ ई० में अहमदाबाद को बसाया। महमूद बेग़ा ने गुजरात में अपनी शक्ति का संगठन किया और चांपानेर तथा जूनागढ़ के दो प्रसिद्ध किले ले लिये। उसका पुत्र सुलतान मुजफ्फर द्वितीय बहुत धार्मिक था। १५७३ ई० में अकबर ने गुजरात को जीत लिया। मुग़ल-शासन के समय से ही सूरत भारत का प्रथम और सर्वश्रेष्ठ बंदरगाह बना और १९वीं शताब्दी के आरंभ तक यह नगर वैभव से पूर्ण हो गया। उसके बाद बंबई एक प्रमुख नगर तथा बंदरगाह के रूप में विकसित हुआ।

गुजरात में इन अनेक राजनीतिक परिवर्तनों के कारण जन-जीवन को धर्म की ओर मुड़ने का अच्छा अवसर मिला। उत्तर में रामानन्द ने जाति-भेद दूर करके भक्ति का उपदेश सबको देना आरंभ कर दिया था, जिसका प्रभाव गुजरात पर भी पड़ा। मध्यकालीन गुजराती कवियों ने भी प्रेमलक्षणा भक्ति का वर्णन करते हुए अनेक काव्य-ग्रन्थ लिखे। भागवत और उसमें वर्णित कृष्ण-भक्ति से भी लोग बहुत प्रभावित हुए। मुसलमान संतों का भी शासकों तथा जनता पर अच्छा प्रभाव था। हज़रत मक़दूम जहानी ने ही ज़फरख़ाँ को गद्दी पर बैठाया, ऐसा कहा जाता है। इसी प्रकार शेख़ अहमद खत्तु, शेख़ शाह आलम, हज़रत शेखजी तथा कुछ अन्य मुसलमान संतों ने शासक वर्ग एवं जनता को प्रभावित किया। हिन्दू-मुसलिम एकता के लिए अनेक प्रयत्न किये गये। खोजा, बोहरा, मेमन, मोलेसलम आदि नये-नये फ़िरकों का जन्म हुआ। कबीर के उपदेशों का भी अच्छा प्रभाव था।

विभिन्न जातियों और वर्गों के परस्पर सम्पर्क से भाषा का स्वरूप कुछ बदला और विकसित हुआ। कृष्ण-भक्ति सबके लिए सुलभ थी। संस्कृत के धार्मिक ग्रंथ गुजराती भाषा के पदों और आख्यानों में अनूदित होने लगे। विशेषकर मुग़ल-काल में गुजरात में शांति एवं सम्पन्नता थी। इस युग में प्रेमानंद हुए, जो मध्यकालीन कवियों तथा आख्यानकारों में सर्वश्रेष्ठ हैं; और इसी समय शामल नाम के सर्वश्रेष्ठ लोककथा लेखक भी थे।

औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् फिर उपद्रव हुआ। मुग़ल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो रहा था। गुजरात पर मराठों के आक्रमण बराबर हो रहे थे (१६६४ से १७४३ ई० तक)। किन्तु वे तब तक गुजरात में टिक नहीं सके थे। उसके बाद गुजरात में गायकवाड़ों और पेशवाओं के बीच अधिकार के लिए संघर्ष होता रहा। इस अव्यवस्थित काल में केवल द्वितीय श्रेणी के उसी घिसे-पिटे साहित्य का निर्माण होता रहा।

सन् १८१८ ई० के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों में शक्ति आयी। पुनः शांति स्थापित हुई। स्वामी नारायण तथा उनके शिष्यों ने डाकुओं और लुटेरों को समझा-बुझाकर ठीक किया। इस काल में द्वितीय श्रेणी के लेखक तथा प्रथम कोटि के कवि दयाराम हुए। १८५० के बाद आधुनिक काल आरंभ हुआ।

अध्याय ३

मध्यकालीन साहित्य के रूप

प्राचीन एवं मध्यकालीन गुजराती साहित्य के रूप आधुनिक काल के रूपों से कई दृष्टियों से भिन्न हैं। प्राचीन एवं मध्यकाल में गद्य की अपेक्षा पद्य के रूप अधिक विकसित थे और उनकी मात्रा भी प्रचुर थी। वस्तुतः गद्य उस समय नहीं के बराबर था—संभवतः पद्य के पचीसवें भाग से भी कम। व्याकरण-ग्रंथों, व्याख्याओं और धार्मिक कथाओं तक ही गद्य सीमित था। उनमें कई कथाएँ वर्णनात्मक हैं, जिनसे आचार और धर्म के उपदेश मिलते हैं। प्राचीन साहित्य में आधुनिक काल की भाँति गद्य की गरिमा, मात्रा और विकास नहीं पाया जाता, किन्तु पद्य के अनेक भेद-उपभेद मिलते हैं। प्रत्येक शताब्दी में पुराने रूप तो चलते रहे, पर कुछ नये रूप भी सम्मिलित किये गये। नरसिंह मेहता के पूर्व जैन साधुओं ने अपने रास-साहित्य की यहाँ तक उन्नति की कि उस काल को रास-युग की संज्ञा दी गयी। यद्यपि उस काल में रास की प्रमुखता थी, तथापि उसके साथ फाग, बारहमासा, कक्को और प्रबन्ध आदि का भी प्रचार प्राचीन तथा मध्यकाल में था। यद्यपि इस प्रकार के साहित्य का प्राचीन-तम भाग जैनों द्वारा रचा गया है, किन्तु जैनेतर लेखकों ने भी इन रूपों का उपयोग किया। जैनेतर कवियों में एक श्रीधर व्यास थे, जिन्होंने 'रणमल्लछन्द' नाम का एक वीर काव्य लिखा (सन् १३९९ ई०)। मुसलमान कवि अब्दुल रहमान ने 'सन्देश रासक' (१४२० ई०) काव्य की रचना की। अधिकांशतः यह अपभ्रंश में है। १५वीं शताब्दी के आरंभ में भीम ने 'सदयवत्सचरित्र' की रचना की। इसकी कथा का आधार एक लोक प्रेम-कथा है। कई शताब्दियों तक पद साहित्य भी किसी-न-किसी रूप में चलता रहा। भक्तिपरक पद प्रायः भजन के रूप में थे। इस प्रकार प्राचीन तथा मध्यकालीन काव्य का रूप गीतात्मक और वर्णनात्मक दोनों था। हम कुछ रूपों पर यहाँ विचार करेंगे।

रास तथा रासो—रास अथवा रासो देशी रागों में रचित वह काव्य है, जिसकी सामग्री या तो धार्मिक होती थी अथवा वर्णनात्मक। कभी-कभी इसकी कथावस्तु किसी सन्त या धार्मिक नेता की जीवनी होती थी। उस काव्य में तत्कालीन देश तथा समाज की अवस्था का परिचय भी होता था। उस समय की भाषा के रूप को समझने में ये काव्य भाषा-शास्त्रियों की भी बड़ी सहायता कर सकते हैं। प्रायः ये काव्य बहुत लंबे होते थे और जनता की रुचि के अनुकूल भाषा में रचे गये थे, जिनका तात्पर्य रोचक शैली में लोगों को धार्मिक उपदेश देना होता था। जैन ग्रंथों का नायक तो प्रायः बहुत बड़ा धार्मिक होता ही है। यद्यपि ग्रंथ के आरंभ में कुछ शृंगार रस हो तो भी अंत ऐसा ही होता है कि अनेक प्रलोभनों के होते हुए भी नायक का चरित्र शुद्ध रहा और बाद में पवित्र आचरण, कामनाओं का दमन तथा तप का उपदेश रहता है। अपभ्रंश साहित्य में भी रासो की रचना हुई है। जैन-मंदिरों अथवा उत्सवों में गाने या अभिनय करने के उद्देश्य से ये रचे गये थे। कालान्तर में गायन तथा अभिनय के तत्त्व क्षीण हो गये और वर्णन-तत्त्वों की प्रमुखता हो गयी। रास के तीन मुख्य अंग हैं—भाषा, ठवणी और कडवक। ऋषभदेव, नेमिनाथ एवं महाबीर-जैसे तीर्थंकरों के जीवन-चरित्र; जम्बू स्वामी, स्थूलिभद्र तथा दूसरे जैन-संत; वस्तुपाल, तेजपाल, जगडू, पेथड आदि जैन व्यापारी; पौराणिक पात्र; किसी तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन—यही रास के विषय थे। कुछ समय बाद इस प्रकार का साहित्य घिसा-पिटा-सा हो गया, इसमें कोई नवीनता न रही और उसमें काव्य-तत्त्व का लोप होने लगा। आज उनकी एकमात्र उपयोगिता यही है कि उनसे तत्कालीन स्थितियों का ज्ञान होता है। उनके द्वारा ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, भौगोलिक तथा जीवनी संबंधी अनेक बातें विस्तार से जानी जा सकती हैं।

रासो शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'रासक' शब्द से हुई है। वाग्भट्ट के 'काव्यानुशासन' की वृत्ति में रासक गेय के रूप में वर्णित है और ऐसा बताया गया है कि उसमें बहुत-सी नर्तकियाँ होती हैं; विभिन्न ताल और लय उसमें होती हैं; उसमें ६४ जोड़े भाग लेते हैं। नर्तकियों के भाग लेने के कारण तथा विभिन्न रागों में गाये जाने के कारण रास की मौलिक रचना इस प्रकार होती थी,

जिससे वह गाया भी जा सके तथा अभिनीत भी हो सके। शारदातनय ने अपने 'भाव प्रकाशन' में तीन प्रकार के रासक नृत्य बताये हैं। एक है 'दंडरासक', जिसमें लकड़ी के छोटे डंडे बजाकर ताल दी जाती है; दूसरा है 'तालीरासक', जिसमें तालियों से ताल दी जाती है; तीसरा है 'लतारासक', जिसमें हर जोड़े का एक व्यक्ति दूसरे जोड़े के एक व्यक्ति के साथ बँध जाता है। वर्तमान काल में जब पुरुष रास नृत्य करते हैं, तब वह 'हींच' और जब स्त्रियाँ नृत्य करती हैं, तब वह 'हमची' कहलाता है। कभी-कभी स्त्री-पुरुष मिलकर भी यह रास नृत्य करते हैं। आगे चलकर भाव एवं गेयता के तत्त्व क्षीण होने लगे और रास केवल धार्मिक आख्यान अथवा उपदेश-आदेश के रूप में रह गया। केवल प्राचीन जैन-साहित्य में ही लंबी धार्मिक कविताओं की यह वर्णन-शैली अनिवार्य रूप में पायी जाती है। अब्दुल रहमान, एक मुसलमान कवि, ने 'सन्देशरासक' लिखा है। रासक अथवा रास एक छन्द विशेष का नाम भी है और वह छन्द 'संदेश रासक' में बहुत प्रयुक्त हुआ है। कालिदास के 'मेघदूत' की भाँति यह एक 'दूत काव्य' है। कोई भी कविता, जिसमें रास छन्द अधिकता से हों, रासक के नाम से पुकारी जा सकती है। इसी दृष्टि से 'संदेश रासक' एक रास है।

फागु अथवा फाग—फागु अथवा फाग फाल्गुन मास से बना है। फाग उस प्रकार की कविता को कहते हैं, जिसमें वसंत ऋतु एवं शृंगार रस का वर्णन हो तथा जिसमें गेयता का गुण हो। वस्तुतः वसंत ऋतु में आमोद-प्रमोद की सभी बातें फाग कहलाती हैं। कालिदास ने अपने ग्रंथ 'ऋतु-संहार' में सभी ऋतुओं का वर्णन किया है किन्तु वे तत्-तत् ऋतुओं के समय में केवल प्रकृति के वर्णन हैं; न तो उनमें कोई धार्मिक भाव है और न उनमें किसी नायक अथवा नायिका का जीवन चरित ही है। जैनों ने इस फाग और वसंत को आधारभूमि बनाकर काव्यों का अंत संयम तथा त्याग की प्रशंसा से किया है। अंत में नायक और नायिका जैन धर्म में दीक्षित होते बताये जाते हैं। फागु के इन काव्यों में विविध प्रकार के छन्द हैं और इनकी भाषा बड़ी आलंकारिक है। आरंभ में नायक-नायिका में वियोग होता है, किन्तु अंत में दोनों का मिलन होता है। यह रासो का ही संक्षिप्त रूप है और चूँकि इसमें नायक-नायिका का प्रेम ही प्रधान रूप

से वर्णित रहता है, इसलिए यह अधिक गीतात्मक हो जाता है। प्रकृति-वर्णन, विशेष कर वसंत का, तथा विप्रलंभ और संभोग दोनों श्रृंगारों के वर्णन भी इसमें होते हैं। इसकी भाषा शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों से पूर्ण होती है। जैनों ने अपने प्रसिद्ध संतों नेमिनाथ तथा स्थूलिभद्र आदि पर ऐसे काव्य रचे हैं। यद्यपि मूलतः वसंत में ही प्रेम का वर्णन फागु में होता था, तथापि जैनों ने 'सिरिथूलिभद्द फागु' में वर्षा का वर्णन किया है, साथ ही अंत में उन्होंने धार्मिक उपदेश भी जोड़ दिये हैं। जैनेतर कवियों ने भी फागु की रचना की है। उन्होंने मुख्यतः कृष्ण-गोपियों की लीलाओं का वर्णन किया है। मध्यकाल की सर्वश्रेष्ठ फागु-रचना 'वसंत विलास' है। इसमें शुद्ध रूप में वसंत ऋतु, प्रेमी-प्रेमिका के मिलन-स्थल तथा श्रृंगार रस का वर्णन है। किन्तु जैनेतर कवियों की फागु-संख्या से जैन कवियों की फागु-संख्या बहुत अधिक है।

षड्ऋतु—जैसे फागु में केवल वसंत-वर्णन होता है, वैसे ही मध्यकाल की ऐसी भी रचनाएँ हैं, जिनमें छः ऋतुओं का वर्णन है। एक रचना है 'षट्ऋतुवर्णन' (१८वीं शताब्दी), जिसकी रचयित्री हैं इन्द्रावती। दूसरी रचना कवि दयाराम की 'षड्ऋतु विहार वर्णन' है (१९वीं शताब्दी)।

बारहमासी—इस प्रकार के काव्य में सभी ऋतुओं और १२ महीनों का वर्णन रहता है। इसमें नायक-नायिका का वियोग वर्णन रहता है, अतः मुख्य रूप से इसका स्थायी विषय विप्रलंभ श्रृंगार होता है। यद्यपि आरंभ में वियोग बताया जाता है, तथापि अंत में दोनों का मिलन करा दिया जाता है। सन् १२४४ ई० में विनयचन्दसूरि ने 'नेमिनाथ चतुष्पदिका' की रचना की, जिसमें बहुत-सी जैन-बारहमासियाँ हैं। अनेक जैनेतर कवियों ने भी राधा-कृष्ण तथा सीताराम आदि का वियोग और पुनर्मिलन दिखाने के लिए बारहमासी शैली अंगीकार की है; यहाँ तक कि वर्तमान काल के नर्मदाशंकर और दलपतराम ने भी ऋतु वर्णन तथा बारहमासी के रूप को अपनाया है। किन्तु उनके बाद वर्तमान साहित्य में इस रूप की वृद्धि नहीं हुई।

कक्को—कक्को का अर्थ है 'क' से आरंभ होने वाली वर्णमाला, जो प्रारंभिक शालाओं में बच्चों को सिखायी जाती है। कविता की रचना इस प्रकार

की जाती है कि प्रत्येक पंक्ति का पहला अक्षर वर्णमाला क्रमिक अक्षर होता है। वर्णमाला के ५२ अक्षर मातृकाएँ कहलाते हैं। जैन साधुओं ने इस विशेष रीति को केवल धर्म और नीति की शिक्षा देने के लिए अपनाया था। इसके द्वारा ज्ञान और सांसारिक बुद्धि का विकास भी किया जा सकता है। धीरा, प्रीतम तथा जीवणदास आदि जैनेतर कवियों ने इसका उपयोग किया है। इस काव्य द्वारा निरुद्यमी व्यक्तियों पर बलवती भाषा में कटाक्ष-प्रहार किया गया है। 'हितशिक्षा' वह रूप है, जिसमें शिक्षाएँ दी जाती हैं, किन्तु उसमें भी कक्को शैली अपनायी गयी है।

विवाहलु—जहाँ तक जैनों का संबंध है, उन्होंने दीक्षा का वर्णन विवाह के रूपक में किया है; यह विवाह साधुओं और संयमश्री के बीच माना गया है। जैनेतर लेखकों ने पौराणिक ढंग से विवाह की चर्चा की है, किन्तु वे वर्णनात्मक काव्य मात्र हैं। यद्यपि उनमें विवाह शब्द प्रयुक्त हुआ है, तथापि रूपकत्व का निर्वाह उनमें नहीं है।

प्रबंध—प्रबन्ध मुख्यतः ऐतिहासिक काव्य हैं, जिनमें किसी विशेष कोटि के नायकों का चरित्र वर्णित रहता है। इनका नायक कोई योद्धा होता है अथवा धार्मिक नेता, कोई महादानी अथवा महान् मानवता-सेवी। नायक का यशोगान या तो प्रबन्ध में होता है अथवा पवाड़ा में; यह श्लोकों में भी होता है तथा छंदों में भी। वीरत्व का निरूपण करने में ये चारो रूप समर्थ हैं। यही कारण है कि मध्यकालीन गुजराती साहित्य में चरित्र, पवाड़ो, प्रबंध, रासो, छन्द तथा श्लोक लगभग पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। प्रबन्ध में वीररस का वर्णन बड़ी ओजपूर्ण शैली में होता है और उसकी कथावस्तु इतिहास तथा किंवदंती का मिश्रण होती है। यद्यपि शालिभद्र सूरि का 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' (११८५ ई०) रास के नाम से ज्ञात है, किन्तु इसे प्रबंध भी कहा जा सकता है। प्रबंध कही जानेवाली इन लंबी कविताओं में वीररस प्रधान होता है। किन्तु मुक्तकों में भी वीररस उसी मात्रा में पाया जाता है। हेमचन्द्राचार्य के व्याकरण में ऐसे मुक्तक बहुत हैं। हिन्दी साहित्य में यह काल जब खुमान-रासो, वीसलदेवरासो और चन्दवरदाई के पृथ्वीराजरासो की रचना हुई,

वीर-गाथाकाल कहलाता है। 'समररासो' में पाटण के समरसिंह के नेतृत्व में सं० १३७१ में ओसल जैन देसल द्वारा की हुई तीर्थयात्रा, संघयात्रा तथा आदि-नाथ के शत्रुजय मंदिर के नवीनीकरण का वर्णन है। ('कान्हडदे प्रबन्ध' की रचना सं० १५१२ में पद्मनाभ ने की थी। उसमें सोनगिरा कान्हडदे की वीरता का वर्णन है, जब उसने अलाउद्दीन खिलजी की सेनाओं का सामना किया था। सं० १५७४ में गणपति ने 'माधवानल-कामकन्दला प्रबन्ध' की रचना की। उसने इस प्रबंध को ८ अंगों में विभक्त करते हुए २५०० दोहों में लिखा है। इसका नायक माधव है और नायिका कामकन्दला उच्च विचारोंवाली एक गणिका की पालित पुत्री है। लोक-कथाओं के विख्यात राजा विक्रम द्वारा दोनों का मिलाप होता है। पुष्टिमार्गीय वैष्णव संप्रदाय के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य का जीवन-चरित्र गोपालदास ने अपने 'वल्लभाख्यान' में वर्णन किया है। इसकी रचना विभिन्न रागों में हुई है और वल्लभ संप्रदाय के अनु-यायी बड़ी भक्ति से इसे गाते हैं। सं० १४६६ में भीम ने 'सदयवत्सवीर प्रबन्ध' लिखा, जिसकी कथावस्तु सदयवत्स और सार्वलिंगा की प्रसिद्ध कहानी से ली गयी है। जो संस्कृत का प्रसिद्ध काव्य 'प्रबन्ध चिन्तामणि' नहीं पढ़ सकते थे, उनके लिए जयशेखर सूरि ने सं० १४६२ में 'त्रिभुवन दीप प्रबंध' की रचना की। सामान्यतः प्रबन्ध शब्द का प्रयोग किसी विशेष घटना के काव्यमय वर्णन के लिए होता है, किन्तु विशिष्ट रूप से इसका तात्पर्य किसी ऐति-हासिक काव्य से है। निस्सन्देह ऐतिहासिक तत्त्व लोक कथा के साथ मिला रहता है, इसीलिए इन कृतियों का मूल्य पूर्णतः ऐतिहासिक नहीं है, किन्तु फिर भी ये तत्कालीन समाज और इतिहास पर काफी प्रकाश डालते हैं। पौराणिक पात्र भी रास के पात्र होते हैं और रास तथा प्रबंध पर्याय माने जाते हैं। 'पृथ्वी-चन्द्र चरित्र' प्रबंध कोटि की रचना है, किन्तु यह काव्यमय एवं ओजपूर्ण गद्य में लिखी एक कहानी है।

छन्द, पवाडा, शलोका—छन्द का मूल अर्थ है अक्षरों अथवा मात्राओं का एक नियमित पद। चूँकि पहले देवी-देवताओं की स्तुति के लिए इस विशिष्ट पद का बहुत अधिक उपयोग हुआ, अतः बाद में उस कविता को भी लोग छन्द कहने लगे, जिसमें किसी नायक का गुणगान होता था। इसी प्रकार **पवाडा**

और शलोका भी उसी कोटि की रचना को कहते हैं। ७० दोहों में लिखा हुआ श्रीधर का 'रणमल्ल छन्द' वीर भाव का सर्वोत्तम काव्य है। शैली बड़ी गंभीर और सबल है तथा इसमें ईडर के रण मल्ल की वीरता का वर्णन है, जब कि पाटन के मुसलमान सूबेदार मलिक मुफर्रह रास्तखान के साथ उन्होंने युद्ध किया और उसे परास्त किया। छन्द की कुछ अन्य रचनाएँ भी हैं, जैसे 'अम्बाजी छन्द', 'भवानी नो छन्द', 'राव जेतसी रो छन्द'। ये छन्द देवी या नायक की स्तुतियाँ हैं।

पवाडा तथा शलोका भी इसी प्रकार प्रशस्ति काव्य हैं। पवाड़ा में नायक की महत्ता बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कही जाती है। पवाडा प्रायः चौपाई छन्द में होते हैं। बीच-बीच में कुछ दोहे तथा दूसरे छन्द भी आ जाते हैं। सं० १४७१ में रची हुई कवि असाईत की 'हंसाउली' रचना एक पवाडा ही है। हीराचन्द सूरि ने सं० १४८५ में 'विद्याविलास पवाडो' की रचना की।

शब्द शलोका संस्कृत के श्लोक शब्द का ही तद्भव रूप है, जिसका अर्थ होता है किसी वीर नायक की प्रशंसा से युक्त एक कविता। कवि शामल ने सं० १७८१ में 'रुस्तमनो शलोको' की रचना की, जो ३६१ कड़ियों में एक ऐतिहासिक कविता थी। इसी प्रकार 'माणनो शलोको' तथा 'नेमजीनो शलोको' भी हैं।

चच्चरी तथा धवल––चच्चरी प्राकृत साहित्य से लिया हुआ काव्य का वह रूप है, जो गाया जा सके। इसी प्रकार धवल या धोल भी अपभ्रंश साहित्य से आया है, जो धार्मिक अवसरों पर गाया जाता है। धोल का रूप तो १९वीं शताब्दी तक मध्यकालीन जैनेतर कवियों में प्रसिद्ध था।

आख्यान––आख्यान का रूप कुछ-कुछ रासो से मिलता है। किन्तु उनमें अन्तर भी है। आख्यान अधिक मनोरंजक होते हैं और उनके वर्णन इतने लंबे नहीं होते कि अरुचि उत्पन्न हो जाय। रासो की रचना अन्त में उपदेश देने के लिए की जाती थी, किन्तु आख्यानों का अन्त इस प्रकार नहीं होता। आख्यानों की कथावस्तु पुराण अथवा इतिहास से ली जाती है। संस्कृत के मौलिक ग्रंथों से भी वे प्रेरणा प्राप्त करते हैं। इनकी रचना अत्यन्त कलात्मक होती है और गुजरात की मध्यकालीन काव्यधारा में इनकी बड़ी विशेषता थी। इनकी रचना

विभिन्न देशी रागों में होती है, जिससे गाने में तथा कंठस्थ करने में बड़ी सरलता होती है। जब किसी कुशल गवैये द्वारा ये ठीक ढंग से गाये जाते हैं, तब श्रोताओं पर इनका निश्चित प्रभाव पड़ता है। प्रच्छन्न रूप से ही इनमें नीति या धर्म की शिक्षा दी जाती है। अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग से अनेक धार्मिक कहानियाँ गाकर लोगों का मनोरंजन किया जाता है। इस प्रकार जनता में भक्तिरस के प्रचार और पुष्टिकरण में बड़ी सहायता मिलती थी। इन्हीं कारणों से आख्यान समाज के निम्नतम वर्ग के लोगों में भी पहुँच गये थे। आख्यानों ने धार्मिक संस्कारों की रक्षा करके सुग्राह्य रूप में भक्ति-साहित्य प्रदान किया। १४वीं शताब्दी से आगे तक, जब गुजरात मुसलमानी शासन में आ गया, हिन्दुओं का जीवन, परम्पराएँ, त्यौहार तथा विचार इन्हीं आख्यानों में सुरक्षित रहे। जो सेवा रासो साहित्य ने जैन धर्म की की, वही सेवा आख्यान-साहित्य ने जैनेतर हिन्दू-समाज की की।

किसी गत घटना के वर्णन को आख्यान कहते हैं। इसका यह भी अर्थ है कि किसी मुख्य घटना का पूर्ण एवं सविस्तार वर्णन—'आसमन्तात् ख्यानम्'। मनुस्मृति के अध्याय ३ श्लोक २३२ में कहा गया है कि श्राद्ध समाप्त होने पर मनुष्य को आख्यान की कथा सुननी चाहिए। इससे स्पष्ट है कि आख्यान का महत्त्व श्राद्ध-जैसे पवित्र कृत्यों में भी था। आख्यान सुनने की वस्तु है, पढ़ने की नहीं। कथावस्तु प्रायः सबकी जानी-समझी रहती है। अतः कथा आरंभ होते ही लोग बिना किसी कष्ट के समझने लगते हैं। विभिन्न पात्र एवं घटनाएँ एक-एक करके खुलती चलती हैं और प्रायः सभी रसों का समावेश रहता है। नाटक-तत्त्व भी बड़ी कुशलता से प्रविष्ट होता है। यह साहित्य केवल धुरंधर विद्वानों के लिए ही नहीं, वरन् सर्वसाधारण के लिए लिखा जाता है, इसीलिए इसकी भाषा कठिन नहीं होती। गुजराती साहित्य में आख्यान का यह रूप बहुत पुराना है। नरसिंह मेहता को हम प्रथम आख्यानकार कह सकते हैं। भालण, नाकर तथा दूसरों ने इसकी परम्परा जीवित रखी, किन्तु इसका चरम विकास प्रेमानंद के समय में हुआ। उनके बाद दयाराम तक यह रूप किसी प्रकार बना रहा, किन्तु उसके बाद तो धीरे-धीरे यह लुप्त होने लगा।

आख्यान की रचना विभिन्न देशी पद्यों में होती है। एक आख्यान के कई कडवा तथा प्रत्येक कडवा में कई दोहों के वर्ग होते हैं। एक कडवा के तीन भाग होते हैं। प्रथम राग कहलाता है, द्वितीय को ढाल और तृतीय को वलण अथवा उथलो कहते हैं। नरसिंह मेहता के तीन आख्यान हैं—गोविंद गमन, सुरत संग्राम, सुदामा चरित्र। इसी प्रकार उनके जीवन की कुछ घटनाएँ हैं, जब भगवान् कृष्ण से उन्हें सहायता प्राप्त हुई। वे भी आख्यान-बद्ध हैं—जैसे, 'हारमालानां पद', 'विवाह', 'हुंडी'। भालण ने कडवाबन्ध आख्यान के रूप को विकसित किया। वैश्य कवि नाकर ने भालण का अनुकरण करके कई आख्यानों की रचना की। प्रेमानंद ने नाकर की कुछ रचनाओं का उपयोग नयी सामग्री के रूप में किया और उन्हें अधिक कलात्मक रूप दिया। नरसिंह मेहता का जीवन-चरित भी आख्यानों का विषय बन गया है।

पद्यात्मक लोकवार्ता—कहानियाँ आनन्ददायिनी होती हैं। बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी अच्छी कहानियाँ सुनना चाहते हैं। एक कुशल कहानीकार एक कहानी में सभी रसों का समावेश कर देता है। एक अच्छी कहानी घटना द्वारा या घुमा-फिरा कर नैतिक उपदेश भी कर सकती है। आनन्दप्रद होने के साथ-साथ कहानियाँ जन-शिक्षा का काम भी कर सकती हैं। पंचतंत्र के आख्यानों की रचना राजकुमारों को नीतिशास्त्र की शिक्षा देने के लिए हुई थी। संस्कृत की बहुत-सी वार्ताएँ लोक-कथा से ली गयी हैं। संस्कृत कथा-साहित्य की एक विशेषता है कि एक मुख्य कथा में अनेक उपकथाएँ जोड़ दी जाती हैं। 'कथा सरित्सागर', 'वेताल पंचविंशति', 'सिंहासन द्वात्रिंशिका', 'भोजप्रबंध' तथा 'शुक सप्तति' इसी प्रकार के संस्कृत ग्रंथ हैं। इन लोककथाओं के पात्रों में मानवता अधिक होती है, पुराणों एवं धर्मग्रन्थों के पात्रों का दैवत्व नहीं। प्रचलित विश्वासों के अनुसार समय को देखते हुए इन पद्यात्मक लोकवार्ताओं में आश्चर्य, मंत्रसिद्धि तथा चमत्कार आदि के तत्त्व रखे जाते हैं।

पद्य वार्ताओं की रचना मुख्यतः दूहा, दोहरा, सोरठा, चौपाई और छप्पई में होती है। कभी-कभी ये खण्डों में विभक्त होती हैं। इस रूप को विकसित करने में जैन कवियों का भी बहुत बड़ा हाथ था। रासो के अतिरिक्त—जो मुख्यतः धार्मिक होते थे—जैन कवियों ने अनेक प्रबंधों की रचना की है, जिनमें

लोकवार्ताएँ वर्णित हैं। जैनेतर कवियों ने भी इस रूप को सँवारने में भाग लिया। 'विक्रम कथा', 'नन्द बत्रीसी' (नरपति), 'सदयवत्स चरित्र' (भीम), 'कादम्बरी का पद्यानुवाद' (भालण), 'कर्पूर मंजरी' (मतिसार), 'रस-मञ्जरी' (वच्छराज), 'कामसेन-कामवती' और 'हंसावली' (शिवदास), 'कामवती' (वीरजी), 'मित्र धर्माख्यान' (वल्लभ) तथा महाकवि शामल की अनेक पद्य लोकवार्ताएँ—ये सब पद्य लोकवार्ता रूप की प्रमुख रचनाएँ तथा रचनाकार हैं।

इनमें से कई वार्ताओं का नामकरण नायिका के नाम पर हुआ है, जो प्रायः बड़ी दक्षा, बुद्धिमती और चतुरा होती है। इन वार्ताओं में घटनाएँ, चमत्कार, सहसा स्थिति-परिवर्तन, देवताओं का प्राकट्य तथा ऐसे ही साधन स्थान-स्थान पर लाये जाते हैं। इन कहानियों में पुरानी कहावतों तथा उपमाओं के प्रयोग की प्रवृत्ति पायी जाती है। श्रोता को पहले ही पता लग जाता है कि वार्ता कैसे आरंभ होगी और किन वस्तुओं की उपमा किनसे दी जायगी। राक्षस भूत-प्रेत, शकुन, ज्योतिष, जादू, मेलीविद्या, काशी करवत-भैरव कूदका में विश्वास का होना इन लोक-वार्ताओं में प्रायः पाया जाता है।

जैसे प्रेमानंद सर्वोत्कृष्ट आख्यानकार माने जाते हैं, वैसे ही शामल (सं० १७४० से १८२१) सर्वोत्कृष्ट पद्य लोक-वार्ताकार माने जाते हैं। सं० १७७४ में उन्होंने 'पद्मावतीजी वार्ता' लिखी। राजा विक्रम-सम्वन्धी सिंहासन द्वात्रिंशिका के आधार पर उन्होंने 'बत्रीस पुतली' की भी रचना की। उनकी इस रचना ने उन्हें एक महान् कवि बना दिया। उनके आश्रयदाता थे रखीदास, जिन्होंने 'सुडाबहोतेरी', 'नन्दबत्तीसी', 'मदनमोहना' आदि ग्रंथ लिखे हैं। उनकी रचनाएँ प्रायः वर्णनात्मक हैं और उनमें कोई ऐसी कहानी रहती है, जिसमें अच्छी सम्मति या उपदेश रहते हैं। उनके कुछ छप्पय संस्कृत के सुभाषितों की तरह हैं। उन्होंने भी एक मुख्य कथा में कई उपकथाओं को बुना है। किसी का व्युत्पन्नमतित्व देखने के लिए समस्यापूर्ति होती है। इसका भी अच्छा उपयोग हुआ है। उन दिनों, जब कि सर्व-साधारण की शिक्षा का कोई प्रबंध न था, पद्य वार्ताएँ केवल जन-रंजन के काम में ही आती थीं, वरन् उन्हें बौद्धिक तथा नैतिक ज्ञान भी देती थीं। कभी-कभी शामल कवि ने पुरानी कथा को

अपने समय के रंग में रंगकर उपस्थित किया है। उनकी भाषा बड़ी सादी तथा अर्थपूर्ण होती थी। उनकी मुख्य विशेषता थी कथा का शीघ्रगामी कार्य-व्यापार। सूक्ष्मता के लिए उनमें स्थान न था। वे जन-कवि थे। उनके स्त्री-पात्र अत्यन्त बुद्धिमान् होते थे। उनकी कहानियों से हमें तत्कालीन समाज का––ग्रामजीवन का भी––ज्ञान होता है। किन्तु यही विशेषताएँ उनके कवित्व की सीमाएँ थीं।

इन लोककथाओं में हमें विजातीय विवाह दीख पड़ते हैं। प्रेम-विवाह बहुत होते थे और प्रेम भी प्रायः प्रथम दर्शन में होता था। कहीं-कहीं तो नारियों की बड़ी प्रशंसा की गयी है, किन्तु कहीं पर किसी विशेष कारण से पुरुष को पतन की ओर ले जानेवाली बतायी गयी हैं। किन्तु अधिकांशतः नारियाँ शिक्षित और शिष्ट दिखायी गयी हैं। उनमें से कुछ तो जीवन भर ब्रह्मचारिणी रहने वाली हैं। कुछ पुरुष का छद्मवेश धारण करने वाली हैं और कुछ ने तो दूसरी महिलाओं से विवाह तक कर लिया, फिर अपने सहित उन महिलाओं को अपने पति को उपहार के रूप में समर्पित कर दिया। अत्यन्त कुशल राजनर्तकियाँ भी इन कथाओं की पात्र हैं। पशु-पक्षी मनुष्य की भाषा में लोगों से बात करते हैं। कुछ पात्रों को तो अपने पूर्व जन्मों का भी पूरा ज्ञान रहता है। पर-काया-प्रवेश तथा अन्य चमत्कारों का भी इनमें वर्णन है। भयंकर दृश्य भी कुछ कम नहीं हैं। संक्षेप में जन-रंजन के लिए सभी रसों का समावेश बड़ी कुशलता से किया गया है।

रास-गरबो-गरबी––रासो एक धार्मिक और वर्णनात्मक काव्य कहा जाता है। किन्तु आरंभ में इसमें भी गेय तत्त्व था। आगे चलकर इनमें कथा तत्त्व की प्रधानता होने लगी, तब गीतात्मक छोटे पद्यों को पृथक् मानकर रास करने लगे। रास वह गीत है, जो गाया जा सके और जिसका अभिनय हो सके। इसका संबंध प्रायः गुजरात तथा सौराष्ट्र के गोप-जीवन से है। लास्य नृत्य का मौलिक रूप इस प्रकार बताया जाता है––पार्वती ने बाणासुर की कन्या उषा को लास्य नृत्य सिखाया। उषा अनिरुद्ध की पत्नी बनकर द्वारका आयी और उसने वहाँ की गोपियों को वह नाच सिखाया। इन गोपियों ने सौराष्ट्र की महिलाओं को सिखाया और उनके द्वारा भारत के विभिन्न भागों की नारियों के पास यह

नृत्य पहुँचा। लास्य नृत्य का कोमल रूप है और नारियों के अधिक अनुकूल है। परम्परा बताती है कि इसका आरंभ सौराष्ट्र से हुआ। हेमचन्द्र की मान्यता के अनुसार हल्लीसक और रासक एक ही हैं। यह गोपों की क्रीड़ा का एक प्रकार है। नरसिंह मेहता गोपनाथ महादेव की कृपा से रास देख सके थे। इस रास या लास्य के अन्तर्गत गान, वाद्य तथा नृत्य तीनों आते हैं। प्राचीन साहित्यकार के आधार पर अभिनव गुप्त ने रासक के लक्षण बताते हुए कहा है—"रास नृत्य में विभिन्न प्रान्तों के लोगों की रुचि के अनुसार ताल और लय के कई प्रकार प्रविष्ट किये गये। उनमें से एक मसृण है तथा दूसरा उद्धत। प्रथम में विलम्बित लय और द्वितीय में द्रुतलय होती है। श्री शंकराचार्य अपने 'ललिता त्रिशती-भाष्य' में हल्लीस-लास्य-सन्तुष्टा की व्याख्या करते हुए कहते हैं—लास्य वह नृत्य है, जिसमें कुमारिकाएँ रंगीन डंडों के साथ एक समान ताल में गाती हैं। वे 'हारावली कोश' का अर्थ भी उद्धृत करते हैं—नारियों का मण्डलाकार नृत्य हल्लीसक कहलाता है।

हल्लीसैः चित्रदण्डैः कुमारिकाभिः एकतालादियुक्तगीतपूर्वकं यल्लास्यं नर्तनं तस्मिन् संतुष्टा प्रीतिमतीत्यर्थः। "नारीणां मण्डलीनृत्यं वुधा हल्लीसकं विदुः" इति हारावली कोशाद् मण्डलाकारनृत्यसंतुष्टेत्यर्थः। देवी के 'हल्लीसलास्यसंतुष्टा' नाम से स्पष्ट है कि नवरात्र में गरबा रास का प्रचलन क्यों अधिक है और गरबा गीतों में देवी की स्तुति क्यों की गयी है।

शारदातनय ने रास के ३ भेद बताये हैं। एक दण्डरासक है, जिसमें डंडों की सहायता से ताल दी जाती है; दूसरा तालीरासक है, जिसमें हाथों की तालियों से ताल दी जाती है (इसे मण्डलरासक भी कहते हैं); तीसरा लतारासक है, जिसमें प्रत्येक युग्म दूसरे के साथ मिल जाता है, जैसे लता किसी वृक्ष में लिपटी रहती है। प्राचीन ग्रंथों से सिद्ध होता है कि इस लास्य नृत्य में गुजराती महिलाएँ विशेष दक्ष होती हैं।

एक दूसरी परम्परा के अनुसार पांडव अर्जुन तीन वर्षों के लिए मणिपुर गये थे और वहीं मणिपुरी नृत्य सीखा। इन्द्र के आमन्त्रण पर अर्जुन भी गये थे, जहाँ गंधर्वराज चित्ररथ से उन्होंने नृत्य तथा अन्य कलाएँ सीखीं। विराट देश में अर्जुन स्त्री के वेश में वृहन्नला बनकर रहे थे और वहाँ राजकुमारी उत्तरा

को उन्होंने नृत्य तथा संगीत सिखाया। उत्तरा प्रायः द्वारका जाया करती थी, अतः वहाँ की महिलाओं ने उत्तरा से यह लास्य नृत्य सीखा। सौराष्ट्र में लास्य नृत्य या तो उषा द्वारा आया अथवा उत्तरा द्वारा।

गरबो शब्द की व्युत्पत्ति गर्भदीप से हुई है। मिट्टी की हाँड़ी में बहुत-से छिद्र करके उसमें दीपक रख दिया जाता है। यह हाँड़ी या तो मध्य में भूमि पर रखी जाती है या किसी महिला को बीच में खड़ा करके उसके सिर पर रखी जाती है, फिर अन्य महिलाएँ गरबो गाती हुई गोलाई में घूमती हैं। इस गरबा नृत्य में दीप की प्रदक्षिणा की जाती थी, जो शक्ति अथवा देवी का प्रतीक होता था, इसीलिए इस गाने का नाम भी गरबो पड़ गया। मध्यकालीन गरबा-लेखकों में वल्लभ मेवाडा सर्वश्रेष्ठ हैं। उन्होंने शक्ति की महानता का वर्णन किया है। उनके कई गरबे प्रसिद्ध हैं और प्रायः गाये जाते हैं। भानुदास, रणछोड़जी दीवानजी तथा दूसरों ने भी अपने गरबों में देवी की महिमा गायी है। दयाराम ने अपने 'व्रजबासिनी नो गरबो' में राधा का वर्णन किया है। इस प्रकार गरबा का अर्थ वह पद्य हो गया, जो वृत्ताकार घूम-घूमकर गाया जाता हो। गुजरात में गरबा नवरात्र में—विशेषकर आश्विन मास में—गाया जाता है। गरबा-लेखकों की संख्या अधिक है। वल्लभ मेवाड़ा सर्वोपरि थे। 'शणगार', 'आरासुर', 'आनन्द', 'श्रीचक्र', 'गागर' आदि उनके कुछ उत्कृष्ट गरबे हैं। देवी-महिमा के अतिरिक्त गरबों में कृष्ण-राधा अथवा कृष्ण-गोपियों की लीलाएँ भी वर्णित हैं, जैसे रासलीला, दानलीला आदि। सामाजिक घटनाएँ भी गरबों का विषय रही हैं। रासड़ा का एक प्रकार रोलो है, जो सूरत में विशेष प्रचलित था। रासड़ा वह काव्य है, जिसमें एक ही भाव पर बल देने के स्थान पर किसी घटना का वर्णन विस्तारपूर्वक करता है। गरबी की अपेक्षा यह कुछ अधिक बड़ा होता है और कोमलता कम होती है।

गरबी संक्षिप्त और गीतात्मक होती है। यह अपने में पूर्ण एक पद्य है, जो किसी एक विचार, भाव या घटना को अपना विषय बनाता है। शब्दावली इसकी बड़ी मधुर होती है। अपेक्षाकृत गरबा अधिक वर्णनात्मक होता है। किसी असाधारण घटना का विशेष वर्णन रास में होता है। गरबा का उद्देश्य बाह्य दृश्य का वर्णन करना तथा गरबी का उद्देश्य किसी अन्तर्भाव को

प्रकट करना है। भावों की अभिव्यक्ति में यह बड़ी सहायक है। गरबी की रचना देशी रागों में होती है। वल्लभ मेवाडा अपने देवी के गरबों तथा दयाराम मधुर गरबियों के लिए प्रसिद्ध हैं। सौराष्ट्र में गरबा पुरुष गाते हैं; उनकी मुद्राएँ और भाव-भंगिमाएँ पुरुषोचित तथा सबल होती हैं। किन्तु गुजरात की गरबियों में कला एवं कोमलता अधिक है। नरसिंह, मीरा, भालण, वल्लभ, स्वामी नारायण, दयाराम तथा दूसरे कवियों ने गरबियों की रचना की है। नर्मदाशंकर, नवलराम तथा दलपतराम ने भी गरबी-साहित्य की रचना में योग दिया है। मणिलाल, नरसिंहराव, खबरदार और गोवर्धन राम ने भी गरबी रची हैं। वर्तमान समय में रास तथा गरबी के श्रेष्ठ लेखक के रूप में नानालाल ने रास का एक नया युग आरंभ किया है। बोटादकर, केशव सेठ तथा दूसरों ने भी इस क्षेत्र में कार्य किया है। रास की ख्याति इतनी अधिक हुई कि आधुनिक नाटकों और चलचित्रों में भी कुछ रास गरबों का रखना आवश्यक समझा जाता है। शरदोत्सवों तथा वसन्तोत्सवों के अवसर पर गुजरात में रासों और गरबों का बहुत ज़ोर हो जाता है। वस्तुतः प्रत्येक नया कवि एक रास अथवा गरबा की रचना करने को लालायित होता है। आधुनिक काल की कुछ गरबियों की रचना देशी रागों में न होकर शास्त्रीय रागों में हुई है। कुछ श्रेष्ठ आलोचकों ने इस प्रवृत्ति की आलोचना की है।

थाल एक ऐसी रचना है, जिसमें भगवान् को समर्पित किये जाने वाले व्यंजनों का वर्णन रहता है। यह बड़ी भक्तिपूर्वक गायी जाती है। ऐसी रचनाओं के विशेष कवि प्रेमानन्द स्वामी हैं। आरती भगवत्-स्तुति है, जो भगवान् की आरती (नीराजन) के समय गायी जाती है। भिन्न-भिन्न देवताओं की भिन्न-भिन्न आरतियाँ होती हैं, जिनमें उन देवताओं की महत्ता वर्णित रहती है। शिवानन्द स्वामी की आरतियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। झूलणा-बन्ध में नरसिंह मेहता के पद प्रभाती कहलाते हैं। धीरा के पद काफी और भोज के पदचाबखा कहे जाते हैं।

मध्यकालीन कवियों ने मुख्यतः देशी और मात्रामेल छन्दों में रचनाएँ की हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि अक्षरमेल वृत्तों की रचना वे जानते ही नहीं थे। "रणमल्ल छन्द" में भुजंगप्रयात छन्द का उपयोग किया गया

है। इसी प्रकार विभिन्न काव्यों में स्रग्विणी, द्रुतविलम्बित, उपजाति तथा दूसरे वृत्तों का उपयोग हुआ है। जैन एवं जैनेतर, दोनों प्रकार के कवियों ने थोड़ी लघु-गुरु की स्वतन्त्रता के साथ अक्षरमेल वृत्तों का उपयोग किया है। फिर भी मात्रामेल तथा देशी छन्दों का उपयोग बहुत अधिक हुआ है, क्योंकि ये गाने, पढ़ने तथा कंठस्थ करने में बड़े सुगम होते हैं।

गद्य-साहित्य—मध्यकालीन साहित्य में गद्य का स्थान अत्यन्त सीमित है। गद्य के कुछ रूप बालावबोधों, चित्रमय कहानियों, व्याकरण ग्रन्थों, औक्तिकों, कथासारों, रूपान्तरों तथा संस्कृत ग्रंथ के अनुवादों में सुरक्षित हैं। 'पृथ्वीचन्द्र चरित्र' अत्यन्त कलात्मक एवं उत्तम गद्य में लिखा गया है। बालावबोध किसी संस्कृत या प्राकृत ग्रंथ की व्याख्या, अनुवाद या रूपान्तर होता है, जो साहित्य के आरंभिक पाठक की समझ में भी सरलता से आ सके। इन ग्रन्थों में कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं, जिन्हें चित्रों द्वारा कहा गया है। जैन-साहित्य में ऐसे कई ग्रन्थ पाये जाते हैं। व्याकरण के आरंभिक विद्यार्थियों की सुविधा की दृष्टि से गुजराती में लिखे हुए संस्कृत-व्याकरण के ग्रंथ औक्तिक कहलाते हैं। इसी-प्रकार संस्कृत के महाभारत, रामायण, गीता, पद्य वार्ताओं तथा पुराणों के कथासार, रूपान्तर तथा अनुवाद गद्य में पाये जाते हैं। किन्तु सब मिलाकर पद्य-साहित्य की अपेक्षा गद्य का साहित्य बहुत ही कम है, एवं इसमें उतने प्रकार भी नहीं हैं; साथ ही गद्य का सर्वथा अभाव रहा हो—ऐसी बात भी नहीं है।

अध्याय ४

नरसिंह मेहता के पूर्ववर्ती रचयिता

कम से कम सन् ५०० ई० से गुजरात की साहित्यिक भाषा अपभ्रंश थी। लगभग १२वीं शताब्दी को हम गुजराती का उन्नति-काल मान सकते हैं। हेमचन्द्र की मृत्यु (११७३ ई०) से लेकर नरसिंह मेहता की उत्पत्ति (१४१४ ई०) तक गुजराती भाषा एवं साहित्य का प्रथम युग है।

यद्यपि बौद्धों तथा हिन्दुओं ने भी अपभ्रंश को साहित्य का माध्यम स्वीकार कर उसका उपयोग किया है—तथापि मुख्यतः जैन साधुओं ने अपभ्रंश की स्थिति दृढ़ की। गुजराती भाषा का यह सौभाग्य है कि अभी हाल में अपभ्रंश का विशाल साहित्य प्रकाश में आया है, जो पुरानी गुजराती के अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करता है। अपभ्रंश के धर्म-साहित्य के अन्तर्गत चरित्र, महापुराण, महान् कथाएँ—जैसे 'पउम चरिय' और 'हरिवंश पुराण'—तथा कथाकोश आदि प्रमुख रूप में हैं।

उद्योतन सूरि (७७९ ई०) की 'कुवलयमाला' अपभ्रंश का एक उत्तम ग्रंथ है। यह प्राकृत में है, जिसमें अपभ्रंश के पद्य आये हैं, साथ ही कहीं-कहीं गद्य का भी समावेश है। एक अनुच्छेद में मारु, गुज्जर, लाट तथा मालव-जैसे विभिन्न स्थानों के व्यापारियों की बोली में भिन्नता बतायी गयी है।

कवि धनपाल ने २२ संधियों में एक अपभ्रंशकाव्य की रचना की है, जिसका नाम है 'भविस्सत्त कहा' अथवा 'पञ्चमीकहा'। यद्यपि कवि का समय अनिश्चित है, किन्तु उसका काल हेमचन्द्र से लगभग एक या दो शताब्दी पूर्व माना जाता है। यह हस्तिनापुर के राजकुमार भविष्य (कथा-नायक) तथा उसके अत्याचारी सौतेले भाई की कथा है। दोनों एक साहसिक यात्रा पर निकलते हैं। एक निर्जन द्वीप में भविष्य को उसका सौतेला भाई छोड़ देता है। वहाँ उसकी सहायता यक्षों के राजा अच्युतनाथ और मणिभद्र करते

हैं। यहीं एक रमणी का प्रेम उसे प्राप्त होता है। कुछ समय के बाद बन्धुदत्त का दल उन्हें द्वीप से ले जाता है। फिर वही घटना भविष्य के साथ घटती है। बन्धुदत्त उसे एक द्वीप में छोड़कर उसकी पत्नी को ले जाता है। फिर यक्ष-पति उसकी सहायता करते हैं। वह पुनः हस्तिनापुर लाया जाता है। अप-राधियों को दंड दिया जाने वाला था, किन्तु भविष्य ने दयापूर्वक उन्हें छुड़वा दिया। अंत में एक साधु जैन धर्म के सत्यों का वर्णन करता है। भविष्य को पूर्व जन्मों का स्मरण आता है और वह संसार को त्यागकर संन्यासी हो जाता है। धनपाल कवि ने लिखा है—धक्कड़ वनिक-परिवार में उत्पन्न महेश्वर के पुत्र सरस्वती पुत्र ने इस काव्य की रचना की है।

हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में स्वयं के तथा दूसरे कवियों के उद्धरण देकर तत्कालीन अपभ्रंश-कविता का एक रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया है। द्वयाश्रय काव्य के आठवें सर्ग में अपभ्रंश पर ही विचार किया गया है। सम्पूर्ण द्वयाश्रय केवल ऐतिहासिक रचना ही नहीं है, वरन् व्याकरण के नियम भी इसमें बताये गये हैं। हेमचन्द्र के व्याकरण में उद्धृत रचनाएँ उस समय के साहित्य का रूप स्थिर करती हैं; और वह साहित्य पौराणिक, धार्मिक, उपदेशात्मक, शृंगारिक तथा वीरभाव से युक्त था, जो सरल और सुन्दर भाषा में व्यक्त हुआ है। यही उस समय का लोक-साहित्य था। कुछ उदाहरण देखिए—

"पाइ विलग्गि अंत्रडी, सिरु लहसिउं खन्धस्सु।
तो वि कटारइ हत्थडउ, बलि किज्जउं कन्तस्सु ॥"

भावार्थ—उसकी आँतें उसके पैरों में फँसी हैं, उसका सिर कटकर उसके कंधों पर लुढ़क रहा है, तो भी उसका हाथ तलवार चला रहा है। अपने ऐसे कन्त की मैं बलि जाती हूँ।

"जीविउ कासु न वल्लहडं, धणु पुणु कासु न इट्ठु।
दोण्णि वि अवसर निवडिअइं, तिण भर गणइ विसिट्ठु ॥

भावार्थ—प्राण किसे प्यारे नहीं होते? धन को कौन नहीं चाहता? किन्तु अवसर आने पर ये दोनों महान् वस्तुएँ तिनके के समान समझी जाती हैं।

"फोडेन्ति जे हियडउ अप्पणउ, ताहँ पराई कवण घृण ।
रक्खेज्जहु लोअहो अप्पण बालहे जाया विषम थण ।।"

भावार्थ—जिन स्तनों ने स्वयं अपना हृदय विदीर्ण कर लिया, उनसे दूसरे लोगों के प्रति दया की क्या आशा की जाय ? ऐ लोगों ! सावधान रहो । रमणियों के स्तन बड़े निर्दयी होते हैं ।

मेरुतुङ्ग के संस्कृत-ग्रन्थ 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में अपभ्रंश के भी कुछ दोहे हैं । 'मुञ्जराजप्रबंध' में भी अपभ्रंश के कुछ उत्तम दोहे पाये जाते हैं—

"मुँज भणइ मुणालवइ, जुब्बणु गयउं न झूरि ।
जइ सक्कर सयखण्ड थिय, तोइ स मीट्ठी चूरि ।।"

भावार्थ—मुंज कहता है, "हे मृणालवती ! यौवन के बीत जाने का दुख मत कर, क्योंकि शक्कर के सैकड़ों खंड करने पर भी उसकी मिठास नहीं जाती ।"

जब मुंज को भिक्षा माँगने पर विवश किया जाता है, तब उसे अपना मंत्री रुद्रादित्य याद आता है, जिसने गोदावरी पार करने को मना किया था । मुंज कहता है—

"गय गय रह गय तुरय गय, पायक्कडा नि भिच्च ।
सग्गर् ठिय करि मन्तणउं, मुहुन्ता रुद्दाइच्च ।।"

भावार्थ—हे रुद्रादित्य ! हाथी, रथ, घोड़े, योद्धा—इन सबसे रहित होकर बिना सेवकों के मैं यहाँ खड़ा हूँ, मुझे अपने पास बुला लो । तुम स्वर्ग में हो और मैं तुम्हारी ओर मुँह करके यहाँ खड़ा हूँ ।

"जा मति पच्छइ सम्पजइ, सा मति पहिली होइ ।
मुन्ज भणइ मुणालवइ, विघन न वेठइ कोइ ।।"

भावार्थ—मुंज मृणालवती से कहता है कि जो बुद्धि विपत्ति पड़ने के बाद उत्पन्न होती है, यदि वह पहले उत्पन्न हो जाय, तो कोई संकट में न पड़े ।

ये छोटे दोहे अत्यन्त मधुर तथा सबल शैली में लिखे गये हैं । लोक साहित्य की इनसे बहुत वृद्धि हुई है । बाद के सोरठी दोहे इसी लोक साहित्य के प्रवाह में आये हुए हैं, जिनका विकास चारणों ने किया है ।

× × ×

यद्यपि अपभ्रंश-साहित्य ११वीं शताब्दी के बाद तक चलता रहा, किन्तु उस समय तक अपभ्रंश का पुरानी गुजराती का रूप ग्रहण करते जाना स्पष्ट लक्षित हो गया था। पुरानी गुजराती का प्रथम प्राप्य ग्रंथ है "भरतेश्वर बाहुबलि रास", जिसकी रचना शालिभद्रसूरि ने ११८५ ई० में की थी। ये भीमदेव द्वितीय के समय में सम्भवतः पाटण में हुए थे। इसमें राजकुमार भरत तथा बाहुबलि और तीर्थंकर ऋषभदेव के युद्ध का वर्णन है। बाहुबलि अपने त्याग और तप के बल पर केवल ज्ञान प्राप्त करता है। इसमें प्रधान रस वीर है और अन्त में शान्त रस। दोहा, सोरठा, रोला, चौपाई आदि मात्रामेल छन्दों की भाँति ठवणी की २०३ कड़ियों में इसकी रचना हुई है, साथ ही इसमें गेय रास छन्द भी हैं। शैली बड़ी सशक्त है। यह हेमचन्द्र की मृत्यु के केवल ११ वर्ष बाद रचा गया था। इस सुग्रथित प्रबन्ध से हमें हेमचन्द्र के समय की भाषा का ज्ञान होता है और अभी तक तो पुरानी गुजराती का यही आदि ग्रंथ है। पहले 'जम्बूस्वामि रास' प्रथम रचना मानी जाती थी, किन्तु यह प्रबंध उससे भी २५ वर्ष पूर्व का निकला। इसकी शैली और छन्दों में उस समय की रचनाओं से बहुत साम्य है। कुछ छन्दों को, जो किसी विशिष्ट ढाल में ही गाये जा सकते हैं, कवि ने रास छन्दों की संज्ञा दी है।

जैनों द्वारा लिखित रास और प्रबंध सैकड़ों की संख्या में हैं, किन्तु उनमें से अधिकांश में काव्य-तत्त्व नहीं हैं। परवर्त्ती रचनाएँ तो पूर्व का अनुकरण मात्र हैं और वर्तमान समय में वे पाठकों को आकर्षित करने में असमर्थ हैं। फिर भी उनमें भाषा का पुराना रूप रक्षित है, इसलिए उनका महत्त्व भाषा एवं भाषा-विज्ञान की दृष्टि से कम नहीं है।

शालिभद्रसूरि ने—संभवतः वही, जिन्होंने 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' की रचना की है—'बुद्धि रास' की भी रचना की है, जिसमें सर्वसाधारण के लिए कुछ अच्छे आदेशात्मक सूत्र हैं। यह ग्रन्थ ६३ कड़ियों में है। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में यह रास बहुत प्रसिद्ध हुआ। आदेशों की इस ढंग की परंपरा को जैन कवियों ने १९वीं शताब्दी तक जीवित रखा।

महेन्द्रसूरि के शिष्य धम्म ने 'जम्बूस्वामी रास' की रचना की। धम्म बहुत साधारण प्रतिभावाला था। इसमें उसने एक जैन साधु जम्बूस्वामी का

जीवनचरित सीधी-सादी भाषा में लिखा है। विजय सेनसूरि का 'रेवन्त-गिरि रासु' इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ ग्रंथ है। यह गाया जा सकता है और इसमें काव्यत्व है। रचयिता प्रसिद्ध मंत्रीद्वय वस्तुपाल और तेजपाल का गुरु था। संभवतः यह ग्रन्थ उस समय लिखा गया था, जब वह सं० १२९८ में वस्तुपाल और तेजपाल के साथ गिरनार गया था। ग्रंथ में गिरनार का अच्छा वर्णन अनुप्रास के साथ किया गया है, साथ ही उन विभिन्न लोगों का भी वर्णन है, जिन्होंने मंदिरों का नवीनीकरण किया था। इससे विदित होता है कि सुवर्ण-रेखा के तट पर हरि दामोदर का एक वैष्णव-मंदिर था। यह रास केवल गेय ही नहीं, वरन् अभिनेय भी था।

विनयचन्द्रसूरि ने १४वीं शताब्दी में नेमिनाथ चतुष्पदिका के अन्तर्गत एक बारहमासी गीत दिया है। अब तक प्राप्त यह सर्वप्रथम बारहमासी गीत है, यद्यपि इससे पहले भी कई बारहमासी लिखे गये होंगे। इसमें विप्रलंभ शृंगार की प्रधानता है। इसी प्रकार की भावना बाद के राधा-कृष्ण की बारह-मासियों में भी पायी जाती है। यहाँ करुण भावना नहीं है, क्योंकि नायक-नायिका का थोड़े वियोग के पश्चात् पुनर्मिलन होता है। जैन बारहमासियों का अन्त नायक के जैन साधु के रूप में दीक्षा लेने से होता है। किसी अज्ञात कवि के 'सप्तक्षेत्रि रासु' में, जो इसी समय का है, कुछ धार्मिक कृत्यों का वर्णन मिलता है। इस रचना में प्लवंगम छन्द का भी उपयोग किया गया है। जिनेश्वर सूरि का एक विवाहलु है, जिसमें रूपक द्वारा नायक के साथ संयम नारी के विवाह का वर्णन है। इसमें कवित्व बहुत नहीं है। झूलणा और वस्तु छन्दों का भी उपयोग इसमें पाया जाता है। 'पेथड रास' में पाटण के समीप संडेर के पेथडशाह द्वारा संघ निकालने का वर्णन है। जूनागढ़ में खेंगार और मंडलिक द्वारा पेथड-बन्धुओं का अच्छा स्वागत हुआ था। गुजराती में सवैया-जैसे कुछ नवीन छन्दों का प्रथम बार उपयोग हुआ। इसी प्रकार सं० १३६३ में रचित कछूली रास में कुछ ऐतिहासिक तथ्यों तथा उदयसिंह सूरि की वीरता का वर्णन है। पेथडरास और कछूली रास का बन्धों तथा ढालों की दृष्टि से बहुत बड़ा महत्त्व है। अम्बदेव सूरि के 'समरा रासु' में शत्रुंजय यात्रा के अवसर पर समरसिंह के नेतृत्व में भक्त संघपति देसल द्वारा संघ निकाले जाने

का वर्णन है। इससे बहुत-सी ऐतिहासिक तथा भौगोलिक जानकारी प्राप्त होती है। इसमें अनेक प्रकार के देशी ढालों का प्रयोग हुआ है।

धवल गीत विशेष अवसरों पर गाये जानेवाले गीत हैं। अपभ्रंश के दो पुराने धवल प्राप्त हुए हैं। इनके बाद कुछ धवल और मिले हैं, जिनमें जिन-प्रभसूरि की स्तुति की गयी है। इन रचनाओं में अरबी के भी कुछ शब्द हैं। ३८ दोहों में लिखी हुई सोलणु की एक कविता चच्चरी भी प्राप्त हुई है, जिसमें गिरनार की यात्रा का वर्णन है।

शालिभद्रसूरि ने सं० १४१० में 'पंच पांडव चरित' की रचना की। इसकी कथावस्तु महाभारत से ली गयी है। १५ ठवणियों में विभक्त ७९५ कड़ियों की इस रचना में संक्षेप से महाभारत की कहानी कही गयी है। साथ ही जैनधर्म की अनुकूलता के लिए इसे थोड़ा परिवर्तित भी किया गया है। इसमें अनेक प्रकार के बन्ध हैं। इस काल का दूसरा महत्त्वपूर्ण रास 'गौतम रास' है, जिसे विनयप्रभ ने सं० १४१२ में खंभात में रचा था। यद्यपि इसका कलेवर छोटा है, पर इसमें काव्य-सौन्दर्य बहुत है। इसमें अलंकारों का भी अच्छा प्रयोग है। इसके छन्द भी गेय हैं। जिनोदय सूरि ने ३७ कड़ियों में 'त्रिविक्रम रास' की रचना की है, जिसमें अपनी गुरु-परम्परा बताते हुए उन्होंने अपने पट्टाभिषेक का वर्णन किया है।

'पंचपांडव रास' के बाद शालिभद्रसूरि के विराट् पर्व में पौराणिक विषय पर हमें एक दूसरी कविता मिलती है। कवि ने १८२ अक्षरमेल वृत्तों में प्रसिद्ध महाभारत की कथा कही है। गुजराती साहित्य में, अक्षरमेल वृत्तों का यह विरल एवं सफल प्रयास है। दूसरा महान् प्रयास जयशेखर सूरि का 'त्रिभुवन दीपक' है, जो सं० १४६२ में रचा गया था। रचयिता ने 'प्रबोध चिन्तामणि' की रचना संस्कृत में और गुजराती पाठकों के लिए 'त्रिभुवन दीपक' की रचना की। यह एक रूपक काव्य है। आत्मा राजा माया द्वारा फँसाया जाकर कायानगरी में बन्दी बनाया जाता है। मंत्री मन शक्तिशाली हो जाता है। उसके पुत्र मोह ने राज्य पर अधिकार कर लिया, किन्तु उसके दूसरे पुत्र विवेक ने अपनी पत्नियों—संयमश्री तथा सुमति—की सहायता से उसे परास्त कर फिर राजा आत्मा को सिंहासन पर बैठाया। देशी छन्दों के

अतिरिक्त कवि ने बड़ी सफलतापूर्वक अक्षरमेल वृत्तों का भी प्रयोग किया है और प्रसाद शैली में श्रेष्ठ रूपक काव्य प्रस्तुत किया है। उसमें कुछ प्रास-युक्त गद्यांश भी हैं, जिन्हें 'बोली' कहते हैं।

फागु

इस रास-युग में फागु नाम की कुछ रचनाएँ भी हुई हैं। इस भेद में काव्य साधारणतः वसंत ऋतु-वर्णन से आरंभ होता है और प्रियतम से विलग नायिका का शोक वर्णित रहता है। बाद में उसे कुछ शुभ शकुन होते हैं, उसका प्रेमी आ जाता है और दोनों का मिलाप होता है। इसमें पहले विप्रलंभ और पीछे संभोग शृंगार होता है। कवि बड़े विस्तार से नायिका का सौन्दर्य, आस-पास के प्राकृतिक दृश्यों एवं लीलाओं का वर्णन करता है। जैन फागुओं का अंत संयम तथा त्यागपूर्ण होता है और अंत में नायक जैन दीक्षा लेता हुआ बताया जाता है।

अब तक प्राप्त सबसे प्रथम फागु १४वीं शताब्दी में लिखित जिन पथ-सूरि का "सिरि थूलि भद्द" माना जाता है। स्थूलिभद्र और श्रेयक पाटलिपुत्र के मंत्री शकटाल के पुत्र थे। स्थूलिभद्र राजनर्तकी कोश्या के प्रेम में पड़कर १२ वर्षों तक उसके घर में रहा। इस बीच उसके पिता का देहान्त हो गया। अपने पिता के अन्त समय में न पहुँचने का उसे इतना पश्चात्ताप हुआ कि उसने संसार त्यागकर जैन धर्म की दीक्षा ले ली। अपने संयम की परीक्षा करने के लिए वह उसी नर्तकी कोश्या के पास चातुर्मास बिताता है। कोश्या उसे आकर्षित करने के लिए बहुत प्रयत्न करती है, किन्तु वह शुद्ध मन से अपनी तपस्या में रत रहता है। यद्यपि यह रचना फागु कहलाती है, किन्तु इसमें वसंत ऋतु-वर्णन नहीं है। इसके विपरीत इसमें वर्षा ऋतु का वर्णन है। किन्तु पृष्ठभूमि में शृंगार रस का वर्णन होने से रचना फागु कोटि में ली जाती है तथा चैत्र मास में नाच-गान के उपयुक्त मानी जाती है। इस काव्य के सात भाग हैं, जो भासा कहलाते हैं। भाषा बड़ी रोचक अनुप्रासों से युक्त है। अंत में नायक ज्ञान के खड्ग से राजा मोह एवं योद्धा मदन को मारकर संयमश्री से विवाह करता है।

इस शताब्दी का दूसरा फागु मलधारी राजशेखर सूरि का नेमिनाथ 'फागु' है। नेमिनाथ की सगाई उग्रसेन की कन्या राजीमती अथवा राजुल से हुई थी। बारात उग्रसेन के महल में पहुँचती है। बारात के मेहमानों को खिलाने के लिए बहुत-से पशु वधार्थ बाँधे थे। नेमिनाथ का हृदय करुणा से भर जाता है और त्याग-वैराग्य की भावना से शीघ्र ही वह बारात छोड़कर चला जाता है। नेमिनाथ यादव परिवार के बाईसवें जैन तीर्थंकर हैं और कृष्ण के चाचा के पुत्र थे। नेमिनाथ के संन्यास की बात सुनकर राजीमती बहुत दुखी होती है, किन्तु अन्त में वह भी तपस्या करना निश्चित करती है। नेमिनाथ की बारात और उनके संसार-त्याग की बात बहुत प्रसिद्ध है, तथा इस विषय के बहुत-से चित्र एवं मूर्तियाँ हैं। इस फागु काव्य में वसंत ऋतु, बारात, बहुमूल्य वस्त्रों, आभूषणों तथा विवाह की विभिन्न रीतियों का वर्णन है। यह काव्य २७ कड़ियों तथा ७ खंडों में है। यमक सांकलियों से युक्त इसमें विभिन्न प्रकार के गीत हैं।

एक अज्ञात कवि द्वारा सं० १४३० में रचित 'जम्बूस्वामी फाग' में एक धनी व्यापारी ऋषभदत्त के पुत्र जम्बूस्वामी के संन्यास का वर्णन है। एक के बाद एक, उनकी सगाई ८ सुन्दर कन्याओं के साथ हुई थी, किन्तु सुधर्मस्वामी गणधर का उपदेश सुनकर उन्हें वैराग्य हो गया। इस पर भी आठों कन्याओं ने उन्हीं के साथ विवाह करने का निश्चय किया और विवाह हुआ। एक रात को एक डाकू अपने ५०० साथियों के साथ उनके घर आया। यद्यपि डाकू सबको सुला देने की विद्या जानता था, तथापि ब्रह्मचर्य के प्रताप से जम्बूस्वामी पर उसके प्रयोग का कोई प्रभाव नहीं पड़ा; उल्टे सभी डाकू जहाँ खड़े थे, वहीं चिपक गये। तब जम्बूकुमार ने चोरों को उचित उपदेश किया। अन्त में जम्बूकुमार ने उन ५०१ चोरों, अपनी आठों पत्नियों तथा कुछ लोगों——सब मिलाकर ५२६——के साथ जैन धर्म की दीक्षा ले ली। इस रचना में वसंत ऋतु का वर्णन विस्तार से है। दोहों में यमक सांकली का भी प्रयोग है।

सबसे अधिक प्रसिद्ध फागु 'वसन्त विलास' है, जिसकी रचना सं० १४०० से १४२५ के बीच किसी समय हुई थी। ऐसा लगता है कि रचयिता जैन नहीं था, किन्तु उसके विषय में कुछ ज्ञात नहीं हुआ। इस पूरे काव्य में एक-एक पंक्ति पर जीवनानंद की धारा छलकती दीखती है। कवि निश्चय ही संसार

से ऊबा हुआ नहीं लगता। वह जीवन के सुखोपभोगों का प्रशंसक है। काव्य के किसी अंश पर जैन प्रभाव नहीं दीखता, इसलिए यह अनुमान करना ठीक ही है कि रचयिता जैन नहीं हैं। इसकी भाषा १५वीं शताब्दी के पूर्वभाग की है। साधारणतः जैन फागुओं का अन्त नायक के संसार-वैराग्य से होता है; और जैनेतर फागु प्रायः कृष्ण और गोपियों का वर्णन करते हैं। किन्तु इस काव्य में वैराग्य या त्याग की कोई भावना नहीं है, साथ ही इसके नायक-नायिका संसार के साधारण मनुष्य हैं। यही एक उत्तम एवं उन्मादक प्रेम-काव्य है। इसमें शब्द तथा अर्थ, दोनों प्रकार के अलंकार ललित-मधुर भाषा में प्रयुक्त हुए हैं। युवा नायक-नायिका आलम्बन विभाव हैं और वसन्त ऋतु उद्दीपन विभाव है। आदि में विप्रलंभ श्रृंगार का वर्णन है, जब कि नायक से नायिका विलग है। अन्त में जब दोनों का मिलन होता है, तब संभोग श्रृंगार का वर्णन किया गया है। भाषा प्रासयुक्त है। कवि ने संस्कृत के कुछ प्रसिद्ध ग्रंथों—जैसे 'नैषधीय चरित्र', 'शिशुपाल वध', 'कुमार संभव', 'अमरु शतक', 'शाकुन्तल' आदि—के अनेक अंशों का संक्षिप्त रूप से उल्लेख किया है। काव्य की पाण्डुलिपि में, जो १५०८ में लिखी गयी थी, प्रत्येक तुक के साथ संस्कृत अथवा प्राकृत का एक श्लोक और एक चित्र है, जो अजन्ता शैली से मिलती-जुलती गुजराती चित्रकला की शैली का प्रतिनिधित्व करता है। इन चित्रों की ख्याति विश्व-भर में है और अब ये वाशिंगटन म्यूजियम में रखे हैं। इसके प्रत्येक पद का सम्बन्ध इसी आशय के संस्कृत या प्राकृत पद से है। ८६ पदों में ३४ का सम्बन्ध 'नैषधीय-चरित्र' से तथा ६ का 'शिशुपाल वध' से है। इससे गुज-रात के विद्वानों में इन महाकाव्यों की प्रसिद्धि सिद्ध होती है। कवि ने संस्कृत के मूल पद की सभी रेखाओं को नहीं उभारा, किन्तु जो कुछ भी उसने लिया है, उसे बड़ी मधुर एवं सशक्त भाषा में व्यक्त किया है। उदाहरण के लिए काव्य का छाछठवाँ पद देखिए—

नमणि करइं न पयोधर योधर सुरत संग्रामि।
कंचुक त्यजइं संनाहुरे नाहु महाभडु पामि॥

दोनों स्तन, श्रेष्ठ योद्धाओं की भाँति, सुरत-संग्राम में नमित नहीं हुए।

यद्यपि उन्हें पतिरूपी एक महायोद्धा के साथ युद्ध करना है, तो भी निर्भय होकर उन्होंने कंचुक रूपी कवच उतार दिया है।

यही भाव 'नैषधीय चरित्र' २–३४ में आया है—

निगदितुं विधिनाऽपि न शक्यते सुभटता कुचयोः कुटिलभ्रुवाम्।
सुरतसंभ्रमतः प्रियपीडितावपि नतिं न गतौ गतकञ्चुकौ ॥

टेढ़ी भौहोंवाली रमणियों के योद्धारूपी दो स्तनों की शक्ति का वर्णन ब्रह्मा भी नहीं कर सकता। यद्यपि सुरत-संग्राम में अपने प्रियतम द्वारा पीड़ित किये जाने पर ये थक गये हैं और बिना कवचरूपी कंचुक के हैं, किन्तु उन्होंने हार नहीं मानी और वे झुके नहीं।

मूल 'नैषधीय चरित्र' की कुछ सूक्ष्मताएँ छोड़ दी गयी हैं, किन्तु गुजराती पदों में जो कुछ व्यक्त किया गया है, वह भी एक सुन्दर सामग्री है। ३४वाँ पद इस प्रकार है—

केसूयकली अति बाकुंडी आंकुडी ममणची जाणि।
विरहिणिनां इणि कालिज कालिज काटइ ताणि ॥

टेढ़ी किंशुक-कलियाँ कामदेव के अंकुशों-जैसी हैं। उसी शस्त्र से मदन विरहिणियों के हृदय विदीर्ण करता है।

६१वें पद में कहा गया है—

भमह कि मनमथ घुणहीय गुणहीय वरतणुहार।
बाण कि नयण रे मोहइं सोहइं सयल संसारु ॥

इस सुन्दर तरुणी की भौहें कामदेव के धनुष हैं; इसके वक्षस्थल पर पड़ा हुआ हार धनुष की डोरी है; इसके नेत्र-कटाक्ष बाण हैं। इसी धनुष से मदन सारे संसार को मोहित करता है, साथ ही उसे सुशोभित करता है।

इस काव्य का प्रत्येक पद एक पूर्ण मुक्तक है।

गुजराती-साहित्य के प्राचीन एवं मध्यकाल में अनेक फागुओं की रचना हुई है। जैन-फागुओं की अपेक्षा जैनेतर फागु संख्या में बहुत कम हैं। वे हैं,

'वसन्त विलास' (जिसकी चर्चा ऊपर हुई है), 'नारायण फागु' (सं० १४४५ में एक अज्ञात कवि का), 'हरविलास फाग' (१६वीं शताब्दी), 'वसन्त-विलास' (१७वीं शताब्दी में सोनीराम द्वारा) तथा 'भ्रमरगीत फागु' (चतुर्भुज द्वारा)।

अभी हाल में 'जिनचन्द्र सूरि फाग' जैसलमेर के जैनभाण्डार से प्राप्त हुआ है, जो सं० १३९० में रचित 'सिरि थूलिभद्द फागु' से भी ५० वर्ष पहले का है। उपर्युक्त जैन-फागुओं के अतिरिक्त भी कई फागु हैं, जैसे 'थूलिभद्द फागु (सं० १४०९ में हलराज द्वारा), 'जिराउला पार्श्वनाथ फाग' (सं० १४३२ में मेरुनन्दन द्वारा), 'रंगसागरनेमि फाग', 'सुरंगाभिधाननेमि फाग', 'नेमीश्वर चरित फाग', 'देवरत्न सूरि फाग' तथा 'हेमरत्नसूरि फाग' आदि। कुछ में तो अच्छा कवित्व है और शेष का महत्त्व केवल भाषा-अध्ययन की दृष्टि से है। कुछ फाग आज भी अप्रकाशित हैं।

लोक-वार्ताएँ

इस काल में कुछ लोक-वार्ताएँ भी प्राप्त होती हैं। सबसे प्राचीन प्राप्य गुजराती लोककथा सं० १४११ में विजयभद्र द्वारा रचित 'हंसराज वच्छराज चौपाई' है। ६ वर्ष के भीतर ही इसी विषय पर एक जैनेतर कवि असाइत ने 'हंसाउली' लोकवार्ता लिखी। स्वयं असाइत इसे एक पवाडो मानते हैं। ये सं० १४२७ में हुए। यद्यपि कवि जैन नहीं था, फिर भी उसके इस काव्य का जैनों में भी समादर हुआ। वे सिद्धपुर के औदीच्य ब्राह्मण तथा राजाराम ठाकर के पुत्र थे। उंझा ग्राम में हेमाला नाम का एक पाटीदार था। उसकी सुन्दर कन्या गंगा का अपहरण एक मुसलमान सरदार ने किया था। असाइत ने उसे समझाया कि गंगा एक ब्राह्मण कन्या है, स्वयं उसकी पुत्री है। असाइत के कथन की परीक्षा करने के लिए उसे पाटीदार की कन्या के साथ भोजन करने के लिए कहा गया। असाइत ने भोजन किया और इस प्रकार उस बाला का उद्धार किया। किन्तु एक पाटीदार की कन्या के साथ भोजन करने के कारण वह ब्राह्मण-समाज से बहिष्कृत कर दिया गया। तब वह उंझा गया, जहाँ कृतज्ञ पाटीदार-समाज ने उसका अच्छा स्वागत किया। उसके तीन पुत्र थे—

मांडण, जयराज और नारण। ये तीनों पुत्र 'त्रणघरा अथवा तरगाला' कहलाते थे। रंगमंच की कला में निपुण यह तरगाला-समाज असाइत को अपना पूर्वज मानता है। असाइत ने भवाई के ३६० वेशों की रचना की थी, ऐसा कहा जाता है। उनमें से कुछ ही अब प्राप्य हैं। संभवतः असाइत की मूल भवाई-रचनाओं की भाषा अश्लील नहीं थी।

असाइत की 'हंसाउली' अधिकांशतः चौपाईबन्ध में हैं। इस काव्य में उसने भी ३ विरह गीत लिखे हैं। यह ग्रन्थ ४ खंडों तथा ४४० कड़ियों में है। हंस और वच्छ इसके नायक हैं।

हीरानन्द सूरि ने सं० १४८५ में 'विद्या विलास पवाडो' की रचना की। इसका मूल विनयचन्द्र द्वारा रचित 'मल्लिनाथ काव्य' संस्कृत में है। हीरानन्द ने अपने ग्रंथ के लिए मूर्खपट्ट और विनयचट्ट की कहानी ली। कथा में राजकुमारी मंत्री-पुत्र से विवाह करना चाहती थी, किन्तु उसके स्थान पर विनयचट्ट बैठा दिया गया और इस प्रकार विनयचट्ट का विवाह राजकुमारी से हो गया। जब राजकुमारी को इसका पता चला, तो वह बहुत दिनों तक अपने पति विनयचट्ट के साथ न रह सकी और अंत में मर गयी। शामल कवि ने भी इस कथा का उपयोग कुछ परिवर्तन के साथ किया है।

लोक-वार्ता क्षेत्र का दूसरा अजैन रचनाकार भीम है, जिसन विभिन्न छन्दों में ६७२ कड़ियों का 'सदयवत्सचरित्र' लिखा है। इसमें पूरे नवरसों का वर्णन है। प्रत्यक घटना बड़ी सुन्दरता से वर्णित की गयी है और यह काव्य असाइत के 'हंसाउली' से बहुत श्रेष्ठ है। यह प्राचीन गुजराती साहित्य के कुछ सर्वोत्तम काव्यों में से एक है। गुजराती भाषा का पुराना रूप इसमें सुरक्षित है तथा अपभ्रंश भाषा के कुछ चिह्न भी इसमें दृष्टिगोचर होते हैं। मात्रामेल छन्दों तथा अक्षरमेल वृत्तों के विभिन्न पदों में कही हुई यह सदयवत्स (सदेवन्त) सावलिंगा की प्रेम-कथा है।

कवि श्रीधर व्यास का ग्रन्थ 'रणमल्लछन्द' लगभग सं० १४५४ में रचा गया था। यह ७० तुकों का एक छोटा काव्य है, जिसमें स्थान-स्थान पर वीर-रस छलक रहा है, और जो सुन्दर-बलवती शैली में लिखा गया है। कवि ने १४वीं शताब्दी के अंत की उस घटना का वर्णन किया है, जब इडर के

वीर राव रणमल्ल ने पाटण पर आक्रमण करके उसके मुसलमान सूबेदार को पराजित किया था। रणमल्ल इतना वीर था कि दूर-दूर की मुसलमान फौजें उसका नाम सुनकर काँप उठती थीं। श्रीधर ने इस काव्य के अतिरिक्त 'भागवत दशम स्कन्ध' और 'सप्तशती' की भी रचना की थी। 'रणमल्लछन्द' के प्रथम १० आर्य संस्कृत में हैं, शेष गुजराती में तथा मात्राबन्ध, रूपबन्ध और मिश्र मात्राबन्ध छन्दों में हैं। रचयिता ने विविध छन्दों का प्रयोग करके अपनी कलात्मकता का परिचय दिया है। वीर-रस के वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली हैं। शब्द-चयन और उनका क्रम वीररस के उपयुक्त है। इस काव्य की भाषा उस कोटि की है, जिसे अवहट्ठ या डिंगल कहते हैं। श्रीधर ने देवी की स्तुति में १२० कड़ियों की 'ईश्वरीछन्द' अथवा 'सप्तशती' की रचना की है। इसकी भाषा भी सबल तथा वीररस के उपयुक्त है।

प्राचीन गुजराती साहित्य में मुसलमान कवि बहुत ही कम पाये जाते हैं। एक तो १५वीं शताब्दी के कवि अब्दुल रहमान हैं और दूसरे १८वीं शताब्दी के कवि राजे। अब्दुल रहमान ने स्वतंत्र ग्रंथ 'सन्देश रासक' लिखा है; और राजे ने कृष्ण-भक्ति के पद लिखे हैं। 'सन्देशरासक' में अरबी का कोई शब्द नहीं है। वे मीर हुसेन के बेटे थे। भाषा भी अपभ्रंश की अवहट्ठ वर्ग की है। यह एक दूत काव्य है, जिसमें विरहिणी नायिका किसी पथिक द्वारा प्रिय को अपना सन्देश भेजती है। कवि का छन्दों पर विशेष अधिकार था—ऐसा लगता है। नायिका विजयनगर की रहनेवाली है और नायक खंभात-निवासी है। काव्य कालिदास के 'मेघदूत' का अनुकरण है। आरंभ में कुछ आर्याएँ हैं। पूरे काव्य में विप्रलंभ शृंगार है। कवि संस्कृत तथा प्राकृत भाषाएँ अच्छी तरह जानता था—यह काव्य से स्पष्ट है। नायिका-वर्णन, पथिक से नायिका का प्रश्न पूछना, खंभात-वर्णन आदि अत्यन्त आकर्षक भाषा में लिखे गये हैं।

गद्य-साहित्य

इस युग में अधिक तो नहीं किन्तु कुछ गद्य-साहित्य भी मिलता है। इन ग्रंथों में से अधिकांश स्वतंत्र गद्य-कथाएँ न होकर व्याख्या की कोटि के हैं। फिर

भी उस समय की भाषा का रूप उनमें सुरक्षित है। व्याख्याओं में संवाद का रूप देखने को मिलता है।

अब तक प्राप्य सबसे प्राचीन गद्य-ग्रंथ 'आराधना' है, जो आशापल्ली में सं० १३३० में लिखा गया था। इसकी भाषा अलंकार-बहुल, जटिल, संस्कृत-शब्दों से लदी हुई तथा अनुप्रास की झंकार से युक्त है। यह उस समय का प्रौढ़ गद्य है। इसकी शैली ऐसी है, जिसके लिए संस्कृत की कहावत 'संस्कृताढ्या च गौर्जरी' बिलकुल उपयुक्त है।

संग्रामसिंह का व्याकरण 'बालशिक्षा' आरंभिक विद्यार्थियों के लिए सं० १३३६ में लिखा गया था। इसमें उस समय की बोलचाल की भाषा का रूप है। 'प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह' में अतिचार (सं० १३४०) का कुछ अंश छापा गया है। 'सर्व तीर्थ नमस्कार' (सं० १३५८) में भी उस समय की जन-भाषा का स्वरूप है, जो उसी संग्रह में छापा गया है।

संस्कृत ग्रंथों की व्याख्याएँ अथवा उनके भावार्थ एक विशिष्ट शैली में हैं। मुख्य वाक्य के पश्चात् विशेषणात्मक उपवाक्य प्रश्न द्वारा रख दिये जाते थे और फिर उन्हें स्पष्ट किया जाता था। सं० १३६९ में लिखित 'अभिचार' का भी कुछ अंश उसी संग्रह में छपा है, जिसको देखने से सं० १३४० में लिखे 'अतिचार' की अपेक्षा भाषागत परिवर्तन और विकास स्पष्ट लक्षित होता है।

१५वीं शताब्दी तक आते-आते अपभ्रंश की विशेषताएँ गुजराती में क्रमशः समाप्त हो गयीं और गुजराती के मध्यकाल का उदय हुआ। इस शताब्दी का गद्य-साहित्य इन रूपों में प्राप्त होता है—१. सीधे-सादे गद्य में लिखी कहानियाँ, २. विशेष प्रकार के गद्य-प्रबन्ध, ३. व्याख्याएँ, अनुवाद, आरंभिक पाठकों के लिए ग्रंथ तथा व्याकरण।

सादे गद्य की कहानियाँ अधिक संख्या में पायी जाती हैं। उनमें भाषा-सौन्दर्य नहीं है। व्याख्याएँ बोल-चाल की भाषा में छोटे-छोटे वाक्यों में लिखी गयी थीं। विशिष्ट शैली का गद्य—जो लय और अनुप्रासयुक्त था—भी पनप रहा था, किन्तु ऐसा एक ही ग्रंथ प्राप्त हुआ है।

तरुणप्रभ विद्वान् और आदरणीय जैन-आचार्य थे। उन्होंने सं० १४११ में धार्मिक नियमों को स्पष्ट करने के लिए बहुत-सी कहानियाँ लिखीं, जिनमें

से २३ प्रकाशित हो चुकी हैं। उनमें संस्कृत के तत्सम शब्द बहुत हैं। इन कहानियों में सम्यक्त्व तथा श्रावकों के लिए १२ वृत्तों का वर्णन है। सं० १४४९ में राजकीर्ति ने श्रीधर के संस्कृत ग्रंथ 'गणित सार' का अनुवाद किया। इसमें प्राचीन पारिभाषिक शब्द तथा नाप-तौल के शब्द हैं।

एक प्रकार के ग्रंथ और हैं, जो औक्तिक कहलाते हैं। इनमें आरंभिक पाठकों को गुजराती द्वारा संस्कृत-व्याकरण सिखाने की चेष्टा की गयी है। एक ऐसा ही ग्रन्थ सोमप्रभसूरि का है। तिलक के 'उक्ति-संग्रह' का भी यही विषय है, किन्तु कुलमण्डन गणि द्वारा सं० १४५० में रचित 'मुग्धावबोध औक्तिक' विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसमें उक्ति के नियम हैं अर्थात् किस प्रकार संस्कृत बोलना चाहिए, यह सिखाया गया है। संस्कृत-व्याकरण की प्रस्तावना होने के कारण ही इसे 'औक्तिक' कहा गया है। इसमें कर्तृवाच्य-कर्मवाच्य-भाववाच्य आदि उक्तियों का विश्लेषण है। संस्कृत-व्याकरण की दृष्टि से इस ग्रंथ का उतना महत्त्व नहीं है, किन्तु इसकी महत्ता इसलिए है कि इसमें १४वीं शताब्दी की गुजराती भाषा का रूप विद्यमान है।

गुणरत्नसूरि (सं० १४६६) के 'कृत्यरत्नसमुच्चय' का विषय संस्कृत धातुकोश है और उसमें गुजराती क्रियाएँ भी बतायी गयी हैं। भाषा-विकास के ज्ञान के लिए सं० १४६६ में लिखे 'श्रावक व्रतादि अतिचार' की तुलना पहले के दो अतिचार ग्रंथों से की जा सकती है।

सोमसुन्दरसूरि (सं० १४५७–९९) ने कुछ कहानियाँ लिखी हैं। ये उपदेशमाला तथा योगशास्त्र की कथाओं से ली गयी हैं और प्रकाशित हो चुकी हैं।

गद्य-कथा का रूप यद्यपि शुद्ध अर्थ में संस्कृत और प्राकृत में पाया जाता है, किन्तु लोकभाषाओं में उसका उतना विकास नहीं हुआ फिर भी गुजराती के 'पृथ्वीचन्द्र चरित' में वैसी गद्य-कथा है। वह है 'कादम्बरी' जिसे माणिक्य सुन्दरसूरि ने लिखी है, जो 'त्रिभुवनदीपक प्रबन्ध' के रचयिता जयशेखर सूरि के शिष्य थे। वह ग्रन्थ पालनपुर में सं० १४७८ में पूर्ण हुआ था। इसका दूसरा नाम 'वाग्विलास' भी है। लेखक ने संस्कृत में 'शुकराजकथा'

की भी रचना की है। 'पृथ्वीचन्द्र चरित' में ५ उल्लास हैं। इसका गद्य अलंकार एवं लययुक्त है।

महाराष्ट्र में पैठण के राजा पृथ्वीचन्द्र उसके नायक हैं। उनका विवाह अयोध्या की राजकुमारी रत्नमञ्जरी से होने को था। बचपन में रत्नमञ्जरी को एक हंस उठा ले गया था और जब वह विवाह के योग्य हो गयी तो लौटा गया। राजकुमारी के स्वयंवर का आयोजन हुआ। उसमें भाग लेने के लिए पृथ्वीराज पैठण से चले। मार्ग में समरकेतु ने पृथ्वीचन्द्र पर आक्रमण किया, किन्तु किसी दैवी पुरुष ने चमत्कारपूर्वक समरकेतु को बाँधकर पृथ्वीचन्द्र के चरणों में डाल दिया। समरकेतु को भाँति-भाँति से उपदेश किया गया, अतः उसने जैन-दीक्षा ले ली। इसके बाद पृथ्वीचन्द्र स्वयंवर में गया और वहाँ रत्नमञ्जरी ने उसे वरमाला पहनायी। निराश राजकुमार धूमकेतु आकाशीय धूमकेतु का साधक था, अतः उसने अपनी विद्या से अंधकार उत्पन्न कर दिया। अंधकार समाप्त होने पर पता चला कि राजकुमारी लुप्त कर दी गयी है। सहसा एक भूचाल आया और एक महिला रत्नमंजरी को लिये हुए धरती से निकली। पृथ्वीचन्द्र और रत्नमंजरी का विवाह हुआ। कुछ समय बाद धर्मनाथ तीर्थङ्कर ने पृथ्वीचन्द्र को उपदेश दिया और उसके पूर्वजन्मों की बात बतायी तथा यह भी कहा कि इस जीवन में अनेक चमत्कार होने के क्या कारण हैं। पृथ्वीचंद्र पैठण आया। उसे एक पुत्र महीधर प्राप्त हुआ और जब राजा सिंहकेतु ने उस पर आक्रमण किया, तब फिर उसे दैवी सहायता प्राप्त हुई। शत्रु शांत हो गया, पृथ्वीचन्द्र को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ और महीधर पैठण का राजा बना।

यह श्रेष्ठ गद्य कादम्बरी इतिहास तथा भूगोल, दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। लेखक यद्यपि जैन है, किन्तु ब्राह्मण धर्म के प्रति भी उसके हृदय में आदर है। उसने विभिन्न स्मृतियों तथा पुराणों का उल्लेख किया है तथा विभिन्न समाजों एवं धंधों का वर्णन दिया है। भाषा की दृष्टि से भी ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है। इसकी शैली हमें बाण की कादम्बरी का स्मरण दिलाती है। प्रसादगुण, लय, लालित्य तथा अनुप्रासों के कारण इसकी शैली अत्यन्त बलवती

तथा रुचिकर हो गयी है। इसमें कुछ शब्द अरबी के भी हैं, जो प्रचलित हो गये हैं। इसमें कुछ उपकथाएँ भी हैं। स्पष्ट लक्षित होनेवाले धार्मिक उद्देश्य के कारण इसमें शृंगार रस की प्रमुखता नहीं है। जैनों में इस ग्रंथ का बड़ा प्रचार हुआ। इसका कुछ अंश देखिए—

"ते मंडप रत्नमञ्जरी पाषइ निःश्रीक दीसिवा लागु। जिम लवण-हीन रसवती, व्याकरणहीन सरस्वती; गंधरहित चंदन; घृतरहित भोजन; खांडरहित पकवान, मानरहित दान; छन्दरहित कवि, शक्ररहित पवि; विवेक-रहित मणु, वेदरहित ब्राह्मणु; स्वर्गरहित ऐरावण, लंकारहित रावण; शस्त्र-रहित पायक, न्यायरहित नायक; फलरहित वृक्षु, तपोरहित भिक्षु; वेग-रहित तुरंगम, प्रेमरहित संगम; नासिकारहित मुखमंडल, कर्णपालिरहित कर्णकुंडल; वस्त्ररहित शृंगार, सुवर्णरहित अलंकार; तांबूलरहित भोग, प्रसिद्धिरहित प्रयोग; कंकणरहित बाहुदंड, पणिछरहित कोदंड; चरणरहित बाल; राज्यरहित भूपाल; स्तंभरहित प्रासाद, दानरहित प्रसाद; मुष्टि-रहित कृपाण, ठउलीरहित बाण; अणीरहित छुरी, लोकरहित नगरी।

अध्याय ५

भक्तिकाल--भक्ति और ज्ञान का प्रभाव

रास-साहित्य प्रस्तुत करनेवाले जैन साधुओं के प्रमुख कार्य-कलापों के कारण १२वीं से १५वीं शताब्दी तक के गुजराती साहित्य को बड़ी सरलता से हम रास-काल का साहित्य कह सकते हैं। यद्यपि उनके कार्य गत १९वीं शताब्दी तक चलते रहे, तथापि साथ ही उस समय भक्ति की भी एक प्रबल तरंग उठ रही थी, जिसने गुजरात क्या, समस्त देश को प्रभावित किया। अतः १५वीं शताब्दी से १८५० तक के समय को हम गुजराती साहित्य का भक्ति-काल कह सकते हैं। भक्ति की इस लहर के प्रभाव को ठीक-ठीक जानने के लिए संक्षेप में हम भक्ति की विभिन्न धाराओं का विवेचन करेंगे।

वैष्णव धर्म का ऐतिहासिक विवेचन

वैदिक ऋचाओं में तत्सम्बन्धी देवताओं की महिमा गायी गयी है और केवल भय ही इसका कारण नहीं है; प्रायः प्रेम, आदर तथा माता-पिता, पुत्र, मित्र आदि के घनिष्ठ संबंध की कोमल भावनाएँ भी उनमें व्यक्त की गयी हैं। बृहदारण्यक में ब्रह्म की दया का वर्णन इस प्रकार हुआ है, जैसे कोई प्रेमी अन्तर-बाहर का सब कुछ भूलकर अपनी प्रेमिका का आलिङ्गन करता है (बृ० उ० ४–३–२१)। कथा में भगवत्कृपा के विषय में कहा गया है कि केवल भगवत्कृपा-प्राप्त व्यक्ति ही भगवान् को प्राप्त कर सकते हैं। उपनिषदों में उपासना-पद्धतियों का वर्णन है, जो भक्ति के ही लक्षण हैं। शंकराचार्य ने अपनी 'शिवानन्द लहरी' के ६१वें पद में भक्ति का लक्षण इस प्रकार बताया है--"जब मन की वृत्तियाँ भगवान् के चरणों की ओर इस प्रकार उन्मुख होती हैं, जैसे अँकोला वृक्ष के बिखरे बीज जड़ों की ओर, अथवा लौहसूचिका चुम्बक की ओर, या कोई पत्नी अपने पति की ओर, अथवा कोई लता वृक्ष की

ओर, या नदी सागर की ओर दौड़ती है, तब उसे भक्ति कहते हैं। 'नारद पाञ्चरात्र' में भक्ति की परिभाषा इस रूप में की गयी है––भगवान् की महत्ता का ज्ञान होते हुए जब स्थिर और प्रबल प्रेम भगवान् के प्रति उत्पन्न होता है, तब उसे भक्ति कहते हैं।" मधुसूदन सरस्वती का कहना है कि मन लाक्ष के समान होता है, जिसे पिघलाकर किसी भी वृत्तिरूपी साँचे में ढाला जा सकता है। अतः जब मन भागवत् धर्म सुनने पर द्रवित हो जाता है और जब इसकी वृत्तियाँ जलधारा के समान वेग से प्रभु की ओर दौड़ती हैं, तब भक्ति का उदय मानना चाहिए (भक्ति रसायण, १–३)।

कृष्ण और भागवत धर्म––वैदिक काल की भक्ति का बीज गीता में एक वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। महाभारत में अर्जुन को गीता का उपदेश देते हुए कृष्ण कहते हैं––'अनासक्त भाव से, समचित्त होकर, भगवद्-ज्ञान, भक्ति और समर्पण की भावना से युक्त होकर अपना कर्त्तव्य करो।' उस समय वैदिक कर्ममार्ग के कई विरोधी थे, जिसके परिणामस्वरूप त्याग और नास्तिकता का प्रबल प्रचार था। कृष्ण भक्तिमार्ग का उपदेश करके इन विरोधों का सामना करने में सफल हुए। कृष्ण की ऐतिहासिकता पर अब संदेह नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह कुछ ही शताब्दियों के पहले की बात है। गोकुल के कृष्ण पांडवों के मित्र, गीता के उपदेशक तथा द्वारका के सात्वतों के नेता थे। कृष्ण के रूप में विष्णु के अवतार की भावना पाणिनि के पहले ही प्रचलित हो गयी थी, क्योंकि पाणिनि ने वासुदेव के पुजारी वासुदेवकों की चर्चा की है। मेगस्थनीज़ (ईसा पूर्व चौथी शताब्दी) के अनुसार शूरसेन देश में वासुदेव की पूजा विशेष रूप से होती थी; यहाँ तक कि यूनानी दूत हेलिओडोरस (ईसापूर्व दूसरी शताब्दी) भी वासुदेव का पुजारी था। छांदोग्य उपनिषद् में देवकी के पुत्र तथा घोर आङ्गिरस के शिष्य कृष्ण का उल्लेख है। उनकी सूर्योपासना उनकी सच्चरित्रता तथा और भी अनेक गुणों पर प्रकाश डालती है, जो गीता के सिद्धान्तों के अनुकूल हैं। कृष्ण, वैदिक विष्णु, वासुदेव और नारायण एक ही हैं और इस एकता को नारायण गायत्री स्पष्टतः व्यक्त करती है। महाभारत के नारायणीय अंश में नारायण परमात्मा माने गये हैं और कृष्ण उनके अवतार। भागवत धर्म की उत्पत्ति मथुरा क्षेत्र में मानी जाती है। वहाँ से वह

पश्चिम की ओर द्वारका तक फैला; दक्षिण में पांड्य राजधानी मदुरइ (मथुरा अथवा मथुरा के समान ही इस स्थान का नाम है) तक; पूर्व में पुरी तक, जहाँ कृष्ण की स्थापना दास ब्रह्म के रूप में है, और उत्तर में परंपरा के अनुसार शंकराचार्य ने बद्रीनाथ में नारायण की मूर्ति को फिर से स्थापित किया, जिसे उन्होंने नारदकुण्ड में डुबकी लगाकर प्राप्त किया था। कृष्ण-भक्तों के लिए कृष्ण ही एकमात्र देव, एकमात्र शास्त्र, एकमात्र नाम, एकमात्र मंत्र और एकमात्र कर्म—उनकी सेवा—हो गये।

पाञ्चरात्र वैष्णवधर्म का मूल महाभारत के नारायणीय अंश में पाया जाता है। रामानुज संप्रदाय पांचरात्र-पद्धति एवं उसकी अनेक संहिताओं पर बहुत-कुछ निर्भर करता है। इसकी एक विशेषता चतुर्व्यूहों में विश्वास है। हरिवंश, ब्रह्म, विष्णु, भागवत् एवं ब्रह्मवैवर्त पुराणों में कृष्ण के बालरूप का वर्णन है और ब्रह्मवैवर्त पुराण में तो कृष्ण को रुक्मिणी के साथ नहीं, वरन् राधा के साथ बताया गया है। वैष्णव धर्म को गुप्तवंश के राजाओं का आश्रय प्राप्त था। पाञ्चरात्र की संहिताओं, मंदिरों, भवनों, राज-दानों तथा पुराणों आदि में भक्ति की धारा स्पष्ट लक्षित होती है। पौराणिक वैष्णव धर्म पाँचवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक चला, जिसका चरम परिपाक महान् भक्ति-ग्रंथ भागवत पुराण में हुआ। दक्षिण भारत में भी भक्ति-धारा के १२ आलवार संत छठवीं से नवीं शताब्दी तक हुए।

बुद्ध-धर्म एवं जैन धर्म के पूर्व—यहाँ तक कि छठवीं शताब्दी ईसापूर्व के भी पहले—मथुरा भागवत्-धर्म का केन्द्र था। बाद में कई शताब्दियों तक इस क्षत्र में बुद्ध-धर्म और जैनधर्म का बोलबाला रहा। ईसा की ७वीं शताब्दी में सनातन हिन्दू धर्म फिर स्थापित होकर समानता पर आ गया। ११वीं शताब्दी आते-आते हिन्दुत्व का पूर्ण प्रसार हो गया और बुद्ध-धर्म लुप्त हो गया।

श्री दुर्गाशंकर शास्त्री का कहना है कि द्वारका एक वैष्णव तीर्थ के रूप में १२वीं शताब्दी के बाद ही प्रसिद्ध हुआ। किन्तु लक्ष्मीधर (११०० से ११३० ई०) ने अपने 'तीर्थकल्पतरु' में द्वारका का वर्णन एक प्रसिद्ध वैष्णव तीर्थ के रूप में किया है तथा प्रमाण में वाराह पुराण को उद्धृत किया है। इसका यह अर्थ हुआ कि द्वारका १२वीं शताब्दी से बहुत पहले प्रसिद्ध हो चुका था,

तभी तो इसका वर्णन वाराह पुराण में आया और लक्ष्मीधर ने इसे एक तीर्थ के रूप में माना।

गीता ने भक्तियोग का उपदेश किया और नास्तिकता की बाढ़ को रोका; साथ ही अन्धविश्वास और अनधिकारी व्यक्तियों द्वारा संसार-त्याग की भावना का कड़ा विरोध किया। मीमांसकों ने वैदिक कर्ममार्ग के गौरव को फिर स्थापित किया और बुद्ध तथा जैन धर्मों के सिद्धान्तों का खण्डन किया, साथ ही उपनिषद् के ज्ञान मार्ग पर भी आक्रमण किया। शंकराचार्य ने ज्ञानमार्ग एवं संन्यास को फिर गौरव प्रदान किया। उन्होंने हिन्दूधर्म में अनेक सुधार भी किये। शंकराचार्य के दर्शन को माननेवालों ने शंकर भगवान् के अतिरिक्त दूसरे देवताओं की भी उपासना उसी भक्तिभाव से करना आरंभ किया। शंकराचार्य ने मायावाद का उपदेश किया और ज्ञान को भक्ति से भी श्रेष्ठ बताया। इन्हीं दो बातों के कारण अधिकांश वैष्णव-आचार्य उनसे भिन्न हो गये और उनका विरोध भी किया। किन्तु यह सत्य है कि प्रति सौ वेदान्तियों में ७५ शंकर-दर्शन के अनुयायी हैं अथवा उनसे प्रभावित हैं।

वैष्णव सम्प्रदाय—वैष्णव सम्प्रदाय का महत्त्व ११वीं शताब्दी से आरंभ हुआ। उनके आचार्यों या शिष्यों ने शंकराचार्य का अनुकरण करके प्रस्थान-त्रयी पर व्याख्याएँ की हैं। प्रत्येक में द्वैत या अद्वैत अथवा द्वैताद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन है; प्रत्येक में विष्णु के किसी एक विशिष्ट रूप की भक्ति का उपदेश है। वैष्णवों में रामानुज का सम्प्रदाय सबसे प्राचीन है। इसका आधार है महाभारत का पाञ्चरात्र अंश तथा उसकी संहिताएँ। दक्षिण के १२ आलवार संत रामानुज (१०१७ से ११३७ ई०) से पहले हो गये थे। रामानुज के अति निकट पूर्ववर्तियों में नाथमुनि एवं यामुनाचार्य अथवा आलवंदार थे। शंकराचार्य का दर्शन जहाँ केवलाद्वैत है, वहाँ रामानुज का दर्शन विशिष्टाद्वैत है। चित् जीव और जड़ जगत्—दोनों ही भगवान् के शरीर हैं, जो अन्तर्यामी रूप से सबमें व्याप्त है और केवल सद्गुणों को धारण करनेवाला है। रामानुज ने प्रपत्ति के सिद्धान्त पर बल दिया। अतः उनका सम्प्रदाय दो भागों में विभक्त हो गया—तेंगलइ और वडगलइ।

रामानुज के बाद निम्बार्क हुए, जिन्होंने द्वैताद्वैत सिद्धान्त की स्थापना की। वे कृष्ण के साथ राधा की भी उपासना करते थे। मध्व (११९९ से १२७८ ई०) ने अद्वैत का खण्डन करके सीधे द्वैत मत का प्रचार किया।

बिल्वमङ्गल अथवा लीलाशुक 'कृष्ण कर्णामृत' तथा अन्य स्तोत्रों के रचयिता हैं। उन्होंने राधा और उनकी सखी चन्द्रावली का वर्णन किया है; कृष्ण-भक्ति का उल्लेख जार भाव से किया है, कृष्ण के बाल एवं किशोर रूप की प्रशंसा की है; कृष्ण को श्रृंगार रस का रूप माना है और श्रृंगार-भक्ति को मधुर बताया है। ये १३वीं शताब्दी के बताये जाते हैं। वीरभूमि के कवि जयदेव (११७८ से १२०६ ई०) अति प्रसिद्ध 'गीत-गोविन्द' के रचयिता, कृष्ण की श्रृंगार-भक्ति का गान करनेवालों में सर्वोत्तम हैं। १५वीं और १६वीं शताब्दी की प्रबल भक्ति-लहर में इस ग्रंथ का पर्याप्त प्रभाव है। वल्लभ और चैतन्य सम्प्रदायों में जयदेव का बड़ा आदर है। जयदेव द्वारा प्रवर्द्धित श्रृंगार-भक्ति के भोग-प्रधान वर्णन का अगली शताब्दियों में बहुत अनुकरण हुआ। नरसिंह मेहता ने तो यहाँ तक लिखा है कि जयदेव ने गोपियों और शुकदेव की भाँति ही कृष्ण की भक्ति-रस का पान किया है, अतः अनुकरणीय हैं।

श्रीधर स्वामी (१२०० से १२५० ई०) भागवत के प्रसिद्ध व्याख्याकार हैं। वे कृष्ण को स्मर-रूप से अधिक परदेवता मानकर उनकी भक्ति करना अच्छा समझते हैं। भक्ति-मीमांसा के प्रसिद्ध ग्रंथ हैं—शांडिल्य तथा नारद भक्ति-सूत्र। बोपदेव, 'मुक्ताफल' के रचयिता, ने भागवत के एक हजार श्लोकों को चुनकर अपने काव्य का विषय बनाया, जिसकी टीका हेमाद्रि ने की है। उसमें भक्ति का लक्षण बताते हुए कहा गया है—"मन को प्रयत्नपूर्वक भगवान् में दृढ़ता से लगाना ही भक्ति है।" गोपी-भक्ति का समर्थन नहीं किया गया और सखीभाव की भक्ति—विशेषकर पुरुषों के लिए—की उपेक्षा की गयी है। बोपदेव ने भक्ति के कई प्रकार बताये हैं। उन्होंने दो अन्य ग्रंथ भी लिखे हैं, एक व्याख्या और दूसरा भागवत की तालिका। गुजराती कवि केशवदास ने अपने "कृष्णलीला काव्य" में बिल्वमङ्गल, श्रीधर तथा दूसरों के अनेक पदों को उद्धृत किया है।

वल्लभाचार्य (१४४९ से १५३१ ई०), शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग के प्रवर्त्तक, ने अपने किसी लेख में स्वीकार किया है कि वे विष्णुस्वामी के अनुयायी थे, जो लगभग १२वीं शताब्दी में हुए थे और नृसिंह तथा गोपाल, दोनों के उपासक थे। कहा जाता है कि बिल्वमंगल उनके उत्तराधिकारी थे। वल्लभाचार्य के पूर्व विष्णुस्वामी सम्प्रदाय का कुछ प्रचार था, किन्तु अन्त में इसके अनुयायी बहुत कम रह गये। वल्लभ सम्प्रदाय के कुछ लोग इसको नहीं मानते कि वल्लभाचार्य का कुछ भी सम्बन्ध विष्णु स्वामी से था। नर्मदाशंकर लिखते हैं कि नरसिंह मेहता पर विष्णु स्वामी का प्रभाव था। वल्लभाचार्य का सम्प्रदाय राजस्थान तथा गुजरात के धनी बनियों और भाटियों के बीच बहुत फैला। चैतन्य (१४८५ से १५३३ ई०) ने भगवान् की प्रगाढ़ भक्ति और प्रेम का उपदेश उड़ीसा, दक्षिण, वृन्दावन तथा दूसरे स्थानों में किया। वे गौराङ्ग महाप्रभु कहलाते थे और राधा के अवतार माने जाते थे। मधुसूदन सरस्वती यद्यपि शंकराचार्य के अनुयायी थे, तो भी वे कृष्ण के परम भक्त थे और अपने 'भक्ति रसायण' में उन्होंने बड़ी कुशलता से भक्ति तथा उसके भेदों का वर्णन किया है, जिसमें भागवत के उद्धरण बहुत हैं। उनकी भक्ति की परिभाषा ऊपर दी गयी है।

वे माहात्म्य ज्ञान द्वारा प्रेरित भक्ति को ही शुद्ध समझते हैं, जब कि चैतन्य-सम्प्रदाय में ऐसी भक्ति गौण तथा वल्लभ-सम्प्रदाय में वह 'मर्यादा मार्गीय' मानी जाती है। चैतन्य एवं वल्लभ सम्प्रदायों में भक्ति का श्रेष्ठतम स्वरूप गोपी अथवा सखी भाव माना जाता है—पुरुष भक्तों के लिए भी।

सभी आचार्य, जिन्होंने विभिन्न सम्प्रदायों की स्थापना की, ब्राह्मण थे। उन्होंने संस्कृत में रचना की, दार्शनिक पृष्ठभूमि का विकास किया, सामाजिक ढाँचे को स्वीकार किया, अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन धर्मग्रन्थों के उद्धरण देकर किया और प्रस्थानत्रयी की संस्कृत में व्याख्याएँ लिखीं। इसके विपरीत संत सभी जाति के थे, जिन्होंने वर्णभेद या जातिभेद का तिरस्कार किया और भक्ति, ज्ञान, योग, वैराग्य का लोकभाषा में सीधे उपदेश किया। उन्होंने भी अपने अलग सम्प्रदाय बनाये।

अन्य भक्त तथा सन्त—असाम्प्रदायिक तथा पौराणिक भक्तों के चरित्र

पुराणों में मिलते हैं। दक्षिण में आलवार वैष्णव तथा नयनार शैव भक्त हुए हैं। नाभा जी के 'भक्तमाल' में सभी प्रकार के श्रेष्ठ भक्तों का उल्लेख है। वल्लभ सम्प्रदाय में 'चोरासी वैष्णवनी वार्ता' तथा 'बसोबावन वैष्णवनी वार्ता' जैसे ग्रन्थ हैं। यद्यपि शिव, विष्णु, शक्ति तथा अन्य देवताओं की उपासना करनेवाले भक्त और सन्त हुए हैं, किन्तु यहाँ हमारा संबंध केवल वैष्णव संतों से है।

प्रथम प्रधान सन्त थे रामानन्द, जो कबीर से पूर्व संभवतः १४०० ई० में हुए थे। उन्होंने सभी वर्गों के लिए राम-भक्ति और सुलभ कर दी और लोक-भाषा में उपदेश देकर रामभक्ति का बहुत प्रचार किया। उनकी भक्ति दास्य भाव की है।

चक्रधर भड़ोंच के एक गुजराती ब्राह्मण थे, किन्तु उनका कार्य-क्षेत्र महाराष्ट्र था, जहाँ उन्होंने १२६३ ई० में महानुभाव पंथ की स्थापना की। इस पंथ में देवता तो कृष्ण हैं, किन्तु उनकी कोई मूर्ति नहीं है। ऐसा कहा जाता है कि संत ज्ञानेश्वर कुछ सीमा तक इस महानुभाव पंथ तथा नाथ-संप्रदाय से भी प्रभावित थे। नाथ-सम्प्रदाय की स्थापना आदिशंकर द्वारा बतायी जाती है, जिसे मत्स्येन्द्रनाथ ने लगभग १०वीं शताब्दी में नवीन रूप दिया। उनके पट्ट शिष्य गोरखनाथ थे, जो सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध थे और जिन्होंने योग मार्ग का उपदेश किया। वे शुद्ध ज्ञान मार्गी थे और भक्ति की भावुकता को अच्छी नहीं समझते थे। तुलसीदास ने नाथ-सिद्धों पर व्यंग्य करते हुए लिखा है, कि बिना श्रद्धा-विश्वास के सिद्ध भी भगवान् का दर्शन नहीं कर सकते। गोरखनाथ के शिष्य गहिनीनाथ और उनके निवृत्तिनाथ थे, जो ज्ञानेश्वर के बड़े भाई थे। ज्ञानेश्वर की महान् कृति 'ज्ञानेश्वरी' संसार की एक श्रेष्ठतम रचना है। ऐसा कहा जाता है कि वे द्वारका आये थे। महाराष्ट्र में वैष्णव मतानुयायी मुख्यतः पण्ढरपुर के विठोबा की उपासना करते हैं। विठोबा के साथ रुक्मिणी हैं, राधा नहीं। यहाँ कोई आचार्य नहीं हुआ। सभी संत मराठी में उपदेश करते थे और उनमें से अधिकांश शूद्र थे। निम्नवर्ग के लोगों में वारकरी पन्थ प्रचलित था। नामदेव, गोरा कुंभार, विसोबा खेचर, सावन्त माली, नरहरि सोनी, चोखा महार, जनाबाई, सेना वालंद तथा नर्तकी कन्होपात्रा—ये सब समकालीन संत थे।

चण्डीदास (१४०० ई०) यद्यपि शाक्त थे, तथापि उन्होंने प्रेम-लक्षणा भक्तिपूर्वक राधा-कृष्ण की स्तुतियाँ बंगाली भाषा में रची हैं। विद्यापति (१५वीं शताब्दी) ने मैथिली में राधा-कृष्ण के गीत लिखे हैं, जो बाद में अधिक प्रसिद्ध होने पर बंगाली में फिर से लिखे गये। गोस्वामी हित हरि-वंश जी राधा सहित कृष्ण के उपासक थे और १५२६ ई० में उन्होंने राधा-वल्लभ मूर्ति की स्थापना वृन्दावन में की तथा राधावल्लभी सम्प्रदाय की नींव डाली। शंकरदेव ने १५वीं शताब्दी में महापुरुष वैष्णव सम्प्रदाय की स्थापना आसाम में की।

रामानन्द के शिष्य सभी वर्णों के थे। उनके शिष्यों में कबीर निर्गुण-वादी थे। उन्होंने योग, ज्ञान और वैराग्य का उपदेश लोगों को दिया, साथ ही हिन्दू-मुसलमान के भेद को दूर करके राम की आन्तर भक्ति का प्रचार किया। तुलसीदास भी रामानन्द के शिष्य कहे जाते हैं, जिन्होंने अपने अमर ग्रंथ 'रामचरित मानस' तथा अन्य ग्रन्थों द्वारा—जो परिपक्व अवस्था में लिखे गये थे—समूचे उत्तर भारत को राम-भक्ति की धारा में डुबो दिया। शिवाजी महाराज के गुरु समर्थ रामदास भी राम-भक्त थे, जिनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'दासबोध' है। एकनाथ और तुकाराम ने विठोबा की उपासना को ही आगे बढ़ाया। महाराष्ट्र के अंतिम महान् संत तुकाराम थे। उत्तर में सूरदास तथा अन्य अष्टछाप के कवि वल्लभ सम्प्रदाय के थे।

१५वीं शताब्दी तक मथुरा तथा उसके आस-पास का क्षेत्र वैष्णव सुधा-रकों का केन्द्र बन गया था। रामानुज, निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य के अनुयायी तथा राधावल्लभी मथुरा अथवा वृन्दावन में बस गये थे। उन्होंने वैष्णव मंदिरों का निर्माण कराया तथा सारे भारत में वैष्णव-भक्ति का प्रचार किया।

× × ×

गुजरात में वैष्णव मत की पृष्ठभूमि

कृष्ण द्वारका में बस गये थे। यह नहीं कहा जा सकता कि द्वारका एक वैष्णव-तीर्थ कब बना, किन्तु लक्ष्मीधर (१२वीं शताब्दी) के काव्य में वाराह-पुराण का उद्धरण देख कर मानना पड़ता है कि ऐसा १२वीं शताब्दी के बहुत

पहले हुआ होगा। गुप्त शासक भागवत थे। उनके प्रतिनिधि अधिकारी ने सुदर्शन झील का नवीनीकरण करवाया था। वलभी का शासक ध्रुवसेन प्रथम भागवत था। भिन्नमाल-निवासी माघ ने 'शिशुपाल वध' की रचना की है। ११वीं तथा १२वीं शताब्दी में वैष्णव मत की जड़ें गुजरात में काफी जम चुकी थीं और बहुत से नये मंदिरों का निर्माण हुआ था। किन्तु, यद्यपि दक्षिण में ११वीं शताब्दी से ही वैष्णव सम्प्रदायों का प्रचार हो चुका था, तथापि गुजरात में १५वीं शताब्दी तक वैष्णव मत का रूप बिना किसी सम्प्रदाय विशेष के पौराणिक ही रहा। सारंगदेव की १२९२ ई० की एक रचना में आरंभ की स्तुति १२वीं शताब्दी में हुए जयदेव के गीतगोविंद के एक प्रसिद्ध पद का उल्लेख करती है। इससे पता चलता है कि कितनी जल्दी गीतगोविन्द ने भारत के सभी भागों के लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। १५वीं शताब्दी तक गुजरात में वैष्णव धर्म अत्यन्त प्रबल हो गया। असाम्प्रदायिक तथा पौराणिक वैष्णव-मंदिर अब भी द्वारका और डाकोर में हैं।

वैष्णव भक्ति-साहित्य—१५वीं शताब्दी से लेकर आगे तक वैष्णव मत द्वारा प्रभावित साहित्य बहुत बड़े परिमाण में मिलता है। गुजरात में भागवत तथा बिल्वमङ्गल और जयदेव के ग्रन्थ प्रसिद्ध हो चुके थे। जयदेव के बहुत पहले, राधा-कृष्ण की उपासना-सम्बन्धी रचना अपभ्रंश में पायी गयी है, जिसका उद्धरण हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में दिया है। नरसिंह मेहता की परम्परा से स्वीकृत तिथि १४१४ से १४८० ई० है। वे कोई वैष्णव-आचार्य नहीं थे, वरन् एक संत और भक्त थे। उनका किसी सम्प्रदाय से सम्बन्ध नहीं था। भक्ति-क्षेत्र में वे जाति और धर्म के भेद को नहीं मानते थे। इसी कारण एक नागर ब्राह्मण और आचार-विचार वाले समाज के सदस्य होने के नाते उन्हें बड़ा कष्ट झेलना पड़ा। वे अपने को जयदेव का आभारी मानते थे तथा कृष्ण की बाल-क्रीड़ा एवं गोपियों के साथ कृष्ण की शृंगार-क्रीड़ा का गान उन्होंने भक्तिपूर्वक किया। उन्होंने ज्ञान-वैराग्य के भी कुछ बहुत ही श्रेष्ठ पद लिखे हैं, किन्तु संभवतः वे उनकी परिपक्व अवस्था के पद हैं। उन पदों में भागवत के अद्वैत वेदान्त की छाया दीखती है तथा अनेक स्थलों पर शंकराचार्य की शिक्षा का प्रभाव परिलक्षित होता है।

भालण नरसिंह मेहता का समकालीन था, पर वह राम-भक्त था। १५वीं शताब्दी के केशवदास ने भागवत के दशम स्कंध को गुजराती में लिखा है। कुछ के मत से यह काव्य प्रेमानंद के काव्य से भी उत्तम है। कर्मण मंत्री ने दशम स्कंध पर आधृत पद लिखे हैं। भीम (१४८५ ई०) ने वोपदेव के 'हरिलीला षोडशकला' का अनुवाद करके उसका विस्तार किया है। १६वीं शताब्दी से गुजरात वल्लभ सम्प्रदाय के प्रभाव में आने लगा, किन्तु फिर भी पौराणिक वैष्णव मत चलता ही रहा। कई रचयिताओं ने भागवत से एक या अधिक प्रसंग लेकर भक्त-चरित्र और आख्यान लिखे हैं या अनुवाद किया है। रत्नेश्वर, वल्लभ और सन्त महाराज ने तो पूर्ण भागवत का अनुवाद कर डाला है, जिसमें रत्नेश्वर का अनुवाद सर्वश्रेष्ठ है। उन्होंने भागवत के विषय पर श्रीधर के समकालीन का अनुकरण किया है। कुछ कवियों ने अपना विषय रामायण से लिया है--जैसे कर्मण मंत्री, मांडण, मीठा, उद्धव, विष्णुदास और गिरधर। नरसिंह मेहता जैसे भक्तों के जीवन की घटनाएँ भी कुछ कवियों का काव्य-विषय बन गयीं। 'हारमाला' स्वयं नरसिंह से ही सम्बन्ध रखती है। विश्वनाथ जानी, कृष्णदास, हरिदास, प्रेमानन्द, त्रीकमदास तथा दयाराम ने नरसिंह मेहता के जीवन पर रचनाएँ की हैं। प्रीतमदास और नरभेराम डाकोर के रणछोड़राय के भक्त हो गये हैं। धीरा और भोजा यद्यपि भक्त कवि थे, तथापि इन्होंने नीति, ज्ञान और वैराग्य पर भी लिखा है।

गुजरात के अधिकांश वैष्णवों ने वल्लभ सम्प्रदाय को स्वीकार कर लिया, जिसका गुजरात को भक्ति-परक बनाने में मुख्य हाथ रहा। रामानुज, निम्बार्क तथा मध्व के बहुत कम अनुयायी गुजरात में थे। इसी प्रकार चैतन्य के भी बहुत कम अनुयायी थे, कम से कम मध्यकाल में। गुजरात तथा सौराष्ट्र में पुष्टिमार्ग के अनेक मंदिर हैं और धनी व्यापारी समाज ने इस सम्प्रदाय को स्वीकार कर लिया। वल्लभाचार्य एवं उनके पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ-जी अक्सर गुजरात की यात्रा किया करते थे। १०वीं से १५वीं शताब्दी तक वैष्णव मत गुजरात में अधिकाधिक फैलता रहा। पुष्टिमार्ग में सेवा प्रकार का निदर्शन था, जो व्यापारियों के बहुत ही अनुकूल था। संगीत, सजावट, भोग-व्यंजन-निर्माण आदि में इस सम्प्रदाय ने बहुत-कुछ सिखाया। बहुत

थोड़े समय में पुष्टिमार्ग अत्यन्त पुष्ट हो गया और छोटे-छोटे गाँवों में भी इसके मन्दिर बन गये। इसके गोस्वामियों ने, जैसे हरिराय और पुरुषोत्तम जी; लालूभट्ट-जैसे इसके पंडितों ने तथा दूसरे लोगों ने संस्कृत एवं व्रज-साहित्य के प्रसार में बहुत योग दिया। कवि गोपालदास ने गुजराती में 'वल्लभाख्यान' लिखा, जिसकी व्याख्या व्रज भाषा में है और जो एक धर्म-ग्रंथ के रूप में पढ़ी जाती है। केशवदास ने भी वल्लभाख्यान लिखा है। १८वीं शताब्दी में इस सम्प्रदाय के लगभग १२ दूसरे कवि हुए, किन्तु इस सम्प्रदाय के उत्तम तथा गुजरात के प्रथम श्रेणी के कवि दयाराम हुए हैं। उन्होंने आख्यान लिखे हैं, वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए कविताएँ लिखी हैं, भक्तों का चरित्र तथा साम्प्रदायिक भक्तों का चरित्र लिखा है, राधा-कृष्ण की क्रीड़ा के पदों की रचना की है, अनेक अच्छी गरबियाँ रची हैं और व्रजभाषा का विशाल साहित्य प्रस्तुत किया है।

नरसिंह मेहता ने अपना कोई पंथ नहीं चलाया, पर गुजरात में कुछ कबीर-पंथी हैं। सूरत का कबीर-मंदिर सबसे पुराना है। डा० ए० डी० ध्रुव का कहना है कि नरसिंह मेहता के ज्ञान-वैराग्यवाले पदों में कबीर का प्रभाव रहा होगा। स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से शंकर के सिद्धान्तों का प्रभाव भी दिखाई देता है।

कवि मुकुन्द ने १८वीं शताब्दी में 'कबीर-चरित' लिखा है। भक्त भाण साहेब 'राम कबीरिया पन्थ' के प्रवर्तक हैं। इस पन्थ के कवियों ने भगवान् के प्रेम के साथ-साथ ज्ञान-वैराग्य की कविताएँ भी लिखी हैं। कवि जीवन-दास प्रभु की भक्ति स्त्री-भाव से करते थे। त्रीकम साहेब तथा हाथी साहेब अछूत वर्ग के थे।

मीराबाई रैदास की शिष्या कही जाती हैं, किन्तु उन्होंने कृष्ण-प्रेम ही गाया है। उन पर माध्व और चैतन्य का प्रभाव दीखता है। मीरा का वैष्णव मत उसी प्रकार का है, जैसा कि नरसिंह मेहता का था। कहा जाता है कि वृन्दावन में वे जीव गोस्वामी से मिली थीं। मीरा और नरसिंह मेहता का प्रेरणा-स्रोत एक ही है। मीराबाई ने अत्यन्त भावपूर्वक शृंगार-भक्ति का गान किया है। माना जाता है कि वे गुजरात आयी थीं और द्वारका के प्रभु-विग्रह में लीन हो गयीं।

कवि द्वारकादास (१८वीं शताब्दी) राधावल्लभ सम्प्रदाय के कवि माने जाते हैं।

सहजानन्द स्वामी (श्री हरिकृष्ण महाराज) का जन्म अयोध्या के पास छपैया में सन् १७८१ ई० में हुआ था। ग्यारह वर्ष की अवस्था में वे सप्त-वर्षीय तीर्थयात्रा को निकले। उन्होंने रामानन्द स्वामी से दीक्षा ली, जिन्होंने उन्हें उद्धव सम्प्रदाय का आचार्य होने तथा उसका प्रचार करने का आदेश दिया। वे सौराष्ट्र, गुजरात तथा कच्छ में २८ वर्षों तक उपदेश करते रहे। अपन मत के साधुओं के लिए उन्होंने बहुत कड़े नियम बनाये थे तथा धन और स्त्री के पूर्ण त्याग पर पूरा बल दिया था। उन्होंने बालहत्या, यज्ञ में पशु-बलि और विधवाओं की सती-प्रथा बन्द करायी; अन्ध-विश्वासों को न मानने का उपदेश किया; इन सबसे बड़ा काम यह किया कि कुछ अपराधी जातियों को सभ्य बनाया। इन सुधारवादी कामों के कारण अंग्रेज उन्हें बहुत मानते थे। दार्शनिक क्षेत्र में वे रामानुज के विशिष्टाद्वैत मत को माननेवाले थे। किन्तु सेवा-क्षेत्र में उन्होंने पुष्टिमार्ग का प्रकार स्वीकार किया था। उन्होंने २१२ पदों में 'शिक्षापत्री' की रचना की और 'वचनामृत' लिखा, जिसमें २६२ सुन्दर वचन हैं। उनके साथ वासुदेवानन्द और दीनानाथ-जैसे धुरंधर शास्त्री थे। इस सम्प्रदाय के ६ कवियों ने संस्कृत तथा गुजराती में रचनाएँ की हैं। ये सभी सहजानन्दजी के समकालीन थे। ये ६ कवि थे--मुक्तानन्द, ब्रह्मानन्द, प्रेमानन्द, निष्कुलानन्द, देवानन्द और मञ्जुकेशानन्द।

भक्त कवियों में से अधिकांश ने कृष्ण और गोपियों की लीला गायी है। उनमें से कुछ ने तो अपने को आदर्श गोपी मानकर सखी भाव की रचनाएँ की हैं। प्रायः इन लीला-रचनाओं को लौकिक भावों की भाषा में व्यक्त किया गया है और कहीं-कहीं तो श्रृंगार रस का बहुत ही खुलकर वर्णन हुआ है। काव्यत्व की दृष्टि से इन कवियों की रचनाओं में बड़ी विभिन्नता है तथा निम्न श्रेणी की रचनाएँ भी पायी जाती हैं। किसी भक्त के जीवन की घट-नाएँ, प्रभु की महिमा तथा मोक्ष के लिए भक्ति की अनिवार्यता का पुनरावर्तन बार-बार हुआ है।

इस प्रकार शताब्दियों तक गुजरात में शैव धर्म और अन्य मतों के साथ

वैष्णव धर्म का प्रचार होता रहा, जिसने जन-जीवन को एक साँचे में ढाल दिया, साहित्य को प्रभावित किया, विदेशी शासन से पीड़ित जनता में साहस उत्पन्न किया और लोगों का मन भगवान् की ओर लगाकर उनके जीवन में उत्साह को बनाये रखा।

शैव मत

शैवमत का संक्षिप्त विवेचन—उपनिषदों का परम तत्त्व ब्रह्म, वैष्णवों में विष्णु कहलाता है, शैवों में शिव तथा शाक्तों में शक्ति। शिव-भक्ति में प्रेम-लक्षणा भक्ति की अपेक्षा ध्यान तथा योग की विशेष प्रमुखता है। वैदिक साहित्य में रुद्र शिव के दो स्वरूप हैं—एक भयंकर, दूसरा कल्याणप्रद। कुछ पाश्चात्य विद्वानों का विश्वास है कि पहले परम शक्ति की कल्पना रुद्ररूप में हुई थी, किन्तु भय के कारण उसमें सद्‌गुण जोड़ दिये गये—ऐसी बात नहीं है। वस्तुतः प्रत्येक देवता के ये दो रूप होते हैं। नृसिंह भी विष्णु ही हैं और गीता में तो वे काल लोक-क्षयकृत् नाम से कहे गये हैं। देवी, दुर्गा तथा चण्डिका भी हैं और अम्बा तथा ललिता भी। इसी प्रकार से रुद्र भी शिव हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है कि शान्त ब्रह्म महद्‌भयं तथा उद्यतं वज्रं भी है। भयंकर रूप केवल दुष्टों के लिए है। भक्त तो सौम्य रूप के दर्शन की ही आशा रखते हैं। शिव आदिगुरु तथा सर्वश्रेष्ठ आयुर्वेद ज्ञाता हैं। शतरुद्रिय शिव की अत्यन्त प्रसिद्ध वैदिक स्तुति है। रुद्र, शिव अग्नि के लिए कहा जाता है। वेदों में रुद्र के लिए अनेक सुन्दर विशेषणों का उपयोग हुआ है। वे शिव, महादेव तथा देवाधिदेव ईशान कहलाते हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में शिवभक्ति को योग, ध्यान, भक्ति एवं ज्ञान से युक्त बताया गया है। कई शैव उपनिषद् हैं। नकुलिश के पाशुपत-सिद्धान्त का उद्‌भव गुजरात में हुआ, जो तैत्तिरीय आरण्यक पर आधृत है। शिव शक्तिशाली हैं, आशुतोष हैं, साथ ही शीघ्र क्रुद्ध हो जाने वाले हैं, वरदान देने में बड़े उदार हैं और कैलास में रहते हुए योग में लीन रहते हैं। गुजरात में शिवमंदिर प्रायः गाँव के बाहर नदी-तालाब के किनारे हैं या किसी निर्जन स्थान में हैं, जहाँ भक्त ध्यान कर सकें। शिवलिंग कहीं अग्नि, कहीं ज्योतिस्तंभ, कहीं स्तम्भ आदि की मूर्ति माना जाता है।

शैव सम्प्रदाय के साथ ही साथ पौराणिक शैवमत भी लोगों में प्रचलित था। वायु, कूर्म, लिङ्ग, शिव तथा स्कन्द का कुछ अंश—ये सब शैव पुराण हैं। पुष्पदन्त का महिम्न स्तोत्र बहुत ही प्रसिद्ध स्तोत्र है। शैव-सिद्धान्त भी अनेक हैं, जैसे नकुलिश-पाशुपत, आगमान्त शैव, तमिल संतों का शैव-मत, काश्मीर का प्रत्यभिज्ञा दर्शन, वीर शैव-दर्शन तथा रसेश्वर दर्शन।

गुजरात में जैसे द्वारका वैष्णवों का तीर्थ है, ठीक वैसा ही सोमनाथ मुख्य शैव तीर्थ है। इसी प्रकार नर्मदा विशेषकर शैवों द्वारा बड़ी आदरणीय मानी जाती है और नर्मदा से निकले हुए बाण विशेष पवित्र माने तथा पूजे जाते हैं। शल्यपर्व—३६-३३ में (कुंभकोनम् संस्करण) दक्ष चन्द्रमाको, पश्चिमी सागर (सौराष्ट्र) की ओर जाने को कहते हैं, जहाँ सरस्वती नदी सागर में मिलती है (प्रभास में), और यह भी बताते हैं कि वहाँ देवेश (ईशान अथवा शिव) की उपासना करना, क्योंकि चन्द्रमा की खोयी हुई कान्ति फिर प्राप्त करने का एकमात्र यही उपाय है। गुजरात में नकुलिश-सिद्धांत का काफी प्रचार था। क्षत्रप शासक, वलभी शासक, सोलंकी तथा बघेला शासक—इनमें से अधिकांश शैव थे और ऐसा अनुमान करना उचित ही है कि ईसा के आरंभ से १४वीं शताब्दी तक गुजरात में शैव मत की प्रमुखता थी। सिन्ट्राप्रशस्ति में गुजरात के अनेक पाशुपत आचार्यों का उल्लेख है। भाव वृहस्पति पहले मालवा-शासकों के गुरु थे, किन्तु सिद्धराज के विशेष आमन्त्रण पर वे गुजरात आकर सोमनाथ में बस गये। नकुलिश-मत के अनेक पाशुपत मठ मेवाड़ में भी थे। वहाँ के आचार्य कुशिक शाखा के तथा गुजरात के आचार्य गार्ग्य शाखा के थे। ११वीं तथा १४वीं शताब्दी के बीच गुजरात में ३ प्रमुख शिव-मंदिर थे—१. सोमनाथ : १२ ज्योतिर्लिङ्गों में प्रथम; २. मूलेश्वर : मूलराज द्वारा मंडली में स्थापित; ३. सिद्धपुर का रुद्रमहालय : जिसका निर्माण मूलराज ने आरंभ कराया, किन्तु जिसे सिद्ध-राज ने पूर्ण कराया। १४वीं शताब्दी में गुजरात पर मुसलमानों ने आक्रमण किया। मंदिर तोड़ डाले गये और पाशुपत मठ समाप्त हो गये। किन्तु तो भी गुजरात में पौराणिक शैव मत बना रहा।

गुजराती साहित्य में शैव भक्ति—नरसिंह मेहता को गोपनाथ महादेव का साक्षात्कार हुआ था, जिन्होंने उन्हें कृष्ण-भक्ति की ओर लगाया। इसके पहले अन्य नागर ब्राह्मणों की तरह नरसिंह भी शैव थे। 'हारमाला' में ऐसा कहा गया है कि जो शिव और कृष्ण में भेद मानता है, वह व्यक्ति अधम है और नरक का अधिकारी है। दयाराम भी एक नागर और वैष्णव थे, किन्तु उनके काव्य में शैवमत के प्रति अनादर की भावना है; नरसिंह मेहता के काव्य में ऐसी बात नहीं है। नरसिंह तो शिव का उपकार माननेवाले हैं, जिन्होंने उन्हें कृष्ण-भक्ति की ओर उन्मुख किया। भालण ने 'शिव-भीलडी-संवाद' की रचना की है। नाकर ने 'शिव-विवाह' लिखा है। उसने 'व्याध-मृगली-संवाद' तथा 'शिवरात्रि की कथा' भी लिखी है। शामल कवि ने शिवपुराण के ब्रह्मोत्तर खण्ड से सामग्री लेकर 'रेवाखंड' और 'शिव-माहात्म्य' की रचना की है; इनके अतिरिक्त सोमवार तथा शिवरात्रि की कथाएँ भी लिखी हैं। शामल के आश्रयदाता रखीदास भी शिव-भक्त थे। शिव-पुराण पर आधृत 'शिव-विवाह' की रचना मुरारि ने की। शिव-पुराण के नाम से खंभात के हरदेवराम ने 'शिव-माहात्म्य' लिखा। उन्होंने 'सीमन्तिनी आख्यान' की भी रचना की। प्रेमानन्द के समकालीन रत्नेश्वर ने 'महिम्नस्तोत्र' का अनुवाद गुजराती में किया। वसावड के नागर ब्राह्मण कालिदास ने 'ईश्वर-विवाह' लिखा। शिवानंद स्वामी ने शिव की प्रशंसा में बहुत-से पद और आरतियाँ लिखी हैं। प्रेमानन्द ने भी 'शिव-विवाह' लिखा है, किन्तु वह प्रकाशित नहीं हुआ। कुतिआणा के हरिदास ने 'ईश्वर-विवाह' लिखा है। रणछोड़जी दीवानजी ने ब्रजभाषा में 'शिव-रहस्य' तथा गुजराती में 'शिव-गीता' की रचना की है। कवि मीठु ने शिव के अर्धनारीश्वर रूप की स्तुति लिखी है। अविनाशानन्द ने 'शिव-गीता' की रचना की है। दयाराम के समकालीन कपडवणज-निवासी मयाराम ने शंकर की अनेक स्तुतियाँ लिखी हैं। 'बृहत्काव्य दोहन' के अनेक खण्डों में देवीदास, गोविन्दराम, जीवराज, रघुनाथदास, श्रीधर और दामोदर दास की शैव रचनाएँ प्रकाशित हैं। शिव और शक्ति के सामरस्य को शैव तथा शाक्त दोनों मानते हैं। अतः कहा जा सकता है कि शिव की

आराधना शाक्त कवि भी करते हैं। यद्यपि १५वीं शताब्दी के बाद गुजरात में किसी विशेष शैव सम्प्रदाय का प्रचार नहीं था, तो भी लोग-विशेषकर ब्राह्मण——पौराणिक शैवमत के अनुयायी थे। गुजराती साहित्य में वैष्णव मत की अपेक्षा शैवमत का प्रभाव कम दीखता है। इसके अतिरिक्त वैष्णवों में से वल्लभसम्प्रदाय तथा स्वामीनारायण के उद्धव सम्प्रदायवालों ने साम्प्रदायिक वैष्णव साहित्य का सर्जन किया। किन्तु गत कई शताब्दियों से गुजरात में पौराणिक कोटि का शैवमत ही चलता रहा, अतः गुजराती में साम्प्रदायिक शैव-साहित्य प्रायः नहीं के बराबर है।

शाक्त-सिद्धान्त

शक्ति-पूजा का संक्षिप्त विवेचन——देवी-उपासना अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक साहित्य में अदिति, उषा, सूर्या, वाक्, श्री तथा अन्य देवी के रूप में पूजी गयी हैं। शक्तिवाद के कई उपनिषद् हैं, जिनमें से कुछ की टीका अप्पय्य दीक्षित तथा भास्कर राय-जैसे प्रसिद्ध विद्वानों ने की है। परशुराम के कल्पसूत्र; अगस्त्य, भारद्वाज, नागानन्द तथा दूसरों के शक्तिसूत्र; श्री शंकर के परमगुरु गौड़पाद के श्री विद्यारत्न सूत्र——यह सब शक्तिवाद का सूत्र-साहित्य है। मार्कण्डेय पुराण का 'सप्तशती', ब्रह्माण्ड-पुराण का 'ललिता सहस्रनाम' तथा 'ललिता त्रिशती' तथा 'देवी-भागवत' आदि पौराणिक शाक्त साहित्य है, जो बहुत अधिक पढ़ा जाता है। इसी प्रकार 'लघुपंचस्तवी', गौड़पाद का 'सुभगोदय', शंकराचार्य की 'सौन्दर्य लहरी' तथा 'देवी महिम्न स्तोत्र' आदि कुछ प्रसिद्ध रहस्य स्तोत्र हैं। लक्ष्मीधर के अनुसार ६४ शाक्त तंत्र हैं, जो वेद बाह्य हैं; ८ शाक्त तंत्र मिश्र प्रकृति के हैं, जिनमें उच्चवर्गों के लि दक्षिणाचार तथा निम्नवर्गों के लिए वामाचार का निर्देश है। इनके अतिरिक्त ५ शुभागम तंत्र हैं, जो वैदिक हैं; वे हैं वसिष्ठ, सनक, शुक, सनन्दन और सनत्कुमार। ये पाँचों तंत्र समयाचार हैं। शक्ति-उपासना में मंत्र प्रायः बीजाक्षर युक्त हैं। उसमें यंत्र अथवा ज्यामितिक रचनाएँ हैं। देवी-आराधना में बाह्यपूजा तथा आन्तर पूजा दोनों हैं। शरीर के षट्चक्रों के द्वारा यौगिक क्रियाएँ भी इसमें बतलायी गयी हैं। भारत में कुल ५२ प्रधान शक्ति-पीठ हैं। जब भग-

वान् शिव अचेतावस्था में अपने कंधों पर सती के शव को लिये जा रहे थे, तब विष्णु ने उस शव को ५२ खण्डों में काट दिया। प्रत्येक खण्ड भारत के विभिन्न स्थान पर गिरा। इस प्रकार वे ५२ स्थान, जहाँ ५२ खण्ड गिरे, शक्ति-पीठ बन गये। कहीं-कहीं इन पीठों की संख्या १०८ बतायी गयी है। देवी भागवत के अनुसार गुजरात में कई शक्ति-पीठ हैं—द्वारावती, सोमेश्वर, प्रभास, सरस्वती और समुद्र-तीर। सरस्वती पुराण के अनुसार सिद्धराज ने सहस्रलिंग झील के चारों ओर १००० शिव-लिङ्गों की स्थापना की और १०८ शक्ति-पीठ बनवाये, जिनके मध्य में हरसिद्धा देवी हैं। सिरोही के समीप पिंडवारा में ६२५ ई० का एक शिलालेख है, जिसमें देवी क्षेमार्या की पूजा का उल्लेख है।

वर्तमान समय में गुजरात में तीन मुख्य शक्ति-पीठ हैं—एक आरासुर में अम्बिका पीठ; दूसरा उत्तर गुजरात में चुंवाल का बाला बहुचरा पीठ; तीसरा चांपानेर के समीप पानागढ़ का काली पीठ। गुजरात में देवी के अनेक प्रसिद्ध मंदिर भी हैं—कच्छ में आशापुरा; कोलगिरि में हरसिद्धि; हलवद में सुन्दरी; आबू पर्वत पर अर्बुदादेवी; नर्मदा-तट पर अनसूया का मंदिर है। ऐसा कहा जाता है कि अम्बा माता की मूर्ति आरासुर से सूरत सुरक्षा की दृष्टि से लायी गयी थी। गुजरात में अम्बिका, ललिता, बाला, तुलजा तथा श्रीकुल के दूसरे रूपों की पूजा होती है। गुजरात की काली भद्रकाली हैं और दक्षिणाचार की हैं। आरासुर की अम्बिका का मंदिर बहुत पुराना है। परम्परा बताती है कि कृष्ण का मुंडन-संस्कार यहीं हुआ था। नागर ब्राह्मण इस देवी के विशेष उपासक हैं। वे प्रतिवर्ष आरासुर को संघ ले जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि पावाचल की पहाड़ी—जहाँ काली देवी का मंदिर है—का आकार कालिका यंत्र की भाँति है। भागवत १०–४–१२ में कहा गया है कि वह योगमाया, जो कंस द्वारा धरती पर पटकी जाती समय लुप्त हो गयी थी, बहु अथवा बहुचरा देवी के नाम से प्रख्यात हुई। परंपरा के अनुसार आरासुर में देवी का बायाँ स्तन कटकर गिरा था, इसीलिए वह ५२ प्रमुख शक्ति-तीर्थों में से एक है।

कवि सोमेश्वर (११७९–१२६२ ई०)—एक नागर ब्राह्मण, सोलंकी-शासकों का पुरोहित तथा लब्धप्रतिष्ठ कवि—ने संस्कृत में एक बहुत सुन्दर

काव्य की रचना की है, जो 'सुरथोत्सव' कहलाता है और जो मार्कण्डेय पुराण की सप्तशती कथा पर आधृत है।

शैवों और शाक्तों का दर्शन समान है। दोनों अद्वैत मत को मानते हैं, उनकी तान्त्रिक तथा यौगिक क्रियाएँ भी एक-सी हैं और दोनों ३६ तत्त्वों को स्वीकार करते हैं। जहाँ शिव की पूजा है, वहाँ शक्ति की भी है; और जहाँ शक्ति की पूजा है, वहाँ शिव की। ईसा की दूसरी शताब्दी में पूर्व भारत के पश्चिमी भागों में शक्ति-पूजा बहुत प्रचलित थी। वलभी-शासन में अम्बा भवानी की उपासना जोरों पर थी। सन् ७५६ ई० में जब मुसलमानों ने वलभी पर आक्रमण किया था, वलभी के महाराज शिलादित्य की रानी अम्बाजी की यात्रा पर गयी थी।

वर्तमान काल में गुजरात की शक्ति-पूजा केवल दक्षिणाचार की है। गुजरात में शक्तिवाद का साम्प्रदायिक साहित्य बहुत नहीं पाया जाता। देवी-भक्तों ने मुख्यतः शक्ति की स्तुति में काव्यों की रचना की हैं। संभवतः जो साम्प्रदायिक साहित्य रचा भी गया होगा, वह या तो नष्ट हो गया है अथवा प्राप्त नहीं है।

गुजराती साहित्य में शाक्तभक्ति—नाथ भवान—वडनगर के एक ब्राह्मण—(१६८१ से १८०० ई०) जूनागढ़ की माता बाघेश्वरी के उपासक थे। ४१ कड़ियों में रचा हुआ उनका गरबा 'अम्बा आनन', जो अप्रकाशित है, प्रायः गाया जाता है। उन्होंने ही 'श्रीधरी गीता' तथा 'ब्रह्मगीता' का अनुवाद किया है। जीवन के पिछले दिनों में वे संन्यासी हो गये थे। शाक्त कवियों के सर्वोत्तम वल्लभ धोला (१६४० से १७५१ ई०) हैं। उन्होंने नियमित रूप से शिक्षा नहीं पायी थी, किन्तु कहा जाता है कि नवार्णमंत्र की कृपा से उन्हें सारी विद्या प्राप्त हो गयी। देवी की प्रशंसा में उन्होंने अनेक गरबों तथा गरबियों की रचना की है। दक्षिणाचार के अनुसार बराबर वाला बहुचरा की आराधना करते रहे और १११ वर्ष तक जिये। आधुनिक काल के किसी कवि ने ऐसी श्रेष्ठ कविता देवी की प्रशंसा में गुजराती में नहीं लिखी। हरगोवन ने सूरत की अम्बा माता की स्तुति में एक गरबा लिखा है। प्रेमानन्द ने 'देवीचरित्र' 'और मार्कण्डेय पुराण' की रचना की।

मीठु (१७३८–१७९१) एक मोढ ब्राह्मण थे। उन्होंने विन्ध्याटवी जाकर 'श्रीनाथ विद्या' प्राप्त की। उन्होंने संस्कृत तथा गुजराती में शाक्त-साहित्य के रूप में बहुत-से ग्रंथ तथा पद लिखे। शंकराचार्य की 'सौन्दर्य लहरी' का अनुवाद भी उन्होंने किया। यह १०३ पदों का समश्लोकी अनुवाद है—जिसे 'श्री लहरी' कहते हैं। आधुनिक काल में कवि बालाशङ्कर ने भी 'सौन्दर्य लहरी' का अनुवाद किया है। जनीबाई इन्हीं मीठु महाराज की शिष्या थीं। उन्होंने भी देवी पर कुछ पद लिखे हैं। मीठु महाराज द्वारा उन्हें श्री विद्या का रहस्य प्राप्त हुआ था।

दार्शनिक साहित्य

गुजराती का दार्शनिक साहित्य—कृष्ण द्वारका में निवास करते थे। शंकराचार्य के गुरु गोविन्दपाद का आश्रम नर्मदा-तट पर था। शंकराचार्य द्वारा स्थापित चार मठों में पश्चिमी भारत का मठ द्वारका में है और परम्परा बताती है कि सुरेश्वराचार्य इसके अधिपति थे। यहाँ के उब्बट जैसे विद्वानों द्वारा वेदों पर भाष्य लिखे गये हैं। नकुलिश पाशुपत सम्प्रदाय के संस्थापक तथा उनके अधिकतर अनुयायी यहीं हुए। परम्परा के अनुसार कपिल, गौतम और कणाद ने अपने-अपने सिद्धान्तों का विकास यहीं किया। भड़ोंच के गुजराती ब्राह्मण चक्रधर ने महाराष्ट्र में महानुभाव पन्थ की स्थापना की। वल्लभ के विद्वान् शिष्यों ने गुजरात को ही अपना घर बनाया। यहीं पर सहजानन्द स्वामी ने उद्धव-सम्प्रदाय की स्थापना की। दयानन्द स्वामी—जो अपने पूर्वाश्रम में मूलशंकर थे—ने अपने अंतिम समय में यहाँ आर्य-समाज की स्थापना की। इसीप्रकार बुद्ध तथा जैन धर्मों के प्रसिद्ध आचार्य, यहाँ तक कि कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य भी यहीं हुए।

नरसिंह मेहता के ज्ञान-वैराग्यवाले पद बहुत ऊँचे दार्शनिक पद हैं। इनसे भागवत के अद्वैत दर्शन का प्रभाव सिद्ध होता है और कालान्तर में जिस पर शंकराचार्य का प्रभाव यत्र-तत्र दिखाई देता है। दूसरे महत्त्वपूर्ण रचयिता महान् वेदान्ती कवि अखा हैं। उनके ग्रंथ 'अखेगीता', 'अनुभव बिन्दु' तथा 'पंचीकरण' से सिद्ध होता है कि शंकराचार्य के केवलाद्वैत सिद्धान्तों पर उनका

कितना अधिकार था। केवल अद्वैत के दूसरे प्रसिद्ध लेखक भक्त धीरो हैं। नीरांत और बापूसाहब गायकवाड़ धीरो के समकालीन थे, जिन्होंने निर्गुण भक्ति और ज्ञान पर लिखा है। प्रीतमदास, ज्ञानप्रकाश, छोटम, भाणसाहब, रविसाहब, दामोदर शर्मा, जीवनराम तथा भोजो ने वेदान्त, ज्ञान, त्याग तथा वैराग्य के विभिन्न स्वरूपों पर लिखा है। भीम, धनराज, रामभक्त, नरहरि, गोपाल, बुटिओ, गवरीबाई, मनोहर स्वामी, कबीर पंथियों एवं नाथपंथियों ने भी ज्ञान अथवा भक्ति-मिश्र ज्ञान पर कविताएँ लिखी हैं। रणछोड़जी दीवान शिवाद्वैतवादी हैं। वल्लभ धोडा तथा मीठु महाराज ने अपनी कविताओं में शाक्त-दर्शन का भी विवेचन किया है। दयाराम ने तो पुष्टिमार्गीय वल्लभ सम्प्रदाय का बहुत बड़ा साहित्य रचा है। सहजानन्द स्वामी तथा उनके ६ कवियों वाले दल ने उद्धव मत पर लिखा है। जैसा कि स्वयं सहजानन्द स्वामी का कहना है, अपने द्वारा स्थापित उद्धव मत की दार्शनिक पृष्ठ-भूमि पर उन लोगों ने रामानुज के विशिष्टाद्वैत दर्शन को स्वीकार किया है। जहाँ तक साम्प्रदायिक वैष्णव सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, वल्लभ सम्प्रदाय दयाराम द्वारा तथा उद्धव सम्प्रदाय स्वामी नारायण कवियों द्वारा बहुत अच्छी तरह वर्णित हुआ है। जैन विद्वानों ने जैन धर्म तथा दर्शन सम्बन्धी रचनाओं को जारी रखा है।

अध्याय ६

पन्द्रहवीं शताब्दी का साहित्य

नरसिंह मेहता

दीर्घकाल से नरसिंह मेहता गुजराती के आदि कवि माने जाते हैं। यद्यपि उनके कई पूर्ववर्ती कवियों—विशेषकर जैन साधुओं—की कृतियाँ प्रकाश में आयी हैं और काल की दृष्टि से नरसिंह मेहता चाहे आदि कवि न ठहरते हों, किन्तु श्रेष्ठता व परिमाण की दृष्टि से विचार करने पर वे असाधारण सिद्ध होते हैं। अतः अब भी हम उन्हें गुजराती का आदि कवि कह सकते हैं। उनकी कविता इतनी प्रचलित और प्रसिद्ध हो गयी है कि उनके काव्यों में गुजराती का प्राचीन रूप जनता के मुखों में ही लुप्त हो गया और जनता, प्रतिलिपि-कर्त्ताओं तथा प्रकाशकों ने उन स्थानों पर आधुनिक रूप रख दिये। जो पद अधिक प्रचलित नहीं हुए, उनमें अब भी उनकी पुरानी भाषा सुरक्षित है।

वे एक भक्त कवि थे। प्रभु पर अत्यधिक विश्वास रखने तथा पूर्ण आत्मसमर्पण करने के कारण उनके योगक्षेम का भार श्रीकृष्ण पर ही था, जैसी कि गीता में उन्होंने प्रतिज्ञा की है। कठिनाई के अनेक अवसरों पर उन्हें भगवान् की ओर से सहायता प्राप्त हुई। स्वभावतः आस्तिक जनों ने ऐसी अप्रत्याशित सहायताओं को दैवी चमत्कार के रूप में माना है। मुख्यतः ऐसी सहायताएँ पाँच हैं—१. हार, २. हुंडी, ३. मोसालुं, ४. विवाह, ५. श्राद्ध। स्वयं उन्हीं की कविताओं में हमें इन सहायताओं का संकेत मिलता है। परवर्ती कवियों—जैसे, विश्वनाथ जानी, प्रेमानन्द, रेवाशंकर, रघुनाथ, मोतीराम, नाभाजी—ने इन चमत्कारिक घटनाओं का उल्लेख किया है।

नरसिंह मेहता एक वडनगरा नागर ब्राह्मण (गृहस्थ) थे। उनके पिता का नाम कृष्णदास, पितामह का पुरुषोत्तम दास तथा माता का नाम दयाकोर

था। उनके भाई बंसीधर थे, जो मंगलजी अथवा जीवनराम के नाम से भी पुकारे जाते थे। उनके चाचा का नाम पर्वतदास था। उनका जन्म जूनागढ़ के निकट तलाजा ग्राम में हुआ था। उनका जन्म परंपरा से सन् १४१४ में माना जाता है। कुछ विद्वानों—विशेषकर डाक्टर डा० बा० ध्रुव तथा डाक्टर क० मा० मुन्शी—का मत है कि नरसिंह पर चैतन्य का बहुत प्रभाव था और गोविन्ददास के कूर्चा (कडछा) के आधार पर—जिसमें चैतन्य का सौराष्ट्र में आना कहा गया है—वे नरसिंह का जन्म-काल बाद में मानते हैं। किन्तु यह कूर्चा (कडछा) अप्रमाणित सिद्ध हो चुका है। अतः नरसिंह पर चैतन्य के प्रभाव की अपेक्षा यह मानना अधिक सरल है कि उन पर ब्रह्मवैवर्त, भविष्योत्तर, जयदेव एवं भागवत का प्रभाव था, जहाँ से उन्हें वह सारी सामग्री मिली, जिसे लोग चैतन्य से मिली समझते हैं। नरसिंह मेहता का सर्वाधिक मान्य काल सन् १४१४–१४८० है। उनके एक पद में कबीर का उल्लेख है, एक में मराठी भाषा का पुट है और कुछ में नामदेव-जैसे महाराष्ट्री संतों का प्रभाव भी दीखता है, किन्तु इन तथ्यों से उनके काल में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

उनके माता-पिता का बचपन में ही देहान्त हो गया था और वे अपने भाई के साथ रहते थे। यद्यपि ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही उनका विवाह पक्का हो गया था, तथापि उनके विचित्र लक्षणों को देखकर वह सम्बन्ध टूट गया। अन्ततः सन् १४३२ में उनका विवाह माणिकबाई के साथ हुआ। भाई के साथ रहकर चूँकि वे कुछ कमाते नहीं थे, परिणामस्वरूप प्रायः नित्य ही भैया-भाभी द्वारा उन पर डाँट पड़ती थी। एकबार इतनी अधिक फटकार पड़ी कि उनके हृदय को बड़ा आघात पहुँचा और वे गोपेश्वर मंदिर के शिवजी को तपस्या द्वारा प्रसन्न करने के उद्देश्य से घर से निकल गये। चैत्र शुक्ल ७ से उन्होंने उपवास आरंभ किया। ७ दिन बाद चैत्र शुक्ल १४ को उन्हें गोपेश्वर महादेव के दर्शन हुए। जब उनसे वर माँगने को कहा गया, तो उन्होंने वही वर माँगा, जो स्वयं शिवजी को प्रिय है अर्थात् कृष्ण-भक्ति और साथ में रास-लीला का दर्शन। ऐसा कहा जाता है कि शिवजी उन्हें द्वारका ले गये तथा रासक्रीड़ा दिखायी। नरसिंह हाथ में मशाल लिये बड़ी तन्मयता से देख रहे थे।

ऐसा कहा जाता है कि नरसिंह रासक्रीड़ा के देखने में इतना खो गये कि मशाल में तेल डालने की बजाय उस हाथ पर तेल डाल रहे थे, जिससे मशाल पकड़े थे। फल यह हुआ कि उनका हाथ जलने लगा, किन्तु इसका उन्हें पता तक न चला। इसी घटना के कारण वे दिवटिया भी कहलाने लगे। उस समय नरसिंह की भक्ति को राधा के सम्मुख प्रमाणित करने के लिए श्रीकृष्ण ने राधा की नथनी चुरा ली। नरसिंह को घर जाने की तथा कृष्णभक्ति एवं रासलीला के पद गाने की आज्ञा मिली। जब वे जूनागढ़ आये, तब कहा जाता है कि पहला पद उन्होंने राधा की नथनी-चोरी का ही गाया—"नागर नन्दजी ना लाल, रास रमतां रमतां मारी नथनी खोवाणी।"

उपर्युक्त घटना से नरसिंह के जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। वे अलग रहने लगे। उनके एक पुत्र शामल शाह और एक पुत्री कुँवर बाई थी। वे नित्य दामोदर कुण्ड पर स्थित दामोदर-मंदिर के भगवान् की पूजा करते थे। उसका रास्ता अछूतों की बस्ती ढेडवाड़ा से होकर था और जब वे अछूत उन्हें भजन सुनाने का आमंत्रण देते थे, तब बड़ी प्रसन्नता से वे जाकर भजन-कीर्तन सुनाते थे, कभी-कभी तो सारी रात बीत जाती थी। कट्टर शैव नागर लोग उनके इस व्यवहार को सहन न कर सके, और उन्होंने अनेक प्रकार से उन्हें सताने का प्रयत्न किया।

एक बार कुछ शरारती नागर बालकों ने कुछ तीर्थयात्रियों से झूठमूठ कह दिया कि यहाँ जूनागढ़ में नरसिंह मेहता आपका रुपया जमा कर लेगा और द्वारका के प्रसिद्ध सेठ के नाम हुंडी लिख देगा, जिससे वहाँ आपको रुपया मिल जायगा। यात्रियों ने बात ठीक मानकर नरसिंह से रुपया जमा करने की प्रार्थना की। उनके बहुत कहने पर नरसिंह ने उनका ७०० रुपया जमा कर लिया और 'शामलशाह'—अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण—के नाम हुंडी लिख दी। कहा जाता है कि अपने भक्त की लाज रखने के लिए श्रीकृष्ण शामलशाह सेठ के रूप में आये और हुंडी का रुपया चुकाया। यह घटना सन् १४४३ में घटी बतायी जाती है। इसी प्रकार उनके पिता के श्राद्ध के समय भी उन्हें दैवी सहायता प्राप्त हुई थी।

उनकी पुत्री कुँवरबाई का सीमन्त (गोदभरी) उत्सव था। ऐसे अवसर पर जाति-प्रथा के अनुसार पुत्री को, दामाद को तथा उनके अन्य संबंधियों को वधू के पिता की ओर से उपहार आते हैं, जिसे मामेरुँ कहते हैं। इधर नरसिंह के पास भजन-कीर्तन के अतिरिक्त और क्या था ? किन्तु यहाँ भी उनके इष्ट-देव ने सहायता की और नरसिंह ने ऐसे-ऐसे बहुमूल्य उपहार दिये कि सब दंग रह गये। स्वयं नरसिंह ने इस घटना का वर्णन किया है। उनके पुत्र शामलशाह की मँगनी के अवसर पर भी उन्हें अप्रत्याशित सहायता मिली थी। किन्तु, जैसी परम्परा कहती है, सबसे महान् चमत्कार जूनागढ़ के राजा मांडलिक के दरबार में हुआ था। यह घटना नरसिंह के 'हारसमेना पदों' में वर्णित है। यद्यपि कुछ विद्वान् इन पदों का रचयिता प्रेमानंद को मानते हैं, तथापि अधिकांश विद्वानों का मत यही है कि तथ्य बताने वाले मुख्य पद नरसिंह के ही हैं और कुछ बाद के कवियों द्वारा जोड़े हुए हैं। यह घटना सन् १४५६ में घटी और माना जाता है कि मार्गशीर्ष शुक्ल ७ को भरे दरबार में श्रीकृष्ण ने नरसिंह को हार पहनाकर अपना सर्वश्रेष्ठ भक्त सिद्ध कर दिया।

नरसिंह का जीवन बड़ी निर्धनता में बीता, पर उन्हें पूर्ण संतोष था। उनका सारा जीवन कष्टों में बीता। आज खाकर कल के भोजन का ठिकाना नहीं था। अपने जीवन-काल में ही उन्हें अपनी पत्नी और पुत्र का वियोग सहन करना पड़ा। पुत्र की मृत्यु पर अपनी पत्नी और पुत्री को धीरज बँधाने के लिए ही उन्होंने "सुख-दुःख मन माँ न आणिए" पद की रचना की, ऐसा समझा जाता है। उनकी जातिवाले नागर ब्राह्मण ही उन्हें बराबर सताया करते थे। उनकी भक्ति को वे ढोंग कहते थे और अन्त में भक्ति को सच्ची प्रमाणित करने के लिए वे उन्हें मांडलिक की राजसभा में खींच ले गये। किन्तु नरसिंह किसी अपमान पर ध्यान न देते हुए दृढ़तापूर्वक खड़े आर्जव, आर्द्रता, प्रवणता, सरलता भावों से भरे कृष्ण भक्ति के भजन गाते रहे और उन्होंने अपने योगक्षेम का सारा भार अपने इष्ट श्रीकृष्ण के ऊपर डाल दिया। परिणामतः सभी संकट के अवसरों पर उन्हें सहायता मिली और उनकी कीर्ति पर आँच नहीं आने पायी। एक धारणा के अनुसार उन्होंने अपने जीवन का

अंतिम भाग मांगरोल में व्यतीत किया। अपने जीवन द्वारा उन्होंने गीता का यह श्लोक सिद्ध करके दिखा दिया कि—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

उनकी कृतियाँ—नरसिंह ने अपने कुछ पदों में अपने जीवन की कुछ बातों को विस्तार से वर्णन किया है। पदों के अतिरिक्त उनकी अन्य कृतियाँ हैं—सुदामाचरित्र, गोविन्दगमन, दानलीला, चातुरिओ, सुरत-संग्राम, रास सहस्रपदी, शृंगारमाला, वसन्तनां पदो, हिंडोलानां पदो, कृष्णजन्मनां पदो और इन सबसे श्रेष्ठ भक्ति, ज्ञान, वैराग्य के पद। नरसिंह पर जयदेव का बहुत अधिक प्रभाव था, जिसे उन्होंने स्वीकार किया है। यद्यपि उनके कई पदों में खुला शृंगार है, तथापि उनकी भक्ति इतनी उच्च कोटि की थी कि उनमें कुत्सित वासना की गंध नहीं है। भक्ति की प्रगाढ़ता, साहित्य की प्रचुरता, काव्यगत विशिष्टता तथा साधुता—इन सभी दृष्टियों से अन्य कोई कवि उनके समकक्ष भी नहीं पहुँच सका, आगे बढ़ने की बात तो बहुत दूर है। दयाराम को नरसिंह का अवतार माना जाता है। जिस नागर समाज ने उन्हें सताया था, उसीने बाद में नरसिंह को अपना रत्न माना। भक्तों ने उन्हें अपना नेता माना और गुजरात उन्हें आदि कवि के रूप में पाकर गौरवान्वित हुआ। द्वारका में उनकी मूर्ति स्थापित हुई है। उनका नाम अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति के साथ लिया जाता है।

आत्मकथा सम्बन्धी पदों में उन्होंने अपनी निर्बलता और नम्रता का वर्णन किया है तथा अन्य श्रेष्ठ भागवत संतों की भाँति वे भी कृष्ण की कभी स्तुति और कभी उपालंभ करते हैं; कृष्ण के सम्मुख कभी रोते हैं, कभी हँसते हैं और कभी गाते हैं, कभी नाचते हैं। बड़ी सच्चाई और सादगी से उन्होंने अपना सब कुछ श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया था और उनकी प्रगाढ़ भक्ति में वे खो गये (देखिए, भागवत ११–३–३२)। उन्होंने अनेक पदों में श्रीकृष्ण-लीला का गान किया है। 'गोविन्दगमन', 'सुरत-संग्राम' और 'सुदामाचरित्र' आख्यानों के अंतर्गत आ सकते हैं। यद्यपि आख्यान के सभी

विकसित लक्षण उनमें नहीं पाये जाते, किन्तु बीजरूप विद्यमान हैं। उन्होंने अत्यन्त पवित्र भाव से प्रेमलक्षणा भक्ति का गान किया है। उनके कई पद बड़े गीतात्मक हैं और गरबी की भाँति गाये जा सकते हैं। रासलीला तथा कृष्ण की अन्य लीलाओं का वर्णन उन्होंने ऐसे विश्वास के साथ किया है, मानो उन्होंने प्रत्यक्ष उन लीलाओं का साक्षात्कार किया हो। उनका 'वसन्त विलास' फागु काव्य माना जा सकता है। उसके एक पद में १२ महीनों का भी वर्णन है, जिसे एक छोटा बारहमासी कह सकते हैं। यद्यपि 'रास सहस्रपदी' से एक हजार पद होने की ध्वनि निकलती है, किन्तु उसमें बहुत कम पद हैं। गोविन्द-गमन, सुरत-संग्राम और दानलीला के संबंध में विद्वानों को संदेह है कि ये सचमुच नरसिंह की कृतियाँ हैं अथवा नहीं।

उनके ज्ञान-वैराग्य के पद यद्यपि संख्या में थोड़े हैं, तथापि बहुत प्रसिद्ध हैं। उनका कथन भव्य है। वे प्रायः प्रातःकाल गाये जाते हैं, इसलिए उन्हें प्रभाती कहा जाता है। उनमें से अधिकांश का छन्द झूलणाबन्ध है। जैसा कि भागवत में वर्णित है, सच्चे भक्त मुक्ति की भी परवाह नहीं करते, चाहे वह सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, सारूप्य अथवा एकत्व किसी भी प्रकार की हो—(भागवत, ३–२९–१३)। वे केवल परा भक्ति की कामना करते हैं और वह भी साध्य रूप में, साधन रूप में नहीं। यह भाव नरसिंह मेहता द्वारा प्रायः व्यक्त किया गया है। इन पदों की भाषा और भाव अत्यन्त प्रेरणा-दायी हैं तथा ये पद उनकी परिपक्व अवस्था के हैं—ऐसा माना जाता है। नरसिंह का काव्य मनोरम है; भाषा गीतमय है; स्वयं स्फुरित रागों में विविधता है।

श्रीकृष्ण द्वारा नरसिंह के पुष्पमाला पहनाये जाने का वर्णन बड़ा सजीव है। साधुगण उन्हें कटाक्ष करके कहते हैं "रहे रहे घेला नागरा आवडो शानो अहंकार"—(ओ पगले नागर! नम्र बन। तुझे इतना आत्म-विश्वास और अभिमान क्यों है?) "वटल्यो रे नागर नरसैयो बोर्‌युं आहीरनुं खाधुं रे"—(ओ नागर नरसैया! तू भ्रष्ट हो गया, क्योंकि तूने अहीरों का छुआ भोजन खा लिया।) कृष्ण-स्तुति के लिए केदार राग बहुत उपयुक्त है, किन्तु नरसिंह ने बहुत थोड़े पैसों में उसे धरणीधर मेहता के पास गिरवी रख दिया

६

था। बाद में कृष्ण ने उसे छुड़ाया। तब नरसिंह भगवान् को पुकारता है—"उठो जदूनाथ देवाधिदेवा"—(हे देवाधिदेव यदुनाथ उठिए।) "कहेशे नागरो कोहनुं नाम गातो हतो"—(अन्यथा नागर मुझ पर कटाक्ष करेंगे कि तू इतने दिनों तक किसका भजन करता था।) "हार काजे शूं बिलम्ब करवो घणो ?"—(साधारण से हार के लिए आप इतनी देर क्यों कर रहे हैं ?) "राख्य हुं विप्रने रंक जाणी"—(मुझे एक निर्धन ब्राह्मण जानकर मेरी रक्षा कीजिए।) "कमाड कडकदीयां गडगडीयां रे मांडलीकनां मंदीर"—(मांडलिक के भवन के कपाट खड़खड़ाने-भड़भड़ाने लगे।)

अविनाशी प्रभु आये और उन्हें हार पहनाया। श्री रणछोड़ दीनानाथ ने नरसिंह का गाढ़ आलिंगन किया, जिसके आनंद की सीमा न थी।

रासलीला देखते समय नरसिंह भगवान् के दिवेटिया बने थे, जैसा कि उनकी इस पंक्ति से स्पष्ट है—"दिवेटियो रे दिवेटियो, नरसैयो हरिनो दिवेटियो।" उनके कुछ पदों में ये भाव वर्णित हैं—

१. शामलियानी संगे रमतां मान तजीने मलिए रे।
   =साँवलिया के साथ क्रीड़ा करते समय समस्त अभिमान त्याग देना चाहिए।
२. मारो नाथ न बोले बोल, अबोलां मरिए रे।
   =मेरे नाथ मुझसे बोल नहीं रहे हैं, उनके बिना बोले मेरी तो मृत्यु ही हो जायगी।
३. कहाँ जाउं रे वेरण रात मली।
   =मैं अब कहाँ जाऊँ, बैरन रात आ गयी है।
४. मंदिर मांहे मोहन महाले फूली अंगे न माउं रे।
   =मोहन मेरे घर में आनन्द कर रहा है, मैं फूली अंग नहीं समाती।
५. केसर भीना कहानजी, कसुंबे भीनी नार।
   =कान्हा केशर के रंग में भीगे हैं और गोपी कुसुंबी रंग में।
६. लटको तारो लाख सवानो, मरकलडानूँ मूल नहीं।
   =तेरा लटका सवा लाख का है और तेरी मुसकान तो अमूल्य है।
७. नरसैंया नो स्वामी भले मलियो, नारपणुं भले पाम्यां रे।

—नरसैया के प्रभु को पाकर हम बहुत प्रसन्न हैं, इसके लिए स्त्री रूप धारण करने में हमें कोई आपत्ति नहीं।

८. तुं क्यां नो दाणी रे धगड़मल्ल, तूँ क्यां नो दाणी रे।

—ए धगड़मल्ल! तुझे गोपियों से दान लेने को किसने नियुक्त किया?

९. बांसलडी वेरण मारी रे, हाँरे वश कीधां रे वैकुंठनाथ रे नार धुतारी।

—ऐ बाँसुरी! तू मेरी बैरिन है। तू बड़ी धूर्त है। तूने बैकुंठनाथ को वश में कर लिया है।

१०. सखी आजनी घड़ी रलीयामाणी, मारो बालाजी आव्यो वधा मणी।

—सखी, आज की घड़ी शुभ है, क्योंकि मेरे बालाजी के आने का शुभ समाचार मिला है।

११. नहीं मेलुं नन्दनालाल, छेडलो नहिं मेलुं।

—ओ नन्दलाल, तुम्हारा पकड़ा हुआ दुपट्टा मैं नहीं छोड़ूँगी।

१२. जशोदा तारा कानुडाने साद करीने वार रे।

—यशोदा! अपने कन्हैया को डाटो और ऊधम करने से रोको।

१३. ओ पेलो चाँदलियो आइ मुने रमवानो आपो।

—ऐ माँ! वह चाँद मुझे खेलने के लिए दे।

१४. जल कमल छांडी जाने बाला स्वामी हमारो जागशे।
जागशे तुने मारशे, मुने बालहत्या लागशे॥

—ए बालक! तू जल और इन कमलों को छोड़कर भाग जा, नहीं तो हमारा स्वामी कालिया नाग जागेगा और तुझे मार डालेगा तो हमें बालहत्या का पाप लगेगा।

१५. हरिना जन तो मुक्ति न मागे, मांगे जन्मोजन्म अवतार रे।

—हरि का भक्त तो मुक्ति नहीं मागता, वह तो बार-बार जन्म माँगता है।

१६. द्वारकाना वासी रे, अवसरे आवजो रे, राणी रुक्मिणी केरा कंथ।

—हे द्वारकावासी! हे रुक्मिणी के पति! हमारी रक्षा के लिए उचित अवसर पर आइए।

१७. एवा रे, अमो एवा रे एवा, तमो कहो छो वली तेवा रे।

—हम तो स्वभाव से ही वैसी हैं, यदि आप कटाक्ष करते हैं, तो हम स्वीकार करती हैं कि हम वैसी ही हैं, जैसा आप कहते हैं।

१८. सन्तो अमे बेपारिया श्री रामनाम ना।
—ऐ सन्तो ! हम तो राम-नाम के व्यापारी हैं।

१९. जागने जादवा कृष्ण गोवालिया, तुझ बिन धेणमा कुण जाशे।
—ऐ यादव कृष्ण! गोपाल! उठो, तुम्हारे बिना गोशाला में कौन जायगा ?

२०. प्रेम रस पाने तु मोरना पीछधर तत्त्वनु टुंपण तुच्छ लागे।
—ओ मोरपंखीधारी कृष्ण ! तुम हमें प्रेमरस पिलाओ, तत्त्व की व्याख्या हमें तुच्छ लगती है।

२१. ध्यान धर ध्यान धर नन्दना कुँवरनु जथेकी अखिल आनन्द पाये।
—नन्द के लाल का सदा ध्यान करो, इससे पूर्ण आनन्द की प्राप्ति होगी।

२२. जे गमे जगद्गुरु देव जगदीश ने ते तणो खरखरो फोक करवो।
—सृष्टिनायक जगदीश को जो रुचे, उसके लिए शोक मत करो।

२३. चेत रे चेत दिन चार छे लाभना लीबु लहेकावतां राज लेबु।
—ऐ प्राणी ! चेत, चेत, कमाई करने के बस चार ही दिन हैं। तुझे इतने समय में राज्य प्राप्त करना है, जितने समय में नींबू उछाल कर लोका जाता है।

२४. निरखने गगनमां कोण घूमी रह्यो, तेज तु तेज तु शब्द बोले।
—देख, आकाश (हृदय का दहराकाश) में सर्वात्मा प्रकट होकर कहता है, तत्त्वमसि-तत्त्वमसि।

२५. अखिल ब्रह्माण्डमां एक तु श्रीहरि जूजवे रूपे अनन्त भासे।
—इस सम्पूर्ण सृष्टि में एकमात्र हरि ही है, जो अनन्त रूपों में दिखाई दे रहा है, जैसे भिन्न-भिन्न नाम-रूपवाले आभूषणों में सोना एक ही रहता है।

२६. जागी ने जोउं तो जगत दीसे नहि ऊंघ मां अटपटा भोग भासे।
चित्त-चैतन्य-विलास तद्रूप छे ब्रह्म लटकां करे ब्रह्म पासे॥
—जब मैं जगकर देखता हूँ तो अनेकता नहीं दीखती। ये सब अटपटे रूप केवल स्वप्न में ही आते हैं। यह सब चित्त की चेतनता का

विलास है। अन्त में केवल वह तत् अथवा ब्रह्म ही है। प्रकट में ब्रह्म ब्रह्म के साथ क्रीड़ा कर रहा है।

२७. जीव ने शीव तो आप इच्छाए थया।

—वह परम आत्मा अपनी इच्छा से पृथक्-पृथक् आत्मा हुआ है।

२८. ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चीन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व काची।
भणे नरसैंयो के तत्त्वदर्शन बिना रत्नचिन्तामणि जन्म खोयो।।

—जब तक आत्मा के तत्त्व को नहीं पहचाना, तब तक सारी साधना कच्ची है—ऐसा मानना चाहिए। नरसैया कहता है कि उस तत्त्व का दर्शन यदि नहीं किया तो चिन्तामणि रत्न के समान मनुष्य जन्म को व्यर्थ खो दिया।

नरसिंह के शृंगारिक पद भागवत के इस श्लोक की व्याख्या करते हैं—

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते।।

भागवत, १०-२२-२६

जिनका मन पूर्णरूप से श्रीकृष्ण में लग गया है, उनके लिए काम काम नहीं रह जाता, क्योंकि भूँजा हुआ अन्न बीज बनकर उग नहीं सकता।

उपर्युक्त ज्ञान के कुछ पदों में उपनिषद्-दर्शन की गंध और आत्मानुभव की प्रतिध्वनि प्रतीत होती है। श्री वल्लभाचार्य और महाप्रभु चैतन्य का काल नरसिंह के बाद का है। नरसिंह के दर्शन में हम भागवत का अद्वैत और ज्ञानोत्तर भक्तों की अहैतुकी भक्ति देखते हैं। ये नवधा भक्ति से भी आगे जाकर पराभक्ति को प्राप्त करते हैं। इनके पदों में यत्र-तत्र बिखरा दर्शन वेदान्त-दर्शन है, जिस पर आद्य शंकराचार्य की छाया स्पष्ट है और जो उनके बाद आनेवाले आचार्य वल्लभ के दर्शन के भी अनुकूल है। नरसिंह का कहना है कि पारमार्थिक अवस्था में मायानिवृत्ति के कारण जगत् की बाधा है। "जागीने जोउं तो जगत दीसे नाहीं" में नरसिंह कहते हैं कि ज्ञान के पश्चात् जगत् लुप्त हो जाता है और तब उनकी दृष्टि में जगत् अथवा प्रपंच में कोई अन्तर नहीं रह जाता, जो सत्य और अहन्ता-ममतात्मक-संसार है, किन्तु जो

वल्लभाचार्य की दृष्टि से असत्य है। "ऊँघ मां अटपटा भोग भासे" और "कनक-कुंडल विशे भेद नोये" में नरसिंह ऐसा नहीं कहते कि यह केवल अविकृत परिणामवाद है। इन पंक्तियों से विवर्तवाद का तात्पर्य निकाल लेना भी संभव है। ज्ञान-प्राप्ति के बाद भी भक्ति की महत्ता स्वीकार करना भागवत के अनुसार ही है; यद्यपि नरसिंह ऐसा भी कहते हैं कि बिना तत्त्व-दर्शन के सभी साधनाएँ झूठी और व्यर्थ हैं। जैसा कि श्रीधर ने दिखाया है, शंकर का मायावाद भी भागवत में है। इसके लिए भागवत २–९–३२ से ३५; १०–७३–११; ६–१२–२६; १०–८४–२४, २५ और १२–४–२८ आदि स्थल देखे जा सकते हैं। "चित्त चैतन्य विलास तद्रूप छे" की व्याख्या इस रूप में की जा सकती है कि यह समस्त संसार-व्यापार चित् में चैतन्य के बिंब का व्यक्तीकरण है और अन्ततोगत्वा तद्रूप अर्थात् ब्रह्मरूप ही है, एक ब्रह्म दूसरे ब्रह्म के साथ खेलता है। "ब्रह्म लटकां करे ब्रह्म पासे।" दूसरे शब्दों में नरसिंह गौडपादाचार्य का 'दृष्टि-सृष्टिवाद' ही प्रस्तुत करते हैं।

पद्मनाभ

पद्मनाभ बिसनगरा नागर थे और झालोर के चौहान राजा अक्षयराज के राजकवि थे, जो कान्हड़दे महाराज की पाँचवीं पीढ़ी में हुए थे। इन्हीं अक्षयराज की प्रेरणा से पद्मनाभ ने, जिनका उपनाम 'पुण्यविवेक' था, 'कान्हड़दे प्रबन्ध' नाम का एक उत्तम ऐतिहासिक प्रबंध लिखकर मार्गशीर्ष शुक्ल १५, सं० १५१२ सोमवार को पूर्ण किया। इसमें उन्होंने सोनगिरा-चौहानों की वीरता का गान किया है। इस कवि के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में बहुत ही कम जानकारी है।

मुनि जिनविजयी ने पद्मनाभ को महाकवि उचित ही कहा है। कवि ने कान्हड़दे की कीर्ति का वर्णन किया है, जिन्होंने अलाउद्दीन खिलजी के विरुद्ध युद्ध छेड़ा और अन्त में देश-धर्म के ऊपर अपना बलिदान कर दिया। इस श्रेष्ठ काव्य में वर्णित अधिकांश ऐतिहासिक तथ्य सत्य हैं, जिन्हें अन्य प्रामाणिक सूत्रों का भी समर्थन प्राप्त है। पुरानी गुजराती अथवा राजस्थानी का जो यह सर्वोत्तम काव्य माना गया है, वह उचित ही है। डाक्टर क० मा० मुन्शी ने

तो इसे सिद्धराज के गुजरात का अत्यन्त मोहक गीत कहा है। काव्य केवल काव्यगत गुणों के कारण ही उत्तम नहीं है, वरन् इसका महत्त्व भाषा-संबंधी अध्ययन की दृष्टि से भी है, क्योंकि इसमें १५वीं शताब्दी की शुद्ध भाषा का रूप विद्यमान है। काव्य में तत्कालीन इतिहास, भूगोल और लोगों के सामाजिक जीवन का बड़ा सजीव वर्णन है। कृति से कवि की देशभक्ति, धर्म-प्रेम और नीति के प्रति आस्था का पूर्ण परिचय मिलता है। चरित्र-चित्रण अत्यन्त कला-पूर्ण, प्रभावशाली और उत्तम है। शैली सबल और विभिन्न भावों के अनुकूल है। वर्णन रुचिकर हैं; बहुत कम-अधिक या उबानेवाले नहीं हैं। कवि ने अपनी क्षमता पर विश्वास व्यक्त किया है और यह कृति उसकी परिपक्व अवस्था की प्रतीत होती है। उसने और भी रचनाएँ की होंगी, किन्तु दुर्भाग्य से वे प्राप्त नहीं हैं।

इस कृति की कथावस्तु ऐतिहासिक है। झालोर के शासक सोनगिरा चौहान महाराज कान्हड़दे ने अलाउद्दीन खिलजी से युद्ध किया था। कान्हड़दे का पुत्र वीरमदे था। गुजरात के शासक ने उसके मंत्री माधव के साथ दुर्व्यवहार किया, जिससे क्षुब्ध होकर उसने देशद्रोह का निंदनीय कर्म किया। उसने अलाउद्दीन को गुजरात पर चढ़ाई करने का निमंत्रण दिया। अलाउद्दीन की सेना ने जाने के लिए कान्हड़दे से मार्ग माँगा, किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इस पर सेना ने पाटण को नष्ट कर डाला। पाटण के महाराज को भागना पड़ा। फिर मुसलमानी सेना ने सोमनाथ मंदिर पर चढ़ाई की। राजपूत बड़ी वीरता से लड़े, किन्तु अन्त में पराजित हो गये। शिवलिङ्ग तोड़ डाला गया और एक गाड़ी में वह दिल्ली ले जाया गया। पद्मनाभ कहते हैं —

"आगइ रुद्र घणइ कोपानलि दैत्य सवे तइं बाल्या।
तइं पृथ्वी मांहि पुण्य वरताव्यां देवलोकि भय राल्या।
तइं बालिउ काम त्रिपुर विध्वंसिउ पवनवेगि जिम तूल।
पद्म नाभ पूछइ सोमइया केयूं कर्यउं त्रिसूल॥"

हे रुद्र! आपने अपनी क्रोधाग्नि से दैत्यों को जला डाला; आपने धरती पर पुण्य स्थापित किया और देवताओं का भय दूर किया; आपने कामदेव और

त्रिपुर को उसी तरह भस्म कर दिया, जैसे पवन रुई उड़ा ले जाता है। पद्म-नाभ पूछता है, 'हे सोमैया ! इस समय आपके त्रिशूल की शक्ति कहाँ चली गयी ?'

सोमनाथ-विजय के पश्चात् अलाउद्दीन के सेनापति उलूघखाँ ने अभिमान में आकर कान्हड़दे पर आक्रमण किया, जिन्होंने मार्ग देने से अस्वीकार कर दिया था। देवी आशापुरी की कृपा से कान्हड़दे ने उलूघखाँ को परास्त किया और वह शिवलिंग वापस लौटा लिया, जो गाड़ी में दिल्ली ले जाया जा रहा था। शिवलिङ्ग को पाँच खंडों में विभक्त करके कान्हड़दे ने अपने बनवाये हुए पाँच विभिन्न मंदिरों में स्थापित कराया। एक खंड सौराष्ट्र में, दूसरा झालोर में तथा तीसरा स्वयं कान्हड़दे की राजवाटिका में स्थापित किया गया। "कान्हड़दे प्रबंध" चार भागों में है और प्रथम भाग यहीं समाप्त होता है।

जब अलाउद्दीन को कान्हड़दे द्वारा अपनी सेना के पराजित होने का समाचार मिला, तो उसने युद्ध का निश्चय किया। कान्हड़दे से युद्ध करने के लिए चली हुई मुसलमानी सेना पहले शमीआना पहुँची, जहाँ कान्हड़दे का भतीजा सांतल था। सांतल ने बड़ी वीरता से युद्ध किया। सांतल ने आशापुरी देवी की स्तुति की। देवी प्रसन्न हुई, किन्तु उन्होंने बड़ा विचित्र दृश्य सांतल को दिखाया। सांतल को ऐसा लगा, जैसे वह सोये हुए सुलतान के तंबू में ले जाया गया है, जहाँ उसने सोये हुए सुलतान की जगह तीन नेत्र और पाँच मुखवाली आकृति देखी; उसने विस्मय के साथ जटाएँ, रुंडमाला, कमण्डलु, व्याघ्रचर्म, त्रिशूल आदि भी देखे और सुलतान में रुद्र का स्वरूप देखा। सांतल प्रणाम करके लौट आया। वह बड़ी वीरता से लड़ा। उसकी रानियाँ अग्नि में प्रवेश कर गयीं और वह स्वयं अत्यन्त घायल होकर रणभूमि में गिर पड़ा और वीरगति को प्राप्त हुआ। सुलतान ने उसकी वीरता को सराहा और उसके रक्त का तिलक अपने माथे पर लगाकर उसका सम्मान किया। ग्रंथ का द्वितीय भाग यहाँ समाप्त होता है।

तृतीय भाग में झालोर पर सुलतान के आक्रमण का वर्णन है। सुलतान की एक पुत्री थी, जिसका नाम था पीरोजा। उसे शकुन तथा ज्योतिष का कुछ

ज्ञान था, साथ ही उसे अपने पूर्व जन्मों का पता था। उसने कान्हड़दे के पुत्र वीरमदे के साथ विवाह करना चाहा। किन्तु प्रार्थना करने पर भी वीरमदे ने उसे स्वीकार नहीं किया। इस पर क्रोधित पादशाह ने झालोर पर बड़ा जोरदार आक्रमण किया। आशापुरी देवी की कृपा से कान्हड़दे ने मुसलमानी डेरों पर अग्नि की वर्षा कर दी और पादशाह की एक लड़की को उसके पति सहित जीवित बन्दी बना लिया। किन्तु पादशाह की पुत्री पीरोजा ने भविष्यवाणी की कि वह अपनी बहन और बहनोई को छुड़ा लायेगी; वीरमदे संवत् १३६८ में युद्ध में मारा जायगा; उसकी अन्त्येष्टि क्रिया करके वह भी यमुना में कूदकर प्राणत्याग करेगी; दूसरे जन्म में वह वीरमदे के साथ विवाह करेगी; झालोर का किला सात वर्षों तक जीता नहीं जा सकेगा; इतने समय के बाद किला टूटेगा; कान्हड़दे की मृत्यु के बाद सुलतान भी ८ महीने के भीतर ही मर जायगा।

कान्हड़दे कई वर्षों तक वीरता के साथ लड़ता रहा, किन्तु वीका सेजवाल की धोखेबाजी के कारण सुलतान की सेना एक गुप्त मार्ग से किले में प्रवेश कर गयी। सब मिलाकर १५८४ स्त्रियों ने जौहर किया। घनघोर युद्ध के बाद कान्हड़दे वैशाख शुक्ल ५ सं० १३६८ को युद्ध में मारा गया। उसके बाद वीरमदे ने ३।। दिनों तक राज्य किया। भीषण युद्ध करते हुए वीरमदे भी मारा गया। उसका सिर दिल्ली पीरोजा के पास पहुँचाया गया, किन्तु पीरोजा को देखते ही सिर दूसरी ओर घूम गया, जिससे वह बहुत दुखी हुई। उस सिर की अन्त्येष्टि क्रिया करके पीरोजा यमुना में कूद पड़ी। उसके ८ महीने बाद सुलतान की भी मृत्यु हो गयी, जैसी कि पीरोजा ने भविष्यवाणी की थी। इसी कान्हड़दे के वंश की ५वीं पीढ़ी में राजा अक्षयराज हुआ, जो कवि पद्मनाभ का आश्रयदाता था। यहाँ प्रबंध समाप्त होता है।

गुजराती साहित्य में पद्मनाभ का 'कान्हड़दे प्रबन्ध' और 'लावण्यसमय सूरि' का 'विमल प्रबंध'—ये दोनों ऐतिहासिक प्रबंध हैं। 'कान्हड़दे प्रबंध' में वीररस की प्रधानता है, साथ ही अन्य रसों का पुट भी है, विशेष कर विप्रलम्भ शृंगार और करुण का। कान्हड़दे, वीरमदे, सांतल, बतड, अलाउद्दीन, उलूघखाँ, पीरोजा, वीका सेजवाल आदि पात्रों का चरित्र-चित्रण बड़ी कुश-

लता और कलात्मक ढंग से किया गया है। अवसर के अनुकूल शैली में भी परिवर्तन होता गया है। मारवाड़, झालोर और भिन्नमाल का बड़े विस्तार में वर्णन किया गया। विवाह और दाह-संस्कार की रीतियों का भी अच्छा वर्णन है। महाराज कान्हड़दे के दैनिक शाकाहार की सूची बड़ी रोचक है। मुसलमानी सेना ने कैसे गाँवों को नष्ट किया, कैसे लोगों को बन्दी बनाया, और कैसे मंदिरों को तोड़कर लोगों को पशुओं की कच्ची खाल से बाँधा—इन सबका बड़ा सटीक चित्रण कवि ने किया है।

कवि ने मुख्यतः चौपाई बन्ध और पवाडुछन्द का उपयोग किया है। भाषा में अपभ्रंश के अवशिष्ट रूपों का कहीं पता नहीं है; उसके स्थान पर १५वीं शताब्दी की पुरानी गुजराती का रूप अत्यन्त स्पष्ट है।

वीरसिंह

कवि वीरसिंह का एक हजार पंक्तियों का केवल एक ही ग्रंथ है 'उषा-हरण'। ऐसा लगता है कि नरसिंह की वृद्धावस्था के समय वीरसिंह हुआ था। उसने भागवत और हरिवंश से कथा-सामग्री ली है और काव्य में वीर तथा श्रृंगार रसों का वर्णन किया है। 'उषाहरण', 'कान्हड़दे प्रबंध' से बहुत कुछ मिलता है; संभवतः कवि ने उक्त प्रबंध को अवश्य पढ़ा होगा। 'उषा-हरण' में छंदों की विविधता है। उषाहरण नाम से जितने काव्य अब तक प्राप्य हैं, उनमें सबसे प्राचीन यही है। इधर-उधर अनुप्रासों से युक्त इसमें 'गद्य कतार' ढंग के कुछ गद्य-स्थल भी हैं। इस ग्रंथ का समय सं० १५२० या १५२५ माना जाता है। कवि पर चारणी भाषा अथवा जैन धर्म का कोई प्रभाव नहीं दीखता। पांडुलिपि पाटण से प्राप्त होने के कारण अनुमान किया जाता है कि कवि पाटण-निवासी होगा। सब मिलाकर कृति में काव्य-गुण है।

कारमत मंत्री

कारमत मंत्री 'सीताहरण' का रचयिता है, जिसमें ४९५ कड़ियाँ हैं और जिसकी रचना सं० १५२६ में हुई थी। 'कान्हड़दे प्रबन्ध' की कुछ पंक्तियों से 'सीताहरण' की पंक्तियाँ मिलती हैं, इस बात से सोचा जाता है कि कारमत

मंत्री झालोर के ठाकोर का मंत्री अथवा कारभारी रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि रचनाकार वैश्य था। ग्रंथ में कोई असाधारण विशेषता नहीं है।

भालण

भालण के समय में मतभेद है। बहुत वाद-विवाद के पश्चात् श्री रामलाल मोदी ने उसका काल १५वीं शताब्दी माना है। श्री के० का० शास्त्री लिखते हैं, "भालण ने कुछ पद ब्रज भाषा में रचे हैं, जो वल्लभ संप्रदाय के अष्टछाप कवियों के साथ के ही हैं। अतः भालण १६वीं शताब्दी के पहले का नहीं माना जा सकता।" कडवा-बद्ध आख्यान पहले-पहल भालण ने ही लिखा। स्वयं आख्यान शब्द पहले पहल भालण की रचना में ही मिला। आख्यान सलंग बन्ध और कडवा-बन्ध होते हैं, इनमें से दूसरा प्रकार भालण द्वारा आरंभ किया हुआ है।

भालण एक मोढ ब्राह्मण थे। उनका नाम आस्पद त्रिवेदी था और वे पाटण-निवासी थे। उनके दो गुरु थे, श्रीपाल और ब्रह्मप्रियानंद। उनके दो पुत्र थे—उद्धव और विष्णुदास। उनका परिवार बड़ा और सम्पन्न था। वे वैदिक धर्म के अनुयायी थे और जीवन के अंतिम दिनों में श्रीराम के परम भक्त हो गये थे। उनका संस्कृत ज्ञान बहुत अच्छा था और उनकी रचनाओं से स्पष्ट है कि कादम्बरी, नैषधीय चरित, भागवत, पद्म पुराण तथा अन्य पुराणों को अच्छी तरह पढ़ा था। ब्रजभाषा का भी उनका अध्ययन अच्छा था। वे उपर्युक्त कठिन संस्कृत ग्रंथों का गुजराती में बहुत तद्रूप और सुन्दर अनुवाद उपस्थित कर सकते थे तथा उन्होंने बहुत-से आख्यान गुजराती-साहित्य को दिये हैं। उनकी साहित्य रचना का काल श्री के० का० शास्त्री द्वारा सं० १५५० और १५७५ के बीच का माना गया है। उन्होंने देशी सवैया, देशी चौपाई और देशी हरिगीत छन्दों का प्रयोग बहुत अधिक किया है। इस भाषा को गुर्जरभाषा के नाम से सम्बोधित करनेवाले पहले व्यक्ति यही हैं।

इनकी रचनाएँ हैं—द्रौपदी-वस्त्रहरण, सप्तशती, मृगी आख्यान, नलाख्यान, मामकी आख्यान, ध्रुवाख्यान, राम-विवाह (अधूरी), जालन्धराख्यान और दशम स्कंध। 'शिव-भिलड़ी संवाद', राम बाल-चरित के पद और बाण

की 'कादम्बरी' का गुजराती में पद्यानुवाद—इनकी भी रचना की है। सप्त-शती, नलाख्यान, दशमस्कंध भी अनुवाद ही हैं।

भालण के आख्यानों में उनका ध्यान विशेषकर कथावस्तु के विकास की ओर दिखाई देता है और प्रेमानन्द की भाँति वे रसों एवं अलंकारों का सौंदर्य बढ़ाने में सक्षम नहीं लगते। उनके बाद लगभग २५० वर्षों तक उनका कडवा-बद्ध-आख्यान प्रकार प्रचलित रहा और प्रेमानन्द के काव्य में वह चरम सीमा को पहुँच गया। बाद में उसका ह्रास आरंभ हुआ। प्रेमानन्द के बाद पद अधिक प्रसिद्ध हुए। कविता की दृष्टि से आख्यानों की अपेक्षा पदों में भालण की सफलता अधिक दिखाई देती है। संभवतः वे जीवन के आरंभ में शाक्त थे और अंतिम अवस्था में राम-भक्त हुए। ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि अंत में वे संन्यासी हो गये थे। भालण ने अपने आख्यानों में बाद में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया, जैसा कि प्रेमानंद ने किया है।

उनके राम-कृष्ण के पद, दशमस्कंध, नलाख्यान और कादम्बरी को बहुत प्रसिद्धि मिली। उनके पद गरबियों की तरह गाये जा सकते हैं। उनमें वात्सल्यरस का स्रोत बहता है। नरसिंह और मीरा के बाद मध्यकालीन गुजराती-साहित्य में बस इन्हीं के कुछ पद अति सुन्दर बन पड़े हैं। नलाख्यान में इन्होंने महाभारत को आधार बनाया है, किन्तु 'नैषधीय चरित' और 'नलचरित' का अध्ययन भी स्पष्ट लक्षित होता है। एक दूसरा नलाख्यान भी उन्हीं का लिखा है—इसमें संदेह है। उनके अनुवाद ग्रंथ 'सप्तशती' और 'दशमस्कंध' असाधारण नहीं हैं; उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है 'कादम्बरी', जो प्रेमानंद के आख्यानों के बाद गुजराती की सर्वोत्तम रचनाओं में एक है। यह बाण की कादम्बरी पर आधृत है और इसमें ५००० पद्य हैं। यह अनुवाद नहीं है, परन्तु उसका एक रूप है और इसमें उतनी ही सामग्री लेने की चेष्टा की गयी है, जितनी कि उस समय की गुजराती भाषा में आ सकती थी और जितनी पाठकों या श्रोताओं को प्रिय लग सकती थी। बाण की कादम्बरी और किसी भाषा में पद्यबद्ध नहीं हुई। इस दृष्टि से भालण का प्रयत्न विरल और सफल ही नहीं है, वरन् एकमात्र तथा असाधारण भी है। इसमें एक रस-काव्य अथवा आख्यान-काव्य के सभी लक्षण हैं, साथ ही मूल ग्रंथ के सौंदर्य को अक्षुण्ण रखने में कवि बहुत सफल हुआ है।

मूल ग्रंथ तो लंबे-लंबे मिश्र वाक्यों के कारण इतना क्लिष्ट है कि गद्य में भी उसका अनुवाद करना कठिन है। भालण की रचना में मूल का सा आनन्द आता है। उनकी भाषा मधुर और गठी हुई है। अब पुरानी गुजराती का विकास और आरंभ हुआ; विशेषकर बातचीत की भाषा प्रेमानंद के समय की साहित्य-भाषा के बहुत निकट आ रही है।

भीम

भीम कवि 'हरिलीला षोडश कला' और 'प्रबोध प्रकाश' के रचयिता हैं। उन्होंने पुरुषोत्तम और नरसिंह व्यास का अपने गुरुओं के रूप में उल्लेख किया है। एक मत से ये पुरुषोत्तम और कोई नहीं, कवि भालण ही थे; क्योंकि ऐसा सोचा जाता है कि उनका दूसरा नाम पुरुषोत्तम महाराज था। श्री के० का० शास्त्री ने भी इस मत को स्वीकार किया था, किन्तु अपने बाद के ग्रंथ में उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया। कवि ने सिद्धपुर और सोमनाथ की चर्चा की है। कुछ कहते हैं कि वे मोढ ब्राह्मण थे और दूसरे कुछ लोग मानते हैं कि वे नागर थे; विष्णुदास के पिता और अविचलदास के पितामह थे।

बोपदेव ने १७८ पद्यों में 'हरिलीला विवेक' की रचना की है, जिसमें अति संक्षेप में भागवत की कथा आ जाती है। भीम ने एक मौलिक रचना प्रस्तुत की और उसे बढ़ाकर २००० कड़ियों तथा १६ भागों अथवा कलाओं में विभक्त किया। भीम ने केवल भागवत के अध्यायों को क्रमबद्ध करने में बोपदेव का अनुकरण किया है। भीम पर किसी अज्ञात गुरु की कृपा थी। कवि द्वारकाधीश का परम भक्त मालूम होता है। भीम ने अपने रूपक काव्य 'प्रबोध प्रकाश' में ११वीं शताब्दी के श्रीकृष्ण विषयक संस्कृत नाटक 'प्रबोध चन्द्रोदय' से सामग्री ली है, उसे सँवारा है, संक्षिप्त भी किया है। इन्हीं दो ग्रंथों की रचना करके कवि ने १५वीं शताब्दी के वैष्णव-साहित्य में अच्छा योगदान किया है। ग्रंथों का काव्यत्व द्वितीय श्रेणी का है।

मांडण

मांडण तीन ग्रंथों के रचयिता हैं। उनका पहला ग्रंथ 'प्रबोध बत्तीसी' दार्शनिक काव्य है और प्रकाशित है, किन्तु उनके दूसरे और तीसरे ग्रंथ 'रामायण'

तथा 'रुक्मांगद कथा' अप्रकाशित हैं। उनका समय १५वीं शताब्दी का अंतिम भाग माना जाता है। वे जाति के बन्धारो और सिरोही-निवासी श्री मदन जोशी के शिष्य थे। 'रामायण' और 'पाण्डव विष्टि' उनके अपूर्ण ग्रंथ हैं। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने 'सत्यभामानुं रुसणुं' भी लिखा था।

प्रबोध बत्तीसी षटपदी चौपाई में है। ग्रंथ में कुल ३२ वीशी हैं और प्रत्येक वीशी में २० षटपदी चौपाइयाँ हैं। उनका काव्य बिलकुल अखा कवि के समान ही है। मांडण की दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने लगभग ५०० कहावतों और अर्थान्तिरन्यासों को एकत्र करके उनका उपयोग किया है। उनके ग्रंथ में उच्चकोटि का दर्शन है। छल-प्रपंच की उन्होंने कड़ी आलोचना की है। बाद में उनकी षटपदी अखा के छप्पयों में मिलती है। कहावतों और लोकोक्तियों के संग्रह के विषय में श्रीधर और शामल ने संभवतः मांडण का अनुकरण किया है। 'रामायण' में ७० कड़वा हैं; 'रुक्मांगद कथा' एक पौराणिक कथा है। उनके दो पदों की भाषा में मराठी का पुट पाया जाता है, जैसा कि नरसिंह के एक पद में है।

जनार्दन

जनार्दन ने २२० कड़ियों में 'उषाहरण' की रचना की है। यह एक आख्यान है, परंतु कडवाबन्ध में नहीं है। ये निम्बो त्रिवेदी के पुत्र थे और इस ग्रंथ की रचना इन्होंने अमरावती में की। ये खडायता ब्राह्मण थे। इनका कोई अन्य ग्रंथ प्रकाश में नहीं आया। कवि अनुप्रास और सांकली का प्रेमी मालूम होता है। ग्रंथ की रचना सं० १५४८ में हुई थी। इसके ३२ पद श्रेष्ठ हैं, जो कादव कहलाते हैं। देशीबन्धों और रागों की इसमें विविधता है। इस 'उषाहरण' पर वीरसिंह के 'उषाहरण' का प्रभाव है।

जैन-साहित्य

सोमसुन्दर गिरि और उनके शिष्य वर्ग ने १५वीं शताब्दी के जैन-साहित्य को बहुत-कुछ दिया। इन लोगों ने संस्कृत में भी कई ग्रंथों की रचना की है। गुजराती में अनेक लघु कथाओं की रचना हुई, साथ ही 'शालिभद्ररास' और 'गौतम पृच्छा' (साधुहंस); 'चिहुंगति' (वस्तिग); 'जम्बूस्वामी विवाहलो';

'कलिकालरास', 'मुनिपतिचरित्र', 'श्रीपाल रास' और 'नलचरित' (मांडण); अनेक अन्य रास और फागु तथा अनेक बालावबोध। कवि श्रावक देपाल दिल्ली के समर शाह और सारंग शाह के आश्रित थे। वे गुजरात में विचरण करते और काव्य रचना किया करते थे। उनकी भाषा में दिल्ली क्षेत्र का कोई प्रभाव नहीं है; वह उस समय की गुजराती भाषा है। वे नरसिंह के समकालीन थे। उन्होंने 'जावड-भावड रास', 'रोहिणीया चोरनो रास' और कुछ अन्य ग्रंथों की रचना की है। इस शताब्दी में 'सुदर्शन श्रेष्ठि रास' (संघविमल), 'सुरंगाभिधान नेमि फाग' (धनदेव), 'रत्नचूड रास' (रत्नशेखर), 'नलदवदंती रास' (ऋषिवर्धन) जो नल-दमयंती की कथा पर आधारित है, 'धन्ना रास' (मतिशेखर), इसी प्रकार के अन्य रास और विवाहलो आदि की रचना हुई। कुमारपाल, वस्तुपाल और तेजपाल पर ऐतिहासिक रासों की भी रचना इसी काल में हुई तथा कुछ लोक वार्ताओं की भी, विशेषकर विक्रम और उनके सिंहासन की।

निष्कर्ष

१२वीं से १५वीं शताब्दी के काल को रासयुग कहा जाता है—यह बिलकुल उचित है, क्योंकि इसी काल में रास-साहित्य तथा सहयोगी साहित्य रचा गया, जिसमें अधिकांश हाथ जैन साधुओं और अजैनियों का भी है। १५ वीं शताब्दी में भक्ति की एक प्रबल धारा गुजरात में बही, जिसमें हम पाते हैं—नरसिंह की उच्च कोटि की कविता, भालण और भीम की रचनाएँ, कई पद आख्यान और कडवाबद्ध आख्यान, पद्मनाभ का महान् ऐतिहासिक प्रबन्ध, नरसिंह और मांडण की कविताओं में ज्ञान-साहित्य, भालण के उत्तम अनुवाद। जैन-विद्वानों ने भी रास, फागु, विवाहलो और बालावबोध का साहित्य प्रदान किया। दयाराम के समय तक भक्ति की इस धारा का प्रभाव गुजरात में बना रहा। नरसिंह के काव्य की प्रचुर मात्रा तथा काव्य-श्रेष्ठता के कारण इस काल को 'नरसिंह-युग' की संज्ञा उचित दी गयी है।

अध्याय ७

सोलहवीं शताब्दी

प्रेम-दिवानी मीरा

अब मीरां का जन्म-काल सन् १४९९ मान लिया गया है। अपने भक्तिमय आदर्श जीवन तथा वृज, राजस्थानी और गुजराती में पाये जानेवाले मधुर भजनों के कारण भारत के जन-मानस में उनका स्थायी स्थान बन चुका है। इससे यह भी विदित होता है कि उनके समय में गुजरात एवं पश्चिमी राजस्थान की भाषा वहुत-कुछ एक सी थी। ये मेडता के राठौड़ राव दादूजी की पौत्री तथा रतनसिंह की पुत्री थी। इनका जन्म कुडकी में हुआ था। इनके पिता वैष्णव थे। मेवाड़ के राजपरिवार के साथ इस परिवार का वैवाहिक संबंध था। मीरा नाम पर अनेक प्रकार की कल्पनाएँ की जाती हैं। कुछ कहते हैं कि यह विदेशी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ सागर, अमीर अथवा ईश्वर है; और कदाचित् यह नाम उन्हें अपने गुरु द्वारा उपनाम के रूप में मिला था। कुछ इसे संस्कृत शब्द 'मिहिर' अथवा किसी देशी शब्द से निकला मानते हैं। वचपन में ही इनकी माता का देहान्त हो गया था, अतः इनके वावा दादूजी ने इनका लालन-पालन किया। इनके एक चचेरे भाई का नाम जयमल था और वह भी भक्त था। मीरा का विवाह मेवाड़ के युवराज भोजराज के साथ सन् १५२७ ई० में हुआ। भोजराज सांगा के पुत्र थे। विवाह के आठ वर्ष बाद ही मीरा विधवा हो गयीं। सांगा और उनके पुत्र रतनसिंह के बाद मेवाड़ के राजा विक्रमादित्य हुए।

ऐसा कहा जाता है कि वचपन में ही मीरा को एक संन्यासी से गिरधर की मूर्ति प्राप्त हुई थी। मीरा के संतोष के लिए उनकी माँ ने कह दिया था कि यही तुम्हारे पति हैं। तभी से जीवन पर्यंत मीरा का यही विश्वास था कि उनका विवाह गिरधर के साथ हुआ था। विधवा होने के बाद वे स्वतंत्रतापूर्वक साधु-

मंडली में बैठकर भजन गाने लगीं। विक्रमादित्य ने सोचा कि राजघराने की महिला को यह व्यवहार शोभा नहीं देता, अतः उन्होंने उनसे यह छोड़ देने को कहा। मीरा के अस्वीकार करने पर विक्रमादित्य ने उन्हें तरह-तरह से सताया, यहाँ तक कि मीरा के जीवन का अंत करने के लिए उन्होंने विषधर सर्प और विष का प्याला भी उनके पास भेजा, किन्तु सभी अवसरों पर मीरा के जीवन की रक्षा हुई। छिपकर मीरा अपने पिता के घर मेडता चली गयीं, किन्तु जब वहाँ भी उन पर निगरानी रखी जाने लगी तो वे वृन्दावन चली गयीं। ऐसा कहा जाता है कि उनके चित्तौड़ और मेडता छोड़ने पर वहाँ अनेक प्राकृतिक संकट आये।

उस समय वृन्दावन कृष्ण-भक्ति का केन्द्र था। भक्त सूरदास एवं वल्लभ संप्रदाय के अन्य अष्टछाप कवि, चैतन्य सम्प्रदाय के रूप, सनातन एवं जीव गोस्वामी तथा अनेक वैष्णव-मार्गी संत कृष्णभक्ति का उन्मुक्त गान वहाँ कर रहे थे। चैतन्य सम्प्रदाय के जीव गोस्वामी से मीरा मिलने गयीं, तो उन्होंने यह कहकर मिलने से अस्वीकार कर दिया कि वे किसी महिला से नहीं मिलते। किन्तु जब मीरा ने कहलाया कि संसार में पुरुष कोई है, तो एक मात्र कृष्ण हैं, तब उन्होंने मीरा की महत्ता को समझा और उनसे भेंट की। वृन्दाबन से वे द्वारका गयीं, जहाँ उन्होंने रणछोड़राय की उपासना की। मेवाड़ के उदयसिंह ने उनको मेवाड़ बुला लाने के लिए कुछ आदमी भेजे, जिससे उनकी कृपा से मेवाड़ की सम्पन्नता फिर लौट आये। मीरा ने कहा—मुझे अपने स्वामी से आज्ञा लेनी होगी। ऐसा कहा जाता है कि वे मंदिर में गयीं और द्वारका के श्री रणछोड़राय की मूर्ति में विलीन हो गयीं।

मीरा के कुछ पद एक जोगी के विषय में हैं। कुछ मानते हैं कि उनका तात्पर्य नाथ सम्प्रदाय के उन जोगियों से है, जिनके साथ बचपन में मीरा घूमा करती थीं और जिनके कारण उनके पति के संबंध में काफी कटुता उत्पन्न हो गयी थी। किन्तु नाथ योगी तो शैव और शाक्त थे तथा मीरा की विचारधारा से काफी दूर पड़ते थे। कुछ दूसरे कहते हैं कि जोगी शब्द से उनका अर्थ श्रीकृष्ण से था। कुछ विद्वान् तो यहाँ तक कहते हैं कि जोगी वाले पद किसी दूसरे के द्वारा बाद में मिलाये हुए हैं।

यद्यपि मीरा कृष्णभक्त थीं और रैदास राम-भक्त, फिर भी ऐसा कहा जाता है कि मीरा रैदास की शिष्या थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि मीरा का किसी विशेष सम्प्रदाय से सम्बन्ध नहीं था। उन्होंने नवधा भक्ति का भी कहीं वर्णन नहीं किया। १५वीं तथा १६वीं शताब्दी में सम्पूर्ण भारत में वैष्णव-भक्ति की एक धारा बह रही थी और उस समय गुजरात में भी अनेक वैष्णव कवि हुए हैं; मीरा ने भी उसी असाम्प्रदायिक भक्ति-मार्ग की प्रचलित धारा का अनुसरण किया। उनके लिए गोपी-भाव से युक्त कृष्ण की भक्ति स्वाभाविक थी। उनके २५० पद गुजराती भाषा में हैं, साथ ही 'नरसिंह का माह्यरा' तथा 'सतभामानुं रुसणुं' भी उन्होंने गुजराती में लिखा। इनके अतिरिक्त उन्होंने अनेक पद ब्रज और राजस्थानी भाषा में रचे। उन्होंने तीर्थयात्रा भी की होगी।

मीरा 'प्रेमदिवानी' कही जाती थीं। उन्होंने स्वयं अपने कृष्ण-प्रेम को जन्म-जन्म का प्रेम कहा है। उन्होंने अपने को दासी मानकर अपना सब कुछ अपने स्वामी के चरणों में समर्पित कर दिया था और सदैव पत्नी के स्वरों में वे जीवन भर या तो कृष्ण से मधुर मिलन का सुख अथवा उनके विरह की मार्मिक वेदना का गान करती रहीं। विप्रलंभ शृंगार के पद संख्या में अधिक हैं। उन्होंने कृष्ण-लीला का भी गान किया है। अपने ऊपर किये गये अत्याचारों का वर्णन भी उन्होंने प्रायः किया है। वे लोक-लाज छोड़कर भक्ति के नशे में डूब गयी थीं। कृष्ण से मिलने की उत्कंठा और पीड़ा सदैव उनके मन में थी। मीरा के पदों में प्रवाह, मधुरता, कोमलता एवं संयम है। नरसिंह मेहता तथा दयाराम ने भी कृष्ण की शृंगार लीला का वर्णन किया है, किन्तु इन पुरुष कवियों के वर्णन काफ़ी उन्मुक्त और स्पष्ट हैं, जबकि मीरा के वर्णन सांकेतिक हैं। नरसिंह ने ज्ञान-वैराग्य की चर्चा भी की है, किन्तु मीरा ने केवल भक्ति का और वह भी अपने ढंग की भक्ति का गान किया है। कुछ पदों में अभिव्यक्त उनके विचार देखिए—

१. मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।
(मेरे सर्वस्व गिरधर ही हैं, मेरा अन्य कोई भी नहीं है)

२. प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे मने लागी कटारी प्रेमनी रे।
(मुझे प्रेम की कटारी लगी है)

३. गोविन्दो प्राण अमारो रे, मने जग लाग्यो खारो रे ।
(गोविंद ही मेरा प्राण है; सारा संसार मुझे फीका लगता है)
४. बंसीवाला ! आजो मोरा देश ।
(ऐ वंशीवाले, मेरे देश को आ)
५. में तो छाँड़ी छाँड़ी कुल की लाज ।
(मैंने कुल की लाज त्याग दी है)
६. राम रमकडुं जडियुंरे, राणाजी मने राम रमकडुं जडियुं ।
(हे राणाजी ! मैंने राम के रूप में खेल की सामग्री पा ली है)
७. झेरको प्यालो राणाजी भेज्यो धरियो मीराबाई हाथ ।
करी चरणामृत पी गई रे, श्री ठाकुर को परसाद ।।
राणाजी ए रीस करी भेज्यो झेरी नाग असार ।
पकड़ गले बीच डालियो, काँई हो गयो चंदनहार ।।
(राणा ने जहर का प्याला भेजा, जिसे मीराबाई ठाकुरजी का प्रसाद तथा चरणामृत बनाकर पी गयीं, फिर क्रोध में आकर राणा ने एक जहरीला नाग भेजा, जिसे मीरा ने पकड़कर गले में डाल लिया और वह चंदनहार हो गया।)
८. प्यारे दरसन दीज्यो आय, तुम बिन रह्यो न जाय ।
(हे प्रियतम आकर दर्शन दो, तुम्हारे बिना मैं रह नहीं सकती)
९. पिया कारण पीली भई रे, लोक जाणे घट रोग ।
(मैं प्रिय के विरह में पीली पड़ गयी हूँ, किन्तु लोग समझते हैं कि मुझे कोई शारीरिक रोग लग गया है)
१०. हरि तुम हरो जन की भीर ।
(हे हरि ! आप अपने दासों का संकट दूर कीजिए)
११. हेरी मैं तो दरद दिवानी, मेरो दरद न जाने कोय ।
(मैं दर्द के कारण ही दीवानी हो गयी हूँ, मेरे दर्द को कोई नहीं जानता)
१२. अखंड वर ने वरी साहेली हुं ।
(मैंने अखंड वर को वरण किया है)

१३. ऐसी लगन लगाय कहाँ (तूँ) जासी ।
तुम देखे बिन कल न पड़त है, तड़फ-तड़फ जिव जासी ।।
(हे स्वामी, ऐसी प्रीत लगाकर अब तुम कहाँ जाते हो ? तुमको देखे बिना चैन नहीं पड़ता, तड़प-तड़प कर प्राण चले जायँगे)

१४. पग घुंघरु बाँध मीरा नाची रे ।
मैं तो मेरे नारायण की आपहिं हो गई दासी रे ।
लोग कहें मीरा भई बावरी न्यात कहैं कुल नासी रे ।
(मीरा पैरों में घुंघरू बाँधकर नाच रही है। अपने नारायण की मैं स्वयं दासी हो गयी। लोग कहते हैं कि मीरा बावली हो गयी और सगे-सम्बन्धी कहते हैं कि उसने कुल को डुबा दिया)

१५. म्हांने चाकर राखोजी गिरिधारीलाल चाकर राखो जी ।
(हे गिरिधारीलाल मुझे नौकरानी रख लीजिए)

१६. जूनुं तो थयुं रे, देवल जूनुं तो थयुं। मारो हंसलो नानो ने देवल जूनुं तो थयो।
(छोटे हंस से युक्त यह मंदिर अब पुराना पड़ गया है।)

मीरा के पदों में उत्कंठा, सुन्दरता, सहजता, मधुरता, कोमलता, एवं संगीतात्मकता है। कुछ पद गरबी की भाँति गाये जा सकते हैं और गाये जाते हैं। भक्ति-प्रचार में मीरा का योग नरसिंह के समान अथवा उनसे कुछ अधिक माना जाता है। केवल गुजराती भाषा में ही नहीं, वरन् ब्रज और राजस्थानी भाषा की प्रथम कोटि की कवियित्रियों में मीरा का स्थान है।

नाकर

वीको के पुत्र नाकर बड़ोदा के दीशावाल वणिक थे, जो सन् १५१६ और १५६८ के बीच प्रसिद्ध हुए। यद्यपि उनका कहना था कि वे संस्कृत नहीं जानते किन्तु उन्होंने अनेक आख्यानों और लोकवार्ताओं की रचना की है और पहले-पहल उन्होंने ही महाभारत के अनेक पर्वों का अनुवाद या रूपान्तर देशी में किया। भालण के पश्चात् ये पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने पद तथा कड़वाबद्ध—दोनों शैलियों में आख्यान लिखे। साथ ही यह भी सही है कि आख्यान या अनुवाद-रचना में वे भालण के समान योग्य नहीं थे।

नाकर अपने नागर मित्र मदन के लिए इस प्रकार के साहित्य की रचना करते थे। ब्राह्मण मदन, जो कथाकार थे, अपनी कथा में निर्वाह के रूप में इस साहित्य का उपयोग करते थे। नाकर ने पुराणों तथा महाभारत की मूल कथाओं में परिवर्तन भी किये हैं। संभवतः इसका कारण उनका संस्कृत का अल्पज्ञान था। परिवर्तन अथवा सुधारों का कारण यह भी हो सकता है कि वे अपने श्रोताओं के संतोष के लिए इधर-उधर पद सम्मिलित कर देते थे। प्रेमानंद ने भी पौराणिक मूल कथाओं में कहीं हेर-फेर किया है।

नाकर ने महाभारत के १० पर्व लिखे हैं, जिनमें विराट् पर्व सर्वोत्तम है। उन्होंने 'हरिश्चन्द्राख्यान', 'अभिमन्यु आख्यान', 'कर्णचरित्र', 'कृष्णविष्टि', 'चन्द्रहासाख्यान', 'ध्रुवाख्यान', 'नलाख्यान', 'ओखाहरण', 'मृगली संवाद', 'रामायण', 'विदुरनी विनती', 'सोकठानो गरबो' आदि की रचना की है।

यद्यपि ये बहुत प्रतिभाशाली रचनाकार नहीं थे और इनकी रचनाएँ द्वितीय कोटि की हैं, किन्तु इनकी रचनाओं का परिमाण बहुत अधिक है। इनका संस्कृत-ज्ञान थोड़ा था, फिर भी अपने मित्र की सहायता करने के लिए इन्होंने बहुत-सी रचनाएँ कीं। प्रेमानंद ने नाकर द्वारा लिखे अधिकांश विषयों पर लिखा है, किन्तु प्रेमानन्द की रचना अधिक परिमार्जित एवं कलात्मक है। यह कहना अनुचित न होगा कि प्रेमानंद ने नाकर की रचनाओं से ही अपनी रचना-सामग्री पायी। नाकर के रचना-परिमाण को देखते हुए ही सोलहवीं शताब्दी का साहित्य 'नाकर-युग' के नाम से कहा जाता है। अपने समय में उन्होंने लोगों के संस्कार सुधार कर उन्हें धार्मिक बनाने में बड़ा काम किया और हमारे लिए तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण अपनी रचनाओं में सुरक्षित रख छोड़ा है। उनके बहुत-से ग्रंथ अबतक अप्रकाशित पड़े हैं।

केशवदास

केशवदास पाटण के वल्मीक कायस्थ और हृदयराम के पुत्र थे। इन्होंने 'श्रीकृष्ण लीला काव्य' की रचना की है, जिसमें भागवत के दशमस्कंध की कथा है। इन्होंने दशमस्कंध के ९० अध्यायों का संक्षिप्तीकरण विभिन्न रागों और छन्दों से युक्त ४० सर्गों में किया है। रासलीला का सम्पूर्ण अंश 'शार्दूल'

विक्रीड़ित' छन्द में है। भीम, केशवदास, हरिदास, मीठु तथा अन्य कई कवियों ने अक्षर मेल वृत्तों में रचनाएँ की हैं।

केशवदास ने भागवत का बहुत अधिक अध्ययन किया था, साथ ही अन्य ग्रंथ भी बहुत पढ़े थे। इन्हें व्रज भाषा का भी ज्ञान था। इनकी भाषा संस्कृत-बहुला एवं शिष्ट है तथा उसमें संस्कार और प्रसाद गुण हैं; अलंकारों की भी कमी उसमें नहीं है। इनकी रचना में यत्र-तत्र संस्कृत के श्लोक भी हैं, जिनमें से कुछ स्वयं इनके रचे हैं। संस्कृत के वैष्णव-साहित्य से इनका अच्छा परिचय था। 'कृष्णकर्णामृत', 'पाण्डवगीता' और 'बिल्वमङ्गल' से इन्होंने उद्धरण दिये हैं। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इनका दशमस्कंध का रूपान्तर प्रेमानन्द से भी श्रेष्ठ है एवं भालण से तो निस्सन्देह उत्तम है। इस ग्रंथ की रचना सं० १५२९ में हुई थी। इसका आधार केवल भागवत नहीं है, वरन् इन्होंने विष्णु-पुराण, हरिवंश, कृष्णजन्म खंड, गर्गसंहिता, ब्रह्मवैवर्त तथा गीतगोविंद आदि ग्रंथों से भी कुछ सामग्री ली है। इनके व्रज भाषा में कुछ उत्तम पद भी हैं। ग्रंथ के आरंभ में इन्होंने 'गोपीजन वल्लभाष्टक' की रचना की है। ऐसा अनुमान किया गया है कि संस्कृत का यह स्तोत्र बहुत पुराना है और हरिराम गोस्वामी के किसी भक्त ने इसे हरिराम की रचनाओं में सम्मिलित कर दिया है। कवि केशवदास संस्कृत के भक्ति-साहित्य से पूर्ण परिचित थे। भागवत की कथा को भलीभाँति आधार बनाते हुए भी उन्होंने विभिन्न रसों की उत्पत्ति सफलतापूर्वक की है। निस्सन्देह उनका यह ग्रंथ गौरव प्रदान करनेवाला है।

श्रीधर—श्रीधर 'रावण-मंदोदरी-संवाद' और 'गौरी चरित्र' के रचयिता हैं। ये जाति के मोढ अडालजा थे और अपने को मंत्री-पुत्र कहते थे। कवि मांडण की भाँति इन्होंने भी अनेक कहावतों का प्रयोग किया है। 'गौरी चरित्र' में इन्होंने भील-भीलनी के रूप में शिव और पार्वती का संवाद लिखा है। इनके पहले ग्रंथ की रचना सन् १५०९ में हुई थी।

जावड—जावड ने सन् १५१५ में ४०० कड़ियों की एक रचना 'मृगली संवाद' नाम से की। इनकी रचनाएँ कवि नाकर के समकक्ष हैं।

उद्धव—उद्धव कवि भालण के पुत्र तथा 'रामायण' (अपूर्ण) एवं 'बभ्रुवाहन आख्यान के रचयिता हैं। इन्होंने अपने गुरु, जो मधुसूदन आश्रम नाम के एक

संन्यासी थे, की स्तुति की है। इनकी रामायण में, जो सुन्दरकाण्ड तक का अनुवाद है, वाल्मीकि रामायण का अनुसरण किया गया है। रामकथा को उद्धृत करने का उनका प्रयास पहले के कर्मण तथा मांडण के प्रयासों से उत्तम है। ऐसा प्रतीत होता है कि इनका संस्कृत-ज्ञान बहुत अधिक था।

गंगादास—पर्वत के पुत्र गंगादास ने १४३६ छप्पयों में 'लक्ष्मी-गौरी-संवाद' की रचना की। ये सूरत के निवासी थे। लक्ष्मी-पार्वती एक-दूसरे को संवादों द्वारा नीचा दिखाने की चेष्टा करती हैं। कवि बड़ी बुद्धिमानी से दोनों की कमजोरियों का वर्णन करता है, जैसा कि परम्परा से होता चला आया है। चूँकि उनकी रचना धार्मिक विचारों की जनता के लिए लिखी गयी थी, इसीलिए बाद में कवि दोनों देवियों की प्रशंसा करता है।

ब्रेहेदेव—ब्रेहेदेव ने सं० १६०९ में 'भ्रमरगीत' की रचना की, जिसकी सामग्री भागवत के दशम स्कंध से ली गयी है। इन्होंने नरसिंह मेहता की चातुरी का अनुकरण किया है। कवि ने विरहिणी नायिका का वर्णन किया है। इस ग्रंथ में उन्होंने कड़वा छन्द का उपयोग किया है। जो राग चुने गये हैं, वे भी नरसिंह के रागों से मिलते-जुलते हैं। ग्रंथ में थोड़ी-बहुत श्रेष्ठता है।

भीम—'रसिकगीता' के रचयिता ये भीम उन कवि भीम से भिन्न हैं, जिन्होंने 'हरिलीला षोडशकला' और 'प्रबोध प्रकाश' की रचना की थी। ये वल्लभ-संप्रदाय के वैष्णव भक्त मालूम होते हैं। इन्होंने वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलेश गोस्वामी की प्रशंसा में एक धोल की भी रचना की है।

वस्तो—वस्तो डोडियो धारालो थे। इन्होंने 'शुकदेवाख्यान' की रचना की है। ये बोरसद के रहनेवाले थे। ये १७ वर्ष की अवस्था में ही घर से भाग गये थे और दक्षिण की तीर्थयात्रा को चले गये। लौटने पर इन्होंने देखा कि इनके माता-पिता का देहान्त और पैतृक सम्पत्ति का बटवारा हो गया था। इसकी तनिक भी चिन्ता न करके ये मथुरा चले गये और फिर वहाँ से बहरामपुर। ऐसा कहा जाता है कि वहाँ इन्हें धरती के नीचे एक खजाना मिला, किन्तु इन्होंने सारा धन साधुओं में बाँट दिया। वहाँ का मुसलमान अधिकारी इन्हें पकड़ ले गया और पीटने की कोशिश की, पर कहा जाता है कि इनका कुछ नहीं बिगड़ा। इन्होंने शुकदेव की जीवनी लिखी है। यद्यपि ये जाति के धाराला थे, किन्तु घटनाओं

का वर्णन बड़े प्रभावशाली और रोचक ढंग से किया है। करुण रस उत्पन्न करने में कवि ने बड़ी कुशलता दिखायी है, विशेषकर जब व्यास अपने पुत्र शुकदेव को घर वापस चलने को कहते हैं।

ईसर बारोट––ईसर 'हरिदास' के रचयिता हैं, जो १६६ कड़ियों में एक ज्ञानी भक्त की स्तुति है। ये लीमडी के रहनेवाले थे, पर जामनगर चले गये और वहाँ के एक पंडित पीताम्बर को अपना गुरु बनाया। कविता की दृष्टि से ये द्वितीय श्रेणी के कवि हैं।

कीकू बसाही––ये गोदा के पुत्र और गणदेवी के निवासी थे। ये कृष्ण के बालचरित्र के रचयिता हैं, जो दशम स्कंध के आधार पर ६३० कड़ियों में लिखा गया है। यह कड़वा छन्द में नहीं, वरन् सलङ्गबंध में है। ग्रंथ उत्तम है और इसमें अच्छे वर्णन हैं। इनका दूसरा ग्रंथ 'अङ्गदविष्टि' है, जो ६० छप्पयों में है और जिसमें वीर रस की प्रधानता है।

विष्णुदास––विष्णुदास खंभात के नागर हैं। ये बहुत अधिक लिखने वाले थे और इन्होंने कुल ३९ ग्रंथ लिखे हैं। महाभारत के १८ पर्वों में से इन्होंने १५ का अनुवाद अथवा रूपान्तर किया है, साथ ही रामायण भी लिखी है। नरसिंह मेहता की जीवन-घटनाओं में से 'मामेरुं' और 'हुंडी' के ऊपर आख्यान भी विष्णुदास ने रचे। नरसिंह और भालण द्वारा आरंभ किये आख्यान प्रकार को इन्होंने जारी रखा। नाकर और प्रेमानंद के मध्य में विष्णुदास का समय है और ग्रंथों की अधिकता के कारण ये युग-निर्माता कहे जाते हैं। सन् १५६८ से १६१२ तक का समय 'विष्णुदास युग' कहलाता है। ये अपने को मकर कुल में उत्पन्न गंगा के पुत्र के रूप में वर्णन करते हैं। समय-समय पर इन्होंने कई गुरु बनाये। हरिभट्ट, भूधर व्यास और विश्वनाथ व्यास इनके गुरु थे। विष्णुदास के बाद भी खंभात के कुछ कवि काव्य-धारा बहाते रहे। प्रेमानंद विष्णुदास के विशेष ऋणी हैं। इनका कवि-कर्म ४० वर्षों से अधिक चला। यद्यपि इनकी रचनाएँ बहुत अधिक हैं, पर उनका स्तर बहुत ऊँचा नहीं है। इन्होंने मुख्य रूप से महाकाव्य की मुख्य घटनाओं को संक्षिप्त किया है। इनके कुछ ग्रंथ अभी भी अप्रकाशित पड़े हैं। इन्होंने महाकाव्यों पर आधृत इतने अधिक व्य-ग्रंथ गुजरात को दिये हैं, जितने आजतक किसी ने नहीं दिये।

मेगल––इन्होंने 'ध्रुवाख्यान' और 'नाचिकेताख्यान' नाम के दो सुन्दर आख्यानों की रचना की है। दोनों में से दूसरा अधिक अच्छा है और कठोपनिषद् की कथा पर आधृत है। यद्यपि इनकी रचना थोड़ी है, किन्तु ये विष्णुदास की अपेक्षा कुछ श्रेष्ठ माने जाते हैं।

गोपालदास वणिक––कडी के पास रूपाल ग्राम के रहनेवाले ये एक वणिक थे। इन्होंने पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य, उनके पुत्र विट्ठलेश तथा उनके सात पौत्रों पर ९ कड़वाओं का एक सुन्दर ऐतिहासिक काव्य-ग्रंथ लिखा, जिसका नाम है 'वल्लभाख्यान'। यह विभिन्न रागों में रचित है और सम्प्रदाय में इसका इतना मान है कि भक्तगण इसे कंठस्थ कर लेते हैं। ऐसा कहा जाता है कि कवि पर विट्ठलेश गोस्वामी की कृपा थी। इस ग्रंथ का गौरव इसी से सिद्ध है कि इस पर ब्रज और गुजराती भाषा में टीकाएँ लिखी गयी हैं।

हरिदास वालंद––विद्वान् पौराणिकों के लिए खंभात बहुत प्रसिद्ध हो गया था। विष्णुदास के बाद लगभग एक शताब्दी तक वहाँ बराबर आख्यान लिखे जाते रहे। विष्णुदास से प्रभावित होकर खंभात के हरिदास वालंद ने 'ध्रुवाख्यान' नामक एक आख्यान की रचना की।

लक्ष्मीदास––मुहमदाबाद के लक्ष्मीदास ने इन ग्रंथों की रचना की––

१. गजेन्द्रमोक्ष––९ छोटे कड़वों में,
२. चन्द्रहासाख्यान––४५ कड़वों में और
३. दशम स्कंध––१९५ कड़वों में।

लक्ष्मीदास के कुछ अपूर्ण ग्रंथ भी मिले हैं––कर्ण पर्व और कुछ काव्य, जिनमें से एक मालिनीवृत्त में है।

हरिदास––अहमदाबाद के समीप बारेजा के निवासी हरिदास रैक्व ने ८४ कड़वों में महाभारत का आदि पर्व लिखा। इनकी रचनाएँ नाकर तथा शेधजी की अपेक्षा कम अच्छी समझी जाती हैं।

वासणदास––इन्होंने दो छोटे काव्य लिखे हैं––एक है 'हरि चुआक्षरा' अर्थात् हरि-सम्बन्धी दोहरे, यह १०३ कड़ियों में है और दूसरा है, 'कृष्ण वृन्दावन राधा रास', यह शार्दूल विक्रीड़ित वृत्त में है। इनमें छन्द-दोष बहुत अधिक है।

वजियो––इन्होंने ५ कड़वों में सीता-स्वयंवर का वर्णन करते हुए 'सीता वेल'

नाम का काव्य लिखा है। इनका एक दूसरा काव्य 'रणजंग' है, जो १७ कड़वों में है और जिसमें वीर-रस प्रधान है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमानंद ने इस काव्य को पढ़कर ही अपना 'रण यज्ञ' लिखा, जिसमें मुख्य भाव को उसने और अधिक सँवार दिया है। वजियो का तीसरा काव्य 'सीता-सन्देश' है, जिसमें हनुमान के द्वारा सीताजी श्रीराम को अत्यन्त करुण सन्देश भेजती हैं।

काशीसुत शेधजी—ये खंभात के रहनेवाले बंधारो थे। इन्होंने सभापर्व, विराटपर्व, रुक्मिणीहरण, हनूमान-चरित्र, अम्बरीष-कथा एवं प्रह्लादाख्यान की रचना की है। इन्होंने पौराणिकों से अनेक महाकाव्यों तथा पुराणों की कथाएँ सुनी थीं। इनके ग्रंथ अप्रकाशित हैं। मांडण के बाद ये दूसरे बंधारो कवि थे। विराटपर्व एवं सभापर्व के इनके कुछ वर्णन बड़े प्रभावोत्पादक हैं।

काहान—उमरेठ के काहान ने दो काव्यों की रचना की है—एक है 'ओखाहरण', जो ३३ कड़वों में है। इसी विषय पर जनार्दन तथा प्रेमानन्द के काव्य उत्कृष्ट हैं। इनका दूसरा काव्य है 'एकादशी माहात्म्य', जिसमें एकादशी की कथाएँ वर्णित हैं।

संत—अपने पूर्ववर्ती भीम तथा परवर्ती वल्लभ भट्ट की भाँति संत कवि ने सम्पूर्ण भागवत को संक्षिप्त किया है। इनके गुरु एक नागर ब्राह्मण वृन्दाबन थे। दशमस्कंध को तो इन्होंने बड़े विस्तार में, किन्तु अन्य स्कंन्धों को बहुत संक्षेप में लिखा है। ग्रंथ से कवि की प्रतिभा का कुछ आभास मिलता है।

लोककथा साहित्य

नरपति ने २ लोककथाएँ लिखी हैं, एक है १३७ चौपाइयों की 'नन्दबत्तीसी' और दूसरी है ८०६ दोहा-चौपाइयों की 'पंचदंड'; बीच-बीच में गद्य का अंश भी है और कहीं-कहीं संस्कृत के श्लोक हैं। इनकी भाषा में प्रसाद गुण है। इनका रौद्र रस-वर्णन बड़ा आकर्षक है। कवि ने वामाचार की महान् साधनाओं का भी अनावरण किया है। यत्र-तत्र आया हुआ गद्य आलंकारिक नहीं, वरन् सरल है। कवि संस्कृत का विद्वान् जान पड़ता है। यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने जैन कथा-साहित्य का अध्ययन किया है, किन्तु वह अजैन कवि

मालूम होता है। असाइत और भीम के बाद नरपति ने अजैनों में इस लोककथा-साहित्य को जारी रखा।

ज्ञानाचार्य—इन्होंने गुजराती में दो अच्छे काव्यों की रचना की है—'बिल्हण पंचाशिका' और 'शशिकला पंचाशिका'। ये बिल्हण की संस्कृत पंचाशिका पर आधृत हैं। इस विषय में मतभेद है कि कवि ज्ञानाचार्य जैन थे अथवा अजैन। कुछ भी हो, ये संस्कृत अच्छी जानते थे और बिल्हण के ग्रंथ को आधार बनाकर इन्होंने दो अच्छे काव्य दिये हैं।

गणपति—ये एक अजैन लोकवार्ताकार हैं। सन् १५१८ में इन्होंने असाइत, भीम, नरपति तथा अन्य कवियों की भाँति ८ अंगों तथा २५०० दोहों में 'माधवानल काम कन्दला दोग्धक' की रचना की है। ये नरसा के पुत्र और वल्मीक कायस्थ थे। ऐसा लगता है कि यह काव्य आमोद के शासक के पुत्र को प्रसन्न करने के लिए इन्होंने लिखा है। इसका आधार 'मयण पुराण' नाम का एक ग्रंथ है, जो प्रसिद्ध नहीं है। इसी विषय को लेकर एक जैन साधु कुशल लाभ ने 'माधव काम कुंडलारास' लिखा है। शामल ने भी अपनी 'सिंहासन बत्तीसी' में इसे २६ वीं कथा के रूप में रखा है। इन तीनों में गणपति की रचना उत्तम है। इसमें शृंगाररस की प्रधानता है, किन्तु साथ ही इसमें आचरण की पवित्रता है। इसमें अलंकारों का सौन्दर्य है। इसमें एक ऐसी बारहमासी है, जो एक पुरुष अपनी पत्नी के वियोग में गाता है, जो प्रथा के विपरीत है।

मधुसूदन व्यास—ये एक ब्राह्मण कवि थे। इन्होंने 'हंसावती विक्रम-कुमार-चरित्र' नामक लोकवार्ता की रचना की है। ये खेडा जिले के रहनेवाले मालूम होते हैं। इनका ग्रंथ ८२५ कड़ियों का है, जिसमें शब्द और अर्थ दोनों प्रकार के अलंकारों की भरमार है। यह असाइत के 'हंसाउली' से श्रेष्ठ है और प्रेमानंद के काव्य के समकक्ष माना जाता है। इन्होंने संस्कृत के १७ श्लोक भी लिखे हैं, जो दोषपूर्ण हैं। गुजराती पर इनका अच्छा अधिकार था। इस कथा में हंसावती विक्रमादित्य के साथ विवाह करती है। 'हंसाउली' की हंसावती पैठण के राजा नरवाहन से विवाह करती है। दोनों कथाओं में यह अन्तर है।

वछराज—ये 'रसमंजरीनी वार्ता' के रचयिता हैं, जो ६०५ कड़ियों में है। एक व्यापारी प्रेमराज व्यापार के लिए विदेश जाता है, तब उसकी पत्नी उससे 'स्त्रीचरित्र' लाने को कहती है। नरपति और गणपति के लोकवार्ता ग्रंथों से इसकी समानता सहज ही हो सकती है। कवि अजैन प्रतीत होता है। इसने बड़ी कुशलता से स्त्री के विभिन्न चरित्रों का वर्णन किया है।

जैन कवि—१६वीं शताब्दी में लावण्य समय ने अनेक ग्रंथों की रचना की है और ऐसा प्रस्ताव भी किया गया है कि इस काल के जैन साहित्य को 'लावण्य समय-युग' की संज्ञा दी जाय। इनके अनेक ग्रंथों में ऐतिहासिक रचना 'विमल प्रबंध' भी है, जिसकी रचना सन् १५१२ में हुई थी। इस ग्रंथ में कवि ने ९ खंडों में श्रावक विमलशाह—पाटणनरेश भीमदेव प्रथम के मंत्री—का जीवन चरित्र लिखा है। इस ग्रंथ का महत्त्व काव्य की अपेक्षा तत्कालीन समाज तथा श्रीमाल के जैनों के वर्णन की दृष्टि से अधिक है।

अनेक जैन कवियों ने पुराणों से भी कथावस्तु लेकर काव्य-ग्रंथों की रचना की है। इसी समय अनेक रास, चरित्र, विवाहलो, पवाड़ों इत्यादि की रचना हुई। अधिकतर नेमिनाथ, स्थूलिभद्र और कुमारपाल के जीवन पर रचनाएँ हुईं। लोककथा-साहित्य में नन्दबत्तीसी चौपाई (सिंह कुशल द्वारा), आराम शोभा (विनय समुद्र द्वारा), कर्पूरमंजरी (मतिसार), माधवानल-काम कुंडला-रास और मारु ढोला चौपाई (कुशललाभ) तथा सिंहासन-बत्तीसी, वैताल पंचविंशतिरास-जैसे ग्रंथ हमें मिलते हैं, साथ ही पंचतंत्र पर आधृत पंचोपाख्यान तथा शुक बहोतेरी भी रचे गये। नयसुन्दर ने 'रूपचंद्र कुंवररास' नामक काव्य की रचना की, जिसमें एक वणिकपुत्र रूपचन्द्र और उज्जयिनी के गणसेन की पुत्री सोहाग की प्रेम कथा का वर्णन है। उस युग की अनेक लोककथाओं से यह प्रेमकथा उत्तम है। काव्य में अलंकारों का उपयोग है और कथा बड़े प्रभावशाली ढंग से कही गयी है। नयसुन्दर का एक दूसरा ग्रंथ 'नल-दमयन्ती-रास' भी है।

अध्याय ८

सत्रहवीं शताब्दी

मध्यकालीन साहित्य की दृष्टि से १७ वीं शताब्दी अधिक सफल और सम्पन्न है। इसी शताब्दी में अखो, प्रेमानंद और शामल-जैसे कवि हुए। इनमें से कुछ तो १७ वीं शताब्दी तक पहुँच गये। यह मुगल-शासन का काल था। इस समय गुजरात में शांति और सम्पन्नता थी, इसीलिए इस काल में प्रथम कोटि के साहित्य की रचना हुई। अखो ने अपनी उत्तम दार्शनिक रचनाओं तथा सशक्त भाषा से गुजराती का भांडार भरा। मध्यकालीन गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि प्रेमानंद हैं, जिन्होंने उत्तम रचनाएँ और विभिन्न रसों से पूर्ण कलात्मक आख्यान दिये। शामल ने अनेक लोकवार्ताएँ लिखीं, जो जनता में प्रचलित हुईं। गुजराती के मध्यकालीन साहित्य का इसे स्वर्णयुग कहा गया है; यह सर्वथा उचित है।

ज्ञान साहित्य

इस क्षेत्र में हमें नरसिंह मेहता, भीम और मांडण बंधारो की रचनाओं का परिचय मिल चुका है। धनराज ने भक्ति-ज्ञान की कुछ कविताएँ की हैं, जिनमें वेदान्त के विभिन्न विभागों का—विशेषकर वैराग्य पक्ष का—वर्णन है। एक प्रसिद्ध दोहे के अनुसार नरहरि अखो, गोपाल और बूटो अथवा बूटियो के समकालीन थे। ये बड़ौदा में हुए और हस्तामलक, ज्ञानगीता, वासिष्ठसारगीता, भगवद्-गीता, प्रबोधमंजरी, आनन्दरास, गोपी-उद्धव-संवाद, कक्को, भक्तमंजरी, संतना लक्षण एवं हरिलीलामृत की रचना इन्होंने की। इन्होंने गीता के ७०० श्लोकों को ११२६ पदों में उद्धृत किया है, और कुछ पंक्तियों का वर्णन बड़े विस्तार में किया है। वासिष्ठसारगीता में शांकर वेदान्त के सिद्धान्तों की सुन्दर व्याख्या हो जाती है। यद्यपि ये ज्ञानी कवि थे, फिर भी भक्ति में अपने विश्वास को भी इन्होंने प्रकट किया है। ज्ञानमार्गी कवियों में अखो सर्वोत्तम

हैं। अन्य ज्ञानी कवियों की अपेक्षा इनकी रचनाओं में अनुभूति के स्वर अत्यन्त मुखर हैं। परंपरा बताती है कि अखो, गोपाल, नरहरि और बूटियो एक ही गुरु के शिष्य थे। किन्तु नरहरि ने तो नहीं, गोपाल ने अपने गुरु का नाम सोमराज बताया है। अखो ने अपने गुरु के लिए ब्रह्मानन्द शब्द का प्रयोग किया है, जो वाराणसी में रहते थे, किन्तु अन्य कोई प्रमाण नहीं मिलता, अतः कुछ विद्वान् इसे पर्याप्त प्रमाण नहीं मानते। प्रबोध मंजरी और संतना लक्षण नरहरि के कुछ बड़े ग्रन्थ हैं।

धनदास––धनदास अर्जुनगीता के रचयिता हैं। यद्यपि इस काव्य का कलेवर छोटा है, किन्तु प्रसिद्धि बहुत अधिक है––विशेषकर ग्रामीणों में, जो प्रायः इसका पाठ करते रहते हैं। कवि ने अत्यन्त सादी भाषा में गीता का सार दे दिया है। ये धंधूका के रहनेवाले थे।

गोपालदास––ये नांदोद के अडालजा वणिक थे। इनके गुरु सोमराज थे। इन्होंने अहमदाबाद में रहकर ज्ञानप्रकाश गौर गोपालगीता की रचना की। ये अखो के समकालीन माने जाते हैं। अहमदाबाद में एक ही संवत् में अक्षयगीता और गोपालगीता––दो स्वतन्त्र काव्यों की रचना हुई। गोपालदास ने केवलाद्वैत के अनुसार भी विषय का विवेचन किया है। कुछ पदों में उनकी काव्य-क्षमता का पता चलता है।

बूटियो––परम्परा के अनुसार बूटियो भी अखो के समकालीन तथा उसी गुरु के शिष्य माने जाते हैं। इनके बहुत थोड़े पद प्राप्त हैं, किन्तु जो कुछ भी इन्होंने लिखा है, उसमें वेदान्त के विचार निहित हैं। इसीलिए वेदान्ती कवियों में इनकी गिनती की गयी है। संभव है, इन्होंने और भी कुछ लिखा हो, किन्तु वह प्राप्त नहीं है।

रामभक्त––इन्होंने भगवद्गीता और भागवत पर लिखा है। इनका यथार्थ काल ज्ञात नहीं है; संभवतः भगवतगीता पर रचना करनेवाले ये प्रथम कवि थे। गीता के अतिरिक्त इनकी रचनाएँ हैं––कपिलमुनि आख्यान, योग-वासिष्ठ तथा भागवत का ग्यारहवाँ स्कन्ध। इनका समय मांडण और आखा के बीच का है। इन्होंने कुछ दार्शनिक ग्रंथों का अच्छा रूपान्तर किया है।

अखो––अखो सर्वोत्तम वेदान्ती कवि थे। ये जाति के परजिया सोनी

(स्वर्णकार) थे और इनका जन्म-स्थान जेतलपुर था। इनका काल सन् १५९१ से १६५६ तक माना जाता है। इन्होंने ५३ वर्ष की अवस्था में सन् १६४१ से साहित्य-साधना आरंभ की। इनमें कवि कहलाने की इच्छा नहीं थी। जन्म से ही ये वैष्णव थे। ऐसा कहा जाता है कि बचपन में ही इन्होंने वल्लभ संप्रदाय के आचार्य गोस्वामी गोकुलनाथ जी से दीक्षा ले ली थी। बाद के जीवन से ऐसा लगता है कि इन्हें जीवन में बड़े कटु अनुभव हुए थे। परंपरा बताती है कि इनके कुछ प्रिय संबंधियों—विशेषकर बहन—की मृत्यु से इन्हें बड़ा आघात पहुँचा। आगे यह भी कहा गया है कि ये अपने पड़ोस की किसी महिला को बहन की तरह मानते थे। वह अपना हार बनवाने के लिए इनके पास ३०० रुपये का सोना ले आयी। प्रेम के कारण इन्होंने १०० रुपये का सोना अपनी ओर से मिला दिया। किन्तु इस मान्यता के कारण कि सोनार नियमतः बेईमान होते हैं, उस महिला ने सन्देहवश किसी दूसरे सोनार से हार को तुड़वाकर जाँच करायी। जब उसे विश्वास हो गया कि इसमें सोना कम नहीं, वरन् अधिक ही है, तो वह फिर अखो के पास उसे ठीक कराने को ले आयी। यह सारी बात जानकर और अपने ऊपर बेईमानी का झूठा सन्देह हुआ समझकर अखो को बड़ा गहरा आघात और क्षोभ हुआ।

इसी प्रकार की एक और घटना उनके साथ घटी बतायी जाती है, जब वे टकसाल के प्रधान अधिकारी थे। उन पर सोने में खोट मिलाने का झूठा संदेह करके उन्हें बंदी बनाया गया, किन्तु बाद में जब वे निरपराध सिद्ध हुए, तब उन्हें मानपूर्वक छोड़ दिया गया। कहा जाता है कि उनकी पत्नी भी बड़ी झगड़ालू थी। इन कटु अनुभवों ने उनकी मानसिक स्थिति में काफी परिवर्तन किया। दीक्षा तो उन्होंने पहले ही ले ली थी, किन्तु उससे सन्तुष्ट न होकर वे तीर्थयात्रा को निकल पड़े। वे वाराणसी गये और अपने को छुपाकर एक संन्यासी का उपदेश सुना, जो उनके एक शिष्य को दिया जा रहा था। एक वर्ष तक वे अज्ञात रूप से उस संन्यासी का उपदेश सुनते रहे। अन्त में अखो ने अपना वास्तविक परिचय दिया। संन्यासी जी उनकी लगन देखकर बहुत प्रसन्न हुए। बाद में उन्हींके साथ तीन वर्षों तक रहकर अखो ने शांकर वेदान्त के अत्यन्त कठिन ग्रंथों का पूरा अध्ययन कर लिया।

अखो ने चार बार ब्रह्मानंद के नाम का उल्लेख किया है। एक स्थान पर तो ब्रह्मानन्दस्वामी के विषय में लिखा है। श्री नर्मदा शंकर मेहता का अनुमान है कि शब्द 'ब्रह्मानंद' में श्लेष अलंकार है, जो संभवतः उनके गुरु का नाम था। ऐसा भी सोचा जाता है कि ब्रह्मानंद वे भी हो सकते हैं, जिन्होंने मधुसूदन सरस्वती के ग्रंथ 'अद्वैतसिद्धि' पर गौड ब्रह्मानंदी टीका लिखी है। किन्तु इस मत के विरुद्ध होने वाले कई विद्वान् इन ब्रह्मानंद को अखो के गुरु मानने में सन्देह करते हैं। ऐसे लोग ब्रह्मानंद का अर्थ केवल ब्रह्म का आनन्द ही लेते हैं। कुछ भी हो, इतना तो अवश्य कहा जायगा कि किसी बहुत ही योग्य गुरु की कृपा अखो को प्राप्त थी और उनके चरणों में बैठकर जो कुछ वेदान्त अखो ने सीखा, वह बड़ी सबलता के साथ अनेक घरेलू उदाहरण देते हुए उन्होंने गुजराती में लिखा है। कुछ लिखने की ही दृष्टि से उन्होंने केवल वेदान्त के सिद्धान्तों को ही नहीं लिखा, वरन् केवलाद्वैत को भली-भाँति समझकर उसे अनुभव की भाषा में व्यक्त किया है। अखो और मांडण बंधारो में अनेक बातें समान हैं। कथावस्तु की समानता के अतिरिक्त अखो ने मांडण की भाँति षटपदी चौपाई का भी उपयोग किया है। अखो केवल नीति-धर्म के उपदेशक ही नहीं हैं, उनमें काव्य-प्रतिभा भी है। अखो की-सी आत्मानुभूति, उनकी-सी सशक्त भाषा और उनका-सा आत्म-विश्वास मांडण में नहीं ।

अखो ने सदैव बड़ी यथार्थता के साथ केवलाद्वैत के सिद्धान्तों का उल्लेख किया है, साथ ही भक्ति को भी उन्होंने पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया है। एक स्थल पर उन्होंने कहा है कि भक्ति एक पक्षी है तथा ज्ञान-वैराग्य उसके दोनों पंख हैं। भागवत अध्याय १–४५ में भक्ति को ज्ञान-वैराग्य की माता कहा गया है। भागवत एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसने केवलाद्वैत सिद्धान्त को कट्टरता से माननेवालों को भी प्रभावित किया है। ज्ञानेश्वर-जैसे महाराष्ट्र संतों ने भी भक्ति को महत्त्वपूर्ण बताया है, यद्यपि वे प्रधानरूप से मायावाद को माननेवाले हैं। इसी प्रकार मधुसूदन सरस्वती––केवलाद्वैत सिद्धान्त के स्तंभों में से एक––भी बहुत बड़े कृष्ण-भक्त थे। स्वयं शंकराचार्य ने भी भक्तिपूर्ण सुन्दर स्तोत्रों की रचना की है। वस्तुतः गीता ७–१६ में कहे हुए आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी भक्तों में से वे ज्ञानी-भक्त को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। गीता

१८–५५ की व्याख्या करते हुए शंकराचार्य अपने गीता-भाष्य में कहते हैं कि ज्ञानी-भक्त की चतुर्थ भक्ति—जो गीता ७–१६ में वर्णित है—ज्ञान-निष्ठा ही है। दूसरे शब्दों में शंकराचार्य के अनुसार ज्ञानी की भक्ति की चरमावस्था ज्ञान-निष्ठा है; अतः केवलाद्वैत मत के सच्चे उपासक अखो की यह मान्यता बहुत ठीक है कि भक्ति परम आवश्यक है। किन्तु इस प्रकार की भक्ति का तात्पर्य वह भक्ति नहीं है, जो अनेक वैष्णव-आचार्यों द्वारा निरूपित है। उनकी दृष्टि में तो भक्ति ही लक्ष्य और ज्ञान उसका सहायक या गौण है तथा उपास्य-उपासक भाव से अथवा प्रभु-लीला में सम्मिलित होकर अविरल भक्ति की प्राप्ति ही उनका चरम ध्येय होता है—इसमें द्वैतभाव सन्निविष्ट है। एक वैष्णव भक्त अपने उपास्यदेव में पूर्णतः लीन हो जाना नहीं चाहता। इसके विरुद्ध मधुसूदन सरस्वती भागवत १–६–१७ को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि सर्वोत्तम भक्ति वही है, जिसमें भक्त अपने भगवान् में पूर्णतः लीन हो जाता है और जहाँ द्वैतभाव नहीं रहता। अखो द्वारा वर्णित भक्त के लक्षण वही हैं, जो भागवत ११–२९–८ से २३ तक, ११–३–३२, ११–२–४५ और ११–१२–१२ से १५ तक में कहे गये हैं। अपने दर्शन के लिए अखो ने केवलाद्वैत को पूर्णतः स्वीकार किया है। वस्तुतः अखो ने शंकराचार्य के पूर्ववर्ती गौड़पाद-जैसे केवलाद्वैत के लेखकों की रचनाएँ भी पढ़ीं और शंकराचार्य के बाद के केवलाद्वैत सिद्धान्तियों की भी, जैसे वार्तिककार का आभासवाद तथा संक्षेप शारीरिककार का प्रतिबिम्बवाद। अखेगीता के ५–२ पद में अखो ने गौडपाद का दृष्टिसृष्टिवाद प्रस्तुत किया है। अखेगीता के ३७-९ पद में उन्होंने सापेक्षवाद का सिद्धान्त बड़ी बुद्धिमानी से रखा है। इसमें वे कहते हैं कि ब्रह्मानंद की चरम सत्यता में जगत् मिथ्या है अर्थात् पारमार्थिक सत्ता में व्यावहारिक सत्ता मिथ्या है। अखेगीता में अखो के केवलाद्वैत दर्शन की विस्तृत व्याख्या के लिए कृपया "अखेगीतानुं तत्त्वचिंतन" शीर्षक मेरा निबंध देखिए, जो द्वादश गुजराती साहित्य परिषद् सम्मेलन की रिपोर्ट में 'धर्म अने तत्त्वज्ञान विभाग' के अन्तर्गत पृष्ठ १ से २२ में प्रकाशित है।

अखो की रचनाएँ ये हैं—पंचीकरण, गुरु शिष्य संवाद, चित्तविचार-संवाद, कैवल्यगीता, अनुभवबिन्दु, अखेगीता और ४७६ छप्पय। उन्होंने

हिन्दी में ब्रह्मलीला भी लिखी है। इनके अतिरिक्त कुछ और भी ग्रंथ अखो के बताये जाते हैं। किन्तु वे ही इनके रचयिता हैं, इस पर संदेह है। इन्होंने बराबर केवलाद्वैत की ही व्याख्या की और इस पर अड़े रहे। इन्होंने रचना-कार्य ५३ वर्ष की अवस्था से आरंभ किया, जब कि इनकी बुद्धि परिपक्व हो चुकी थी।

अखो ने अपने छप्पयों में अपना सारा व्यावहारिक ज्ञान भर दिया है। उन्होंने पाखंडियों की घोर भर्त्सना की है और उस समय की सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों का विरोध सशक्त, कटु और व्यंग्यपूर्ण भाषा में किया है। उन्होंने जानबूझकर स्वेच्छा से सबल और आघात पहुँचानेवाली भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने अनेक कहावतों और घरेलू मुहावरों को भी स्थान दिया है। परिपक्व अवस्था में लिखा हुआ 'अखेगीता' उनका सर्वोत्तम ग्रंथ है। कडवा संख्या ४० में उन्होंने साधन चतुष्टय का वर्णन किया है। उनका कहना है कि जो इस ग्रंथ को ध्यानपूर्वक सुनेगा और मन-वचन-कर्म से इसके अनुसार चलेगा, वही अधिकारी है। इसमें ८ बातों का वर्णन है—ज्ञान भक्ति, वैराग्य, माया-निरीक्षण, दृष्टि, जीवन्मुक्त चिह्न, महामुक्त चिह्न तथा पुष्टि (भगवत्कृपा)। अखो कहते हैं कि जहाँ तक इस ग्रंथ के लिखने का संबंध है, मैं तो केवल निमित्त हूँ—एक वाद्य हूँ, जिसे बजानेवाला पूर्णब्रह्म है। ग्रंथ का प्रयोजन बताते हुए वे आगे कहते हैं कि यह संसार रूपी मोह-रात्रि के निवर्तन के उद्देश्य से लिखा गया है। कड़वा ८—११ में उन्होंने घर के मुंडेरे से चिल्लाते हुए कहा है—सुनो, लोगों सुनो, यदि तुम माया का अन्त चाहते हो तो यह केवल आत्मत्व के बोध से ही संभव है और इसके लिए सर्वोत्तम साधना परमात्मा, गुरु तथा संतों की सेवा है। अखो का स्पष्ट मत है कि बिना आत्म-ज्ञान के मुक्ति नहीं मिल सकती और इस ज्ञान के लिए—जो केवल सांसारिक जानकारी या बौद्धिक चिंतन नहीं है, किन्तु अनुभव अथवा साक्षात्कार है—भगवत्कृपा की आवश्यकता होती है, और उस भगवत्कृपा के लिए भक्ति परम आवश्यक है। इस प्रकार उन्होंने भक्ति की महिमा स्थापित की है। भागवत में पुष्टि की व्याख्या भगवत्-अनुग्रह के रूप में की गयी है।

'अनुभव-बिन्दु' में अखो ने केवलाद्वैत वेदान्त का सार दिया है। उनके

पहले के काव्य पंचीकरण आदि में यह शास्त्रीय विषय अनेक उदाहरण देकर अच्छी तरह समझाया गया है। अखो ने हिन्दी पद भी बहुत सबल लिखे हैं। उनके बाद उनके कुछ शिष्यों ने अपनी गुरु-परम्परा को बनाये रखा। व्यंग्य बाण छोड़ते समय अखो का क्रोध दैवी होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि आगे चलकर अखो ने केवलाद्वैत को त्यागकर अपना एक स्वतंत्र सिद्धान्त व्यक्त किया है, जो शंकराचार्य और वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों का मिश्रण है। किन्तु मेरे मत से ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि शांकर सिद्धान्त को मानने वालों ने भी भक्ति को उचित महत्त्व दिया है और जहाँ तक केवलाद्वैत - सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, अखो के सभी ग्रन्थों में वे बराबर पाये जाते हैं।

मध्यकालीन कवियों में अखो सर्वोत्तम प्रतिभासम्पन्न कवि हैं। वे नरसिंह और दयाराम की भाँति अपने अनुभवों पर ही कुछ कहते हैं, किन्तु पिछले दोनों में बुद्धि-पक्ष की अपेक्षा हृदय-पक्ष अधिक है। बौद्धिक पक्ष प्रबल होते हुए भी अखो बड़े विश्वास के साथ सशक्त भाषा में अनुभव प्रकट करते हैं। अखेगीता का अंतिम पद अद्‌भुत है। जिसमें उपनिषद्‌कालीन संतों की भाषा की दैवी झलक है। तत्त्वविचार संबंधी काव्य में अखो विलक्षण और अद्वितीय हैं।

भाणदास—इन्होंने शंकराचार्य-हस्तामलक-संवाद लिखा है तथा प्रह्लादाख्यान, अजगर-अवधूत-संवाद, अनेक गरबों, नृसिंहजीनी हमची, हनुमाननी हमची, बारहमासा एवं कुछ पदों की रचना की है। इनका झुकाव ज्ञानमार्ग की ओर था। गरबा लेखक की दृष्टि से इनकी ख्याति अधिक है। सबसे पहले इन्होंने ही 'गरबी' शब्द का उपयोग किया। ये वेदान्ती कवि हैं, और महा माया-रास का वर्णन किया है।

देवीदास—इन्होंने भागवत के दशम स्कंध पर आधृत 'रुक्मिणी-हरण' की रचना ३० कड़वों में की है, साथ ही रास पंचाध्यायी और भागवत के अन्य अंशों पर भी इनकी रचनाएँ हैं।

शिवदास—इन्होंने 'परशुराम आख्यान' तथा 'बालचरित्र' जैसे अनेक आख्यानों की रचना की है। अभी तक इनकी १२ रचनाएँ देखने में आयी हैं। इन्होंने पद्यवार्ताएँ भी लिखी हैं, जैसे हंसावती और कामावती।

कृष्णदास---शिवदास के पुत्र कृष्णदास ने नरसिंह मेहता के जीवन से संबंधित 'मामेरु' और 'हुंडी' प्रसंगों पर रचना की है। विष्णुदास के बाद फिर कृष्णदास ने नरसिंह पर काव्य किया है। 'मामेरु' के एक और रचयिता गोविन्द हैं; जिनका काव्य कृष्णदास से भी अधिक विशाल है।

अविचलदास ने भागवत के छठवें स्कंध तथा आरण्यक पर्व पर रचना की है। सौराष्ट्र के दिव-निवासी परमाणंददास ने ३१३४ कड़ियों और १२ वर्गों में 'हरिरस' नामक काव्य लिखा है जो भागवत के १०वें तथा ११वें स्कंध पर आधृत है। इन्होंने उद्धव-आगमन तो बड़े विस्तार में लिखा है, किन्तु रास-क्रीड़ा को यों ही चलता कर दिया है।

भाउ ने अश्वमेध, द्रोण तथा उद्योग पर्वों पर रचना की है और पांडव-विष्टि भी लिखा है। माधव के पुत्र तुलसी ने ध्रुवाख्यान लिखा है। सूरत के हरिराम बभ्रुवाहनाख्यान, सीता-स्वयंवर एवं रुक्मिणीहरण के रचयिता हैं। पोठा बारोट ने मोरध्वजाख्यान एवं सुधन्वाख्यान लिखा है। मुरारि ने ४० कडवों में ईश्वर-विवाह की रचना की है। नरसिंह नवल ने ६७ कड़वों में ओखाहरण लिखा है। सुरभट्ट ने महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व का सारांश २२ कडवों में रचा है। ये रैक्व ब्राह्मण और नारायण के पुत्र थे। सूरत के कंसारा, मोरा के पुत्र गोविन्द ने सुधन्वाख्यान लिखा है, जिसमें करुण और वीररस का अच्छा वर्णन है।

विश्वनाथ जानी---ये पाटण के निवासी थे और प्रेमपचीसी, सगाळ चरित्र, मोसालाचरित्र, मामेरु और चातुरी चालीसी के लेखक हैं। इनसे पहले विष्णुदास, कृष्णदास तथा गोविन्द ने नरसिंह मेहता के जीवन पर रचनाएँ की थीं, किन्तु विश्वनाथ ने घटनाओं को बड़े विस्तार में एवं अधिक कुशलतापूर्वक लिखा है। इनका सगाल चरित्र एक आख्यान है, जो शिवपुराण से लिया गया है और २३ कडवों में है। इसमें करुणरस प्रधान है। इनका मोसाळुं प्रेमानंद की तुलना में आ सकता है। प्रेमपचीसी में २५ पद हैं, जिनमें उद्धव का संदेश कहा गया है, जो भागवत के अनुसार है। चातुरी चालीसी नरसिंह मेहता की ही भाँति है, जिसमें कृष्ण और गोपियों का शृंगार वर्णित है।

मुकुन्द––ये द्वारका के गुगली ब्राह्मण थे। इन्होंने अपनी दो कविताओं, गोरक्षचरित्र और कबीरचरित्र में हिन्दी का भी उपयोग किया है। गोरक्ष-चरित्र ९ तथा कबीरचरित्र १५ कडवों में है। पहली रचना में तो हिन्दी का अंश थोड़ा है, किन्तु दूसरी में बहुत अधिक है। केशवानंद स्वामी के संपर्क में आने पर इन्होंने नाभाजी के भक्तमाल की भाँति संतों की जीवनियाँ लिखने का निश्चय किया। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने ऐसे ८ चरित्र लिखे। नाथ संप्रदाय के गोरक्ष का जीवन चरित्र इन्होंने लिखा और कबीर का भी। इन दो काव्यों में ज्ञान तथा योग की प्रधानता होना स्वाभाविक है, क्योंकि चरित्र नायक ही इसी कोटि के हैं।

रतनजी––ये गुजरात के बाहर नासिक के पास बागलाण में रहते थे। इन्होंने 'द्रौपदीचीरहरण', 'संगाल शा' और 'विभ्रंशी राजानुँ आख्यान' की रचना की है। सगालशा में इनका एक पद २१ कड़ियों का है, जो धीरा की काफी शैली में है। विभ्रंशी आख्यान में १३ कड़वे हैं, जो अश्वमेध पर्व की कथा पर आधृत हैं, और जिसमें अद्भुत तथा वीर रस प्रधान हैं। यह ध्यान देने की बात है कि गुजरात के बाहर रहते हुए भी इन्होंने ३ आख्यानों की रचना की है।

प्रेमानंद––१७वीं शताब्दी में बहुत अधिक आख्यान लिखे गये, जो महा-काव्यों एवं पुराणों से लिखे गये थे। ये बहुत अधिक प्रसिद्ध हुए और इनके द्वारा भक्ति का अच्छा प्रचार हुआ, साथ ही लोगों को इनसे नैतिक शिक्षाएँ तथा काव्य-मनोरंजन प्राप्त हुआ। परिमाण और श्रेष्ठता, दोनों दृष्टियों से प्रेमानंद इस युग के सभी कवियों में उत्तम ठहरते हैं। इतना ही नहीं, ये मध्यकालीन गुजराती साहित्य में भी सर्वश्रेष्ठ रचनाकार हैं। ये महाकवि, जो अपने को भट कहते हैं, बड़ौदा के नानोरा चतुर्वेशी ब्राह्मण थे। इनकी आयु बड़ी लंबी सन् १६३६ से १७२४ तक की थी। कुछ के मत से तो इनका अन्त १७३४ में हुआ था। प्रेमानंद जब बालक थे, तभी इनके पिता कृष्णराम का देहान्त हो गया था, अतः इनका लालन-पालन इनकी मौसी के यहाँ नन्दरबार में हुआ। जीविका के लिए ये नन्दरबार, सूरत और बड़ौदा में रहे। परंपरा बताती है कि १४ वर्ष की अवस्था तक ये निरक्षर थे, किन्तु अपनी सेवा से इन्होंने एक

साधू को प्रसन्न किया, जिसने इन्हें गुजराती का अच्छा कवि होने का वरदान दिया; साथ ही यदि ये साधु के बताये हुए निश्चित दिन पर उससे मिलते तो संस्कृत के भी अच्छे कवि हो जाते। दूसरे मत के अनुसार ये जब संन्यासी रामचरण हरिहर, जो पाटण के नागर थे, के संपर्क में आये, तब शिक्षित हुए। प्रेमानंद ने उनके साथ भारत के विभिन्न भागों में भ्रमण किया और हिन्दी में लिखना आरंभ किया। ऐसी भी किंवदन्ती है कि उन्होंने प्रण किया था—जब तक मैं गुजराती भाषा का स्तर ऊँचा करके इसे उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित न कर दूँगा, तब तक सिर पर साफा न बाँधूँगा।

इन्होंने अपना पहला आख्यान 'लक्ष्मणाहरण' सं० १७२० में लिखा। उस समय ये बड़ौदा में थे और अपने मित्र माधवशेठ की प्रेरणा से यह काव्य लिखा था। तीन वर्ष बाद इन्होंने २९ कडवों में 'ओखाहरण' की रचना की। सं० १७३० में ये गोदावरी-यात्रा पर निकले और ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने मराठी कवि वामन पंडित की कविताएँ पढ़ीं। ऐसी मान्यता भी है कि इनके समय के पौराणिक ईर्ष्यावश इनसे झगड़ा बहुत करते थे, क्योंकि महाकाव्यों तथा पुराणों के प्रसंगों को लेकर इन्होंने सफलता एवं कुशलता से उनका वर्णन किया है। ऐसा लगता है कि इनका संस्कृत-ज्ञान अच्छा था। महाकाव्यों तथा पुराणों के अत्यन्त रुचिकर प्रसंगों को इन्होंने चुना है और उनको अपनी प्रतिभा के बल से अधिक कलात्मक बना दिया है। इनके आख्यान उस समय के समाज के लिए बड़े शिक्षाप्रद थे। उस समय जनता में शिक्षा का अभाव था, किन्तु धर्म की ओर झुकाव था। लोगों ने प्रेमानंद के आख्यानों का, जिनमें अनेक रस होते थे और पौराणिक पात्रों में कुछ गुजरातीपन सम्मिलित कर दिया गया था, स्वागत बड़े उत्साह से किया। संगीत वाद्यों के साथ ये आख्यान आधी-आधी रात तक चलते थे, जो लोगों को आनंद प्रदान करके उनका मनोरंजन करते थे। इस प्रकार प्रेमानंद को आख्यानों द्वारा लोगों में धार्मिक तथा नैतिक संस्कार भरने का केवल यश ही नहीं मिला, वरन् नन्दरबार, सूरत और बड़ौदा में अपने सफल साहित्यिक कार्यों द्वारा उन्होंने प्रचुर धन-सम्पत्ति प्राप्त की। उन्हें लंबी आयु मिली थी और वे बहुत ठाठ से रहते थे। ब्राह्मणों को भोजन कराने में वे बहुत अधिक खर्च करते थे।

अपने बाद उन्होंने ८ घर और कुछ चल सम्पत्ति छोड़ी थी। कवि को नन्दरबार के ठाकोर तथा अपने मित्रों—शंकरदास, माधवशेठ और अन्य—का आश्रय प्राप्त था। किन्तु इनमें से किसी का कवि ने अत्यधिक यश-गान नहीं किया। बाद में इनकी रचना-शैली और आख्यान कहने के ढंग का अनुकरण हुआ। ऐसा कहा जाता है कि इनके शिष्यों का एक दल था, जिसमें से प्रत्येक को इन्होंने एक न एक विशेष कार्य सौंप रखा था, किन्तु अधिकांश विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं।

इस काल में मुग़ल शासन के अन्तर्गत देश सुखी और सम्पन्न था। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमानंद ने अपनी जीविका एक गागरिया भट्ट के रूप में आरंभ की, यद्यपि कुछ विद्वानों को इसमें संदेह है कि प्रेमानंद ने एक माणभट्ट की तरह आख्यान कहने में अपना जीवन बिताया न कि एक साधारण पौराणिक की तरह। उनके कुल ५७ काव्य बताये जाते हैं। इनमें कुछ बहुत बड़े हैं। इनकी कथावस्तु महाभारत, भागवत, मार्कण्डेयपुराण, रामायण और नरसिंह मेहता की जीवनी से ली गयी है। पूर्ण महाभारत, भागवत, मार्कण्डेय पुराण और कुछ फुटकर रचनाएँ, जो उनकी कही जाती हैं, उनकी प्रतीत नहीं होतीं।

प्रेमानंद के आख्यानों का तना अधिक प्रचार हुआ और वे इतने प्रसिद्ध हुए कि अपढ़ स्त्रियों ने भी कुछ को कंठस्थ कर लिया तथा शिक्षित और साहित्यिक व्यक्तियों ने भी बड़े चाव से उन्हें पढ़ा और सुना। नरसिंह मेहता के जीवन से संबंधित उनके आख्यानों में एक विशेष आकर्षण तथा सौन्दर्य है। प्रेमानंद की दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण थी। अतः महाकाव्य, पुराण एवं नरसिंह-जैसे भक्तों की जीवनी से कथावस्तु लेते हुए भी उन्होंने पुराने पात्रों में नया जीवन फूँक दिया है। किसी भी घटना को कलात्मक ढंग से कहने में वे बड़े निपुण थे और इसके लिए गुजराती भाषा के सभी साधनों का उपयोग उन्होंने किया है। अपने समय के समाज का भी उन्होंने बड़ा सूक्ष्म निरीक्षण किया था। वे नीरस हृदय में भी रस का संचार कर सकते थे, साथ ही एक रस से दूसरे रस में बड़ी कुशलता से आ जाते थे। उन्होंने जन-जीवन की वास्तविक झाँकी दी है। अपने श्रोताओं की नाड़ी वे खूब पहचानते थे और समझ जाते थे कि उन्हें क्या

चाहिए। इस कार्य की सिद्धि के लिए उन्होंने पौराणिक पात्रों को अपने समय के गुजराती पात्रों में बदल दिया था। इनका यह कार्य गुण भी माना गया और दोष भी, क्योंकि कभी-कभी व्यास-वाल्मीकि जैसे महान् चरित्रों को भी उस समय की गुजराती जनता के मनोरंजनार्थ उन्होंने बहुत निचले स्तर पर उतार दिया था। फिर भी प्रेमानंद के हाथों आख्यान-शैली साहित्य का एक ऐसा लचीला माध्यम बन गयी, जो उपन्यास की भाँति सभी प्रयोजन सिद्ध करती थी।

प्रेमानंद ने भालण, उद्धव, विष्णुदास, नाकर, विश्वनाथ जानी तथा दूसरों के काव्य-ग्रंथ अवश्य पढ़े होंगे। उन्होंने अनेक ऐसे विषयों पर आख्यान लिखे हैं, जिन पर उनके पूर्ववर्ती पहले ही लिख चुके थे; किन्तु प्रेमानंद की रचना को पहली बार पढ़ते ही हमारे मन में यह भाव उठता है कि इसे किसी योग्य व्यक्ति ने लिखा है। प्रेमानंद ने महाकाव्यों तथा पुराणों के प्रसंगों को बदला है, सुधारा है, कुछ जोड़ा है और कभी कुछ निकाल दिया है, किन्तु यह सब करते हुए उनका ध्यान बराबर अपने श्रोताओं और आख्यान को अधिक रसपूर्ण बनाने पर था। वे प्रतिवर्ष औसतन दो अथवा तीन आख्यान लिखते थे। यद्यपि उनके अनेक विषयों पर उनके पहले के कवि भी लिख चुके थे, किन्तु विभिन्न रसों से युक्त घटनाओं के वर्णन का उनका अपना विशेष ढंग होता था, जो मौलिक होता था। गुजरात के अनेक नगरों और गाँवों में उनके आख्यान २०० वर्षों से बराबर प्रेमपूर्वक गाये जा रहे हैं। चैत्र, वैशाख में 'ओखाहरण', भाद्रपद के श्राद्धपक्ष में 'नरसिंह मेहता का श्राद्ध', सीमन्त उत्सवों में अब भी 'कुंवरबाई का मामेरु' गाया जाता है। उनका 'दशम स्कंध' चातुर्मास में और 'देवीचरित्र' नवरात्र में लोग गाते हैं। बहुत-से लोग शनिवार को उनका 'सुदामा चरित्र' और रविवार को 'हुंडी' गाते हैं। दूसरे शब्दों में उनके आख्यान मनोरंजन तथा पुण्य-लाभ दोनों दृष्टियों से गाये जाते हैं।

प्रेमानंद ने प्रचलित रागों—देशी, चाल, ढाल—में रचनाएँ की हैं। उनका चरित्र-चित्रण बड़ी उच्चकोटि का है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि उन्होंने पौराणिक पात्रों में तत्कालीन समाज की प्रवृत्तियों तथा विशेषताओं का आरोपण किया है; हाँ, ऐसा करने में निःसन्देह उन्होंने अपनी कल्पना-शक्ति और आदर्शवादिता का परिचय दिया है।

प्रेमानंद के श्रेष्ठ आख्यान हैं—अभिमन्यु आख्यान, चन्द्रहासाख्यान, ओखाहरण, सुदामाचरित्र, सुधन्वाख्यान, रणयज्ञ, नलाख्यान, हरिश्चन्द्राख्यान, मदालसाख्यान, रुक्मिणीहरण, हुंडी, श्राद्ध, मामेरुं, शामलशानो विवाह और उनका भागवत का दशम स्कंध। स्वर्गनी नीसरणी, भगवद्गीता, द्रौपदी स्वयंवर, संपूर्ण महाकाव्य और पुराण तथा अन्य दूसरे ग्रंथों के रचयिता होने में लोगों को संदेह है।

पुरानी बड़ौदा रियासत ने रावबहादुर हरगोविन्ददास डी० कांटावाला, दीवान बहादुर केशवलाल ह० ध्रुव, नाथाशंकर पी० शास्त्री तथा छोटालाल नरभेराम भट्ट के द्वारा संपादित करा कर प्राचीन काव्यमाला के अन्तर्गत कई ग्रन्थों तथा उसी नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन किया है। इस प्रकार के प्रकाशित अनेक पुरानी गुजराती के ग्रंथों में नरसिंह मेहता, प्रेमानंद, वल्लभ और कुछ अन्य रचनाओं के कुछ ग्रन्थों के संबंध में संदेह प्रकट किया गया है। प्रेमानंद के तीन नाटक प्रकाशित किये गये थे—सत्यभामा रोष दर्शिका आख्यान, पांचाली प्रसन्न आख्यान और तापती आख्यान। किन्तु प्रकाशित होते ही उनके प्रेमानंद द्वारा रचे जाने में संदेह उठाया गया। श्री नरसिंह राव भो० दिवेटिया ने अपने खोजपूर्ण निबंध में निश्चित रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि उन नाटकों का रचयिता प्रेमानंद को मानना कल्पित और भ्रमयुक्त है। इस निबंध से दोनों पक्षों में घोर खंडन-मंडन हुआ। किन्तु अन्ततः अधिकांश विद्वानों द्वारा मान लिया गया है कि ये रचनाएँ प्रेमानंद की नहीं है। अनेक तथ्यों से उनमें संदेह उत्पन्न होता है। प्रकाशकों ने आज दिन तक मूल पांडुलिपियों को उपस्थित नहीं किया और किसी ने उन्हें नहीं देखा। अन्तःसाक्ष्य से विदित होता है कि शैली, कहावतें, मुहावरे, भाषा तथा लेखन-पद्धति आधुनिक तथा बनावटी है। इन ग्रंथों का प्रकाशन बड़ी संदेहात्मक स्थिति में हुआ है। प्रारंभ में प्रकाशकों तथा संपादकों ने प्रेमानंद, उनके पुत्र कहलाने वाले वल्लभ तथा शामल का वैयक्तिक जीवन-चरित्र दिया है, किन्तु बाद में अनेक उन बातों के विरुद्ध कहा गया है, जो संपादकीय भूमिका में कही गयी थीं। इन ग्रंथों के अनेक स्थल ऐसे हैं, जिनसे आधुनिक रचयिता होने का संदेह होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन सभी संदेहात्मक ग्रंथों

का कोई एक ही रचयिता है। इनके रचयिता छोटालाल नरभेराम भट्ट एवं नाथाशंकर शास्त्री कहे जाते हैं तथा इस संबंध में दीवान बहादुर केशवलाल ध्रुव और एच० एच० ध्रुव का भी नाम लिया जाता है। यदि इन संदेहात्मक ग्रंथों को छोड़ दें, तो भी प्रेमानंद के वास्तविक ग्रंथ इतने पर्याप्त हैं कि मध्यकालीन गुजराती साहित्य के वे सर्वश्रेष्ठ कवि माने जा सकते हैं।

प्रेमानंद की विशेषताओं में से कुछ ये हैं—उनकी कथन-शैली; श्रोताओं में रुचि उत्पन्न करने का ढंग और उन्हें मंत्रमुग्ध कर लेना; उत्तम और प्रासादिक ढंग से विभिन्न रसों को व्यक्त करना तथा किसी विशेष घटना पर मुख्य रूप से रहना; व्यर्थ का विस्तार करके रसभंग न लाना, वरन् उचित अनुपात का ध्यान मस्तिष्क में रखना; वास्तविक एवं स्वाभाविक चरित्रचित्रण; जहाँ भी रसोद्रेक संभव हो, वहाँ न चूकना; तथा श्रोताओं को बोध होने के पहले ही बड़ी कुशलता से एक रस से दूसरे रस में पहुँच जाना। उन्होंने नल-दमयन्ती और उषा-अनिरुद्ध के सच्चे प्रेम का वर्णन किया है। नन्द-यशोदा तथा वसुदेव-देवकी के वात्सल्य प्रेम का इनका वर्णन भी बहुत सुन्दर है। साधारण जाति के लोगों की दुर्बलताएँ भी इन्होंने अच्छे ढंग से कही हैं, साथ ही संबंधों के विषय में भी लिखा है, जैसे सास-पतोहू आदि और वे वर्णन सजीव हैं। 'हुंडी' में कृष्ण एक मोटे गुजराती बनिया की भाँति ठेठ गुजराती वेश-भूषा में आते हैं और नरहरि मेहता की हुंडी सकारते हैं। 'मामेरुं' में हास्य रस उत्पन्न करने के उद्देश्य से कवि ने एक टूटी गाड़ी में नरसिंह मेहता को अपनी पुत्री कुँवरबाई की ससुराल जाते हुए बताया है। बेचारे नरसिंह के पास अपनी पुत्री को देने के लिए कुछ भी नहीं था, अतः वह अपने साथ झांझ-करताल और गोपीचंदन ले जाता है। 'सुभद्राहरण' में कवि ने अर्जुन को एक जोगी के रूप में बताया है, जो श्रीकृष्ण के कहने से सुभद्रा को हरने के लिए आये थे। 'अभिमन्यु-आख्यान' में कृष्ण शुक्राचार्य का रूप धारण करते हैं। 'सुदामा चरित्र' में सुदामा अपनी पत्नी के व्यंग्यों के कारण द्वारका की ओर चलते हैं। 'नलाख्यान', 'सुदामाचरित्र' और 'मामेरुं' में प्रेमानंद ने बड़ी कुशलता से हास्य रस उत्पन्न किया है। यद्यपि 'नलाख्यान' में प्रधान रस करुण है, फिर भी कवि उसमें हास्य रस के लिए अवसर और स्थान निकाल लेता है। स्वयंवर का वर्णन;

बूढ़े तथा कुरूप राजाओं में, यहाँ तक कि देवताओं में भी, दमयन्ती को पाने की लालसा; बाहुक का वर्णन आदि कुछ ऐसे अवसर हैं, जिनका लाभ कवि ने हास्य उत्पन्न करने के लिए उठाया है। यद्यपि प्रेमानंद ने नवों रस पैदा किये हैं, किन्तु शृंगार, करुण एवं हास्य रस उत्पन्न करने में उसने सर्वोत्तम क्षमता दिखायी है। 'रणयज्ञ' में मुख्यतः वीर रस का वर्णन है। प्रेमानंद अन्य कवियों की अपेक्षा सबसे अधिक गुजराती हैं और अपने आख्यानों में उन्होंने परिचित गुजराती समाज का वर्णन किया है; जिसमें गुजराती रीति-रिवाज, उत्सव, वेष-भूषा, आभूषण, स्वभाव आदि बताये गये हैं और इन्हीं ढाँचों में पौराणिक पात्रों को ढाला है। पहले कहा जा चुका है कि इसी कार्य ने महाकाव्यों तथा पुराणों के पात्रों की भव्यता को नीचे झुका दिया है। कभी-कभी श्रोताओं को संतुष्ट करने के लिए प्रेमानंद ने हास्यरस की अधिकता कर दी है। उन्होंने वर्णन की परम्परागत परिपाटी का ही अनुकरण किया है और कहीं-कहीं उन्होंने उपमाओं की लंबी सूची अथवा लंबे-लंबे वर्णन रखे हैं, जो अनुपातरहित हैं। तो भी उन्होंने गुजरात को वार्ता एवं काव्य का आनन्द प्रदान किया, धर्म-नीति के संस्कारों का पोषण किया तथा गुजरात के व्यास बन गये। वे केवल मध्यकालीन कवियों में ही सर्वोत्तम नहीं थे, किन्तु आज के नवीन शिक्षित-समाज को भी अपनी ओर आकर्षित करते हैं। सर्वसम्मति से वे मध्यकालीन गुजराती साहित्य के 'कवि शिरोमणि' घोषित किये गये हैं, यह उचित ही है।

प्रेमानंद के दो पुत्र थे—वल्लभ और जीवणराम। वल्लभ ने अनेक ग्रंथ लिखे, जिनमें 'दुःशासन-रुधिरपान-आख्यान', 'यक्ष-प्रश्नोत्तर', 'कुन्ती प्रसन्नाख्यान', 'कृष्णविष्टि', 'प्रेमानंद कथा', 'युधिष्ठिर-वृकोदराख्यान' और 'मित्र-धर्माख्यान' है, यह एक सामाजिक कहानी है। इनमें से कई ग्रंथों का उनके रचयिता होने में विद्वानों को संदेह है। बड़ौदा की प्राचीन काव्यमाला के संपादकों ने वल्लभ के विषय में लिखा है कि वे शामल के विरुद्ध अपने पिता का पक्ष लेने में सदा तल्लीन रहते थे। उन्होंने शामल-प्रेमानंद का संघर्ष भी प्रस्तुत कर दिया है। वल्लभ को हठी और अहंकारी लेखक बताया गया है, जो अपने पिता के बड़े भक्त थे और सबकी निंदा करके, यहाँ तक कि चन्द-वरदाई की भी, अपने पिता के काव्य को सर्वश्रेष्ठ बताया करते थे। प्रेमानंद

के शिष्य बहुत अधिक थे, जिनमें १२ महिलाएँ बतायी जाती हैं। ऐसा कहा जाता है कि प्रेमानंद ने वल्लभ को हिन्दी के ढंग की रचना करने का आदेश दिया, रत्नेश्वर को संस्कृत और मराठी के ढंग की तथा वीर जी को उर्दू और फारसी के ढंग की। प्रेमानंद अपना 'दशम स्कंध' ग्रंथ अधूरा छोड़कर स्वर्गवासी हुए थे, जिसको उनके एक शिष्य सुन्दर ने पूर्ण किया।

प्रेमानंद की कुछ कृतियाँ, वल्लभ की कुछ रचनाएँ, प्रेमानंद और शामल का झगड़ा, जो इस तर्क से अस्वीकृत कर दिया गया है कि प्रेमानंद के समय में शामल बहुत ही छोटे थे, तथा प्रेमानंद का बहुत बड़ा शिष्यमंडल होना—ये सब तथ्य अब विश्वसनीय नहीं माने जाते। वल्लभ के बताये हुए ग्रंथों में यत्र-तत्र कुछ अच्छे स्थल हैं, किन्तु सब मिलाकर शैली निरर्थक, अस्पष्ट, क्लिष्ट और घृणित आत्म-प्रशंसा से युक्त है। 'मित्र धर्माख्यान' भी वल्लभ की रचना कही जाती है। उनके कई ग्रंथों में यही एक ऐसा है, जिसमें कुछ दम है। यह एक ब्राह्मण के दो पुत्र इन्दु और मिन्दु की सामाजिक कहानी है। वास्तविक जीवन का यह पहला आख्यान है।

प्रेमानंद के समकालीन कवियों में रत्नेश्वर सर्वोत्तम हैं। वे डभोई के मेवाडा ब्राह्मण थे। आरंभ में वे एक पौराणिक थे, किन्तु स्थानीय पौराणिकों की ईर्ष्या का शिकार होने के कारण उन्हें डभोई छोड़ना पड़ा। उनके प्रतिद्वन्द्वियों ने उन्हें इतना सताया कि उनके अशिक्षित पुत्रों को भड़काकर उनके भागवत का एक भाग नर्मदा नदी में फिंकवा दिया। उनका संस्कृत का अध्ययन अच्छा था तथा उनकी शैली उत्तम, शुद्ध और ललित थी। अपने समकालीन पौराणिकों की अपेक्षा वे बहुत श्रेष्ठ थे। उन्होंने भागवत, भगवद्गीता, गंगालहरी, महिम्न स्तोत्र, लंकाकाण्ड, स्वर्गारोहण, अश्वमेध पर्व आदि की रचना की; साथ ही कामविलास एवं वैराग्यलता भी लिखा। उनकी रचना 'राधा कृष्ण महीना' में, जिसमें उन्होंने मालिनीवृत्त का भी उपयोग किया है, आधुनिक काव्य का सा सौन्दर्य है। ऐसा कहा जाता है कि प्रेमानंद न उन्हें संस्कृत और मराठी के अनुरूप रचना करने का आदेश दिया था। मध्यकालीन युग के सर्वोत्तम कवियों में से एक ये भी हैं, जिन्होंने संस्कृत के अनेक ग्रंथों का अनुवाद गुजराती में किया है।

वीर जी बहरानपुर के रहनेवाले थे और कुछ आख्यानों तथा 'कामावतीनी कथा' की रचना की है। इनका कंठ बड़ा मधुर था। ऐसा कहा जाता है कि प्रेमानंद रचनाएँ इन्हीं से पढ़वाया करते थे। वीर जी का 'सुरेखाहरण' बहुत प्रसिद्ध है। प्रेमानंद के दूसरे शिष्य थे हरिदास। इन्होंने 'नरसिंह मेहताना बापनुं श्राद्ध', 'शामल शाहनो विवाह' तथा 'सीता विरह' आदि लिखा है। ऐसा कहा जाता है कि इनके 'शामल शाहनो विवाह' को पढ़कर उन्होंने अपना लंबा विवाह लिखा। द्वारकादास जाति के वैश्य थे, जिन्हें ५० वर्ष की अवस्था में प्रेमानंद से कविता करने की प्रेरणा प्राप्त हुई और इन्होंने बारहमासी की अच्छी रचनाएँ की हैं। धनदास, रत्नो आदि भी कई शिष्य प्रेमानंद के कहे जाते हैं। किन्तु उनके कहलानेवाले शिष्यों ने कोई बहुत अच्छी रचना प्रस्तुत नहीं की। वे जन्मजात कवि नहीं थे, किन्तु प्रेमानंद से थोड़ी-बहुत प्रेरणा भर प्राप्त की थी।

वल्लभ मेवाडो—हरि भट्ट के पुत्र वल्लभ धोला चुंवाल की देवी बाला बहुचरा के परम भक्त तथा उपासक थे। उनका काल सन् १६४० से १७५१ ई० तक है। इन्हें १११ वर्ष की लंबी आयु प्राप्त हुई थी। ऐसा भी कहा जाता है कि वल्लभ और धोला दो जुड़वाँ भाई थे। किन्तु अधिक मत एक ही व्यक्ति कि ओर हैं। कहते हैं कि इन्हें एक ब्रह्मचारी के पास अध्ययन के लिए भेजा गया था, किन्तु उन्होंने इन्हें अयोग्य देखकर लौटा दिया। फिर भी इन्हें नवार्ण मंत्र की दीक्षा दी गयी, जिसे जप कर इन्होंने सिद्धि पा ली तथा बालादेवी के दर्शन करके उनसे कवित्व शक्ति प्राप्त कर ली। उसके बाद इन्होंने देवी की महिमा में अनेक गरबे तथा गरबियों की रचना की। इनका विवाह वडनगर में हुआ था और जीवन भर ये बाला बहुचरा देवी की भक्ति करते रहे। ये दक्षिणाचार शाक्त थे। कहा जाता है कि इन्होंने वैलोचन नामक नागरवाणिया को त्रिपुरा की उपासना सिखायी, जिसके बल पर वैलोचन ने प्रचुर सम्पत्ति प्राप्त की। वल्लभ मेवाड़ा शक्ति-पूजा के मर्म को जानते थे और देवी संबंधी उत्तम गरबों की रचना उन्होंने की। उन्होंने तीनों शक्तिपीठों की महिमा में गीत गाये हैं—ये पीठ हैं, आरासुर की अंबिका, पावागढ़ की कालिका और चुंवाल की बाला बहुचरा। द्वितीय कोटि के कवियों में ये सर्वोत्तम माने जाते हैं। इनका आनन्दनो गरबो,

आरासुरनो गरबो, महाकालीनो गरबो, शणगारनो गरबो आदि बहुत प्रसिद्ध हैं तथा वर्णनों से पूर्ण हैं, जिनसे कवि की भक्ति प्रकट होती है। देवी के मंदिरों में लोग "वल्लभ धोलानी जय" बोलते हैं। इन्होंने अन्य विषयों पर भी अनेक गरबे लिखे हैं और गरबा-लेखकों में इनका स्थान प्रथम है।

लोकवार्ता तथा अन्य साहित्य

माधव और कामकन्दला की कहानी किसी अज्ञात लेखक द्वारा लिखी गयी है। १७वीं शताब्दी की कुछ लोकवार्ता रचनाएँ ये हैं—दामोदर की माधवानल कथा; खंभात के शिवदास की दो कहानियाँ—कामावती और हंसावली; केशवदास की कामावतीनी कथा; यही कथा वीरजी द्वारा लिखी हुई तथा पांचा की कुंडलाहरण। माधव ने सन् १६५० में "रूपसुन्दर कथा" विभिन्न अक्षरमाला वृत्तों में लिखी। इसकी भाषा संस्कृत-बहुला और समास-युक्त है। यह एक पुरोहितपुत्र सुन्दर और राजकुमारी रूपा की प्रेमकथा है, जिसमें संभोग और विप्रलंभ श्रृंगार का अच्छा वर्णन है। गोपाल भट्ट की 'फूलां चरित्र' भी इसी प्रकार की समास-युक्त रचना है, जो ४० कड़ियों में है। 'विनेचटनी वार्ता' सूरत के दो वैश्य-बन्धुओं द्वारा लिखी गयी है। इसी शताब्दी में जैनों ने भी अनेक वार्ताओं की रचना की है, जिनमें से कई अभी भी अप्रकाशित हैं। इन कहानियों का विषय है—सगालशाह, पंचदंड, सिंहासन बत्तीसी, वछराज, सदयवत्स सावलिंगा, विद्याविलास, विक्रमादित्य, भोज-प्रबंध, शीलवती आदि। इनके लेखक जैन साधु हैं। नेमिविजय के 'शील-वती रास' में नायक चन्द्रगुप्त तथा नायिका शीलवती के जीवन की अनेक विपत्तियों एवं चमत्कारों का वर्णन है। विभिन्न पात्रों से युक्त यह एक असाधारण कहानी है और इसमें भाषा का पुराना रूप भी सुरक्षित है।

इस काल में लोक-कथाओं के अतिरिक्त अनेक जैन कवियों ने कई रास और प्रबंध भी लिखे हैं। समय सुन्दर द्वारा रचित 'नल दमयन्ती रास' इस काल की एक श्रेष्ठ रचना है। मुनि आनंदघन जी ने 'आनन्दघन चोवीशी' तथा 'आनन्दघन बहोतेरी' लिखी हैं, जिनमें ज्ञान-भक्ति के पद हैं। आनन्दघन जी का एक दूसरा नाम भी था—लाभानन्द अथवा लाभ विजय। वे आत्मा-

नुभवी', महान् ज्ञानी, योगी और भक्त थे। उनके काव्य में गंभीर दर्शन, भक्ति और त्याग की भावना है। उन्होंने प्रेम की मधुर भाषा में भी कुछ पद लिखे हैं तथा हिन्दी में भी उनके कई पद हैं। यशोविजय तथा केसर विमल ने अनेक सुभाषित लिखे हैं।

पारसियों का योगदान

गुजरात ने पारसियों का स्वागत किया और उन्होंने गुजराती को अपनी मातृभाषा स्वीकार कर ली। यहाँ बस जाने के बाद उन्होंने अपने धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद गुजराती में किया। 'अर्दाग्वीरा' ज़न्द का गद्यात्मक पारसी-गुजराती अनुवाद है। इसमें अर्दावीराफ द्वारा ७ दिन-रात की समाधि में देखे हुए स्वर्ग-नरक के दृश्यों का वर्णन है। १७वीं शताब्दी में सूरत के मोबेद रुस्तम पेशोतन ने ४ पद्यात्मक ग्रंथों की रचना की। वे हैं—ज़रथोस्त नामेह, स्यावक्ष नामेह, वीराफ़ नामेह और अस्पंदरपाह नामेह। नामेह का अर्थ है चरित्र। भाषा में पारसियों द्वारा बोली जाने वाली भाषा का भी पुट है तथा इसमें पहेलवी और फारसी भाषा के भी शब्द हैं।

अध्याय ९

सन् १७०१ से १८५२ तक

लोकवार्ताकार कवि शामल

यद्यपि कवि शामल का जन्म १७वीं शताब्दी में हुआ, तथापि उनका रचना-काल १८वीं शताब्दी में आता है। ये लोकवार्ता के सर्वश्रेष्ठ रचयिता हैं। जिस प्रकार धार्मिक उपदेश और नैतिक शिक्षा के लिए लोग आख्यान श्रवण करते थे, उसी प्रकार मनोरंजन और व्यवहार-बुद्धि के लिए वे लोकवार्ताओं को भी सुना करते थे। लोकवार्ताओं में प्रणय और साहसिक कार्यों से युक्त कथा-कहानी का आकर्षण रहता है। पहले शामल एक पौराणिक कथाकार थे, किन्तु उसमें असफल होने से वे लोकवार्ता की ओर झुक गये। उनकी पहली कहानी 'पद्मावतीनी वार्ता' की रचना सन् १७१८ में हुई थी। प्रेमानंद के समय में ये इतने छोटे थे कि दोनों की कथित स्पर्धा कदापि संभव नहीं, इसी लिए शामल और प्रेमानंद की स्पर्धा की बात अब झूठी पड़ गयी। इसी प्रकार प्रेमानंद के पुत्र वल्लभ के साथ इनके झगड़े की बात भी काल्पनिक ही है। प्राचीन काव्य-माला के संपादकों ने अपनी प्रस्तावना में यह विश्वास दिलाया था कि "प्रेमानंद कथा" और "वल्लभ झगडो" रचनाएँ प्रकाशित की जायँगी, किन्तु अभी तक न तो वे प्रकाशित हो सकीं और न किसीने उनकी मूल पांडुलिपि देखी। ऐसा लगता है कि ये काल्पनिक प्रसंग केवल प्रेमानंद का गौरव बढ़ाने के लिए गढ़ लिये गये हैं। कुछ विद्वानों का तो मत है कि वल्लभ और शामल की रचनाओं से पुष्ट होनेवाले ये झगड़े जानबूझ कर किसी दूसरे द्वारा रचकर जोड़े हुए हैं।

शामल अहमदाबाद के उपनगर वेगणपुर के निवासी, वीरेश्वर के पुत्र, नानाभट्ट के शिष्य थे, और श्री गोड़ मालवीय ब्राह्मण थे। इनकी 'बत्तीश पुतलीनी वार्ता' सिहुज के धनी पाटीदार रखीदास की दृष्टि में पड़ी। उन्होंने

प्रसन्न होकर शामल को अपने स्थान पर आमंत्रित किया और भूमि-रियासत देकर अपने यहाँ बसा लिया। वे ही कवि के आश्रयदाता थे। शामल ने भी उनके उपकार को स्वीकार किया और प्रायः अपनी रचनाओं में उदार राजा भोज तथा दानेश्वर कर्ण से उनकी तुलना करते हुए रखीदास का उल्लेख किया है।

शामल को संस्कृत, ब्रज तथा फारसी भाषाओं का ज्ञान था। उनके बाद उनका कोई अनुयायी नहीं था और न उनकी काव्य-शैली का कोई वर्ग ही शेष रहा। उनके कुछ ग्रंथ महाकाव्य तथा पुराणों पर आधृत हैं, जैसे—शिवपुराण, रेवाखंड, अंगदविष्टि, रावण-मंदोदरी-संवाद, कलि-माहात्म्य, शुकदेवाख्यान तथा द्रौपदी-वस्त्रहरण। इनमें से कुछ ग्रंथ इनके लिखे नहीं जान पड़ते। इन्होंने अनेक लोकवार्ताएँ अथवा काल्पनिक कहानियाँ भी लिखी हैं—बत्रीशपुतली, सुडाबहोतरी, पद्मावती, नन्दबत्रीशी, विने चटनी वार्ता तथा बरासकस्तूरी वार्ता आदि। उनकी कुछ फुटकर रचनाएँ भी हैं—जैसे, रुस्तमबहादुरनो पवाडो, रणछोडना शलोका आदि। इनके आख्यान बहुत ही साधारण हैं, इसीलिए उनकी रचना आगे चलकर इन्होंने बंद कर दी। लोकवार्ता की रचना में भी इनकी मौलिकता अधिक नहीं दिखाई देती। इनके पूर्व अनेक जैन तथा अजैन कवि हुए हैं, जिन्होंने उन्हीं विषयों पर लोकवार्ताएँ लिखी हैं, जिन पर शामल ने लिखा है। शामल संस्कृत के वार्ता-साहित्य पर भी बहुत-कुछ निर्भर थे। इन्होंने उन कहानियों को अपने ढंग से लिखा है और प्रायः उनको सुधार कर उनका विस्तार किया है। कभी तो इन्होंने कथावस्तु का क्रम बदल दिया है, कभी उनमें कुछ अपनी बात जोड़ दी है और कभी घटनाओं में परिवर्तन कर दिया है। पचास वर्ष पहले ऐसा विश्वास किया जाता था कि शामल एक महान् और मौलिक रचनाकार एवं समाज-सुधारक थे, किन्तु उनके पूर्ववर्ती जैन तथा अजैन कवियों के ग्रंथ जब से प्रकाश में आये, तब से यह सिद्ध हो गया है कि शामल की रचनाओं में सामाजिक दशाओं के वर्णन ज्यों के त्यों पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं से लिये गये हैं।

'सिंहासन बत्रीशी' और 'सुडा बहोतरी' कहानियों के विशाल संग्रह हैं तथा 'पद्मावती', 'मदनमोहना' और 'विद्याविलासिनी' स्वतंत्र लंबी कहानियाँ

हैं। इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है। ये गल्प दैवी घटनाओं तथा चमत्कारों से पूर्ण हैं। देवियाँ, सिद्धजन, जोगिनियाँ, वैताल, पक्षी और पशु सम्मुख उपस्थित होकर मानवी भाषा में स्त्री-पुरुषों से बात करते हैं। इन कहानियों के पात्र अपने पूर्वजन्मों का स्मरण रख सकते हैं, किसी दूसरी काया में प्रवेश कर सकते हैं, मृत व्यक्ति जीवित हो सकते हैं, आकाश में उड़ सकते हैं और पाताल में जा सकते हैं। किसी व्यापारी का साहसी पुत्र व्यापार के लिए संसार के दूसरे छोर तक पहुँच जाता है। स्त्री पात्र सुशिक्षित, योग्य और बहुत बुद्धिमान् हैं। इनमें प्रेम-विवाह और विजातीयविवाह भी प्रायः होते हैं। इन कहानियों के पात्र साहसी, उदार, सहानुभूति रखनेवाले, प्रतिभाशाली और जीवन को तुच्छ समझनेवाले हैं। शामल ने इन्हीं में अनेक उपकथाओं की भी रचना कर दी है। इन्होंने प्रायः कोई समस्या प्रस्तुत करके नायक अथवा नायिका की बुद्धि की परीक्षा करायी है। उस समय के समाज का इन समस्याओं से अच्छा मनोरंजन होता था। स्त्रियाँ केवल उसी पुरुष को वरण करना पसंद करती थीं, जो उनके द्वारा प्रस्तुत की हुई समस्या का समाधान कर देता था। इस प्रकार की स्त्रियों में कुछ ऐसी भी थीं, जो पुरुष वेश धारण करके साहसिक कार्यों के लिए चल पड़ी थीं, किसी अन्य देश में एक या अनेक कुमारियों से विवाह करती थीं और अन्त में अपने सहित सबको अपने पति के सामने उपहार स्वरूप उपस्थित कर देती थीं। शामल ने नैतिक शिक्षा से पूर्ण लंबे उपदेशों तथा सुभाषितों को भी बीच-बीच में रख दिया है। ऐसे स्थलों में वे व्यावहारिक बुद्धि प्रदान करते जान पड़ते हैं, दर्शनशास्त्र से उनका कोई संबंध नहीं होता। उनका वार्ता-साहित्य बहुत विशाल है। उन्होंने अनेक छप्पयों की भी रचना की है, जिनमें अनेक अच्छे सुभाषित हैं। दलपतराम ने उनके ७०० दोहों को संगृहीत करके उसे 'शामल सतसई' का नाम दिया है।

शामल की महत्ता कहानी कहने के ढंग में है और कहावतों, सुभाषितों, समस्याओं, सूत्रवाक्यों तथा बुद्धिमत्तापूर्ण वचनों को प्रस्तुत करने में है। इन्होंने अपनी रोमांचकारी कहानियों में जीवन की प्रसन्नता और तरलता, जीवन के प्रति प्रेम और साहस, रक्त सुखा देनेवाले दैवी दृश्य तथा स्तब्ध कर देनेवाले चमत्कार हमारे लिए सुरक्षित रख छोड़े हैं। जैसे प्रेमानंद

सर्वश्रेष्ठ आख्यानकार हैं, वैसे ही शामल सर्वश्रेष्ठ लोकवार्ताकार हैं। कवि की दृष्टि से ये इतने ऊँचे नहीं हैं, किन्तु इनकी कहानी कहने की शैली विलक्षण है। ये श्रोताओं को आकर्षित करके उन्हें मंत्रमुग्ध कर सकते थे, किन्तु काव्य-रस, अलंकार, चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रेमानंद इनसे बहुत आगे हैं। शामल वार्ताकार होना ही पसंद करते थे और इस माध्यम से उन्होंने मनोरंजन, व्यवहार-बुद्धि, नैतिक उपदेश, समस्याओं द्वारा बुद्धि-परीक्षा, सुभाषित, कहावतें और सूत्रवाक्य हमारे समक्ष प्रस्तुत किये। शामल के बाद लोकवार्ता का क्षेत्र किसी प्रशंसायोग्य सीमा तक विकसित नहीं हुआ।

प्रेमानंद सर्वोत्तम आख्यानकार थे। उनके पश्चात् आख्यान-शैली मंद पड़ने लगी और इनके बाद जो कवि हुए, उन्होंने मुख्यतः पदों की रचना की, जैसे नरसिंह, भालण और मीरा आदि। साहित्य एवं प्रतिभा की दृष्टि से ये कवि द्वितीय श्रेणी के समझे जाते हैं, किन्तु परिमाण की दृष्टि से इस युग के कवियों का बहुत बड़ा महत्त्व है। इनमें से कुछ तो तुक मिलानेवाले कवि थे और दयाराम को छोड़कर इस युग में कोई प्रथम कोटि का कवि नहीं हुआ। कुछ आलोचकों ने तो इसे 'साहित्य का बंजर युग' कहा है। किन्तु निर्माण के बड़े परिमाण को देखते हुए,—भले ही द्वितीय या निम्न श्रेणी का काव्य हो—यह तीक्ष्ण आलोचना उचित प्रतीत नहीं होती।

राजे केरवाडा के रहने वाले मुसलमान और कृष्णभक्त थे। इन्होंने कृष्ण की स्तुति में शृंगार तथा प्रेमलक्षण भक्ति से युक्त अनेक पदों की रचना की है। रत्नो का 'राधा कृष्ण विरहना महीना' एक श्रेष्ठ बारहमासी काव्य है। कपडवंज के रणछोड़ ने अनेक पदों, रणछोड़जीनो गरबो तथा कई अन्य ग्रंथों की रचना की है। सूरत के नागर शिवानंद स्वामी ने शिव की स्तुति में कई पद, कई थाल, धोल और आरतियाँ लिखी हैं। रामकृष्ण, थोभण तथा रघुनाथ ने भी कुछ अच्छे गीतात्मक पदों की रचना की है।

वसावड के कालिदास ने कई आख्यान लिखे हैं, जिनमें से ४० कड़वों का प्रह्लादाख्यान कुछ अच्छा है। मूल जी भट्ट, लज्जाराम एवं गोविंदराम ने भी कई आख्यानों की रचना की है। शिवराम भट्ट ने एक रूपक काव्य लिखा है, जिसका नाम है, 'जीवराज शेठनी मुसाफरी', जिसमें जीव का शिव से पृथक्

होना, फिर ज्ञान और भक्ति की सहायता से पुनः शिव में मिल जाना बताया गया है। गोविंदराम 'कलियुग नो धर्म' के रचयिता हैं, जिसमें कवि ने कलियुग के अनेक अनाचारों का वर्णन किया है। त्रीकमदास ने, जो पर्वत-दास की ११वीं पीढ़ी में हुए और नरसिंह मेहता के चाचा थे, 'पर्वत पच्चीसी' लिखी है।

ज्ञान-भक्ति के कवि

जैसा कि पहले बताया गया है कि अखो और गोपालदास, नरहरि और बूटियो एक ही गुरु के शिष्य माने गये हैं। अखो के शिष्य लालदास थे। 'सन्तोनी वाणी' में उनके भजन प्रकाशित हैं। इनके बाद शिष्यों की एक ऐसी परंपरा चली, जिसने ज्ञान-वैराग्य के पदों की रचना की है।

नाथभवान सौराष्ट्र में घोडासर के वडनगरा नागर थे। इन्होंने ४१ कड़ियों में 'अम्बा आननो गरबो' की रचना की है, जो अब तक गाया जाता है; साथ ही इन्होंने शिवगीता, श्रीधरीगीता, ब्रह्मसंहिता, विष्णुपद और अनेक चातुरी लिखी हैं। जीवन के अंतिम दिनों में ये संन्यासी हो गये थे। चरोतर के जगजीवन ने ज्ञानगीता तथा अन्य ग्रंथ लिखे। पाटण के श्रीदेव ने ४८० कड़ियों का हस्तामलक तथा कुछ पदों की रचना की। प्राग जी ने कक्का, महीना आदि लिखे हैं।

प्रीतमदास (१७२०–१७९८) जाति के बारोट थे और बावला में उत्पन्न हुए थे। परंपरा के अनुसार कहा जाता है कि ये जन्मान्ध थे, किन्तु इनके ग्रंथों से पता चलता है कि इन्होंने वेदान्त और योग का अध्ययन किया था। इन्होंने कक्का, महीना, तिथि,वार लिखा है। इनकी रची हुई ज्ञानगीता अखेगीता से मिलती-जुलती है और जैसे अखो ने छप्पय लिखे हैं, वैसे ही प्रीतमदास ने ६३८ साखियाँ लिखी हैं। उद्धव-गोपी-संवाद के रूप में इन्होंने 'सरसगीता' की भी रचना की है। सन् १७९१ में जो अकाल पड़ा था, उस समय इन्होंने 'प्रेमप्रकाश' नाम से ईश्वर की प्रार्थना लिखी थी। मुख्यतया इन्होंने ज्ञान, भक्ति, और वैराग्य के पद लिखे हैं, जो बहुत प्रसिद्ध हुए। इन्होंने प्रेमलक्षणाभक्ति के भी कुछ पद रचे हैं, किन्तु इनका शृंगार-वर्णन

उतना उन्मुक्त नहीं है, जितना कि नरसिंह और दयाराम का; इनका शृंगार बहुत संयत है। इनके कुछ ग्रंथ अभी भी अप्रकाशित हैं। इनकी भाषा सरल हैं। ये १८वीं शताब्दी के प्रमुख कवियों में से हैं।

मीठु (सन् १७३८ से १७९१) एक बहुत बड़े शाक्त थे। इन्होंने विन्ध्याटवी जाकर श्रीचक्र की यामलविद्या प्राप्त की। ये मोढ ब्राह्मण जाति के शुक्ल थे। इन्हें संगीत का भी अच्छा ज्ञान था। इन्होंने अपने शिष्यों का एक रासमण्डल बना रखा था, जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों थे। जनीबाई भी इनकी शिष्या थीं। ये मीठु महाराज भी कहलाते थे। इनके लगभग ११ ग्रंथ हैं—जैसे, रसिकवृत्तिविनोद; श्रीरस (१२ उल्लासों में); १०३ शिखरिणी छन्दों की श्रीलहरी, जो शंकराचार्य की सौन्दर्यलहरी का समश्लोकी अनुवाद है; स्त्रीतत्त्व; ३२ उल्लासों का महान् ग्रंथ रासरस आदि। ये शाक्त सिद्धान्तों के प्रकाण्ड पंडित थे और इन्होंने इस विषय पर संस्कृत तथा गुजराती दोनों में खूब लिखा है। इनकी रचनाओं में केवल काव्य-तत्त्व ही नहीं है, वरन् उनमें रहस्य एवं शाक्त मत के सिद्धान्त हैं। कहा जाता है कि इनकी शिष्या जनीबाई ने बाला के दर्शन किये थे और श्रीविद्या का मर्म जान लिया था। जनीबाई ने 'नवनायिका वर्णन' नामक एक काव्य की रचना भी की है।

धीरो—ये गोठडा के बारोट थे और अखो एवं प्रीतमदास की भाँति ज्ञानी कवि थे। किसी सिद्ध पुरुष की कृपा इन्हें प्राप्त थी। यद्यपि रणयज्ञ और अश्वमेध आदि कुछ आख्यान भी इन्होंने लिखे हैं, किन्तु इनकी ख्याति इनके पदों के कारण है। इनके पद 'काफी' कहलाते हैं, जिनमें १० पंक्तियाँ होती हैं। ऐसा कहा जाता है कि ये अपनी कविताएँ कागज के टुकड़ों पर लिखकर उन्हें बाँस के खोखले में बंद कर देते थे और मही नदी में इस दृष्टि से बहा देते थे कि दूर-दूर के लोग इन्हें पकड़कर खोलेंगे और कविताएँ पढ़ेंगे। इनकी भाषा बड़ी मधुर, किन्तु साथ ही शक्तिशाली है। इनकी रचनाएँ हैं—स्वरूप, ज्ञानकक्को, प्रश्नोत्तरमालिका, आत्मज्ञान और ज्ञानबत्तीसी। 'स्वरूप', जिसमें अनेक विषयों की काफियाँ हैं, 'ज्ञानबत्तीसी' तथा 'आत्मज्ञान' के कारण धीरो की गणना उच्चकोटि के कवियों में होने लगी। ये केवलाद्वैत सिद्धान्त को मानने वाले वेदान्ती कवि थे। इनके ज्ञान कक्को और प्रश्नोत्तरमालिका में अनेक

दार्शनिक समस्याओं पर विचार हुआ है। इनके ग्रंथ वेदान्त की चर्चा करते हुए ज्ञान, वैराग्य, भक्ति का महत्त्व स्थापित करते हैं। इनकी रचनाएँ अपने स्वयं के अनुभव तथा गुरु की शिक्षा पर आधृत हैं। कभी-कभी इन्होंने रहस्यवाद की अवलवाणी भी लिखी है, साथ ही कुछ गरबियाँ और कुछ पद भी। इनके कुछ पद हिन्दी में भी हैं। इनकी काफियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रतिभा की दृष्टि से ये १८वीं शताब्दी के प्रमुख कवि हैं।

निरांत--एक मत के अनुसार ये एक पाटीदार थे और दूसरे मत से एक राजपूत थे तथा देथाण के रहनेवाले थे। इनका समय १७७० से १८४६ ई० है। ऐसा कहा जाता है कि ये प्रति पूर्णमासी को अपने हाथ पर तुलसी उगाकर डाकोर जाया करते थे। इन्होंने प्रेमलक्षणा भक्ति के कुछ पद लिखे हैं, किन्तु इनके अधिक पद ज्ञान और निर्गुण भक्ति पर हैं। इन्होंने नाम-स्मरण को अधिक महत्त्व दिया है। इन्होंने साखी, पद, धोल, छप्पय, काफी, वार, तिथि, महीना आदि विविध प्रकार की रचनाएँ की हैं। इनकी भाषा में सरलता और प्रवाह है। इनके अनुयायी बहुत अधिक संख्या में थे। निरांत और बापू गायकवाड दोनों धीरो के समकालीन थे तथा अखो के बाद से चली आती हुई अद्वैत दर्शन की परम्परा को दोनों ने पुष्ट किया। निरांत के शिष्यों ने उनकी गद्दी स्थापित की। इनके कुछ पद हिन्दी में भी मिलते हैं। ये केवलाद्वैत दर्शन के ज्ञानमार्गी कवि हैं।

बापू साहेब---बापू साहेब गायकवाड़ (१७७७–१८४३ ई०) एक मराठा थे। पहले ये धीरो के शिष्य थे, पीछे निरांत के शिष्य बन गये। मराठा होते हुए भी इन्होंने अच्छी गुजराती में अनेक पद, गरबियाँ, राजिया, काफियाँ और महीने आदि लिखे। इनके महीनों में राधा-कृष्ण का वियोग वर्णित नहीं है, वरन् ब्रह्मानंद के सुख की झाँकी है। केवलाद्वैत दर्शन के अनुकूल वैराग्य और ज्ञान की चर्चा इनकी रचनाओं का मुख्य विषय है। ये धर्म-भेद को कोई महत्त्व नहीं देते थे। अखा की सी सबल शैली में इन्होंने भी धर्म की आड़ में होनेवाले अज्ञान तथा पाखंड की कड़ी आलोचना की है। इनकी रचनाओं में आनेवाले विवरण-युक्त वर्णन उनकी शक्ति बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

भोजो---ये सौराष्ट्र के अन्तर्गत फत्तेहपुर के कणबी थे और इनका काल

१७८५ से १८५० ई० है। इनकी रचनाएँ हैं—सैलेयाख्यान, भक्तमाल, अनेक पद, काफियाँ, होरी और चाबखा एवं वार, तिथि, महीना भी। ये ज्ञानमार्गी कवि हैं और इन्होंने योग की पारिभाषिक शब्दावली में अपने अनुभव को अनेक पदों में व्यक्त किया है। षटचक्रभेद का वर्णन करते हुए इन्होंने ब्रह्मबोध नामक काव्य लिखा है। इनके पदों का विषय है, भगवत्-स्तुति एवं संसार की अनित्यता, गुरु-महिमा और आत्मानुभूति आदि। भोजो की विशिष्टता उनके चाबखों में दिखाई देती है, जिनमें उन्होंने सशक्त व्यंग्य के साथ संसार के अनाचारों एवं पाखंडों की आलोचना की है। ऐसा कहा जाता है कि १२ वर्षों तक ये केवल दुग्धाहार करते रहे और उसके बाद १२ वर्षों तक बराबर अजपाजप करते रहे।

अहमदाबाद के कृष्णराम मेवाडा ने 'कलि काल वर्णन' की रचना की है। जूनागढ़ के प्रधानमंत्री नागर रणछोड़जी दीवान (१७६८ से १८४१ ई०) ने 'शिव रहस्य' का अनुवाद ब्रजभाषा में तथा 'शिवगीता' का गुजराती में किया। साथ ही १३ कवचोंवाली 'चण्डीपाठ' को कई गरबों में रचा तथा फारसी में 'तवारीखे सोरठ और वर्ण' लिखा। नरभेराम ने भक्ति-वैराग्य के कुछ पदों की रचना की। यहाँ रेवाशंकर, हरदास, मोतीराम, हरिभट्ट, सच्चिदानन्द स्वामी (मनोहर) तथा गिरधर का नाम भी लिया जा सकता है। गिरधर ने कई आख्यानों और रामायण की रचना की है।

स्वामीनारायण संप्रदाय और उसके कवि

सहजानंद स्वामी का जन्म अयोध्या से ७ मील दूर छपैया में चैत्र शुक्ल ९ सं० १८३७ को हुआ था। इन्हीं के बाद गुजरात में स्वामीनारायण अथवा उद्धव सम्प्रदाय का प्रचार हुआ। इनका पूर्वाश्रम का नाम हरिकृष्ण था। अपने माता-पिता के साथ ये केवल ११ साल ४ महीने रहे, फिर ७ वर्षों के लिए विभिन्न तीर्थों की यात्रा को निकल पड़े। सं० १८५६ में वे मुक्तानंद स्वामी से मिले, जो रामानंद स्वामी के पट्ट शिष्य थे। संवत् १८५७ में इन्होंने रामानंद स्वामी से दीक्षा ली, जिन्होंने इनसे उद्धव संप्रदाय का आचार्य होने को कहा। यद्यपि मुक्तानंद इनके ज्येष्ठ गुरुभाई थे, फिर भी उन्होंने सहजानंद

जी को नम्रतापूर्वक अपना गुरु माना। सहजानंद ने गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ में २८ वर्ष ५ महीनों तक धर्म की शिक्षा दी और उद्धवसंप्रदाय का प्रचार किया। इन्होंने देखा कि स्त्रियों के साथ लोग अच्छा व्यवहार नहीं करते, अनेक वर्गों में अनैतिकता फैली है, वाममार्गी अनाचार कर रहे हैं, कुछ धर्माचार्य भी गुप्त रूप से भ्रष्टाचार करते हैं, लोग असुविधा के कारण कन्याओं की हत्या कर देते हैं, कोली-वाघरे-भील आदि जाति के लोगों ने अपने हिंसक कर्मों से जनता में आतंक फैला रखा है। इन सभी लोगों में सहजानंद ने अपने उपदेश द्वारा पवित्रता लाने की चेष्टा की।

इस संप्रदाय के मूल संस्थापक आत्मानंद कहे जाते हैं, जो शांकर सिद्धांत को माननेवाले थे। किन्तु उनके बाद के रामानन्द एवं शिष्य सहजानंद ने रामानुज के श्री संप्रदाय का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया। यद्यपि सहजानंद ने पंचदेवों का पंचायतन भी स्वीकार किया था, तथापि उपदेश और प्रचार केवल श्रीकृष्ण-भक्ति का ही किया। अपने संप्रदाय में उन्होंने सभी जाति के लोगों को सम्मिलित किया। इन्होंने ही गुजराती भाषा में प्रार्थनाएँ आरंभ कीं, और अपना वचनामृत गुजराती में भी लिखा तथा अपने मुख्य उन साधुओं को, जो कविता करते थे, गुजराती में रचना करने को कहा। इनके प्रभाव में आकर अपराधी जातियों ने गैरकानूनी काम करना छोड़ दिया; समाज में महिलाओं का आदर बढ़ा; कई जातियों ने मांसाहार छोड़ दिया; भूत, प्रेत, मंत्र, तंत्र, मूठ आदि पर विश्वास करनेवालों के मन से भय दूर हो गया और उन्होंने केवल नारायण की प्रार्थना पर भरोसा करना सीख लिया। विवाह तथा होली के उत्सव में गाये जानेवाले अश्लील गीतों तथा फटाणों को बंद किया। इन्होंने धर्म, ज्ञान और वैराग्य से युक्त भक्ति का उपदेश किया।

इनकी कृतियाँ हैं—वचनामृत (स्वयं उन्हीं के वचन), उनके पत्र और वेदरहस्य। वचनामृत उस समय की प्रचलित गुजराती गद्य में है, जिसमें वेदान्त, धर्मशास्त्र, नीति, वैराग्य और भक्ति की चर्चा है और इन सबको व्यवहार में लाने का ढंग बताया गया है। दार्शनिक सिद्धांत एवं आत्मज्ञान की दृष्टि से इन्होंने रामानुज के सिद्धान्त को स्वीकार किया और उपासना के लिए पुष्टिमार्ग की पद्धति स्वीकार की, जिसकी स्थापना वल्लभाचार्य के पुत्र

विट्ठलेश गोस्वामी ने की थी। सहजानंद ने अपने शिष्यों को उपदेश देने तथा मार्ग-दर्शन के लिए अनेक पत्र लिखे हैं। इन्होंने वेदरहस्य भी लिखा है, जिसमें आत्मानुभूति तथा आत्मा-परमात्मा संबंध को जानने में सहायक मार्ग का वर्णन है। इन्होंने एक पुरुष मुमुक्षु के लिए स्त्री के २६ प्रकार के त्यागों का उपदेश किया है; इसी प्रकार एक स्त्री मुमुक्षु को पुरुष के २६ प्रकार के त्यागों की बात कही है।

इस संप्रदाय में कई ऐसे कवि हो गये हैं, जिन्होंने भजनों की रचना की है। इनमें से वासुदेवानंद और दीनानाथ शास्त्री-जैसे कुछ कवियों ने केवल संस्कृत में रचनाएँ की हैं और मुक्तानंद, ब्रह्मानंद, प्रेमानंद, निष्कुलानंद, देवानंद तथा मंजुकेशानन्द ने गुजराती में भजन लिखे हैं। कवि दलपतराम भी इसी संप्रदाय के थे। इनमें से किसी साधु ने कवि होने का दावा नहीं किया; सभी ने अपने ढंग से भक्ति-ज्ञान-वैराग्य के गीत गाये हैं। फिर भी इनमें कुछ द्वितीय श्रेणी के उत्तम कवि कहे जा सकते हैं।

मुक्तानंद—साधु होने के पहले इनका नाम मुकुन्ददास था। वस्तुतः ये रामानन्द स्वामी के पट्ट शिष्य थे। किन्तु जब रामानंद ने यह पद सहजानन्द स्वामी को दिया, तब मुक्तानंद ने प्रसन्नतापूर्वक सहजानंद का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। ये बड़े विनम्र थे और कभी-कभी सहजानंद स्वामी के सामने नाचते हुए पद गाते थे। इनकी रचनाएँ हैं—मुकुन्दबावनी, उद्धवगीता, और सतीगीता। इन्होंने भगवान् और भक्त के माहात्म्य का वर्णन किया है और करुण तथा भक्तिरस का अच्छा चित्रण। विधवाओं को संयम एवं भक्तिपूर्ण जीवन बिताने का उपदेश इन्होंने दिया है। इनके रचे हुए पद बहुत हैं।

ब्रह्मानन्द स्वामी—पूर्वाश्रम में इनका नाम था लाडू बारोट। इनका जन्म आबू की तराई में खाण ग्राम में हुआ था। इस संप्रदाय के ये प्रमुख कवि थे। ब्रजभाषा में भी इनके अनेक ग्रंथ हैं, जैसे सुमति प्रकाश, वर्तमान विवेक, ब्रह्मविलास, उपदेश चिन्तामणि और छन्द रत्नावली। सहजानंद इन्हें सखा कहा करते थे। ऐसा कहा जाता है कि ब्रह्मानन्द ने यह शपथ ली थी कि प्रतिदिन इतने पदों की रचना किये बिना भोजन न करूँगा। कच्छ की पाठशाला में इन्होंने शिक्षा पायी थी और बारोट होने के कारण छन्दों पर इनका अच्छा

अधिकार था। इन्होंने गोपियों की प्रेम लक्षणा भक्ति तथा ज्ञान-वैराग्य के पद भी उतनी ही कुशलता से लिखे हैं। उनकी शैली आकर्षक तथा काव्य उच्च कोटि का है। निस्संदेह इनमें काव्यत्व उत्तम कोटि का था और भाषा पर इनका अधिकार था। इनके पदों में कई स्थल ऐसे हैं, जो श्रेष्ठता की दृष्टि से भालण, प्रेमानंद और दयाराम का स्मरण दिलाते हैं।

निष्कुलानंद (सन् १७६६–१८४८ ई०) का पूर्व नाम लाल जी सुथार था। ये कच्छ में सहजानंद स्वामी के साथ हो गये थे। इन्होंने सादी, किन्तु सशक्त भाषा में ३००० पद लिखे हैं, जिनमें भक्ति-वैराग्य का उपदेश है। इनके कुछ पद बहुत प्रसिद्ध हैं।

प्रेमानंद—प्रेमानंद(१७७९–१८४५)का दूसरा नाम प्रेमसखी भी था। स्वामी नारायण सम्प्रदाय के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। ये अपने को गोपी के रूप में मानते थे। ये बड़े अच्छे गायक थे और बहुत प्रेम-भक्ति के साथ इन्होंने श्रीकृष्ण तथा उनके अवतार सहजानन्द स्वामी के गीत गाये हैं। ज्ञान-वैराग्य-भक्ति संबंधी बहुत से पदों की रचना इन्होंने की है। इनके बारहमासी और विरह के पद सर्वोत्तम हैं। अच्छे संगीतज्ञ होने के कारण इन्होंने विभिन्न रागों में पदों की रचना की है और उन्हें स्वयं बड़ी मधुरता से गाया है। नरसिंह के बाद शुद्ध भक्ति के ये सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं।

इस सम्प्रदाय के अन्य कवि हैं—मंजुकेशानंद, देवानंद, योगानंद, भोमानंद और गुणातीता नंद, जिन्होंने अनेक पदों की रचना की है।

कबीर पन्थ

यह तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि कबीर कभी सौराष्ट्र पधारे थे, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उनके कुछ योग्य उत्तराधिकारी अवश्य यहाँ पहुँचे थे। कबीर के बाद सौराष्ट्र में दो पंथ हुए—एक रामकबीरिया और दूसरा संतकबीरिया। जो कबीर को राम का अवतार मानते थे, वे रामकबीरिया कहलाये। ये पीला अँगरखा और सिर पर टोप पहनते थे। १८वीं तथा १९वीं शताब्दी में कबीरपंथ के सन्त विशेषतः समाज के निम्न श्रेणी के लोगों को उपदेश दिया करते थे। कबीर के लगभग २०० वर्ष बाद भाणदास हुए,

जो जाति के लुहाणा थे और कनखिलोड में उत्पन्न हुए थे। इनका काल सन् १६९८ से १७५५ तक है। इनके गुरु आंबो छट्ठो नाम के एक भरवाड थे। सौराष्ट्र में इन्होंने ही रामकबीरिया पंथ आरंभ किया। इनके ४० शिष्यों का एक दल था, जो भाणफौज के नाम से प्रसिद्ध था। इनको सब लोग भाण-साहेब कहते थे। ये देहाती भाषा में—विशेषकर गाँवों में—लोगों को वैराग्य, गुरु-महिमा, रहस्यवाद, प्रेमलक्षणाभक्ति आदि का उपदेश दिया करते थे। गोरखनाथ के नाथ-संप्रदायवाले हठयोग, ब्रह्मचर्य तथा स्त्री के पूर्ण त्याग का उपदेश करते थे। गोरखनाथ को भावुक भक्तों की भावुकता से बड़ी घृणा थी। किन्तु गुजरात के सन्त-काव्य में गोरखनाथ के योग, कबीर के रहस्यवाद, वैष्णवों की भक्ति तथा ब्रह्मानन्द की मस्ती का मिश्रण है। भाणसाहेब का जन्म यद्यपि गुजरात में हुआ था, तथापि उनके उपदेश का क्षेत्र सौराष्ट्र था। सन् १७५५ में उन्होंने जीवित समाधि ले ली। रव जी नाम का एक व्यापारी बहुत अधिक ब्याज लेता था तथा अनेक छल-कपट के काम करता था, भाण-साहेब ने उसे बदल दिया और अपना शिष्य बना लिया। इन रवजी की इतनी अधिक उन्नति हुई कि ये बहुत प्रसिद्ध हो गये और भाणसाहेब के योग्य शिष्य सिद्ध हुए। बाद में ये रविसाहेब कहलाये और इन्होंने उच्चकोटि के अनेक भजनों की रचना की।

खीम साहेब भाण साहेब के पुत्र थे और इन्होंने भी अनेक पद लिखे। मोरार साहेब रवि साहेब के शिष्य थे। ये थराद के राजकुमार थे। इन्होंने भक्ति-ज्ञान-वैराग्य के पदों की रचना की है और जीवित समाधि ली है। त्रीकम साहेब एक अछूत और खीम साहेब के शिष्य थे। इन्होंने भी अनेक पदों की रचना की और जीवित समाधि ली। होथी एक मुसलमान और मोरार-साहेब के शिष्य थे। सन्त जीवणदास जाति के चर्मकार और त्रीकम साहेब के शिष्य के शिष्य थे। ये दासी जीवण कहलाते थे और सखीभाव के अत्यन्त मधुर पदों की रचना इन्होंने की है। ये राधा के अवतार समझे जाते थे। इन कवियों की रचनाओं में कुछ विशेष पारिभाषिक शब्द मिलते हैं, जैसे सून, नूरती-सूरती, अलख, गगनमंडल आदि। योग की भाषा, कुण्डलिनी, षट्चक्रभेद, अनाहत-नाद आदि शब्दों का अधिकता से प्रयोग हुआ है। इन कवियों के बनाये हुए

भजन बहुत प्रसिद्ध हुए। इन्होंने स्त्री-पुरुषों का मार्ग-दर्शन किया। आजतक इनके भजन गाये जाते हैं। इनकी रचनाओं में गुरु का बहुत अधिक महत्त्व है और सद्‌गुरु पर विशेष जोर दिया गया है।

महिला कवियों में डूँगरपुर की एक नागर महिला गौरीबाई का स्थान प्रमुख है। इन्होंने वेदान्त, भागवत तथा योग का अध्ययन किया था और कुछ दिन वाराणसी में रही थीं। वेदान्त, ज्ञान, वैराग्य आदि के लगभग ६५० पद इन्होंने लिखे हैं। ये प्रमुख ज्ञानमार्गी कवियित्री हैं। डभोई की एक विधवा ब्राह्मणी दिवालीबाई ने रामजन्म, रामविवाह, कुछ धोल, गरबियाँ, महीने और ब्रह्मज्ञान के पदों की रचना की है। इन्होंने तुलसी-रामायण का अध्ययन किया और विशेषकर रामभक्ति के गीत ही गाये हैं। वडनगर की एक नागर महिला कृष्णाबाई ने सीताविवाह तथा कई अन्य ग्रंथों की रचना की। उमरेठ की पुरीबाई ने सीतामंगल लिखा। बड़ौदा की राधाबाई ने श्रीकृष्ण तथा महाराष्ट्र के संतों की जीवनी पर रचनाएँ की हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मीठु महाराज की शिष्या जनीबाई ने नवनायिकावर्णन लिखा है। इसी प्रकार वणारसी बाई, नानीबाई, रतनबाई तथा अन्य कवयित्रियों ने भी रचनाएँ की हैं।

दयाराम

मध्यकालीन गुजराती साहित्य की समाप्ति दयाराम से होती है, जो परिमाण और प्रतिभा, दोनों दृष्टियों से प्रथम कोटि के कवि माने गये हैं। इनका जन्म भाद्रपद शुक्ल १२ सं० १८३३ को डभोई में हुआ था। ये साठोद्रा नागर ब्राह्मण थे और इनके पिता प्रभुराम भट चांदोद के रहने वाले थे। इनकी माता का नाम राजकोर था। इनके माता-पिता परम धार्मिक और कट्टर सनातनी थे। बचपन में ही दयाराम अनाथ हो गये और अपनी मौसी के द्वारा पाले-पोसे गये। इनका स्वरूप अत्यन्त आकर्षक था, गौर वर्ण के थे और बचपन में कुछ ऊधमी भी थे। माता-पिता की मृत्यु के बाद ये डभोई में मौसी के पास रहने लगे। इन्होंने भ्रमण बहुत किया और बहुत-से तीर्थस्थानों की यात्रा की। इन्होंने हिन्दी, ब्रज और संस्कृत भाषा का अध्ययन किया। ऐसा कहा जाता

है कि आरंभिक काल में इन्होंने किसी स्त्री के साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया कि गाँव के लोग क्रुद्ध हो गये और इन्हें गाँव छोड़कर पड़ोस के गाँव में जाना पड़ा। वहाँ इनकी भेंट केशवानंद संन्यासी से हुई और ये उनके शिष्य बन गये। कालान्तर में वैष्णव मत की ओर वे आकर्षित हुए। ये डाकोर के इच्छाराम भट्टजी के संपर्क में भी आये, जिन्होंने वल्लभाचार्य के अणुभाष्य पर प्रदीप भाष्य लिखा था। इस संपर्क के कारण इनके मन में कृष्ण की भक्ति उदय हुई और ये तीर्थयात्रा को निकल पड़े। कुछ तीर्थों में तो ये कई बार गये; कई तीर्थों में ३ बार और नाथद्वार में ७ बार गये। तीर्थयात्रा-काल में ये अनेक पंडितों और विद्वानों के संपर्क में आये तथा कई प्रान्तीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। इसीलिए दयाराम की रचनाएँ कई भाषाओं में मिलती हैं। गुजराती के अतिरिक्त इन्होंने ब्रज, मारवाड़ी, पंजाबी, सिंधी, उर्दू और बिहारी में भी कविताएँ की हैं। ये वृन्दावन गये और आसपास के २४ वनों में भी पहुँचे। सं० १८५८ में दयाराम ने 'मन मरजाद' और सं० १८६१ में 'पाकी मरजाद' ली। ३२ वर्ष की अवस्था में सं० १८६५ में इन्होंने अपनी अंतिम तीर्थयात्रा पूरी की और फिर सदैव के लिए डभोई में आकर बस गये।

दयाराम बहुत ही उदार और निराले थे। वस्त्रों की ओर उनका ध्यान बराबर रहता था। यद्यपि उनकी जीविका बहुत थोड़ी थी, तथापि उनके मित्र तथा प्रशंसक बराबर उनकी सहायता किया करते थे। ये पान बहुत खाते थे, लंबे बाल रखते थे, इत्र और सुगंधित तैल का उपयोग करते थे, धोती नागपुर की और साफा नदियाद का होता था। ये भाँग का भी सेवन करते थे। मधुर स्वर में ये बहुत ही अच्छा गाते थे। जीवन भर ये अविवाहित रहे। इनके प्रशं-सक बहुत अधिक थे, विशेषकर औरतों में इनकी ख्याति अच्छी थी। एक विधवा सोनारिन, जिसका नाम रतनबाई था, इनके जीवन भर इनके साथ रही, और इनकी वृद्धावस्था में उसने अच्छी सेवा की। ये अभिमानी और क्रोधी भी थे। यद्यपि पुष्टि संप्रदाय में इन्होंने दीक्षा ली थी, तथापि जब इनके गोस्वामी ने इनके प्रति थोड़ा-सा तिरस्कार प्रदर्शित किया, तो उसी समय इन्होंने दीक्षा में मिली तुलसी की माला तोड़कर फेंक दी। फिर इन्होंने असंयम के

लिए गोस्वामियों की निंदा पूर्ण स्वतंत्रता से की। सं० १८९८ में ये बीमार पड़े और माघ कृष्ण ५ सं० १९०९ में इनका देहान्त हो गया।

मध्यकालीन गुजराती साहित्य के अंतिम कवि होने से ये अधिक निकट पड़ते हैं, इसीलिए अनेक विद्वानों ने इनके जीवन से संबंधित अनेक तथ्य विस्तार में संग्रहीत किये हैं। कई छोटी-मोटी बातों में विद्वानों का मतभेद भी है। कुछ विद्वान्, विशेषकर पुष्टिमार्गीय वल्लभ संप्रदाय वाले, दयाराम को विनयी, कृष्णभक्त, निर्दोष और सादा चित्रित करते हैं। कुछ कहते हैं, वे शृंगारी कवि थे, जिन्होंने कृष्ण-भक्ति की आड़ में मानव-प्रेम का ही गान किया है। किन्तु उनके विशाल साहित्य को देखते हुए—जिसमें उन्होंने धार्मिक, दार्शनिक एवं साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से अपने मत के सिद्धान्तों को बड़ी कुशलता से व्यक्त किया है—यह विश्वास करना कठिन है कि वे ढोंगी थे और कृष्णभक्ति की आड़ में वे कुछ दूसरा ही गा रहे थे।

दयाराम की कृतियां—इन्होंने पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों का विवेचन करने के लिए धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथ लिखे, पौराणिक आख्यान लिखे, नरसिंह मेहता के जीवन पर काव्य रचे, षड्ऋतुवर्णन की रचना की,अनेक पद बनाये तथा इन सबके अतिरिक्त अद्वितीय गरबियाँ लिखी हैं।

इनके 'रसिकवल्लभ' में शुद्धाद्वैत दर्शन की विवेचना है। जैसे 'अखे-गीता' में अखो ने केवलाद्वैत दर्शन का प्रतिपादन किया है, उसी प्रकार दयाराम ने 'रसिक वल्लभ' में अन्य मतों का खंडन करके, विशेषतः मायावाद पर आक्रमण करके, शुद्धाद्वैत को स्थापित करने की चेष्टा की है। वल्लभाचार्य के मत के अनुसार भगवत्प्राकट्य ही फल है, इस फल को प्राप्त करने का एकमात्र हेतु प्रेम है और इस प्रेम को पाने के लिए नवधा भक्ति की व्यवस्था बतायी गयी है। इस नवधा भक्ति में सभी प्रकार के साधन अपनाये जा सकते हैं। दूसरे आचार्य केवल प्रस्थानत्रयी को ही मानते हैं, किन्तु वल्लभाचार्य उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता के अतिरिक्त भागवत पुराण को चतुर्थ प्रस्थान मानते हैं। उनके अनुसार ब्रह्म जगत् का कारण है। कारण ब्रह्म सत्य है, अतः इसका कार्य जगत् भी सत्य ही होना चाहिए। इस तर्क से मायावाद—जिसके अनुसार जगत् मिथ्या है—स्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु उन्होंने जगत्

अथवा प्रपंच में, जो सत्य है, और संसार में, जो अहंता-ममतात्मक और मिथ्या है, भेद माना है। दूसरे शब्दों में द्वैत=प्रपंच=जगत् सत्य है, किन्तु द्वैतज्ञान मिथ्या है। श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम सच्चिदानंद हैं। जगत् में जो जड़ है, सत् अंश आविर्भूत है और चित् तथा आनंद अंश तिरोभूत हैं। जीव में सत् और चित् दोनों अंश आविर्भूत हैं, केवल आनंद अंश तिरोभूत है। अक्षर ब्रह्म में सत् और चित् अंश आविर्भूत हैं तथा आनंद अंश एक सीमा में आविर्भूत है अर्थात् वह गणितानंद है। किन्तु पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण में सत्-चित्-आनंद तीनों अंश पूर्ण प्रकट हैं, साथ ही आनंद अंश गणित नहीं, वरन् पूर्ण एवं प्रकट है। ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों हैं। वह निर्गुण इसलिए है कि उसमें प्राकृत धर्म नहीं हैं और सगुण इसलिए है कि उसमें अलौकिक धर्म हैं। जीवों का विभाग पुष्टि, प्रवाह, और मर्यादा में हुआ है। प्रवाह जीव संसारी आत्माएँ हैं। उनका जन्म मरण होता है। मर्यादा जीव ज्ञान के आश्रित होते हैं तथा पुष्टि जीव कृष्ण-भक्ति पर आश्रित होते हैं। पुष्टि जीव ही सर्वोत्तम हैं। सगुणत्व एवं निर्गुणत्व परस्पर विरोधी होते हुए भी एक ही समय में ब्रह्म में निवास करते हैं, किन्तु अचिन्त्य शक्ति के कारण वह दूषण नहीं, भूषण बन गया है। शुद्धाद्वैत में 'शुद्ध' का अर्थ है माया-रहित। इस वाद को ब्रह्मवाद भी कहते हैं। पुष्टि का अर्थ है भगवान् का अनुग्रह। इसके लिए व्यक्ति को अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि आत्मा भी, कृष्ण के प्रति समर्पण अथवा निवेदन करना पड़ता है।

दयाराम ने अपने 'रसिकवल्लभ' में शुद्धाद्वैत के सिद्धान्तों का विवेचन करते समय कुछ भूलें भी की हैं। उदाहरणस्वरूप, असमवायि कारण को उन्होंने उपादान कारण कहा है और निमित्त कारण को समवायिकारण के रूप में वर्णन किया है। जगत् और संसार में उन्होंने भ्रम उत्पन्न कर दिया है। अक्षर ब्रह्म को उन्होंने केवल चिदंश कहा है। इन दार्शनिक भूलों के होते हुए भी उनकी कविताओं में कुछ भक्ति-वर्णन बहुत अच्छे हैं।

'पुष्टिपथ रहस्य' में बताया गया है कि पुष्टिमार्ग में जीव को सेवा किस प्रकार करनी चाहिए। इसमें ९ मीठां हैं और गोपालदास के वल्लभाख्यान की भाँति उसमें भी वल्लभाचार्य तथा उनके पुत्र विट्ठलेश का वर्णन है।

'ब्राह्मण भक्त विवाद' में दो ब्राह्मणों का संवाद इस विषय पर है कि वैष्णव और ब्राह्मण में कौन श्रेष्ठ है। निर्णय भागवत ७–९–१० के अनुसार ही है कि एक कृष्ण-विमुख विप्र की अपेक्षा एक चाण्डाल, जो भक्त है, कहीं अधिक अच्छा है। 'भगवद्गीता माहाम्य' में गीता का माहात्म्य वर्णित है, जो पद्म-पुराण के अनुसार है। 'भक्तिपोषण' में भक्ति तथा उसके स्वरूप की चर्चा है।

'अजामिलाख्यान' में ९ कडवों के द्वारा भगवन्नाम की महिमा बतायी गयी है और यह आख्यान-शैली में है। 'रुक्मिणी विवाह' भी एक आख्यान है, जिसका आधार भागवत १०–५३ है। 'सत्यभामा-विवाह' भागवत १०–५६ पर आधृत है और इसमें ८ कडवा हैं। इसमें नागरों के वैवाहिक उत्सवों का वर्णन अत्यन्त रोचक है। 'दशम स्कंधलीलानुक्रमणिका' में १३१ पद हैं, जिनमें भागवत का अति संक्षिप्त रूप गुजराती में आ गया है। काल-ज्ञान सारांश' में कवि ने ८२ पदों के द्वारा बताया है कि मृत्यु किस प्रकार विभिन्न ढंगों से मनुष्य के पास आती है। 'कुंवरबाई नूं मामेरुं' में नरसिंह मेहता के जीवन में घटी मामेरुं घटना का वर्णन है। 'षड् ऋतु वर्णन' में ६ ऋतुओं में श्रीकृष्ण-लीला वर्णित है। भाषा अलंकारमयी है तथा नवीन वर्णनों से पूर्ण है। इसमें अक्षर मेल वृत्त का भी उपयोग हुआ है। 'प्रबोध-बावनी' कहावतों का संग्रह है और दयाराम ने इसमें ५२ कुंडलियाँ भी लिखी हैं। उनकी अन्य रचनाओं—तिथि, बारहमासी, पारणुं, कक्को, मनप्रबोध आदि—में भक्ति तथा उपदेश हैं।

कवि की कई कृतियाँ हिन्दी और ब्रज में भी हैं। 'रसिक रंजन' हिन्दी का ग्रंथ है, जिसमें १७ अध्याय हैं और शुद्धाद्वैत के सिद्धान्तों का वर्णन है; इसी प्रकार 'सिद्धान्त-सार' में ४१ पद हैं। 'श्रीकृष्ण स्तवनामृत', 'श्रीभक्ति विधान', 'पुष्टिपथ-सार-मणिदास' आदि ब्रज की रचनाएँ हैं। सतसैया भी ब्रजभाषा में ही है और इसमें ७३१ दोहे हैं। यह बिहारी सतसई के ढंग की है। कवि ने स्वयं इस पर टीका लिखी है। ऐसा कहा जाता है कि अली उदेपुर दरबार में बिहारी सतसई की अपेक्षा दयाराम की सतसई अधिक पसंद की गयी, क्योंकि दयाराम की सतसई में अलौकिक शृंगार है और बिहारी सतसई में लौकिक। इन्होंने 'कृष्णनाम-माहात्म्य-मंजरी', 'श्रीकृष्णस्तवन चन्द्रिका', 'नाम प्रभाव

बत्रीशी' आदि ग्रंथों की भी रचना की है, जिनमें भक्ति की महिमा गायी गयी है। इनकी एक रचना 'भक्तिवेल' है तथा 'चौरासी वैष्णवना धोल' में वैष्णवों के जीवन-चरित हैं।

वल्लभ संप्रदाय के सिद्धांतों का वर्णन करने के लिए इन्होंने जो धार्मिक और दार्शनकि रचनाएँ की हैं, उनमें कहीं-कहीं बड़ी कटु भाषा का भी प्रयोग किया है। किन्तु 'रसिकवल्लभ' गुजराती छन्दों में वल्लभ संप्रदाय का उतना ही महान् ग्रन्थ है, जितना कि गुजराती में केवलाद्वैत दर्शन का ग्रंथ अखो का 'अखेगीता'। अपने कुछ आख्यानों में दयाराम उतने सफल नहीं हुए, जितने कि प्रेमानंद। राधा एवं गोपियों की प्रेमलक्षणा भक्ति का वर्णन करने में निस्संदेह दयाराम सर्वश्रेष्ठ हैं। 'प्रेमरसगीता' भागवत के भ्रमरगीत का अनुकरण है। इन्होंने सारावलि, बाललीला, कमललीला, रासलीला, रूपलीला, श्रीकृष्ण जन्म खंड, मुरली लीला, राधा जीनो विवाह खेल, राधी जीनो बखाण आदि ग्रन्थों की भी रचना की है।

दयाराम ने कई भाषाओं में सब मिलाकर ७५ ग्रंथ तथा कई हजार पदों की रचना की है। उन्होंने कुछ गद्य-साहित्य भी लिखा है, किन्तु गुजराती साहित्य में काव्य-कला की दृष्टि से उनका सर्वोत्तम योग उनकी गरबियाँ हैं। इन गरबियों का काव्य गीतात्मक है और नृत्य-गान के उद्देश्य से लिखा गया है, इनमें स्वर की मधुरता, सुन्दरता और ताल है। कृष्णलीला संबंधी इनकी गरबियाँ सर्वश्रेष्ठ हैं, जिनमें अधिकांशतः कृष्ण के प्रति गोपियों के वचन हैं। इनमें शब्द-चयन बहुत अच्छा हुआ है तथा स्वर और शब्द का सामंजस्य भी सुन्दर हुआ है। दयाराम के विशाल साहित्य में यद्यपि गरबियों का भाग अपेक्षाकृत थोड़ा है, तथापि गुजराती साहित्य का यह सर्वोत्तम अंश है। ये गरबियाँ विभिन्न रागों और ढालों में गायी जा सकती हैं। कृष्ण के लिए तड़पने वाली गोपियों के अनेक भावों का वर्णन इनमें किया गया है। उनकी कृष्णभक्ति, कृष्ण को उनका उपालंभ, कृष्ण की वंशी को उनका अपनी बैरिन समझना, उनकी बिरहानुभूति, कृष्ण-मिलन पर उनका हर्ष—इन सब भावों का वर्णन बड़े मधुर गीतों में कोमलता और सूक्ष्मता से हुआ है।

गरबियों के कुछ विभिन्न भाव देखिए—

१. उभा रहो तो कहुं बातडी बिहारी लाल।
(हे बिहारी लाल ! थोड़ी देर खड़े रहो, तो मैं अपनी बात कहूँ।)

२. आठ कुवाने नव बावड़ी रे लोल। सोलसें पनिहारी हार, म्हारा व्हाला जी हो। हावां नहिं जाउं मही वेचवा रे लोल।
(वहाँ ८ कुएँ हैं, ९ बावड़ियाँ हैं और १६ सौ पनिहारिन एक पंक्ति में खड़ी हैं। अब मैं दही बेचने नहीं जाऊँगी।)

३. एक गोपी कृष्ण से कुछ दूर ही खड़े रहने को कहती है, क्योंकि उसे भय है कि अगर काले कृष्ण से छू जायगी, तो उसका रंग भी कुछ काला हो जायगा। इसके उत्तर में कृष्ण कहते हैं कि प्रथम स्पर्श में कृष्ण स्वयं गोरे हो जायँगे और द्वितीय स्पर्श के बाद गोपी और भी गोरी हो जायगी। इस प्रकार स्पर्श से बचने के स्थान पर वे दो-दो बार का स्पर्श चाहते हैं।

४. श्याम रंग समीपे न जावुं मारे आज थकी।
(अब से मैं किसी काली वस्तु के समीप नहीं जाऊँगी।)

५. एक सास अपनी पुत्र-वधू को समझाती हुई कहती है कि सदाचरण कर और कृष्ण का साथ छोड़ दे। गोपी इस लांछन का उत्तर देती हुई कृष्ण का बचाव करती है।

६. गरबे रमवाने गोरी नीसर्यां रे लोल। राधिका रंगीली जेनुं नाम अभिराम ब्रजवासणी रे लोल। ताली देतां वागे झांझर झूमखां रे लोल।
(गोरी-रंगीली ब्रजवासिनी, जिसका नाम राधिका है, गरबा खेलने के लिए चली। जब वह हाथों से तालियाँ देती है, तो हाथ के झांझर बजते हैं।)

७. ओ वांसलडी ! वेरण थई लागी रे ब्रजनी नारने।
(ओ बाँसुरी ! ब्रज की नारियाँ तुझे अपनी बैरिन समझती हैं।)
ओ ब्रजनारी ! शा माटे तुं अमने आल चडावे।
(ओ ब्रजनारी ! तू व्यर्थ में मुझे दोष क्यों देती है ?)

८. उद्धव जी ! माधव ने कहेजो एटलुं।
(हे उद्धवजी ! माधव से इतना कहना।)

९. वाँकारे बाँका शुंरे हींडोरे आवडुं शुंरे गुमान रे।

(तुझे इतना गुमान क्यों है और अकड़कर क्यों चलता है ?)

१०. कृष्ण ने एक गोपी को दान के लिए रोक रखा है। गोपी छोड़ने की प्रार्थना करती है, कृष्ण उत्तर देते हैं।

११. एक गोपी मधुकर द्वारा संदेश भेजती है, जिसमें तिथिक्रम से उसकी विरह-व्यथा का वर्णन है। इसी प्रकार बारहमासी में राधा के विरह का वर्णन है।

१२. वागे वृन्दावन मां वांसली रे, उभो उभो वगाडे कहान।
(वृन्दावन में कान्हा बाँसुरी बजा रहा है।) इसमें रासलीला का बड़ा सुन्दर वर्णन है।

१३. इसी प्रकार कृष्ण की बाललीला तथा जसोदा से गोपियों की शिकायत का वर्णन है।

१४. कामण दीसे छे अलबेला तारी आँख माँ रे, भोलुं भाख मा रे।
(ओ अलबेले ! तेरी आँखों में वशीभूत करनेवाला जादू है, तू भोला बनकर बात मत कर।)

१५. राधा कृष्ण पर यह दोष लगाती है कि तुम दूसरी गोपी के साथ खेल रहे थे। ईर्ष्यावश राधा क्रोधित होती हैं और कृष्ण उन्हें मनाने का प्रयत्न करते हैं।

१६. लोचन मननो रे झगडो, लोचन मननो।
(नेत्र और मन के बीच झगड़ा हुआ कि नन्दकुँवर को पहले किसने देखा।)

१७. गोपी की प्रेम-समाधि का वर्णन सुन्दर है।

१८. कृष्ण को प्राप्त करने के लिए गोपियों द्वारा कात्यायनी व्रत का पालन।

१९. माता जसोदा झुलावे पुत्रने पारणे।
(माँ यशोदा पुत्र को पालना झुला रही है।)
यह हालरडा कविता बहुत प्रसिद्ध है और जन्माष्टमी के दिन सभी जगह निश्चित रूप से गायी जाती है।

२०. एक गोपी दूसरी से पूछती है—हे प्यारी सखी ! कल रात तू कहाँ क्रीड़ा करती थी ! तेरे पसीना क्यों आ रहा है और तेरी भौहें भीगी क्यों हैं ?

२१. कानुडो कामणगारो रे ।
(कृष्ण जादूगर है ।)

२२. जे कोई प्रेम अंश अवतरे, प्रेमरस तेना उर मां ठरे ।
(प्रेम रस केवल उसी के हृदय में रहता है, जो प्रभु के प्रेम अंश से उत्पन्न होता है । सिंहिनी का दूध केवल सिंह के बच्चे ही पी सकते हैं और यह केवल सोने के पात्र में ही ठहर सकता है, यदि किसी दूसरी धातु के पात्र में रखा जायगा, तो वह बर्तन फट जायगा ।)

२३. रांकमारी राधा ने दगो एणे दीधोरे,
फांदा मां नांखी रे एणे फांसीरे दीधोरे ।
(राधा की माँ शिकायत करती है कि मेरी बेटी बेचारी राधा को धोखा दिया गया । उसे फंदे में फँसाकर फाँसी दे दी ।)

२४. मारुं ढणकतुं ढोर ढणके छे सहुनग्र मां,
सीम खेत रखलुं कांई न मूके ।
(दयाराम कहते हैं कि उनका मन एक स्वच्छन्द पशु के समान सारे नगर में इधर-उधर घूमता फिरता है । वे इसे अधीन करने के लिए कृष्ण को सौंपते हैं ।)

२५. व्रज वहालुंरे वैकुंठ नहिं आवुं
मने न गमे चतुर्भुज थावुं,
त्यां श्री नन्दकुंवर क्यां थी लावुं ?
(व्रज मुझे बहुत प्रिय है, मैं वैकुण्ठ नहीं जाऊँगा । मुझे चतुर्भुज होने की अभिलाषा नहीं है । वैकुण्ठ में मैं नन्दकुमार को कैसे लाऊँगा ?)

२६. मारे अन्त समे अलबेला मुजने मूकशो मा ।
(ओ अलबेला ! अन्त समय में मुझे त्याग मत देना ।)

कभी-कभी दयाराम का शृंगार-वर्णन अतिशयता की ओर पहुँच गया है, जिसके लिए उनकी आलोचना भी हुई है । डाक्टर क० मा० मुन्शी की दृष्टि में दयाराम एक शृंगारी कवि थे, जिन्होंने कृष्णभक्ति की आड़ में मानव-प्रेम का वर्णन किया है । दयाराम का शृंगार गीतगोविंद का अनुकरण-जैसा प्रतीत होता है । इन्होंने सखीभाव अथवा गोपीभाव की भक्ति स्वीकार की थी ।

पुरुष होने के कारण इन्होंने साहस और लज्जा का अभाव प्रदर्शित किया है, तथा मीरा की भाँति दबे श्रृंगार की अपेक्षा खुला श्रृंगार वर्णित किया है। प्रमुख विद्वानों ने विभिन्न दृष्टियों से इनकी प्रशंसा की है।

दयाराम कहते हैं—"जब कामदेव स्वयं श्रीकृष्ण के वश में हो गया था, तो कृष्ण काम-वश कैसे हो सकते हैं ?" आगे इन्होंने कहा है—"कृष्ण की क्रीड़ा का गान करने से हृदय का काम रोग नष्ट हो जाता है।" दयाराम की इन पंक्तियों का आधार भागवत १०—२२—३६ है, यथा —

"न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ।।"

(जिनका मन मुझमें लगा है, उनके लिए काम काम नहीं रह जाता; भूँजे हुए या उबाले हुए अन्न में बीज बनने की शक्ति नहीं रहती और वह पुनः उग नहीं सकता।) भागवत १०—३३—४० में कहा है —

"विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनु श्रृणुयादथ वर्णयेद् यः ।
भक्ति परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ।।"

अर्थात् जो विश्वास के साथ कृष्ण और गोपियों की क्रीड़ा को श्रवण करता है, उसे कृष्ण की पराभक्ति प्राप्त होती है और धीर होकर शीघ्र ही वह अपने हृदय से काम-रोग दूर कर देता है। दयाराम द्वारा व्रज और गुजराती भाषा में रचे विशाल साहित्य को देखते हुए, जिसमें स्तुति, भक्ति, पुष्टि मार्ग के सिद्धान्तों का रहस्य और साम्प्रदायिक दर्शन है तथा अपेक्षाकृत खुले श्रृंगार की रचना कम है, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने श्रृंगार-वर्णन में अपने पूर्ववर्ती कवियों का ही अनुकरण किया है, जिन्होंने सखीभाव से युक्त प्रेमलक्षणा भक्ति का वर्णन किया था; साथ ही भागवत के उपर्युक्त उद्धरणों को ध्यान में रखते हुए दयाराम ने साहसपूर्वक खुला श्रृंगार वर्णन करने में कोई दोष नहीं समझा। उन पर कामुकता का भी दोषारोपण किया जाता है।

कुछ ने दयाराम को नरसिंह मेहता का अवतार माना है। दोनों वैष्णव थे। दयाराम की गरबियाँ नरसिंह का स्मरण कराती हैं, विशेषकर उनकी 'रास सहस्रपदी' और 'चातुरी छत्रीशी'। किन्तु नरसिंह का संबंध किसी सम्प्रदाय विशेष से नहीं था, जब कि दयाराम पुष्टि मार्ग के कट्टर अनुयायी

थे, साथ ही अन्य मतों के प्रति अनुदार। फिर भी दयाराम की गरबियाँ गुजरात की महिलाओं द्वारा स्थायी रूप से गायी गयी हैं, जिसके कारण वे गुजरात के प्रथम कोटि के गीतकार माने गये हैं। वर्तमान युग के सर्वश्रेष्ठ कवि नानालाल ने दयाराम से ही प्रेरणा प्राप्त की है, विशेषतः रास-रचना में। नानालाल ने कहा है कि दयाराम ने गुजरात के साहित्य कुंज में अमर बंसी बजायी है।

सन् १८५२ ई० में दयाराम के देहान्त से गुजराती साहित्य का मध्ययुग समाप्त होता है। ८०० वर्षों के इस युग में मुख्यतः भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का साहित्य हमें मिलता है। आख्यानों का प्रधान विषय था महाकाव्यों तथा पुराणों की धर्मकथाएँ, जैनों, वैष्णवों और केवलाद्वैत के ज्ञानमार्गी कवियों के उपदेश, शुद्धाद्वैत, उद्धव सम्प्रदाय, शाक्त मत तथा कबीर सम्प्रदाय आदि। इसी युग में पद्यवार्ताओं की भी रचना हम पाते हैं।

१८वीं तथा १९वीं शताब्दी में जैन साधुओं ने उसी परंपरागत साहित्य की रचना बड़े पैमाने पर जारी रखी; जैसे रास, धर्मकथाएँ, बालावबोध, स्तवन, सज्झाय आदि। इस युग में उदयरत्न, नेमिविजय, देवचन्द्र, भावप्रभसूरि, जिन-विजय, गंगविजय, हंसरत्न, ज्ञानसागर, भानुविजय, अनोपविजय और वीर-विजय का नाम उल्लेखनीय है। जैन-साहित्य की धारा बराबर अजैन-साहित्य की धारा के साथ-साथ बही है। किन्तु वर्तमान साहित्य के उदय होने के बाद जैन-अजैन दोनों साहित्य-धाराएँ पीछे छूट जाती हैं और सन् १८५० से हम नवीन युग में प्रवेश करते हैं।

मध्ययुगीन साहित्य के इस पूरे काल में लोकसाहित्य भी बहुत बड़े परिमाण में रचा गया, जो पुस्तकों के रूप में नहीं था, वरन् अपढ़ देहातियों द्वारा कंठस्थ करके गाया जाता था। चारण एक विशिष्ट भाषा डिंगल में, राजपूत राज-कुमारों तथा वीरों की वीरता अत्यन्त मधुर, निर्भय और स्पष्ट भाषा में गाया करते थे। हेमचन्द्र और मेरुतुंग के समय से दोहे लिखे जाते हैं और यह दोहा छंद विशेषतः सौराष्ट्र तथा राजस्थान में बहुत अधिक प्रसिद्ध हुआ है। ये बहुत छोटे मुक्तक होते हैं, जिनमें सुभाषित रहते हैं। दोहे मुक्तक तथा दोहा-माला—दोनों रूपों में लिखे जाते थे। दोहा माला लंबी रचनाएँ होती थीं, जिनमें वीरों, राजपूत राजकुमारों, काठियों यहाँ तक कि विद्रोहियों की भी प्रेम

तथा वीरतापूर्ण कहानियाँ कही जाती थीं। इसी प्रकार भाटों, रावलों तथा दूसरी जाति के लोगों ने भी दोहों, वार्ताओं और बिरदावलियों की रचना की है। किसानों के अपने भिन्न गीत थे। नाथ बाबा रावण हत्था बाजे के साथ गाते हैं। विविध सम्प्रदायों के सन्तों के अपने विशेष भजन हैं; चारण लोग शक्तिशाली वीरतापूर्ण गीत गाते हैं; महिलाएँ व्रत, उत्सव, विवाह, सीमन्त, यज्ञोपवीत, मामेरां आदि के गीत गाती हैं। वे हालरडा और राजिया भी गाती हैं। कन्याएँ त्यौहारों पर गोर गाती हैं। इसी भाँति नवरात्र तथा अन्य अवसरों पर रास, गरबा, रासड़ा, हींच, हमची आदि गीत गाये जाते हैं। घर में औरतें काम की थकान या ऊब को हलका करने के लिए दूसरे प्रकार के गीत गाती हैं। इसी प्रकार मांझी, भील, दूबला, मुसलमान तथा पारसी लोगों के अपने गीत हैं। कार्य की अरोचकता मिटाने के लिए मजदूरिनियों के अपने गीत हैं। इन लोकगीतों ने बहुत-से वर्तमान कवियों को प्रेरणा दी है। उनके छन्दों और ढालों का अनुकरण किया गया है और अनेक आधुनिक कवियों की रचनाओं में लोकगीतों की शब्दावली पायी जाती है।

इस प्रकार मध्यकालीन गुजरात ने कष्ट, परिश्रम, कठिनाई एवं विदेशी शासन के अंतर्गत रहकर भी अपनी चेतना बनाये रखने की चेष्टा की तथा उपर्युक्त विभिन्न साहित्य-स्वरूपों के द्वारा अपने संस्कार, धर्म, भक्ति और श्रद्धा की रक्षा की।

भाग २

उत्तरकालीन

गुजराती साहित्य का इतिहास

अध्याय १०

परिवर्तन-काल

मध्ययुगीन गुजराती साहित्य के अंतिम प्रमुख प्रतिनिधि दयाराम थे। ९ फरवरी सन् १८५२ ई० में उनकी मृत्यु हुई और तभी मध्ययुगीन गुजराती साहित्य का काल समाप्त होता है। हम सरलतापूर्वक कह सकते हैं कि उनकी मृत्यु के बाद आधुनिक काल प्रारंभ हुआ।

जिन मुख्य कारणों से मध्ययुग का परिवर्तन आधुनिक काल में हुआ, वे हैं (१) पश्चिमी संसार तथा पाश्चात्य शिक्षा से सम्पर्क स्थापित होना; (२) नवीन साहित्य, परंपरा एवं जीवन-शैली से परिचित होना। ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपना शासन-केन्द्र सूरत से उठाकर बंबई में स्थापित किया। परिणामस्वरूप परिवर्तन एवं नवीन सुधारों में बंबई का ही प्रधान हाथ रहा और उसने अनेक क्षेत्रों में प्रयत्न आरंभ किया। सन् १७५२ ई० में ईस्ट इंडिया कंपनी के डाइरेक्टरों ने यह सुझाव रखा कि निःशुल्क शिक्षा-शालाएँ खोली जायँ। उसके अनुसार बंबई तथा अन्य स्थानों में ऐसी शालाओं की स्थापना हुई और गुजराती एवं मराठी भाषा की पुस्तकें प्रकाशित की गयी थीं। सन् १८०४ में डा० ड्रमंड ने गुजराती का एक व्याकरण प्रकाशित किया। सन् १८२५ में नेटिव एजुकेशन सोसाइटी बनी। सन् १८२६ में कई स्थानों पर स्कूल खुले। सन् १८५७–५८ में श्री थियोडोर होप की अध्यक्षता में 'द होप वाचनमाला' नाम से गुजराती पाठ्य-पुस्तकों की माला तैयार हुई। अनुभवी गुजराती विद्वानों द्वारा ये पुस्तकें तैयार की गयी थीं, जो शिक्षा-क्षेत्र में ५० वर्षों से भी अधिक समय तक रहीं।

अंग्रेजी भाषा की शिक्षा देने के प्रबंध किये गये। सन् १८२७ में बंबई में एलफिस्टन इंस्टीच्यूट की स्थापना हुई थी, उसीको सन् १८५६ में एक स्कूल और कालेज में बदल दिया गया। पूना में डेकन कालेज और अहमदा-

बाद में गुजरात कालेज भी खुले। बंबई विश्वविद्यालय की स्थापना सन् १८५७ में हुई। गुजरात के उन प्रमुख शिक्षा-शास्त्रियों की शिक्षा इन्हीं संस्थाओं में हुई थी, जो आगे चलकर नेता बने और सार्वजनिक कार्यों में आगे रहे। आधुनिक शैली से अनेक विषयों पर पुस्तकें लिखी जाने लगीं। नव जागरण लाने में सूरत, बंबई और अहमदाबाद ने प्रमुख प्रयत्न किया।

दुर्गाराम मंछाराम मेहताजी (सन् १८०९–१८७८) यद्यपि कट्टर नागर ब्राह्मण परिवार के थे, किन्तु अन्य चार व्यक्तियों के साथ मिलकर सुधारों के लिए उन्होंने बड़ा संघर्ष किया। संयोग से उन चार व्यक्तियों का नाम भी 'द' से आरंभ होता था। दुर्गाराम ने अपनी रचनाओं और अपने भाषणों में जादू, टोना, भूत आदि अंधविश्वासों की तथा अन्य प्रचलित रीतियों और प्रयोगों की कड़ी आलोचना की। उन्होंने ही समाज एवं परिवार की गंभीर समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के लिए सूरत में मानव-धर्म-सभा की स्थापना की। सरकारी विरोध होने पर भी वे बंबई से एक लीथो-ग्राफ प्रेस सूरत ले आये। वे एक गुजराती स्कूल में अध्यापक थे। वे विचार-शील व्यक्ति थे। यद्यपि कट्टरपंथियों द्वारा उनका काफी विरोध किया जाता था, फिर भी अपने विचारों को वे बड़ी निर्भीकता और स्पष्टता के साथ व्यक्त करते थे। वे मानव-धर्म-सभा की बैठकों की कार्यवाही बड़ी सतर्कता से लिखा करते थे। आग के प्रकोप से उन लेखों का कुछ ही अंश बच पाया है। उसी अंश के आधार पर महीपतराम नीलकंठ ने दुर्गाराम की जीवनी सन् १८९३ में प्रकाशित की थी।

श्री फार्बेस एक अंग्रेज थे, जो गुजरात के लोगों तथा गुजराती साहित्य से बड़ी सहानुभूति रखते थे। उनके प्रयत्न से सन् १८४८ में अहमदाबाद में गुजरात-वर्नाकुलर-सोसाइटी की स्थापना हुई। उन्होंने भोलानाथ साराभाई के द्वारा कवि दलपतराम से सम्पर्क स्थापित किया। श्री फार्बेस को इतिहास, पुरातत्त्व तथा पांडुलिपियों के संग्रह का बहुत बड़ा शौक था। उन्होंने "रासमाला" नाम की एक पुस्तक लिखी थी, जिसमें उन्होंने पूर्व एवं मध्यकालीन गुजरात के इतिहास तथा कहानियों का वर्णन किया है। वे शिक्षा-प्रेमी थे और उन्हीं के कारण अनेक पांडुलिपियों का संग्रह संभव हो

सका। वे कवियों और विद्वानों को भी बहुत प्रोत्साहन देते थे। सन् १८५४ में गुजरात वर्नाकुलर सोसाइटी का साप्ताहिक पत्र 'बुद्धि-प्रकाश' प्रकाशित हुआ। जब फार्बेस की बदली सूरत में हो गयी, तब उन्होंने वहाँ भी उसी तरह की एक सोसाइटी बनायी, जिसका पत्र था 'सूरत-समाचार'। उनके अवकाश ग्रहण करने पर उनके मित्रों ने बंबई में 'फार्बेस सभा' की स्थापना की।

बंबई में श्री बार्नेस ने १८२० में 'द बांबे एजुकेशन सोसाइटी' की स्थापना की, जिसने बंबई में चार, सूरत में एक और भड़ोंच में एक स्कूल खोला। सन् १९२५ में विशप कार के निर्देशन में गुजरात में 'दि नेटिव एजुकेशन सोसाइटी' आरंभ हुई, जिसने रणछोड़ भाई गिरधर भाई (१८०३–१८७३) की सेवाओं को हस्तगत किया। उन्होंने अत्यन्त परिश्रम के साथ गुजराती की सर्वप्रथम पाठ्य पुस्तकें तैयार कीं; बंबई में अध्यापकों को शिक्षित करने का काम उन्हें सौंपा गया; अगले ३० वर्षों तक शिक्षा विषयक कार्यों के मुख्य तत्त्व रहे और इस प्रकार गुजरात में आधुनिक शिक्षा के स्थापक बने।

पूना के पास किरकी में मराठों के साथ हुए युद्ध के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी भारत की सर्वश्रेष्ठ शक्ति सिद्ध हो चुकी थी। अतः सन् १८१८ के पश्चात् पश्चिम भारत में अंग्रेजों की प्रधानता हो गई। सन् १८१९ में श्री एलफिंस्टन बंबई के गवर्नर हुए, जो १८२७ तक रहे। हिन्दू तथा पारसी जाति के नेताओं ने एलफिंस्टन के अवकाश ग्रहण करने पर एक बहुत बड़ी निधि एकत्र की, जिसके अधिकांश धन से बंबई का एलफिंस्टन कालेज खुला। स्काटलैंड के गिरजाघर के श्री जॉन विल्सन ने बंबई में विल्सन कालेज की स्थापना सन् १८३५ में की। उनके उपदेशों के प्रभाव से बहुत से हिन्दू तथा पारसी युवकों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। हिन्दू एवं पारसी लोगों में प्रगतिशील आंदोलन भी आरंभ हुए। ब्रह्मसमाज के नेता श्री केशवचन्द्र सेन सन् १८६४ तथा १८६७ में बंबई आये और एक प्रार्थना-समाज आरंभ किया। इस प्रार्थना-समाज के प्रमुख थे डा० आत्माराम पांडुरंग (१८२३ से १८९८), जो डा० विल्सन के मित्र थे। इस समाज के उद्देश्य थे आस्तिक भावयुक्त भगवत्-पूजा तथा समाज-सुधार। केशवचन्द्र सेन सन् १८६९ में

फिर बंबई आये और उस प्रार्थना-समाज को शक्ति दी। बंबई के गिरगाम मुहल्ले में इस समाज का एक भवन बन गया और सर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर तथा न्यायाधीश एम० जी० रानडे इसके सदस्य बने। श्री दयानंद सरस्वती सन् १८७४ में बंबई आये; किन्तु उनके वेद-सम्बन्धी विचार प्रार्थना-समाज के अनुकूल नहीं थे, अतः उन्होंने १८७५ में आर्य-समाज की नींव डाली। यद्यपि प्रार्थना-समाज ने मूलतः राजा राममोहन राय (१७७२ से १८३३) द्वारा स्थापित ब्रह्म-समाज से ही प्रेरणा प्राप्त की थी, किन्तु बंबई के ब्रह्म समाजी नेता अपने को ब्रह्म समाज से संबंधित नहीं बताना चाहते थे, क्योंकि उस समय तक ब्रह्म-समाज में काफी विचार-संघर्ष हो चुका था। पंडिता रमाबाई रानडे ने महिलाओं में काफी ठोस कार्य किया और उन्होंने 'आर्य महिला समाज' आरंभ किया।

ब्रह्म-समाज अव्यक्त भगवान् को मानता था और औपनिषदक सिद्धांतों का समर्थक था, जिसमें मूर्ति-पूजा के लिये कोई स्थान नहीं। राजा राममोहन राय के बाद केशवचन्द्र सेन तथा देवेन्द्रनाथ टैगोर इसके नेता बने। बंबई के प्रार्थना-समाज का प्रचार बहुत अधिक नहीं हो सका। मुख्यरूप से इसने हिन्दू धर्म-ग्रन्थों एवं महाराष्ट्रीय संतों से प्रेरणा प्राप्त की। इसने भी मूर्ति-पूजा का विरोध किया। इसके धार्मिक कृत्यों में एक था 'रविवारीय सेवा'। यद्यपि आर्य समाज के संस्थापक दयानंद सरस्वती (संन्यासी होने के पूर्व मूलशंकर) सौराष्ट्र के अन्तर्गत मोरवी के निकट टंकारा के रहनेवाले थे, किन्तु उनका धर्म पंजाब एवं संयुक्त प्रदेश (अब उत्तर प्रदेश) में खूब जोरों से फैला। वे वेदों को ही पूर्ण प्रामाणिक मानते थे। हिन्दी में उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखा, संस्कृत में 'वेद-भाष्य' तथा 'ऋग्वेद भाष्य भूमिका' की रचना अंशतः संस्कृत में और अंशतः हिन्दी में की। वे भी मूर्ति-पूजा के विरुद्ध थे। उनके प्रभाव में स्त्री-शिक्षा और हिन्दी-अध्ययन को आश्रय मिला। इस आर्य समाज का उद्देश्य था जनता की शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति करना। ३० अक्तूबर १८८३ को ५९ वर्ष की अवस्था में स्वामीजी का देहावसान हो गया।

हाल में ही स्थापित 'एलफिस्टन इंस्टीच्यूट' में पढ़े हुए कुछ युवकों ने

'द स्टुडेंट्स सोसाइटी' (विद्यार्थी-समाज) को आरंभ किया, जिसकी गुजराती शाखा का नाम था 'गुजराती ज्ञान प्रसारक मंडल'। इस समाज ने 'ज्ञान-प्रसारक' नाम का एक पत्र भी निकाला। सन् १८५१ में इसी संस्था का एक और संघ बना, जिसका नाम था, 'बुद्धिवर्धक सभा', जिसका मासिक पत्र था 'बुद्धिवर्धक'। इस दल के सदस्य थे रणछोड़ भाई, उदयराम, दुर्गा राम मंछाराम, तुलजाराम सुखराम, मोहनलाल रणछोड़ भाई, महीपतराम रूप-राम, सोराबजी बंगाली, आरदेशर मूस, नानाभाई रानिना तथा अन्य लोग। इन्हीं में करसनदास मूलजी भी थे, जो समाज-सुधारक थे और जिन्होंने बाद में वैष्णव संप्रदाय के गोस्वामियों के अनैतिक आचरणों का भंडाफोड़ किया। इनमें से कुछ उत्साही कार्यकर्ताओं ने गणित, इतिहास, जीवनी-लेखन आदि विभिन्न आधुनिक विषयों पर पुस्तकें लिखीं तथा कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के अनुवाद किये। तब तक बहुत से साप्ताहिक एवं मासिक पत्र निकलने लगे थे, जिनके कारण कई लेखकों को साहित्य-निर्माण और समाज-सुधार का अवसर मिला। फारदूनजी मर्ज़बानजी ने सन् १८२२ में ही 'बंबई-समाचार' का प्रकाशन आरंभ कर दिया था।

करसनदास मूलजी ने सन् १८५५ में एक साप्ताहिक पत्र 'सत्यप्रकाश' आरंभ किया, जिसमें उन्होंने वैष्णव संप्रदाय के गोस्वामियों की कड़ी आलो-चना की। सन् १८५६ में नर्मदाशंकर ने समाज-सुधार विषयों पर निबंध लिखना आरंभ किया और उनकी कविताओं का 'सुधार-पुराण' के रूप में मान होने लगा। नागर समाज के महीपतराम सन् १८६० में इंगलैण्ड गये। उसी वर्ष विधवा-विवाह के प्रश्न पर नर्मदाशंकर का विवाद गोस्वामी जदुनाथ के साथ छिड़ गया। सन् १८६२ में बंबई हाईकोर्ट में महाराजा की मानहानि का प्रसिद्ध मुकदमा लड़ा गया। कुछ प्रभावशाली पारसी सज्जनों ने तथा एलफिंस्टन इंस्टीच्यूट के कुछ युवा पारसी व्यक्तियों ने मिलकर पारसी-समाज में 'द रिलिजस रिफार्म एसोसिएशन' (धार्मिक-सुधार-संघ) की स्थापना की। इस संघ में दादाभाई नौरोजी, जे० बी० वाछा, एस० एस० बंगाली और नौरोजी फ़रदून जी थे। उन्होंने एक साप्ताहिक पत्र निकाला 'रस्ता गोफ़्तार' (सत्य-वक्ता), जो बड़ा प्रभावशाली और सशक्त था।

खरदेसजी रुस्तमजी कामा यूरोप गए और वहाँ से लौटने पर भाषा तथा व्याकरण के तुलनात्मक अध्ययन के साथ पाश्चात्य पद्धति से उन्होंने अवेस्ता (पारसी धर्मग्रंथ) की शिक्षा देना आरंभ किया। बहरामजी मलाबारी ने स्त्री और बच्चों के सुधार का काम हाथ में लिया। बाद में दयाराम गीदूमल की सहायता से उन्होंने सेवा-सदन की स्थापना की। पारसी लोगों ने योरोपवालों से बहुत बड़ी घनिष्ठता पैदा कर ली और एक धनी पारसी ने एक फ्रांसीसी महिला से विवाह भी कर लिया। इस प्रकार सुधार संबंधी आंदोलन बड़ी शक्ति के साथ चल रहे थे।

शासक होने की श्रेष्ठ भावना से युक्त होकर अंग्रेजों ने इन सुधार-आंदोलनों को बहुत प्रोत्साहन दिया। लोगों को ईसाई बनाने तथा भारतीय सभ्यता पर आक्रमण करने के लिये ईसाई पादरियों ने अंग्रेजी शिक्षा को अपना माध्यम बनाया। धर्म-परिवर्तन का कार्य अबाध गति से चलने लगा और विशेषकर निर्धन वर्ग के लोग ईसाई धर्म स्वीकार करने लगे। हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज की भर्त्सना खुलकर होने लगी। समाज तो निस्सन्देह अशिक्षित था ही, किन्तु पहले के कुछ सुधारकों का ज्ञान भी अधूरा था तथा हिन्दुत्व एवं भारतीय संस्कृति से वे पूर्ण परिचित न थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके प्रबल प्रयत्नों के कारण समाज में जागृति जायी, किन्तु कुछ सुधारक कट्टर और अविवेकी थे। इन घोर सुधारकों की प्रवृत्ति से लड़ने के लिए तथा पश्चिम की अंधी नकल से बचने के लिये अनेक परिवर्तन-विरोधी-आन्दोलन आरंभ हुए। बंगाल में श्री रामकृष्ण परमहंस तथा उनके शिष्य विवेकानंद ने बंगाल में कार्य आरंभ किया और केवल भारत में ही नहीं, सारे संसार में उनकी ख्याति हो गयी। दक्षिण में 'थियोसाफिकल सोसाइटी' का आरंभ हुआ। दयानंद सरस्वती ने इस धर्म-परिवर्तन के विरुद्ध बहुत बड़ा काम किया और शुद्धि-आंदोलन चलाया। हिन्दू-समाज की एकता और अछूतों को ऊपर उठाने की दिशा में भी स्वामीजी ने अच्छा प्रयत्न किया। उत्तर भारत में स्वामी रामतीर्थ कार्य कर रहे थे। स्वामी दयानंद से प्रेरणा पाकर बाद में स्वामी श्रद्धानंदजी (महात्मा मुंशीराम) तथा लाला लाजपतराय द्वारा गुरुकुलों की स्थापना हुई।

यह सत्य है कि पश्चिम के संपर्क ने भारत में एक नवजागरण उत्पन्न किया, किन्तु यह कथन मिथ्या है कि भारत तब तक अशिक्षित था। पहले ही भारत में शिक्षा का चतुर्दिक् प्रसार था। प्रायः प्रत्येक गाँव में एक पाठशाला, टोल या मदरसा था। लोगों को नीति, धर्म, स्वास्थ्य-विज्ञान, शिष्टाचार आदि का सामान्य ज्ञान था। उच्च शिक्षा संस्कृत अथवा अरबी-फारसी के माध्यम से जनता प्राप्त करती थी। धनी लोग विशेष अध्यापकों को नियुक्त कर लेते थे। महाकाव्यों एवं पुराणों की शिक्षा पौराणिक या पुराणवाचक और गगरिया भट्ट देते थे। यह सब होते हुए भी यह सत्य है कि औरंगजेब की मृत्यु के बाद जो अव्यवस्था फैली, उसमें स्वदेशी शिक्षा की बड़ी अवनति हुई।

भारत के विभिन्न भागों में, प्रत्येक शताब्दी में, अनेक ऐसे साधु-महात्मा और योगी हुए, जिन्होंने नैतिक तथा आध्यात्मिक पक्ष को सबल बनाने में और भारतीय संस्कृति के कुछ उत्तम अंगों को सुरक्षित रखने में काफी सहयोग दिया। उन्होंने केवल जनता को ही उपदेश नहीं दिया, वरन् कुछ बड़े नेताओं के जीवन को परिवर्तित कर दिया। १९वीं शताब्दी में रामा बाबा हुए, जो प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ तथा वेदान्त दर्शन के सुज्ञ पण्डित, गोकुलजी झाला एवं प्रसिद्ध कथाकार जयकृष्ण व्यास के गुरु थे। नित्यानंदजी तथा मनोहर स्वामी, एक दूसरे बड़े नेता थे जो दर्शनशास्त्री एवं भावनगर निवासी, गंगा ओझा के गुरु थे। स्वामीनारायण संप्रदाय के साधुओं ने भी गुजराती की सांस्कृतिक तथा धार्मिक उन्नति के लिये बहुत काम किया। साधु देवानंद ने कवि दलपतराम को दीक्षा दी। दयानंद, जिन्होंने आर्य समाज की स्थापना की, स्वामी विरजानंद के द्वारा दीक्षित हुए थे। नृसिंहाचार्य की दीक्षा सूरत के मोहनस्वरूपजी के द्वारा हुई। नर्मदाशंकर अपने उत्तर जीवन में रुढ़िवाद की ओर झुक गये और उन्होंने प्राचीन विश्वासों के पक्ष में अपने ग्रंथ 'धर्म-विचार' में सबल तर्क उपस्थित किया। उस समय मनीलाल नभूभाई का उत्कर्ष होते हुए भी बहुत हो रहा था। नर्मदाशंकर के बाद उन्होंने ही यह कार्य सँभाला। श्रीमन् नृसिंहाचार्य तथा श्री नाथूराम शर्मा ने बड़े वेग से प्राचीन विश्वासों का समर्थन किया और दोनों में से प्रत्येक के अनुयायी बहुत बड़ी संख्या में थे। हिन्दुत्व और भारतीय संस्कृति की रक्षा करने में दयानंद,

रामकृष्ण, विवेकानंद, थियोसाफिकल सोसाइटी और श्रीमती बेसेंट ने भी बहुत योग दिया। अंत में प्राचीनता की रक्षा का यह सूत्र गुजरात में गोवर्धनराम आनंदशंकर तथा दूसरों द्वारा पहुँचा।

इस प्रकार सूरत तथा बंबई में अपने पूर्व जीवन में नर्मदाशंकर तथा उनके कुछ सहयोगी, सुधार के प्रबल पक्षपाती थे। अहमदाबाद में दलपतराम सुधार-कार्य, मन्द किन्तु निश्चित गति से कर रहे थे। भोलानाथ साराभाई ने भी, जो प्रार्थना-समाज में सम्मिलित हो गये थे, वहाँ सुधारों के पक्ष में उपदेश दिया। सौराष्ट्र के सांस्कृतिक नेता मनीशंकर किकानी थे। स्पष्टतः सन् १८५० से १८७० तक का काल नव-जागरण काल था।

एक ओर सुधारों के प्रति अपार उत्साह था, दूसरी ओर प्राचीन विश्वासों की रक्षा के लिए अनेक आंदोलन खड़े हुए। पूर्व-पश्चिम के प्रथम विचार-संघर्ष के परिणामस्वरूप ऐसा होना स्वाभाविक था। इन दोनों का सामंजस्य बाद में गोवर्धनराम की रचनाओं में, विशेषकर उनकी अमर रचना 'सरस्वती चन्द्र' में, उत्पन्न हुआ; और इसका कारण था संस्कृत तथा अतीत भारत के वैभवपूर्ण साहित्य का गहन अध्ययन। आगे चलकर गुजरात में सुधार-कार्य रमनभाई महीपतराम, नरसिंहराव भोलानाथ तथा मनीशंकर रतनजी भाट (कांत रूप में प्रसिद्ध) के हाथों में था; और प्राचीनतावाद की रक्षा का काम नर्मदाशंकर (उत्तर जीवन में), नृसिंहाचार्य (जिन्होंने 'श्रेयस साधक वर्ग' की स्थापना की), नाथूराम शर्मा, मनीलाल, गोवर्धनराम, मनसुखराम त्रिपाठी आदि के ऊपर था।

पश्चिम के संपर्क के कारण साहित्य के रूपों और उसकी परंपरा में भी परिवर्तन हुआ। मध्यकाल में गद्य का उपयोग बहुत सीमित था। व्यापार-सम्बन्धी पुस्तकों, स्वीकार-पत्रों, सरकारी सहायता-पत्रों तथा राजनीतिक एवं अन्य पत्र-व्यवहार में ही गद्य का प्रयोग होता था। साहित्य में गद्य का उपयोग बहुत कम होता था। इसके विरुद्ध आधुनिक काल में गद्य का बहुत अधिक प्रसार हुआ, विशेषकर अपने नये रूपों में, जैसे निबंध, नाटक, उपन्यास और लघुकथा आदि। दोनों कालों में दूसरा अन्तर यह है कि मध्यकालीन साहित्य का विषय धर्म तथा पुराण तक ही सीमित था, किन्तु आधुनिक काल

में विषय का क्षेत्र आगे बढ़ा और अनेक धर्मेतर विषय भी इसके अंतर्गत आ गये। मध्यकालीन साहित्य मुख्यतः बहिर्मुखी था, किन्तु आधुनिक काल में अन्तर्मुखी काव्य तथा गीतों का आरंभ हुआ। साथ ही पुराने देशी छंदों में ही सीमित न रहकर काव्य में संस्कृत छन्दों का प्रयोग होने लगा। सुधारों के प्रति अति उत्साह होने के कारण साहित्य-सृजन का कार्य भी सुधारों के उपदेश के उद्देश्य से होता था और बाद में प्राचीनतावाद की रक्षा के उद्देश्य से होने लगा। इस नवीन साहित्य के उत्थान के साथ ही साहित्यिक आलोचना का साहित्य भी विकसित हुआ। काव्य में नये-नये रूपों का समावेश हुआ। इन रूपों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रूप गीत का था, जिसमें मुख्य रूप से कोई एक भाव व्यक्त किया जाता है। गजल का रूप फारसी साहित्य से लिया गया है। इसमें प्रायः प्रेम, वैराग्य एवं भक्ति की भावना रहती है। एक दूसरा रूप सॉनेट (चतुर्दशपदी) भी है, जो अंग्रेजी-साहित्य से आया है। रास मध्यकालीन गरबी का विकसित रूप है। खंड-काव्य, करुण प्रशस्ति, भजन तथा मुक्तक भी अन्य रूप हैं। आधुनिक साहित्य में हमें देशभक्ति के गान भी मिलते हैं; प्रतिकाव्य तथा बाल-काव्य के भी दर्शन होते हैं।

आधुनिक गद्य में निबंध, उपन्यास, नाटक, जीवन-चरित, शब्दचित्र, पत्र, लघुकथा, मनोरंजन एवं बुद्धि प्रधान साहित्य, साहित्यिक आलोचना, यात्रा-साहित्य, बाल-साहित्य, धार्मिक एवं दार्शनिक साहित्य, उच्च स्तरीय शोध-साहित्य, अन्य भाषाओं के कुछ ग्रंथों का अनुवाद, राजनीतिक तथा पत्रकारिता का साहित्य समाविष्ट है। निबंधों के भेद हैं—वर्णनात्मक, विचारात्मक, दार्शनिक, साहित्यिक एवं सुगम-सामान्य। उपन्यासों के प्रकार हैं—लघु, दीर्घ, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा जासूसी। नाटक भी इतने तरह के पाये जाते हैं—धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, अद्भुत कार्यों से युक्त; संपूर्ण गद्य में अथवा पद्य में या गद्य-पद्य मिश्रित; अभिपूर्व की दृष्टि से लिखे जानेवाले तथा केवल पढ़ने के लिए एकांकी नाटक।

गुजराती साहित्य का आधुनिक काल, जो सन् १८५२ में हुई दयाराम की मृत्यु के साथ समाप्त होनेवाले मध्यकालीन साहित्य से सर्वथा भिन्न है, बड़ी सरलता से निम्नाङ्कित उपकालों में बांटा जा सकता है—

१—सन् १८५२ से १८८५ तक
२— „ १८८५ से १९१४ तक
३— „ १९१५ से १९३४ तक
४— „ १९३५ से आगे

मध्यकाल में धार्मिक दृष्टिकोण की प्रमुखता थी, किन्तु आधुनिक युग में सामाजिक एवं धार्मिक-निरपेक्षता का दृष्टिकोण प्रधान है। यह परिवर्तन भारत में अंग्रेजी शासन के साथ आया।

आधुनिक काल दलपतराम और नर्मदाशंकर से आरंभ होता है। उनके पहले का साहित्य मुख्यतः पद्य में था। सामान्य धारणा यही थी कि किसी विषय के विचारों को व्यक्त करने का उचित माध्यम काव्य ही है; दूसरी मान्यता यह है कि जो कुछ भी छन्दबद्ध लिखा जाता है, वह सब काव्य है।

दलपत और नर्मदाशंकर के पहले धर्म की प्रवृत्ति मुख्य थी। किन्तु बाद में धर्म निरपेक्षता तथा दूसरी समस्याओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। अतः समाज-सुधार काव्य का विषय बना। ज्ञान, उपदेश, शिक्षा तथा सम्मति देने के लिए छन्दों का उपयोग होता था। पद्यों का गान जनता में सामहिक रूप से होता था और सरलतापूर्वक समझे भी जाते थे। आशु काव्य, शब्दचित्र काव्य, अक्षर चमत्कृति से लोगों का बहुत मनोरंजन होता था। उरवाणों, पादपूर्तियों तथा प्रबंधों की रचना बहुत अधिक हुई। धर्म के अतिरिक्त संसार-सुधार और नीतिबोध इन दो विषयों का समावेश और हुआ। नर्मद कवि के साथ ही आत्मलक्षी काव्य आरंभ होता है। उन्होंने चिन्तन काव्य भी आरंभ किया। इसका कारण यह था कि हमारा संघर्ष पाश्चात्य सभ्यता के साथ हुआ; और इस संघर्ष ने हमें चिन्तन की ओर प्रेरित किया। इन्हीं नर्मदाशंकर के साथ सृष्टि-सौन्दर्य-काव्य भी आरंभ हुआ। सन् १८८६ में नर्मदाशंकर की मृत्यु हो गयी। पाश्चात्य काव्य से लोगों को परिचित कराने के लिए तथा उसके प्रति लोगों की रुचि उत्पन्न करने के लिए चित्रों से पूर्ण 'कुसुममाला' का प्रकाशन सन् १८८७ में हुआ। इसी समय साहित्यिक आलोचना का सूत्रपात हुआ।

अब हम दलपतराम और नर्मदाशंकर की कृतियों पर विचार करेंगे।

अध्याय ११

दलपतराम और नर्मदाशंकर

समय की दृष्टि से, आधुनिक काल की प्रथम कविता दलपतराम की 'वापानी पींपर' थी, जिसकी रचना सन् १८४५ में हुई थी, यद्यपि आधुनिक कविता को वास्तविक रूप में आरंभ करनेवाले नर्मदाशंकर कहे जा सकते हैं। श्रीमाली ब्राह्मण दलपतराम डायाभाई त्रिवेदी का जन्म १८२० में वढवाया में हुआ और मृत्यु सन् १८९८ में हुई। उनकी आरंभिक शिक्षा पुराने ढंग की पाठशाला में हुई थी। उनके पिता निर्धन थे, किन्तु सुसंस्कृत और प्राचीन वैदिक शिक्षा में पारंगत थे। १४ वर्ष की आयु में बालक दलपतराम की दीक्षा स्वामी नारायणी साधु देवानंद द्वारा स्वामी नारायण संप्रदाय में हुई। उन्होंने ब्रजभाषा और संस्कृत का अध्ययन किया। अपने गुरु से उन्होंने पिंगल तथा अलंकार शास्त्र भी पढ़ा। जीवन के प्रारंभिक काल में उन्होंने सादरा के 'पोलिटिकल एजेंट' के कार्यालय में नौकरी की। सन् १८४८ में भोलानाथ साराभाई ने उन्हें श्री फार्बस के पास भेजा, जो एक ऐसे व्यक्ति की खोज में थे, जो उनके द्वारा लिखे जानेवाले 'गुजरात का इतिहास' के लिए सूचनाएँ एकत्र कर सके। तब तक दलपतराम कविताएँ लिखने लगे थे। अतः फार्बस उनसे बहुत प्रभावित हुए और दलपतराम को नियुक्त कर लिया। फार्बस की सरकार में अच्छी प्रतिष्ठा थी। वे गुजरात के लोगों, गुजराती साहित्य और गुजरात के इतिहास से बड़ा प्रेम करते थे। फार्बस के संपर्क ने दलपतराम के जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन उपस्थित कर दिया और उनके जीवन की दिशा बदलने में इस संपर्क का बहुत बड़ा हाथ था। दलपतराम ने यद्यपि अंग्रेजी नहीं पढ़ी थी, किन्तु अंग्रेजी के विद्वान् फार्बस के सान्निध्य ने दलपतराम के इस अभाव की किसी हद तक पूर्ति कर दी और उन्हें ऊपर उठाया। दलपतराम 'गुजरात वर्नाकुलर सोसाइटी' के मंत्री बना दिये गये।

कई वर्षों तक वे इस पद पर काम करते रहे, साथ ही इसी सोसाइटी का पत्र 'बुद्धिप्रकाश' संपादित करते रहे। जीवन के उत्तर भाग में उनकी आँखें चली गयीं, फिर भी साहित्य-सृजन का काम उन्होंने बंद नहीं किया। फार्बस के संपर्क तथा सोसाइटी के मंत्री होने के कारण उन्हें प्राय: लंबी-लंबी यात्राएँ करनी पड़ती थीं। फलस्वरूप जनता तथा कुछ राजकुमारों से उनका परिचय अधिक बढ़ गया। अपने जीवन-काल में उन्हें अनेक सम्मान प्राप्त हुए तथा आर्थिक रूप से भी उन्हें पर्याप्त सहायता मिला करती थी। अंग्रेजी सरकार से उन्हें सी० आई० डी० की उपाधि मिली, जो भारतीयों के लिए बड़ी दुर्लभ समझी जाती थी। गुजरात में उनके समकालीन विद्वान् उन्हें कवीश्वर कहते थे। अहमदाबाद में भोलानाथ साराभाई के साथ मिलकर बड़ी प्रिय एवं मधुर शैली में उन्होंने मंदगति से, किन्तु लगातार, सुधार कार्य किया; उस समय नर्मदाशंकर बंबई में बड़े जोर-शोर से सुधार के लिए साहित्यिक कार्य कर रहे थे तथा सौराष्ट्र में मनीशंकर किकाणी सुधार के लिए बराबर प्रयत्नशील थे।

दलपतराम की रचनाएँ लगभग ६५० पृष्ठोंवाली 'दलपत काव्य' में संग्रहीत हैं। उनका सर्वोत्तम काव्य 'फार्बस-विरह' (सन् १८६५) है, जो उनके मित्र तथा आश्रयदाता फार्बस की मृत्यु पर रचा गया था। 'वेनचरित्र' में उन्होंने विधवाओं की दुर्दशा का वर्णन किया है। यह आख्यान-शैली में लिखा गया है। नउनकी 'मांगलिक गीतावली' का प्रकाशन सन् १८८१ में हुआ, जिसमें कुछ अच्छे गीत हैं। दलपतराम समाज के दोषों का सुधार धीरे-धीरे करने के पक्ष में थे। उन्होंने अत्याचार का भी विरोध किया और देश-प्रेम के भाव को भी अच्छी प्रकार व्यक्त किया है। सन् १८५३ में उन्होंने 'राजविद्याभ्यास' और 'हुन्नरखानननी चढ़ाई' तथा १८५१ में 'संप-लक्ष्मी-संवाद' की रचना की थी। फार्बस कवियों तथा विद्वानों को प्रोत्साहन बहुत देते थे—उनके इस गुण का बखान करने के लिए दलपतराम ने सन् १८६१ में 'फार्बस-विलास' की रचना की, जिसमें उन्होंने काल्पनिक कवि-मेला का वर्णन किया है। किन्तु इसकी अपेक्षा उनका 'फार्बस-विरह' अधिक श्रेठ काव्य है। दलपतराम ने कई पुरस्कार प्रतियोगितावाले निबंध पद्य में लिखे

हैं। अंग्रेजी न जानने पर भी फार्बस तथा कर्टिस-जैसे अंग्रेज अफसरों के संपर्क में आने के कारण दलपतराम रूढ़िवाद से ऊपर उठने में समर्थ हो सके, और अंत तक अपने विश्वासों पर दृढ़ रहे। अपनी रचनाओं में वे क. द. डा. (कवि दलपतराम डाह्याभाई) हस्ताक्षर करते थे। उन्होंने अनेक गरबियों की रचना की है। उनके कई पद्यों में आदेश तथा सम्मति दी गयी है, किन्तु आक्रमणात्मक न होकर हल्के हास्य रंग में रंगी हुई। लोगों में जागृति लाने के लिए उन्होंने अनेक राजनीतिक, सामाजिक तथा औद्योगिक विषयों पर पद्य लिखे। भले ही आज के युग में उन पद्यों का कोई प्रभाव न हो, किन्तु अपने समय में अपने उद्देश्य की पूर्ति उन्होंने की। दलपतराम ने लगभग ६० वर्षों तक पद्य-रचना की। उनके उत्साही सहायक उन्हें कवीश्वर कहते थे और जब वे अन्धे हो गये, तो उनकी तुलना अंध-कवि मिल्टन से उन्होंने की (शारीरिक दशा में)। नर्मदाशंकर के अनुयायी द्वेषवश उन्हें गरबी-भट कहते थे। दलपतराम बड़े उत्साही, परिश्रमी और विवेकी थे तथा अपने देशवासियों को बहुत प्रेम करते थे। इसीलिए वे 'जनता-परायण-कवि' के रूप में विख्यात हुए। उनकी कविताएँ सभा-रंजन की दृष्टि से रची गयी हैं, किन्तु अपनी कविताओं में उत्तम कोटि का रस विकसित करने में वे समर्थ नहीं थे। उन्होंने अनेक अन्योक्ति काव्यों, व्यंग्य काव्यों तथा हास्य काव्यों की रचना की है। वे बड़े गंभीर विलक्षण ज्ञान युक्त व्यक्ति थे। वे इस बात में बहुत सतर्क रहते थे कि शिष्टाचार का उल्लंघन न हो। उनका हास्य बहुत हल्का होता था तथा व्यंग दबा हुआ रहता था। इन दो गुणों से युक्त उनकी अनेक कविताएँ बहुत समय तक स्मरण रहेंगी। जनता को मुग्ध करनेवाली कविताएँ करने में भी उन्होंने अपनी कुशलता का परिचय दिया है।

गद्य में उनके लिखे हुए कई निबंध हैं, जिनमें उन्होंने उस समय के सामाजिक दोषों तथा रूढ़िवादिता की आलोचना की है। उनके कुछ निबंध हैं, भूत निबंध, ज्ञाति निबंध, बाललग्न निबंध तथा पुनर्विवाह निबंध आदि। गद्य में उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली। इस क्षेत्र के सर्वप्रथम विद्वान् नर्मदा शंकर माने जाते हैं। दलपतराम ने दो नाटक भी लिखे हैं—लक्ष्मी नाटक और मिथ्याभिमान नाटक। इन दोनों में दूसरा पहले की अपेक्षा

उत्तम है। आलोचना-क्षेत्र में वे पुराने परंपरागत विचारों को ही मानते थे। इसीलिए मध्यकालीन कवि प्रेमानंद तथा शामल की तुलना करते हुए उन्होंने शामल को श्रेष्ठ कवि बताया है।

दलपतराम ने हिन्दी में भी पर्याप्त रचनाएँ की हैं। ज्ञान चातुरी, श्रवणाख्यान और पुरुषोत्तम चरित उनकी हिन्दी की प्रमुख रचनाएँ हैं। हिन्दी पर भी उनका असाधारण अधिकार था। वस्तुतः साहित्यिक दृष्टि से उनकी हिन्दी की रचनाएँ उनकी गुजराती रचनाओं से अधिक श्रेष्ठ हैं। श्रवणाख्यान उनकी उत्तम हिन्दी-रचना है। उन्होंने दलपत-पिंगल नाम का एक ग्रंथ लिखा है, जिसमें उन्होंने पिंगल शास्त्र पर शास्त्रीय विवेचन किया है। गुजराती में यह सर्वप्रथम स्वतंत्र पिंगल-ग्रंथ है।

शब्द चमत्कृति और अर्थ चमत्कृति पर दलपतराम का अच्छा अधिकार था। अनुप्रास, यमक, चित्र प्रबंध तथा विभिन्न शब्द और अर्थ अलंकारों का प्रयोग उन्होंने स्थान स्थान पर किया है। उन्होंने अनेक छन्दों का उपयोग किया है, और भिन्न-भिन्न विषयों पर बहुत अधिक लिखा है। अनेक गरबियां, पद और गीत उन्होंने लिखे। उनकी कविताओं में उपदेश का तत्त्व बहुत अधिक था, जो उस समय के अनुकूल था। किसी भी भावना का वर्णन वह बहुत ऊँचे स्तर पर नहीं करते थे। उन्होंने कई मुक्तक, दोहरे छप्पय भी लिखे हैं। इस क्षेत्र में वे ब्रजभाषा की काव्य-शैली से बहुत प्रभावित थे। तत्कालीन महापुरुषों तथा सामयिक समस्याओं पर भी दलपतराम ने अनेक काव्य रचे हैं। उनमें से कुछ में तो सुधार का उपदेश है। जब नर्मदाशंकर ने आत्म-लक्षी और प्रकृति-वर्णन की रचनाएँ आरंभ कीं, तब दलपतराम को भी प्रेरणा मिली और उन्होंने भी 'ऋतु-वर्णन' तथा 'प्रकृति-वर्णन' की रचना की। उनका सर्वोत्तम काव्य 'फार्बस-विरह' है। इसमें अधिकांश आत्मलक्षी काव्य है। उनकी यह परिपक्व अवस्था का ग्रंथ है—हरिलीलामृत, जो एक धार्मिक ग्रंथ है तथा जिसमें स्वामीनारायण संप्रदाय के संस्थापक सहजानंद स्वामी की जीवन-लीलाएँ वर्णित हैं। ऐसा कहा जाता है कि उनकी कविताएँ बालकों या उस वर्ग के लोगों द्वारा अधिक पसंद की जायँगी, जो वर्ग विकास की दिशा में अभी भी आरंभिक अवस्था में हैं। दलपतराम ने बड़ी ईमानदारी के साथ

अपना सारा जीवन काव्य और साहित्य की सेवा में बिताया। उनके अनेक बंधन भी थे, जिनमें से कुछ उनकी अवस्था और काल के कारण थे। उनकी ख्याति अनेक नामों से है, जैसे समर्थ उपकवि, जनतापरायण कवि तथा प्रजा-वत्सल साहित्यकार इत्यादि।

नर्मदाशंकर

कवि नर्मदाशंकर लालशंकर दवे २४ अगस्त १८३३ को सूरत में वडनगरा नागर ब्राह्मण-परिवार में उत्पन्न हुए थे। बंबई के एलफिस्टन इंस्टीच्यूट में उनकी शिक्षा हुई थी। वे दलपतराम से १३ वर्ष छोटे थे। हिन्दू-संस्कारों में उनका लालन-पालन हुआ था और ईश्वर पर उनका पूर्ण विश्वास था। बहुत छोटी अवस्था में उनका विवाह हो गया था। जब वे बंबई में बड़ी तीव्रता के साथ अध्ययन कर रहे थे, तभी उनके श्वसुर ने उन्हें सूरत बुला लिया और यह कहा कि अब अपना घर बसाओ, क्योंकि तुम्हारी पत्नी गृहिणी के योग्य हो गयी है। विवश होकर नर्मदाशंकर रांदेर के एक स्कूल में पन्द्रह रुपए मासिक पर अध्यापक हो गये। संयोग से शीघ्र उनकी पत्नी की मृत्यु हो गयी और वे आगे पढ़ने के लिए फिर बंबई आ गये। यहां आकर सुधार-कार्यों में उन्होंने अत्यन्त उत्साहपूर्वक भाग लेना आरंभ किया। उन्होंने 'बुद्धि-वर्धक-सभा' की स्थापना की और 'मंडलीथी थता लाभ विशे' पर एक भाषण दिया। ये बड़े महत्त्वाकांक्षी थे। २२ वर्ष की आयु में उन्होंने प्रार्थना के ढंग पर एक पद की रचना की थी; बस तभी से पद-रचना में वे रुचि लेने लगे। वे स्वयं कहते थे, "यदि पद-रचना से मुझे आनंद मिलता है, तो मैं वही करूँगा। जीवन-निर्वाह के लिए आध सेर ज्वार कमा लेना कोई कठिन काम नहीं है। उसके बाद से अपने काव्य संबंधी कामों की तैयारी में जुट गये। वे बंबई के एक स्कूल में अध्यापक हो गये थे, किन्तु स्कूल का शोरगुलवाला वातावरण उनके अनुकूल नहीं पड़ा। इसलिए २३ नवंबर, १८५८ को उन्होंने उस नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। उसी संध्या को अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपनी लेखनी की ओर देखकर उन्होंने कहा, "कलम ! हवे हुं तारे खोले छूँ", अर्थात् लेखनी ! अब मैं तेरी गोद में हूँ। उन्होंने निश्चय किया कि अब से आजी-

विका के लिए किसी अन्य पर आश्रित न रहकर साहित्य-सेवा द्वारा ही जीवन-निर्वाह करूँगा। अपने इस निश्चय पर वे २४ वर्षों तक दृढ़ रहे और इस काल में साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में उन्होंने बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य किये, साथ ही दूसरे लोगों को भी इस ओर प्रेरित किया। बड़ी वीरता से उन्होंने अनेक कठिनाइयों का सामना किया और निश्चय का पालन करने के लिए निर्धनता को भी स्वीकार किया। किन्तु २४ वर्षों के बाद असहाय हो गये और नौकरी की खोज में निकले।

नर्मद उत्साही, सत्यप्रिय और निर्भीक थे। प्रेम-शौर्य उनका उद्देश्य था। सुधार-आन्दोलन के वे नेता हो गये। वे संघर्ष को पसंद करते थे। उन्होंने अनेक साहसपूर्ण साहित्यिक कार्य आरंभ किये, नये रूपों का प्रयोग किया और अज्ञान, रूढ़िवाद, अंधविश्वासों तथा लोगों की कायरता पर आक्रमण किया। विधवा-विवाह विषय पर गोस्वामी जदुनाथ जी महाराज के साथ उनका विवाद बहुत दिनों तक चला। "दांडियो" नामक पत्र का वे संपादन करते थे, जिसमें अनेक सामाजिक दोषों की उन्होंने कड़ी आलोचना की। सन् १८६६ में लोग सट्टा बाजार में बहुत अधिक सट्टा खेलने लगे थे। इस दोष को भी उन्होंने नहीं छोड़ा और अपने पत्र में इसकी काफी निन्दा की। जो भी उन्हें सत्य प्रतीत होता, उसी को मानने का उनका स्वभाव था। इसी के फल-स्वरूप अपने जीवन के अंतिम समय में उन्होंने बड़ी वीरता से अपने विचारों को बदल दिया। उस समय सारे देश में पश्चिम के संपर्क से होने वाले भयंकर आक्रमण से हिन्दुत्व को बचाने की एक सशक्त लहर फैली हुई थी। ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज, आर्य-समाज, थियोसफी, रामकृष्ण परमहंस तथा अन्य लोगों ने अपने अपने ढंग से इसमें योग दिया। नर्मद ने भी हिन्दू धर्म के मूल ग्रन्थों का अध्ययन बढ़ाया और उन्होंने मान लिया कि बिना समझे-बूझे प्राचीनता की आलोचना करना उचित नहीं। उन्होंने अनुभव किया कि आर्य-धर्म तथा संस्कृति का पुनर्निर्माण करने में ही देश का कल्याण है। उन्होंने देखा कि सुधार का प्रचार करनेवाले उनके अधिकांश मित्र या तो स्वार्थ-साधन कर रहे हैं या भटके हुए हैं। उनकी टीका-टिप्पणी की कोई परवाह न करके अपने परिवर्तित विचारों को वे व्यक्त करने लगे और उन्होंने 'धर्म-विचार' लिखा।

नर्मद को विश्वास था कि उनके भाग्य में ही कवि होना लिखा है; वे तो महाकवि बनने की अभिलाषा रखते थे। उसकी तैयारी भी उन्होंने कर दी थी। एक राजगीर के पास पिंगल की एक पुस्तक थी, जिसे द्वेषवश वह छिपाये हुए था। नर्मद ने उसकी प्रतिलिपि करने का साहसपूर्ण प्रयत्न किया। वे नित्य उसके घर जाते और उस पुस्तक की प्रतिलिपि करते थे। साहित्य के कई क्षेत्रों में वे अग्रणी और आधुनिक गुजराती गद्य-पद्य के जनक कहलाये।

नर्मदाशंकर ने पहले-पहल ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि मध्यकालीन विषयों पर धीरा भगत के ढंग की कविताएँ लिखनी आरंभ किया। किन्तु बाद में आत्मलक्षी कविता करने लगे, जिसमें प्रेम एवं देशप्रेम के भाव तथा प्रकृति के वर्णन आदि होते थे। उन्होंने सुधार-सम्बन्धी उपदेश भी पद्य में लिखे। महाकाव्य लिखने की उनकी बहुत बड़ी इच्छा थी। उन्होने अपने दो अधूरे ग्रंथों 'वीरसिंह' तथा 'रुदन-रसिक'—में इसका प्रयोग भी किया।

आधुनिक कविता का वास्तविक आरंभ नर्मदाशंकर से होता है। उन्हें जो 'युगन्धर' कहा गया है, वह उचित ही है। उन्होंने विचार किया कि काव्य की आत्मा न तो छन्द-अलंकार है और न शब्द-योजना। काव्य की आत्मा के दर्शन हृदय की गहन भावनाओं को अभिव्यक्ति में होते हैं। इसी को हैज़लिट ने (Passion) मनोभाव और नर्मदाशंकर ने 'जोस्सो' कहा है। यद्यपि नर्मद भली भांति जानते थे कि कविता क्या है, किन्तु उनकी क्षमता सीमित थी। उन्होंने जो कुछ लिखा है, एक प्रचारक की दृष्टि से लिखा है। महाकाव्य के लिए उन्होंने वीरवृत्त और प्रलंबित रोला छंद का उपयोग किया था। उन्होंने गद्य-पद्य दोनों बहुत अधिक परिमाण में लिखा है। उनकी मुख्य कृतियां हैं—नर्म गद्य, नर्म कविता, नर्म कोश, राज्य रंग, मारी हकीकत, धर्म विचार, गुजरात सर्वसंग्रह तथा कुछ नाटक। मध्यकालीन कवियों के कई ग्रंथों का संपादन भी उन्होंने किया। 'नर्म कविता' में उनकी कविताएँ संगृहीत हैं और उनके गद्य का अधिकांश भाग 'नर्म गद्य' में है। उनके गद्य में निबंध, जीवन-चरित, आत्म चरित्र, नाटक, संवाद, कोश, भाषण, पत्र तथा पत्रकारिता संबंधी साहित्य है। गुजराती साहित्य का सर्वप्रथम कोश उन्होंने बिलकुल अकेले तैयार किया है, साहित्यिक आलोचनाएँ लिखीं; पिंगल-अलंकार

और व्याकरण-संबंधी विषयों पर लेखनी चलायी तथा धार्मिक विषयों पर विवाद चलाया। अपने 'धर्म विचार' में उन्होंने आर्य-धर्म तथा संस्कृति के पक्ष में लिखा। उनके गद्य-पद्य में आधुनिक गद्य-पद्य के सभी लक्षण पाये जाते हैं। उनकी अधिकांश कविता सन् १८५५ से १८६७ की लिखी है। यद्यपि अनेक विषयों पर उन्होंने बहुत बड़ी मात्रा में कवितायें लिखी हैं, किन्तु उच्च महत्त्व उन्हें नहीं प्राप्त हो सका। दलपतराम ने जहाँ शब्द-चमत्कृति और अर्थ-चमत्कृति पर अधिक ध्यान दिया, वहाँ नर्मदाशंकर ने रस और भावों पर अधिक बल दिया। यद्यपि काव्य के प्रति उनकी मान्यता बिल्कुल ठीक थी, किन्तु उनका प्रायः रस-निर्माण कृत्रिम लगता था। श्रेष्ठता की अपेक्षा उनका ध्यान परिमाण की ओर अधिक था। इसीलिए अनेक विषयों पर उनकी अधिकांश कविताएँ बहुत जल्दी में रची हुई लगती हैं। उनकी समस्त रचनाओं में बहुत ही थोड़ी ऐसी हैं, जिन्हें प्रथम कोटि की कविताओं में रखा जा सकता है। किन्तु यह भी सत्य है कि इन इनी-गिनी कविताओं में उनकी काव्य-शक्ति के दर्शन हो जाते हैं। मध्यकालीन शैली पर उन्होंने लगभग २०० पदों की रचना की है। गोपी-गीत तथा रुक्मिणी-हरण जैसे दीर्घ काव्य भी उन्होंने लिखे हैं, किन्तु उनकी मुख्य कृतियां हैं आधुनिक शैली पर सुधार, देशप्रेम, प्रकृति-वर्णन, प्रेम आदि विषयों की कविताएँ; कुछ आत्मलक्षी काव्य; हिन्दुओनी पडती, जो रोलावृत्त में १५०० पंक्तियों का एक दीर्घ काव्य है। हिन्दुओनी पडती एक रूपक है, जिसमें नर्मदाशंकर ने अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से वीर तथा करुण रस उत्पन्न किया है। उनका यह प्रौढ़ काव्य है। उनकी सर्वश्रेष्ठ कविताएँ हैं—जय जय गरबी गुजरात, या होम करीने पडो, कबीरवड पर कुछ कविताएँ, अवसार-संदेश और हिन्दुआनी पडती का कुछ अंश।

इतना अधिक पद्य रचने पर भी नर्मदाशंकर की प्रतिष्ठा एक गद्य-लेखक की दृष्टि से अधिक है और गुजराती साहित्य में उनकी सेवाएँ गद्य-विकास के क्षेत्र में ही स्मरण की जायेंगी। निबंध, जीवन-चरित, आत्मचरित, साहित्यिक आलोचनाएँ लिखने में मार्ग दिखानेवाले नर्मदाशंकर ही प्रथम सुष्ठु गद्य लेखक हैं। उनका गद्य सरल, स्पष्ट, सबल, प्रायः व्यंग्यात्मक तथा

प्रवाहपूर्ण है। वह ऐसा है, जिसे आज भी हम पढ़ना पसंद करेंगे। 'मारी हकीकत' में उन्होंने अपना अधूरा परिचय दिया है। 'राज्यरंग' में संसार के सभी देशों का इतिहास उन्होंने लिखा है। 'धर्म विचार' में उनके वे निबंध हैं, जो उन्होंने विचार-परिवर्तन के बाद लिखे हैं। ३५ वर्षों तक उन्होंने गद्य-लेखन जारी रखा।

नर्मद अत्यन्त भावुक थे। अपने आरंभिक जीवन में सामाजिक सुधारों के प्रति उनमें असाधारण उत्साह था। स्वयं उन्होंने एक विधवा से विवाह किया और वे मद्यपान भी करते थे। जीवन के अंतिम काल में जब उनके विचारों में परिवर्तन हो गया, तब से इतने बदल गये कि युवा मनीलाल नभूभाई को आर्य-धर्म की रक्षा के लिए प्रेरित किया और उनका मार्गदर्शन किया। नर्मद का व्यक्तित्व बड़ा शक्तिशाली था, जिसने उनके मित्र नवलराम जैसे गंभीर साहित्यिक आलोचक को भी चकित कर दिया था। नवलराम ने नर्मद की जीवनी लिखी थी, जो अब भी जीवनी-साहित्य की एक सर्वोत्तम कृति मानी जाती है। नर्मद की कविता में प्रवाह नहीं है, शैली और छन्द निर्दोष नहीं हैं तथा प्रसाद गुण का अभाव है। इनकी कविता का अधिकांश अपरिपक्व है। इन सब के होते हुए भी निस्सन्देह वे उस युग के नेता थे, जिसे बहुत से लोग नर्मद-युग अथवा सुधारक-युग कहते हैं। लोगों में उन्होंने वस्तुतः अच्छी कविता के प्रति रुचि उत्पन्न की; यह बात दूसरी है कि स्वयं अच्छी कविता बहुत नहीं कर सके। उनके जो थोड़े-बहुत श्रेष्ठ काव्य के अंश हैं भी, वे साधारण कोटि के अंशों में मिले हुए हैं। श्री विश्वनाथ भट्ट ने अपनी पुस्तक 'नर्मद नुँ मंदिर' में उनके गद्य-पद्य के कुछ विशिष्ट अंशों को संकलित किया है। नर्मद ने अपने परवर्ती कवियों या लेखकों का मार्ग स्पष्ट किया है। वे एक योद्धा, नवस्फूर्ति से युक्त, स्वाभिमानी, अहंकारी, आत्म-विश्वासी, अतिवक्ता, निर्भीक तथा इन सबके ऊपर सत्य-प्रेमी भी थे। उनका गद्य निस्सन्देह उनके पूर्ववर्ती अथवा समकालीन विद्वानों, जैसे दुर्गाराम, दलपतराम अथवा रणछोड़भाई, से श्रेष्ठ है। गुजराती भाषा के प्रथम कोश 'नर्मद कोश' के लिए नितान्त अकेले वे १२ वर्षों तक कार्य करते रहे; और यद्यपि अपने अंतिम समय में वे बहुत निर्धन हो गये थे, तो भी अपने स्वाभि-

मानी एवं हठी स्वभाव के कारण उस कोश के प्रकाशन का सारा खर्च उन्होंने ही उठाया। 'नर्मद-गद्य' में उनके वे निबंध हैं, जो भाषण के ढंग के हैं। तत्त्व-चिंतन पर लिखे हुए उनके निबंध 'धर्म विचार' में संगृहीत हैं।

दलपतराम और नर्मदाशंकर में एक प्रकार की प्रतिद्वंद्विता थी। दलपत-राम नर्मदाशंकर से केवल १३ वर्ष बड़े थे। दलपतराम की प्रवृत्ति भिन्न थी। वे मंदगति से, सतर्क होकर, गंभीरतापूर्वक और विवेक का पल्ला पकड़े हुए आगे बढ़नेवाले थे। वे दूसरों पर आक्रमण बहुत कम करते थे। उनका व्यंग भी मधुर होता था। सबसे बड़ा गुण उनका यह था कि वे व्यावहारिक थे। उत्तर गुजरात में उनकी बड़ी ख्याति थी और वे कवीश्वर कहे जाते थे। नर्मदाशंकर का स्वभाव इसके ठीक विपरीत था—सबल, आक्रमणात्मक, गरम, भावपूर्ण आदि। दोनों ने अपने-अपने ढंग से सुधारों के लिए उपदेश दिए हैं, दोनों ने सामाजिक दोषों की आलोचना की है और पद्यात्मक निबंध लिखे हैं। यह देखा जा चुका है कि नर्मद को वीर तथा शृंगार के वर्णन में आनंद आता था और दलपतराम को शांत एवं हास्यरस के वर्णन में। जहाँ तक शैली का संबंध है बाद के कवि नर्मदाशंकर की अपेक्षा दलपतराम से अधिक प्रभावित हुए, किन्तु विषयों की दृष्टि से दलपतराम की अपेक्षा नर्मदाशंकर में आधुनिकता तथा विविधता अधिक है। उन दोनों में प्रतिद्वन्द्विता होते हुए भी दोनों के संबंध में कटुता नहीं थी। १८५२ से १८८५ तक के युग का नामकरण करने में आलोचक एकमत नहीं हैं। कुछ उसे नर्मद-युग कहते हैं और कुछ दलपत-युग। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस काल में जो आधुनिक तत्त्व था, उसका अधिकांश नर्मदाशंकर द्वारा प्रदान किया हुआ है। इसी कारण से बहुत से विद्वान् नर्मदाशंकर को ही उस काल का 'युगंधर' मानते हैं।

अध्याय १२

नवलराम तथा अन्य साहित्यकार

जिस प्रकार आधुनिक काव्य का प्रारंभ नर्मद और दलपत से माना जाता है, उसी प्रकार नवलराम को सर्वप्रथम विशिष्ट, गंभीर एवं संतुलित साहित्यिक आलोचक समझा जाता है। नवलराम लक्ष्मीराम पंड्या का जन्म सूरत में सन् १८३६ में हुआ था। ये विसनगरा नागर ब्राह्मण थे। ये नर्मद से ३ वर्ष छोटे थे। मैट्रिक तक पहुँच कर इन्हें अपनी पढ़ाई बंद करनी पड़ी, क्योंकि आगे पढ़ने के लिए ये बंबई नहीं जा सके। एक सरकारी स्कूल में ये अध्यापक हो गये और धीरे-धीरे सूरत के ट्रेनिंग कालेज के प्रिंसिपल हुए। बाद में अहमदाबाद और राजकोट के ट्रेनिंग कालेजों की प्रिंसिपली की। सन् १८८८ में, नर्मद की मृत्यु के २ वर्ष बाद, इनकी मृत्यु हो गयी। नवलराम अपने काल के सर्वश्रेष्ठ गद्य-लेखक माने जाते हैं। ये गंभीर, विचारशील, स्वतंत्र और संतुलित मस्तिष्क के थे। अनेक विषयों पर इनकी लेखनी चली है। इनकी शैली मँजी हुई है और विषय का प्रतिपादन शास्त्रीय एवं गौरवपूर्ण है। ये स्कूल में जो न सीख सके, उसे अध्यापक, लेखक और पत्रकार बनकर सीख लिया। ये बड़े परिश्रमी थे और विद्योपार्जन के लिए सदैव उत्सुक रहते थे। अपने परिश्रम तथा धैर्य के बल पर ये जीवन में बराबर उन्नति करते चले गये और इन्होंने ज्ञान-वृद्धि की। ये 'गुजरात शाला-पत्र' के संपादक हो गये थे, जो सरकार के शिक्षा-विभाग का पत्र था। हिंदी पर भी इनका अच्छा अधिकार था। सूरत में नर्मदाशंकर इनके घनिष्ठ मित्र थे और जब ये अहमदाबाद गये तो इनकी मित्रता अम्बालाल साकरलाल तथा लालशंकर उमियाशंकर से हुई।

यद्यपि नवलराम का साहित्य मात्रा में नर्मद और दलपत के बराबर नहीं पहुँचता, किन्तु जो कुछ है वह अधिक अध्ययनपूर्ण और ठोस है। यद्यपि

नर्मद ने आलोचना का भी आरंभ कर दिया था, किन्तु नवलराम उनसे बहुत श्रेष्ठ हैं। ये जीवन भर अध्यापक रहे, अतः अंग्रेजी और संस्कृत का ज्ञान बढ़ाने का इन्हें पूर्ण अवसर मिला। इन्होंने साहित्यिक विषयों, शिक्षा, सुधार, साहित्यिक आलोचना आदि पर अधिक लिखा है। इन्होंने दो नाटक भी लिखे हैं, जिनमें एक है 'भटनुँ भोपालुँ', जो फ्रांसीसी नाटककार मोलिअर का बहुत ही सुन्दर गुजराती रूपान्तर है। इस नाटक में इन्होंने बड़े अच्छे ढंग से हास्य रस का विकास किया है, और शैली ऐसी है, जिससे प्रतीत होता है कि नाटक मूलरूप से गुजराती में लिखा गया है। आधुनिक काल का पहला गुजराती नाटक दलपतराम का 'मिथ्याभिमान' है, किन्तु नवलराम का 'भटनुँ भोपालुँ' निर्वाह तथा हास्य-वर्णन दोनों दृष्टियों से श्रेष्ठ है। इनका दूसरा नाटक है 'वीरमती'। इसकी कथावस्तु फार्बस की 'रासमाला' से ली गयी है। इसमें जगदेव परमार के जीवन की कुछ घटनाएँ वर्णित हैं। मुख्य-रूप से यह ऐतिहासिक नाटक है। पहले इन घटनाओं को नवलराम उपन्यास के रूप में लिखना चाहते थे, किन्तु बाद में इन्होंने अपना विचार बदल दिया और इसे नाटक का रूप दे दिया। यह साधारण कोटि की कृति है।

नवलराम ने कुछ कविताएँ भी लिखी हैं, विशेषतः बच्चों के लिए कुछ गरबियां। 'बाल लग्न बत्रीशी' तथा 'बाल गरबावली' में इनकी गरबियां संगृहीत हैं। काव्य-कला की दृष्टि से इनकी कई कविताएँ नर्मद और दलपत से भी उत्तम कोटि की हैं। नवलराम ने सुधारों के समर्थन में बहुत हल्के व्यंग्य और हास्य का उपयोग किया है। उनके विषय में यह मान्यता उचित है कि वे पहले एक कवि और विद्वान् हैं; इसीलिए साहित्यिक आलोचना करने में ये सफल हुए हैं। नवलराम ने कालिदास के 'मेघदूत' का भी अनुवाद किया है, प्रेमानंद के 'कुंवरबाईनुं मामेरुं' का सम्पादन किया है, भाषाशास्त्र पर 'व्युत्पत्ति पाठ' नामक पुस्तक लिखी है, ('इंग्रेज लेकनो इतिहास' अंग्रेज लोगों का इतिहास) लिखा, 'अकबर-बीरबर काव्य-तरंग' लिखा तथा 'कवि जीवन' लिखा, जो कवि नर्मदाशंकर की जीवनी है।

नवलराम श्रेष्ठ आलोचकों में एक हैं। 'गुजराती शाला-पत्र' के जब वे संपादक थे, तब आनेवाली बहुत सी विभिन्न पुस्तकों की आलोचना उन्हें करनी

पड़ती थी। उनकी आलोचनाएँ उच्चस्तरीय, अध्ययनपूर्ण और ठोस हैं। इनकी आलोचनाओं के सामने इनके पूर्ववर्ती विद्वानों की आलोचनाएँ या तो निम्नकोटि की प्रतीत होती हैं या उनमें अध्ययन का अभाव लगता है। इन्होंने साहित्यिक आलोचना के सिद्धान्तों पर भी विचार किया है और अनेक पुस्तकों की आलोचना की है। इनकी आलोचना-पद्धति शास्त्रीय होती थी। वे किसी विशेष पुस्तक को परखने का पहले मापदंड निर्धारित करते थे, फिर उसी मापदंड के अनुसार उसकी जांच करते थे। वे नये लेखकों को उत्साहित करते थे और ख्यातिपूर्ण लेखकों के दोष बताने में हिचकते नहीं थे। उन्होंने भाषा के स्वरूप, वर्णविन्यास, भाषा-विज्ञान, छन्द, वाक्य-विन्यास, यथार्थवाद, वैचित्र्यवाद, समस्त भारत के लिए एक वर्णमाला और एक भाषा की उपादेयता, नियमित और सुनिश्चित वर्ण-विन्यास आदि की अनेक समस्याओं पर भी इन्होंने विचार-विमर्श किया। इन्होंने साहित्य में अश्लीलता की काफी निंदा की है। इनकी शैली विश्लेषणात्मक, बहिर्मुखी, शास्त्रीय और निष्पक्ष है। अपने समय के कई विद्वानों का मूल्यांकन इन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक किया है, जिसके लिए उनमें पूर्ण क्षमता थी।

जीवन के अंतिम दो वर्षों में 'कवि जीवन' नाम से नवलराम ने नर्मदाशंकर का जीवन चरित लिखा, जिसमें उन्होंने नर्मद द्वारा लिखित अधरे आत्मचरित्र की सामग्री का उपयोग किया है। यह कृति उनकी साहित्यिक आलोचना का सर्वश्रेष्ठ अंश माना जाता है। इसमें उन्होंने नर्मदाशंकर के साथ पूर्ण न्याय किया है, जो जीवन के आरंभ में कट्टर सुधारवादी थे और बाद में प्राचीन विश्वासों के पोषक बन गये थे। नवलराम ने बड़ी कुशलता से नर्मद के विचारों का विश्लेषण किया था। आधुनिक गुजराती साहित्य में नवलराम का नाम एक अत्यन्त कुशल साहित्यिक आलोचक के रूप में लिया जाता है।

नन्दशंकर

नंदशंकर तुलजाशंकर मेहता एक वडनगरा नागर ब्राह्मण थे तथा सूरत में सन् १८३५ में उत्पन्न हुए थे। अपने समय के ये एक प्रमुख सुधारक थे। ये पहले सरकारी स्कूल में अध्यापक बने फिर क्रमशः जीवन में इन्होंने बड़ी

उन्नति की। श्री रसेल ने जो शिक्षा-विभाग में नंदशंकर से ऊँचे पद पर थे, सर वाल्टर स्काट की शैली में इन्हें गुजराती में एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिए उत्साहित किया। नंदशंकर ने गुजरात के अंतिम बघेला शासक करणघेला के जीवन की ऐतिहासिक घटनाओं को इसके लिए चुना। इस उपन्यास में उन्होंने गुजरात का वर्णन किया है, विशेषकर बघेलों के समय में पाटन का। उन्होंने अपने समय के सूरत के वर्णन का भी अवसर प्राप्त कर लिया। इसी उपन्यास में स्थान-स्थान पर सुधार सम्बन्धी उपदेश देने का लाभ भी उन्होंने लिया। उपन्यास की कथावस्तु यों है कि बघेला शासक करणघेला अपने मंत्री माधव की पत्नी रूपसुँदरी को उड़ा ले गया। क्रुद्ध माधव दिल्ली गया और सुलतान अलाउद्दीन खिलजी से उसने सहायता मांगी तथा गुजरात पर आक्रमण करने के लिए उसे प्रेरित किया। करणघेला अपने राज्य की रक्षा करने में असमर्थ रहा और अंत में उसने बागलाण के किले में शरण ली। यह गुजरात का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका प्रकाशन १८६६ में हुआ था। इसमें घटनाओं के कुछ वर्णन बहुत ही अच्छे हैं, यद्यपि चरित्रों का विकास बहुत अच्छा नहीं हुआ था जगह-जगह सुधार संबंधी उपदेशों के कारण पाठकों की रुचि कम हो जाती है। उपन्यास बड़ी सबल शैली में लिखा गया है। इसकी भाषा नर्मदाशंकर की अपेक्षा अधिक परिमार्जित है। लेखक अंग्रेजी-साहित्य का अच्छा विद्यार्थी था तथा उसकी शैली सुसंस्कृत एवं विकसित है। नंदशंकर का अनुकरण करके गुजराती में अनेक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये। महीपतराम नीलकंठ ने 'वनराज चावडो' अैर 'सधरा जेसंग' लिखा। मणिलाल छबाराम ने 'झांसी कीर ाणी' आदि लिखा। किन्तु ये कृतियां उतनी सफल नहीं हुईं, जितनी नंदशंकर की कृति। 'करणघेला' का अनुवाद मराठी भाषा में हुआ और अणेक वर्षों तक प्रसिद्ध रहा। कई दशकों तक यह उपन्यास पाठ्य पुस्तक के रूप में स्वीकृत रहा। उस समय के श्रेष्ठ ग्रंथों में से यह एक है। जब कि उस काल के दूसरे ऐतिहासिक उपन्यास कुछ प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्तियों के केवल जीवन-चरित बन कर रह गये, तब नन्दशंकर का उपन्यास यथार्थतः एक ऐतिहासिक उपन्यास के लक्षणों से युक्त था, जिसमें पाठकों की रुचि बराबर बनी रहती है।

भोलानाथ साराभाई

भोलानाथ साराभाई एक वडनगरा नागर ब्राह्मण थे, जो सन् १८२२ में अहमदाबाद में उत्पन्न हुए थे। ये न्यायाधीश रानडे से बहुत प्रभावित थे और सन् १८७१ में इन्होंने अहमदाबाद में प्रार्थना-समाज की स्थापना की। ये उसके सभापति थे। ये एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे और इन्होंने कई भक्तिरस की रचनाएँ की हैं। इनकी कविता में बल और सच्चाई है और ये ठीक ही आधुनिक काल के प्रथम भक्त कवि माने गये हैं। इनकी भक्तिपूर्ण रचनाएँ 'ईश्वर प्रार्थनामाला' तथा 'अभंगमाला' में संगृहीत हैं, जिनमें आपने ईश्वर की महिमा का वर्णन अत्यन्त गौरव तथा भावनापूर्ण ढंग से किया है। यद्यपि भोलानाथ के भजनों में मध्यकालीन नरसिंह, मीरा, दयाराम—जैसे कवियों का सा बल नहीं है और न वर्तमान काल के कवियों के विचारों की गुरुता है, परन्तु ये भजन गेय हैं और मराठी अभंगों के प्रभावों में लिखे गये हैं। चूँकि वे एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे, इसलिए वे उपनिषद्-दर्शन तथा ईसाईमत से प्रभावित थे। इन भजनों की रचना प्रार्थना-समाज की रविवारीय सभाओं में बाजों के साथ गाने के उद्देश्य से हुई थी। उनकी बाद की रचनाएँ कुछ अधिक परिपक्व हैं। दलपत और नर्मद के युग में भोलानाथ ने धर्म और भक्ति सम्बन्धी कुछ अच्छी कविताएँ गुजराती साहित्य को प्रदान कीं, जिन्होंने परवर्ती कवि केशवराम, कान्त, नरसिंहराव, नानालाल, खबरदार आदि को प्रभावित किया।

महीपतराम

महीपतराम रूपराम नीलकंठ एक वडनगरा नागर गृहस्थ थे, जो सूरत में सन् १८२९ में पैदा हुए थे। ये अहमदाबाद में जाकर बस गये थे। इन्होंने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की और इंगलैण्ड की यात्रा भी की थी। विदेश की यात्रा करना सुधार का कदम था। इसी लिए पहले इनके जाति वालों ने इनका बहिष्कार कर दिया था। सरकार के शिक्षा-विभाग में इन्हें उच्च पद प्राप्त था। ये अहमदाबाद में प्रेमचंद रायचंद ट्रेनिंग कालेज के प्रिंसिपल थे। जैसे नंदशंकर ने पहला उपन्यास करणघेला लिखा था, उसी प्रकार महीपतराम

ने १८६६ में प्रथम सामाजिक उपन्यास 'सासू बहूनी लड़ाई' लिखा। वे ६२ वर्ष तक जीवित रहे। उन्होंने दो ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे, 'वनराज चावडो' और 'सधरा जेसंग'। उन्होंने करसनदास मूलजी और दुर्गाराम मेहताजी की जीवनियां भी लिखी हैं। उन्होंने गुजरात की पुरानी 'भवा-इयों' का संग्रह किया था। उनके उपन्यास बहुत साधारण कोटि के हैं। उनमें या तो ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख मात्र है या तत्कालीन सामाजिक जीवन का। चरित्र-चित्रण एवं शैली भी अत्यन्त निम्नकोटि की है। उनकी श्रेष्ठ कृतियां हैं उनके जीवन-चरित। करसनदास मूलजी का जीवन चरित सर्वश्रेष्ठ है। करसनदास भी उन्हीं की भांति सुधारवादी ही थे। दुर्गाराम की जीवनी स्वयं दुर्गाराम द्वारा संचालित बैठकों की लिखित कार्य-वाही पर आधारित है। महीपतराम ने अपनी पत्नी की जीवनी "पार्वती आख्यान" के नाम से पद्य में लिखी थी। उन्होंने 'आगवोटनी मुसाफिरी' नाम की एक पुस्तक भी लिखी थी, जो गुजराती में यात्रा की पहली पुस्तक है और जिसमें उन्होंने अपनी इंग्लैण्ड - यात्रा तथा अंग्रेजों के विषय में लिखा है। कुछ समय तक उन्होंने 'गुजरात शाला-पत्र' का संपादन भी किया था। अपने 'भवाई-संग्रह' में उन्होंने भवाइयों के २० वेशों का संग्रह किया था। विभिन्न विषयों पर उन्होंने अनेक पाठ्य-पुस्तकें भी लिखी थीं। सन् १८९१ में उनकी मृत्यु हो गयी। अपने समस्त जीवन भर वे एक घोर और प्रगतिशील सुधारक बने रहे।

करसनदास मूलजी

करसन दास मूल जी का जन्म बंबई में सन् १८३२ में हुआ था। वे एक बड़े सुधारक और शिक्षा-शास्त्री थे। इंग्लैण्ड जाने वाले ये प्रथम गुजराती थे। ये 'सत्य प्रकाश' पत्र के सम्पादक थे तथा 'रास्तगोफ्तार' और 'स्त्री बोध' में भी ये बराबर लिखा करते थे। इनके लगभग १५ ग्रंथ हैं, जैसे 'इंग्लांड मां प्रवास', 'नीतिवचन', 'संसार सुख', 'निबंध माला' आदि। इनकी पुस्तक 'इंग्लांड मां प्रवास' इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। ये नर्मदाशंकर के घनिष्ठ मित्र थे। नर्मदाशंकर ने अपने पत्र 'सत्य-प्रकाश' में सूरत के पुष्टिमार्गीय वैष्णव

गोस्वामी जदुनाथ के साथ एक विवाद आरंभ किया। इस विवाद का अंत प्रसिद्ध महाराजा मानहानि के मुकदमे से हुआ, जो गोस्वामी जदुनाथ ने करसनदास मूल जी के विरुद्ध चलाया था। बंबई हाईकोर्ट में जाकर करसनदास की जीत हो गई। करनदास की ख्याति एक सुधारक की दृष्टि से अधिक थी और विशेष कर महाराजा की मानहानि के मुकदमे से इनकी प्रसिद्धि और भी बढ़ गयी।

ब्रजलाल शास्त्री

ब्रजलाल कालीदास शास्त्री साठोदरा नागर थे और सोजीत्रा के समीप मतालज में सन् १८२५ में पैदा हुए थे। वे अंग्रेजी शिक्षा तो प्राप्त नहीं कर सके, किन्तु अपने परिश्रम, प्रतिभा और शिक्षा प्रेम के कारण वे संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के अच्छे विद्वान् हो गये। उनके लगभग १० ग्रंथ हैं, जिनके विषय हैं—भाषा, भाषा-विज्ञान और तर्क शास्त्र आदि। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में उनके दो ग्रंथ 'गुजराती भाषानो इतिहास' तथा 'उत्सर्गमाला' उनके महत्त्वपूर्ण प्रयत्न के परिचायक हैं। गुजराती भाषा के उद्गम और विकास की खोज करने में उन्होंने अपनी शास्त्रीय और सूक्ष्म बुद्धि का प्रदर्शन किया है। तर्क-शास्त्र तथा काव्य-विज्ञान की आरंभिक पुस्तकें उन्होंने लिखी हैं। 'उत्सर्ग माला' में उन्होंने 'शब्द-विकास के सिद्धान्त बताये हैं और मुख्य रूप से ये हेम-चन्द्राचार्य के प्रसिद्ध ग्रंथ पर आधारित हैं।

रणछोड़भाई उदयराम

रणछोड भाई उदयराम खेडावाल ब्राह्मण थे। इनका जन्म महुधा में सन् १८३७ में और देहान्त १९२३ में हुआ। इनकी ख्याति पिंगल, छन्दः-शास्त्र तथा नाटक की पुस्तकों के कारण विशेष है। ये लगभग ६५ वर्षों तक साहित्यिक कार्य करते रहे। इन्होंने अहमदाबाद में अपना जीवन आरंभ किया। वहां कुछ समय तक नौकरी और व्यवसाय के उपरान्त अन्त नें बंबई में स्थायी रूप से आकर बस गये। उनके पिंगल संबंधी ग्रंथ दलपतराम, नर्मदाशंकर तथा दूसरों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ एवं विस्तारपूर्ण हैं। उनका ग्रंथ पिंगल शास्त्र का विश्वकोश तथा आकर ग्रंथ माना जाता है। रणछोड़भाई

ने कुछ संस्कृत नाटकों का अनुवाद भी किया है और काव्य तथा नाटक के विज्ञान पर लिखा है। किन्तु प्रमुख रूप से वे गुजराती नाटककार हैं। उनके लिखे हुए अनेक नाटकों में से १४ प्रकाशित हो चुके हैं; कुछ अभी भी अप्रकाशित हैं। उनके कुछ नाटक सामाजिक हैं, किन्तु शेष पौराणिक विषयों पर आधारित हैं। उन पर अंग्रेजी नाटक-शैली, संस्कृत नाटककारों तथा गुजरात की पुरानी भवाइयों का प्रभाव था। उनके नाटक रंगमंच पर खेले जाने के उद्देश्य से लिखे गये थे। उन दिनों उनका एक दुःखान्त नाटक 'ललिता दुःखदर्शक नाटक' बहुत प्रसिद्ध था। उनका दूसरा प्रसिद्ध नाटक है, "जया कुमारी विजय।" वे मनसुखराम त्रिपाठी के मित्र थे। उनके नाटकों में कोई न कोई नैतिक उपदेश या उच्च आदर्श अवश्य है। यद्यपि उनके नाटक लंबे हैं और संवाद कुछ अस्त-व्यस्त तथा यत्र-तत्र गीतों एवं काव्यांशों से बहुत बोझिल हैं, तथापि रणछोड़ भाई की दृष्टि के सामने रंगमंच बराबर रहता था और उन्होंने कुछ ऐसे नये तत्त्वों का समावेश किया, जिनके कारण नाटक अभिनय के योग्य हो जाता था। उन्होंने अच्छे नाटकों के प्रति लोगों में रुचि उत्पन्न की और अपने नाटकों में नैतिक उपदेशों को रखकर उन्होंने समाज को शिक्षित किया। एक अग्रणी होने के नाते उन्होंने गुजराती नाटकों की अच्छी परम्परा स्थापित की।

गणपतराम राजाराम

गणपतराम राजाराम आमोद के रायकवाड़ ब्राह्मण थे, जिनका जन्म १८४८ में हुआ। वे दलपतराम के सिद्धान्तों के अनुयायी थे। वे लगभग ८ ग्रन्थों के रचयिता हैं। इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है 'प्रताप नाटक', जो १८८६ में प्रकाशित हुआ था। यह नाटक बहुत ही सफल हुआ, जिससे लेखक को यश और धन दोनों प्राप्त हुए। इसमें वीर और करुण दो रस हैं। इन्होंने कविता में 'भड़ोंच जिले में शिक्षा का इतिहास' भी लिखा है, जिसमें काव्यगुण तो कम है, किन्तु जानकारी बहुत अधिक है। दलपतराम की शैली में इनकी दो रचनाएँ हैं—'लीलावती कथा' और 'पार्वती कुँवर चरित'। इन्होंने ४ भागों में 'लघु भारत' लिखा है, जिसे ये अपना सर्वोत्तम ग्रंथ मानते थे।

विजयाशंकर

विजयाशंकर 'विजय-वाणी' के रचयिता हैं, जो उनकी कविताओं का संग्रह है और १८८६ में प्रकाशित हुआ था। काव्य-शैली की दृष्टि से वे नर्मदाशंकर के अनुयायी थे। इस संग्रह में उनकी २२५ कविताएँ संगृहीत हैं। ये नर्मदा-शंकर-युग के द्वितीय कोटि के कवि हैं। 'सृष्टि सत्त्व' नामका इन्होंने एक गद्य-ग्रंथ भी लिखा है, जिसमें इन्होंने हिन्दुओं के धार्मिक तथा दार्शनिक विचारों को संगृहीत करने की चेष्टा की है।

मनसुखराम

मनसुखराम सूर्यराम त्रिपाठी नदियाद के वडनगरा नागर ब्राह्मण थे, जिनका जन्म १८४० में हुआ था। वे बंबई में आकर बस गये तथा अनेक देशी रियासतों के सलाहकार थे। अतः इनका बहुत बड़ा प्रभाव था। इन्होंने गोवर्धनराम तथा अन्य लेखकों को प्रोत्साहित किया। स्वयं इनके रचे हुए लगभग १४ ग्रंथ हैं। इनकी भाषा संस्कृतबहुला है। ये प्राचीनतावादी थे और धार्मिक एवं नैतिक पवित्रता पर बहुत जोर देते थे। इनके ग्रंथों में भी मुख्यतः नीति और वेदान्त की ही चर्चा है। इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है "अस्तो-दय अने स्वाश्रय"। इनकी भाषा संस्कृत शब्दों के भार से दबी हुई है, किन्तु जहां गंभीर विषयों का प्रतिपादन इन्होंने किया है, वहां निस्सन्देह इनकी शैली ने इनके लेखों की प्रतिष्ठा बढ़ा दी है। इन्होंने गोकुल जी झाला और फार्बस का जीवन-चरित लिखा है। 'अस्तोदय' में इन्होंने व्यक्ति तथा समाज के उत्थान-पतन का वर्णन किया है और इसकी व्याख्या करने के लिए महाकाव्यों के चरित्रों को लिया है। संस्कृत शब्दों से पूर्ण इनकी शैली की कड़ी आलोचना रमनभाई ने "भद्रंभद्र" में की है।

हरगोविंददास काँटावाला

हरगोविंददास द्वारकादास काँटावाला खडायता वणिक् थे, जिनका जन्म १८४९ और देहान्त १९३१ में हुआ था। शिक्षा-क्षेत्र में उन्होंने बहुत उन्नति की और बड़ौदा राज्य के विद्याधिकारी हो गये साथ ही लुनावाडा

के दीवान बने। जैसे मनसुखराम सूर्यराम संस्कृतबहुला शब्दों की शैली के पोषक थे, वैसे हरगोविंददास ने सरल तथा बोलचाल के शब्दों से युक्त शैली को प्रधानता दी। मनीलाल और नवलराम ने इनकी इस अति सरल शैली की आलोचना की है। हरगोविंददास ने 'प्राचीन काव्यमाला' और बड़ौदा की प्राचीन काव्यमाला का संपादन किया। बड़ौदा में इन्होंने और भी बहुत-सा संपादन-कार्य किया। यहीं से तथा कथित प्रेमानंद के नाटक और वल्लभ के आख्यान प्रकाशित हुए थे, जिनकी प्रामाणिकता का बहुत बड़ा विवाद भी इसी माला में आरम्भ हुआ था। हरगोविंद दास ने 'पानीपत' नामक काव्य की रचना की थी, जो देश-प्रेम की भावना से पूर्ण है। इन्होंने दो कहानियां भी लिखी थीं। एक थी "बे बहेनो" और दूसरी थी "अँधेरी नगरीनो गर्धव-सेन—एक उटंग वार्ता"। दूसरी काल्पनिक कहानी थी, जिसमें देशी रियासतों के शासन में गड़बड़ी, पतन और अयोग्यता का वर्णन था। अपनी पुस्तकों "केलवणीनुँ शास्त्र अने तेनी कला", "संसार-सुधारो" और "देशी कारीगरीने उत्तेजन" में इन्होंने सामाजिक तथा शिक्षा-संबंधी समस्याओं पर विचार किया है। पहली पुस्तक के दो भागों में इन्होंने शिक्षा के विषय पर बहुत विस्तार से विचार किया है। 'प्राचीन काव्यमाला' के अन्तर्गत इन्होंने अनेक ग्रंथों का संपादन किया है, किन्तु साथ ही वहाँ से प्रेमानंद तथा उनके शिष्यों के नाम पर अप्रमाणित ग्रंथ छपने का उत्तरदायित्व नाथालाल शास्त्री और छोटालाल नरभेराम के साथ-साथ हरगोविंददास पर भी है।

इच्छाराम सूर्यराम

इच्छाराम सूर्यराम देसाई सूरत के बनिया थे। बंबई में उन्होंने "गुजराती" नाम का एक साप्ताहिक पत्र गुजराती भाषा में आरंभ किया। यह पत्र बहुत सफल और प्रसिद्ध हुआ। ये प्राचीनता का प्रचार और सुधारों के दोषों की आलोचना करते थे। इन्होंने ८ खंडों में 'बृहत् काव्य दोहन' प्रकाशित किया था, जिसमें मध्यकालीन गुजराती साहित्य के कवियों के काव्य-ग्रंथ संगृहीत हैं। इन्होंने अपने पत्र के ग्राहकों को पुस्तक रूप में एक

वार्षिक उपहार देना आरंभ किया। ये वार्षिक पुस्तकें प्रायः उपन्यास हुआ करती थीं, विशेषकर ऐतिहासिक।

मलबारी

बहेराम जी महेराम जी मलबारी एक पारसी थे जिनका जन्म १८५३ में हुआ था। ये 'नीति विनोद', 'विल्सन विरह', 'अनुभविका' और 'संसारिका' के लेखक हैं। इन चारों में उनकी कविताएँ संगृहीत हैं। 'संसारिका' संग्रह सबसें उत्तम है। यद्यपि ये पारसी थे, किन्तु गुजराती की ओर इनकी अधिक रुचि थी। इनकी शैली दलपतराम की शैली है।

अम्बालाल साकरलाल

अम्बालाल साकरलाल देसाई का जन्म १८४४ में हुआ था। जीवन में इन्होंने अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की और इनके अध्ययन, प्रभाव, ख्याति तथा संतुलित लेखों के कारण साहित्य-जगत् में उनका अच्छा मान था। ये गुजरात के प्रथम एम० ए० तथा बड़ौदा हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश थे। इन्होंने अर्थशास्त्र पर एक पुस्तक लिखी, कोश का संकलन किया और साहित्यिक विषयों पर अनेक अध्ययनपूर्ण भाषण दिये। बहुत दिनों तक 'गुजरात वर्नाकुलर सोसाइटी' के ये सभापति थे। इनके आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक तथा अन्य विषयों के निबंधों का एक संग्रह प्रकाशित हो गया है। ये मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने के पक्ष में थे।

हरिलाल ध्रुव

हरिलाल ध्रुव अहमदाबाद के एक नागर थे। ये नर्मद युग और बाद के विद्वानों को मिलानेवाले संयोजक सूत्र माने जाते हैं। इन्होंने कुछ ऐसी कविताओं की रचना की है, जो काव्य-कला की दृष्टि से दलपत और नर्मद से भी उत्तम हैं। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे और एक मासिक पत्र 'चन्द्र' का संपादन करते थे। ये भी यूरोप गये थे और अपनी यात्रा पर आधारित कुछ कविताएँ लिखी थीं। ये प्रेम, वीरता और प्रकृति के गायक थे। देश प्रेम संबंधी इनके गीत बहुत अच्छे हैं। इन्होंने संस्कृत के 'अमरु शतक', तथा

'श्रृंगार तिलक' का अनुवाद भी किया है। 'कुंज विहार', 'प्रवास', 'पुष्पावती' इनकी अन्य पुस्तकें हैं।

बालाशंकर

बालाशंकर उल्लासराम कंथारिया नदियाद में उत्पन्न हुए थे। ये मनीलाल नभूभाई के सहपाठी और मित्र थे। ये 'बाल' उपनाम से कविताएँ लिखते थे। गुजराती में गजल लिखनेवाले ये प्रथम कवि थे। गजलों में ये फारसी के सूफी कवियों का अनुकरण करते थे, विशेषकर हाफिज का। इनकी कुछ गजलें बहुत अच्छी हैं। इन्होंने गुजरात को सूफीमत की एक झलक दिखायी। १०१ शिखरिणी छन्दों में लिखा हुआ "क्लान्त-कवि" काव्य इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। इन्होंने अपना सारा जीवन एक मस्त कवि के रूप में बिताया। "क्लान्त-कवि" अत्यन्त कलापूर्ण रचना है।

गुजराती-साहित्य के निर्माण में अनेक पारसियों ने भी योग दिया। सन् १८२२ में फारदून जी मर्ज़वान ने 'मुँबई-समाचार' आरंभ किया। १८३२ में 'जामे जमशेद' की स्थापना हुई। 'रास्त गोफ्तार' में दादा भाई नौरोजी प्रायः लिखा करते थे। सोरावजी शापुरजी बंगाली एक सुधारवादी थे और प्रगतिशील विचारों के प्रचार में पूरा भाग लेते थे। उन्होंने जीवन-चरित लिखे और जरथुस्त धर्म, पारसी-समाज तथा ईरानी सभ्यता पर अपने विचार प्रकट किये। इनके निबंध और लेख एक पुस्तक में संगृहीत हैं। केखुशरो नौरोजी काबराजी ने नाटक तथा उपन्यास लिखे औरं पारसी-समाज पर अच्छा प्रभाव जमाया। इन्होंने पत्रकारिता द्वारा भी गुजराती को योग प्रदान किया। ये सामाजिक सुधार के पक्षपाती थे। नानाभाई रुस्तम जी रानिना नर्मद के मित्र थे और इन्होंने एक कोश का संकलन किया था।

नारायण, हीराचंद कान्जी, शिवलाल धनेश्वर, वल्लभदास पोपट तथा और भी कई लेखकों ने इस युग में अपना-अपना सहयोग दिया।

अध्याय १३

गोवर्धनराम और मणिलाल

गोवर्धनराम

नर्मदाशंकर अपने समय के वास्तविक प्रतिनिधि––समय-मूर्ति––माने जाते हैं। यह वह काल था जब कि पश्चिम के साथ पहले-पहल सम्पर्क स्थापित हुआ था। इसे सुधारक-युग कहते हैं। १८८६ में नर्मदाशंकर की मृत्यु हुई। तब तक गुजराती साहित्य ने एक मोड़ ले लिया था। बंबई विश्वविद्यालय स्थापित हो चुका था। वहाँ से पढ़कर निकलनेवाले कुछ व्यक्ति श्रेष्ठ लेखक हुए। कुछ नवीन प्रभाव भी अपना काम कर रहे थे। १८८५ में 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' बन चुकी थी। 'लोकल सेल्फ गवर्नमेंट' (स्थानीय स्वशासन) के लिए आंदोलन आरंभ हो गये थे। रामकृष्ण, विवेकानन्द, थियोसाफिकल सोसाइटी, ब्रह्मसमाज, प्रार्थना-समाज, आर्य-समाज––सभी आर्य संस्कृति और उसके सुधार का प्रचार कर रहे थे। दादाभाई नौरोजी, तिलक, फीरोजशाह-जैसे राजनीतिक नेताओं ने देश में जागृति उत्पन्न कर दी थी। विश्वविद्यालययों में संस्कृत के अध्ययन पर अधिक बल दिया जाने लगा था। विश्वविद्यालयों से निकले हुए नये विद्वान् नर्मद-युग के विद्वानों की अपेक्षा अधिक प्रतिभाशाली और अध्ययनशील थे। १८८८ में नवलराम की मृत्यु हो गयी थी।

पिछले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि नर्मदाशंकर ने, जो अपने जीवन के आरंभ में बहुत बड़े सुधारक थे, जीवन के अंतिम दिनों में अपने विचार बदल दिये और वे प्राचीन विश्वासों के प्रबल समर्थक बन गये। १८८५ में उन्होंने युवक विद्वान् मणिलाल नभूभाई को बधाई देकर प्रोत्साहित किया कि हिन्दू संस्कृति की रक्षा के मार्ग पर इसी प्रकार चलते रहो : लगभग उसी समय (१८८५) गोवर्धनराम ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'सरस्वतीचन्द्र'

का प्रथम भाग लिखकर समाप्त किया था, जो १८८७ में प्रकाशित हुआ था। उसी वर्ष (१८८७) नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया ने 'कुसुममाला' नाम से अपनी कविताओं का प्रथम संग्रह प्रकाशित किया, जिसने काव्य को एक नया मोड़ दिया। इस प्रकार नर्मदाशंकर की मृत्यु तक तीन नये विद्वान्—गोवर्धनराम, मनीलाल और नरसिंहराव—आगे आ चुके थे और इन तीनों में से प्रत्येक अपने ढंग के बहुत ही योग्य विद्वान् थे। इनका संस्कृत तथा अँग्रेजी का अध्ययन बहुत गंभीर था; इन्हें विश्वविद्यालय की शिक्षा मिली थी; ये परिश्रमी, सक्षम तथा योग्य थे; ये बहुपठित थे और अपने विषय को प्रभावशाली एवं गौरवपूर्ण शैली में व्यक्त करने की शक्ति रखते थे। इनकी भाषा अधिक शुद्ध, कलात्मक और सुसंस्कृत थी। इन्हें प्रकृति-प्रदत्त प्रतिभा भी अधिक प्राप्त थी। इनके समय में भाषा-रचना की अधिक शैलियां विकसित हो गयी थीं और रचित साहित्य भी विविध एवं मूल्यवान् था, जिसकी कुछ कृतियों को विश्व-साहित्य तक में सम्मान प्राप्त हुआ। इस काल को "पंडित-युग" भी कहते हैं।

आयु तथा श्रेष्ठता, दोनों दृष्टियों से गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी इस युग के सर्वोत्तम नेता हैं। ये नदियाद के वडनगरा नागर ब्राह्मण थे। इनका जन्म बंबई में विजयादशमी के दिन १८५५ में हुआ था। इनकी शिक्षा बंबई के "बुद्धिवर्धक स्कूल' और एल्फिस्टन कालेज' में हुई। अपने सनातन-धर्मी चाचा मनसुखराम त्रिपाठी से ये बहुत अधिक प्रभावित थे। १८७५ में इन्होंने बी० ए० पास किया, किन्तु उसी वर्ष इनके पिता का शराफी-व्यवहार बंद हो गया। १८७९ से १८८३ तक गोवर्धनराम भावनगर, के दीवान शामलदास के प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। इस पद पर रहने से आपको सौराष्ट्र की देशी रियासतों तथा उनकी कार्य-प्रणाली को देखने का अवसर मिला। १८८३ में ये बंबई लौट आये और हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। १५ वर्ष तक इन्होंने वकालत की और ४३ वर्ष की आयु में, जब कि ये प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे और इनकी वकालत शिखर पर थी, सब छोड़-छाड़कर अपने पूर्व संकल्प के अनुसार ये नदियाद चले गये और वहीं शेष जीवन साहित्य तथा दर्शन के अध्ययन-सर्जन में बिताया। इनके प्रसिद्ध उपन्यास 'सरस्वती चन्द्र'

का प्रथम भाग १८८७ में, द्वितीय भाग १८९२ में तथा तृतीय भाग १८९८ में प्रकाशित हुआ। ये तीनों भाग तब प्रकाशित हुए, जब ये बंबई में थे। इसका चतुर्थ भाग, जिसमें इनके विचारों का सार है, १९०१ में प्रकाशित हुआ था, जब कि ये नदियाद में थे। वहाँ ये साहित्य, दर्शन तथा योग के अध्ययन में समय बिताते थे। ये योग का भी कुछ अभ्यास करते थे। कहते हैं कि इसी कारण से १९०६ में इनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और १९०७ में इनकी मृत्यु हो गयी।

उनकी रचनाएँ हैं—"सरस्वती चन्द्र" (४ भागों में) यह उनकी ख्याति का अत्यन्त गौरवपूर्ण स्मारक है; काव्य-संग्रह "स्नेह मुद्रा"; "नवलरानी जीवन कथा"; अँग्रेजी में "क्लासिकल पोएट्स आफ गुजरात" (गुजरात के प्रतिष्ठित कवि); "लीलावती जीवन कला", इसमें उनकी पुत्री का कुछ जीवन-वृत्त है; "दयारामतो अक्षरदेह"; "साक्षर जीवन"; संस्कृत में "हृदय रुदित शतकम्" आदि। १९०५ में प्रथम 'गुजराती साहित्य परिषद्' के ये सभापति चुने गये। उसमें इन्होंने सभापति पद से अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण भाषण दिया। इन्होंने धर्म, दर्शन, अर्थशास्त्र तथा साहित्यिक विषयों पर भी अनेक निबंध एवं लेख लिखे हैं, और कई-कई पद्यों की रचना की है इनकी रचनाएँ गुजराती, अँग्रेजी तथा कुछ संस्कृत में भी है। "अध्यात्म जीवन" इनकी अपूर्ण कृति है, जिसका प्रकाशन १९५५ में इनकी शताब्दि-उत्सव के अवसर पर हुआ।

गोवर्धनराम का ग्रंथ "सरस्वती चन्द्र" कई दृष्टियों से इस युग का सर्वोत्तम ग्रंथ है। पंडित-युग का यह अत्यन्त सफल ग्रन्थ है, जो समस्त गुजराती साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त करने की क्षमता रखता है। चार भागोंवाले इस ग्रंथ में रचयिता ने पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों का संघर्ष वर्णन किया है, साथ ही इसमें भारत का गत गौरव भी है। समाधान के रूप में विद्वान् प्रणेता ने अपना सामंजस्य उपस्थित किया है, जिसे वह इस युग के लिए उपयुक्त समझता है। इसमें पूर्ण जीवन-दर्शन की व्याख्या है; धर्म, संस्कृति, नीति, अध्यात्म तथा समाज-विज्ञान का वर्णन है; तत्कालीन देशी रियासतों की विद्वत्ता एवं प्रतिभा के दर्शन होते हैं, तथा जब से यह प्रकाशित हुआ तब से

बहुत दिनों के लिए इसने गुजरात के लोगों का मन जीत लिया है। इसमें प्राय: वे सभी विषय हैं, जिन पर लेखक कुछ विशेष रूप से कहना चाहता था। अत: इसका स्वरूप कुछ-कुछ विश्वकोष-सा हो गया है। एक प्रख्यात आलोचक ने इसे पुराण की संज्ञा दी है। गुजराती साहित्य में इसका एक स्थायी स्थान बना लेना उचित ही है। यह कलापूर्ण ग्रंथ है। लेखक ज्ञान प्रदान करना चाहता था, किन्तु उस कार्य को आदेशात्मक ढंग से न करके उसने कलात्मक ढंग से 'नावेल' अथवा महानबल के रूप में किया है।

'सरस्वती चन्द्र' उपन्यास का नायक युवक, सुन्दर,अति शिक्षित और सभ्य है, किन्तु अत्यन्त भावुक भी है। वह एक धनी पिता का पुत्र है, और उसकी सगाई कुमुद से हुई, जो युवती, कोमलाङ्गी, सुन्दरी और सुशीला थी। अपनी सौतेली मां के व्यवहारों से तंग आकर नायक अपना घर और कुमुद को छोड़कर विस्तृत संसार में अनुभव प्राप्त करने के लिए निकल पड़ता है। कुमुद के माता-पिता उसका विवाह प्रमादधन नाम के एक क्षुद्र व्यक्ति से कर देते हैं। कुमुद अपने नये घर में बहुत दुखी रहती है। नायक सरस्वती चन्द्र वेष बदलकर प्रमादधन के पिता बुद्धिधन के पास आता है, जो एक देशी रियासत का मंत्री था। यहीं सरस्वतीचन्द्र और कुमुद की भेंट होती है। किन्तु एक विवाहित स्त्री होने के नाते कुमुद अपनी प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखती है, यद्यपि उसके मन में नायक के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था। कुमद की व्यथा दूर करने के उद्देश्य से सरस्वतीचन्द्र वहां से चला जाता है। अन्त में वे दोनों सुन्दरगिरि पर मिलते हैं, जहाँ महन्त विष्णुदास ने एक आश्रम स्थापित किया था। तब तक प्रमादधन की मृत्यु हो चुकी थी। यदि चाहते तो सरस्वती-चन्द्र और कुमुद परस्पर विवाह कर सकते थे, किन्तु लेखक ने कुमुद के प्रेम को बहुत ऊँचा उठाया है, जिसमें वासना की गंध नहीं थी। कुमुद के कहने से सरस्वती चन्द्र ने उसकी छोटी बहन कुसुम से—जो युवती, सुन्दरी, उच्च शिक्षिता और उत्साही थी—विवाह कर लिया।

इस विशाल ग्रंथ के प्रथम भाग में नायक-नायिका का प्रेम वर्णित है। दूसरे भाग में आदर्श सम्मिलित परिवार का तथा इसकी प्रमुख स्त्री सदस्या कर्ता की पत्नी के कार्यों का वर्णन है। तीसरे भाग में लेखक ने बड़ी सूक्ष्मता

से देश की उस राजनीतिक स्थिति का अवलोकन किया है, जो पश्चिम के संपर्क से उपस्थित हुई थी और साथ ही देश के समूचे जीवन तथा संस्कृति पर पश्चिम के पड़े हुए प्रभाव पर विचार किया है। लेखक ने लक्ष्यालक्ष्य दर्शन पर संस्कृत में एक अध्याय लिखा है। चौथे भाग में लेखक महन्त विष्णुदास के आश्रम का वर्णन करता है। वहीं उसने कल्याण-ग्राम की योजना दी और इस विशाल भाग में लेखक कुछ गंभीर विषयों पर चर्चा करता है, देश का भविष्य बताता है और अपने अनुभवों का सार प्रकट करता है। इन चार भागों में उसने प्रसिद्ध चारों पुरुषार्थों का विवेचन किया है। वह अपने समय का प्रधान चिंतक था—केवल गुजरात का ही नहीं वरन् पूरे भारत का। आदि से अन्त तक उसकी सूक्ष्म दृष्टि और विद्वत्ता का परिचय मिलता है। एक कलापूर्ण उपन्यास के सभी लक्षण इस ग्रंथ में हैं। इसमें अनेक पात्र हैं। लेखक का उद्देश्य बहुत ऊँचा था। उपन्यास तो उसके विचार-प्रदर्शन का एक माध्यम था। इसीलिए कथावस्तु कुछ मंद और ढीली पड़ गयी है, उसके सभी पात्रों का विकास भी पूर्णता से नहीं हुआ। तीसरे और चौथे भाग में दार्शनिक विवेचन के पृष्ठ के पृष्ठ भरे हैं और अन्यत्र बहुत महत्त्वपूर्ण होते हुए भी निस्संदेह उपन्यास को अरुचिपूर्ण बना देते हैं। विभिन्न विषयों के वर्णन की शैली का संतुलन ठीक नहीं है। विशेषकर चौथे भाग में। किन्तु इन दोषों के होते हुए भी यह एक महान् ग्रंथ है और महान् रहेगा। गुजरात की जनता पर इसका बहुत बड़ा प्रभाव है तथा तत्कालीन एवं कुछ वर्ष बाद के लेखकों पर भी इसका अच्छा प्रभाव पड़ा, विशेषकर प्रथम भाग प्रकाशित होने के समय सन् १८८७ से लेकर कम-से-कम १९१५ तक।

लेखक ने ११० कांडों में 'स्नेह मुद्रा' नाम का एक काव्य लिखा है, जिसका मुख्य रस करुण है। इसकी कथावस्तु बहुत उलझी हुई है और रचयिता ने अनेक छन्दों की रचना का प्रयास किया है। कई स्थलों पर काव्य बड़ा दुरूह हो गया है। यह शीघ्रता से रचा गया प्रतीत होता है और काव्य की दृष्टि से यह साधारण कोटि का है। किसी भी प्रेम के प्रति लेखक की कितनी उच्च धारणा है, इससे प्रकट होता है और इसके कुछ अंश अत्यन्त गौरवपूर्ण तथा वर्णन सजीव हैं।

'साक्षर-जीवन' लेखक का एक अपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें उसने मनुष्य के उच्च आदर्शों का वर्णन किया है और मानव को पशुवृत्ति को नियंत्रित करने की बात कही है। इसी प्रकार 'अध्यात्म-जीवन' भी एक अपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें लेखक के दार्शनिक विचार और मूल चिंतन है। लेखक ने अंग्रेजी में भी एक पुस्तक लिखी है "द क्लासिकल पोएट्स आफ गुजरात"--(गुजरात के महान् कवि')। इसमें उसने मध्यकालीन गुजराती साहित्यके लेखकों एवं कवियों का मूल्यांकन किया है और उनके विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं। नवलराम का जीवन चरित भी लेखक ने बड़ी सहानुभूति के साथ लिखा है। ('लीलावती जीवन कला' लेखक ने अपनी पुत्री लीलावती की असामयिक मृत्यु के पश्चात् लिखी थी।) इसमें उसने अपनी पुत्री का जीवन और उसकी कुछ गंभीर समस्याओं का वर्णन किया है। 'दयारामनो अक्षर देह' में उसने दयाराम के सिद्धान्तों को समझाने की चेष्टा की है, जो पुष्टिमार्गीय वल्लभ संप्रदाय के अनुयायी थे। गोवर्धनराम वेदान्ती के शांकरमत के विशिष्ट विद्वान् थे। उनके समय में वल्लभ संप्रदाय के मत तथा दर्शन का अध्ययन भली-भांति नहीं होता था। इसीलिए गोवर्धनराम ने दयाराम के कुछ पदों का अर्थ कुछ का कुछ किया है। स्वयं दयाराम ने भी कई स्थलों पर सिद्धान्तों का शुद्ध प्रतिपादन नहीं किया। इस पर भी यह ग्रंथ गोवर्धनराम की दार्शनिक अंतर्दृष्टि का परिचय देता है और दयाराम के काव्य एवं दर्शन की कुछ अच्छी बातों पर प्रकाश डालता है।

गोवर्धनराम की रचना पढ़ते ही उनकी विद्वत्ता, गहन अध्ययन और पुष्टता का प्रभाव मन पर पड़ता है। उनकी शैली एक विद्वान् की है, जिसमें संस्कृत शब्दों की अधिकता है, किन्तु उसमें एक प्रवाह और ताजगी है।

गोवर्धनराम अपने युग के ऋषि माने गये हैं, जो 'संगम युग' या 'पंडित युग' कहलाता है। इस युग में पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों का संघर्ष उपस्थित हुआ था, जिसके सामञ्जस्य की कल्पना गोवर्धनराम ने की थी। १८८७ से १९१५ तक पूरा काल 'गोवर्धनयुग' के नाम से कहा जाता है, क्योंकि इस काल के यही प्रमुख साहित्यकार थे।

मणिलाल

मणिलाल नभूभाई द्विवेदी—एक साठोदरा नागर;—नदियाद के रहनेवाले थे। इनका जन्म २६ सितंबर, १८५८ को हुआ था। ये संस्कृत के महापंडित थे। इनकी ख्याति यूरोप और अमेरिका तक फैल गयी थी। कुछ दिनों तक ये बंबई में शिक्षा-निरीक्षक थे, बाद में भावनगर कालेज में संस्कृत के प्राध्यापक हुए और जीवन के अंतिम दिनों में इन्होंने बड़ौदा सरकार के लिए साहित्यिक शोध-कार्य किया। ४१ वर्ष की अल्पायु में इनका देहान्त हो गया। इस थोड़े से जीवनकाल में भी गुजराती काव्य में इनका विशेष सहयोग-दान है—गद्य की, विशेषकर निबंध-लेखन की, स्थिति सुदृढ़ की। इनका गद्य सशक्त, उच्चकोटि का, संतुलित, विचार-प्रधान, पांडित्यपूर्ण है; साथ ही स्पष्ट, शास्त्रीय तथा प्रवाहपूर्ण है। 'प्रियंवदा' तथा 'सुदर्शन' मासिक पत्रों का संपादन भी इन्होंने किया। इनमें दूसरे का प्रकाशन पहले के बाद हुआ। सुधार-क्षेत्र, हिन्दुत्व, केवलाद्वैत दर्शन तथा सामाजिक समस्याओं के मामले में उन्होंने अधिकांश लोगों का मार्ग-दर्शन किया है। उन्होंने संरक्षक वृत्ति धारण की थी और सर रमणभाई महीपतराम नीलकंठ से—जो सुधारवादी और प्रार्थना समाज के अनुयायी थे तथा जिन्होंने 'ज्ञान सुधा' लिखा था—बहुत समय तक विवाद चलाया था। जिस समय मणिलाल ने जन-मत को सुधारने का कार्य आरंभ किया, उसी समय थियासोफी ने अपना कार्य शुरू किया था। इसके प्रभाव में आकर मणिलाल ने धर्म-ग्रंथों, दर्शन-ग्रंथों तथा संस्थाओं का सूक्ष्म परीक्षण किया और सुधार के प्रश्न पर धर्म तथा दर्शन की दृष्टि से विचार किया। नर्मदाशंकर ने अपने अंतिम दिनों में सुधार की ओर से मन हटा लिया था और वे प्राचीनतावादी हो गये थे। अपने अंतिम समय में उनकी आशा मणिलाल पर टिकी थी, जो अभी युवक ही थे। किन्तु मणिलाल की विद्वत्ता एवं सामग्री नर्मदाशंकर से कहीं उच्च कोटि की थी। मणिलाल ने सुधार पर हिन्दू धर्म के मूल तत्त्वों की दृष्टि से विचार किया था, किन्तु सुधार मात्र से उन्हें घृणा नहीं थी। वे सुधारों के विरोधी नहीं थे, वे तो उन दोषों और कुरीतियों को दूर करने के इच्छुक थे, जो उस समय के सुधारवादियों में आ गयी थीं। अपने मत को वे 'नव सुधार' कहते

थे और अन्य सुधारवादियों के मत को "प्राचीन सुधार"। अन्य सुधारवादी मणिलाल को घोर प्राचीनतावादी कहते थे और उन्हें समस्त सुधारों का विरोधी समझते थे। किन्तु उनकी यह धारणा ठीक नहीं थी। मणिलाल का कहना यह था कि वे न तो नये मतवालों में से हैं न पुराने मतवालों में से, बल्कि उन्होंने वही स्वीकार किया, जो उन्हें सत्य प्रतीत हुआ। वे सुधारों के प्रश्न की परीक्षा अद्वैत सिद्धान्त को कसौटी बनाकर करते थे। 'प्रेम जीवन' और 'अभेदोर्मि' उनके काव्य ग्रंथ हैं। भवभूति के दो संस्कृत-नाटकों 'उत्तर रामचरित' एवं 'मालती माधव' का अनुवाद भी इन्होंने किया। 'कान्ता' तथा 'नृसिंहावतार' इनके स्वतंत्र नाटक हैं तथा 'गुलाब सिंह' नाम का एक उपन्यास भी इन्होंने लिखा। सुधार-विषय पर इनकी एक पुस्तक "नारी प्रतिष्ठा" है और इनके कुछ निबंध भी इसी विषय पर प्रकाश डालते हैं। धर्म और दर्शन के क्षेत्र में इन्होंने भगवद्गीता तथा वृत्ति प्रभाकर का अनुवाद गुजराती में किया। इनके दो विशिष्ट ग्रंथ हैं 'सिद्धान्तसार' और 'प्राण-विनिमय'। 'प्रियंवदा' तथा 'सुदर्शन' में प्रकाशित इनके लेखों का भी यही विषय है। अंग्रेजी में "अद्वैतिज्म आर मानिज्म" तथा "इमिटेशन आफ शंकर" इनकी दो पुस्तकें हैं तथा कई ग्रंथों का संपादन भी इन्होंने किया है। इनकी प्रसिद्धि मुख्यतः इनकी धार्मिक एवं दार्शनिक रचनाओं के कारण है। शंकर-वेदान्त पर उनका विश्वास था और सर्वात्मवाद उनके हृदय-मूल में प्रवेश कर गया था। इसी को आधार बनाकर उन्होंने सारी रचनाएँ कीं। उन्होंने बताया कि आत्मा की उन्नति के लिए धर्म परमावश्यक है, अतः उस धर्म की धारणा बहुत शुद्ध होनी चाहिए और इसके लिए प्राचीन भारत में प्रचलित अद्वैतवाद भावना का मार्ग सबसे श्रेष्ठ है। साथ ही उन्होंने कहा कि यह प्रश्न केवल रूखे और अरुचिकर शास्त्रार्थ का विषय नहीं है, वरन् प्रेम और कर्त्तव्य के आधार पर इसका समाधान होना चाहिए। धर्म, नीति, सामाजिक समस्या तथा काव्य को भी ये उसी अभेदानुभव के मापदंड से नापते थे। प्रेमलक्षणा भक्ति को ये अपरोक्ष कैवल्य ज्ञान का पर्याय मानते थे। मणिलाल के पहले अद्वैत वेदान्त को समझने में लोग बड़ी भूलें करते थे; यहां तक कि यह नीति और भक्ति के विरुद्ध माना जाता था। मणिलाल ने बड़ी

विद्वत्ता से अद्वैत के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और भ्रामक धारणा को दूर किया। उन्होंने कहा कि कर्महीनता और आलस्य शुद्ध वेदान्त नहीं हैं, बल्कि एक तामस मार्ग है। अपने तर्कों को एक कुशल वकील की भांति उन्होंने उपस्थित किया और नवीन-प्राचीन दोनों प्रकार की विद्वत्ता-से युक्त होने के कारण ये बड़े प्रभावशाली थे। इनके "सिद्धान्तसार" में भारतीय दर्शन का इतिहास है और आर्यधर्म की अलौकिक प्रतिष्ठा स्थापित है। "प्राण विनिमय" में इनके योग और मेस्मेरिज्म के अनुभव वर्णित हैं। इनके स्वतंत्र नाटक "कान्ता" की प्रशंसा इनके परम विरोधी श्री रमणभाई नील-कंठ ने भी की है। इस नाटक की कथावस्तु लेखक ने भूवड और जयशिखरी की प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना से ली है। इसमें कई विशेषताएँ हैं। इसके पद्यात्मक अंश भी बड़े आकर्षक हैं। इसकी कथावस्तु एक अंग्रेजी दुःखान्त नाटक से मिलती-जुलती है, किन्तु रूप एक संस्कृत नाटक-का सा है। "कुलीन कान्ता" नाम से यह नाटक खेला गया था। एक थियेटर कंपनी के मालिक की प्रार्थना पर लेखक ने दूसरा नाटक "नृसिंहावतार" लिखा था। कथा-वस्तु पुराणों से ली गयी है और इसमें दैवी चमत्कार भरे पड़े हैं।

मणिलाल गुजराती साहित्य के तीन प्रमुख निबंध-लेखकों में से एक माने गये हैं, और ऐसा मानना उचित ही है। दूसरे दो निबंधकार थे नर्मदा-शंकर तथा कालेलकर। मासिक पत्र 'सुदर्शन' में प्रकाशित मणिलाल के लेखों का संग्रह 'सुदर्शन गद्यावली' में हुआ है। इसके सभी लेख सब प्रकार से सुन्दर हैं। छोटे-बड़े सभी निबंधों में विषय-प्रतिपादन-पूर्णता को पहुँचा हुआ है। इनके छोटे निबंध 'बाल विलास' में संग्रहीत हैं, जो स्कूली लड़के और लड़कियों के लिए लिखे गये हैं और 'सुदर्शन गद्यावली' में बड़े निबंध हैं। ये निबंध विविध विषयों पर हैं। इनकी भाषा तीखी, पटुतापूर्ण और तर्क प्रधान है। यह उचित ही है कि ये गद्य के अधिपति माने जाते हैं।

'सुदर्शन' के संपादक की हैसियत से कई वर्षों तक ये गुजराती साहित्य के ग्रंथों की आलोचना करते रहे। अपनी आलोचनाओं में वे अपने संस्कृत, काव्य तथा अलंकारशास्त्र के ज्ञान का प्रदर्शन करते रहे। इनका अध्ययन गहन था और शैली विश्लेषणात्मक थी। ये अपने विचारों को बड़ी निर्भीकता

से प्रकट करते थे तथा सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि सभी का मूल्यांकन ये अद्वैत भावना के आधार पर करते थे। किन्तु श्री रमणभाई की साहित्यिक आलोचनाओं में पाश्चात्य आलोचना-शैली एवं परंपरा की जो झलक मिलती है, वह मणिलाल में नहीं पायी जाती।

जीवन के अंतिम काल में इन्होंने शोध-कार्य किया, विशेषकर बड़ौदा सरकार के लिए इन्होंने प्राचीन हस्तलिपियों की सूची तैयार की। इन्होंने कुछ संस्कृत ग्रंथों का संपादन अथवा अनुवाद भी किया। भवभूति के नाटकों के अनुवाद बड़े ललित हैं। 'महावीर चरित' का इनका अनुवाद अभी भी अप्रकाशित है। लार्ड लिटन के उपन्यास 'जेनानी' के अनुकरण पर मणिलाल ने 'गुलाबसिंह' नाम का उपन्यास गुजराती में लिखा। यह अनुवाद नहीं है। यद्यपि मणिलाल अच्छी तरह जानते थे अनुकरण के लिए उन्होंने जिस उपन्यास को चुना है, वह प्रथम कोटि का नहीं है, फिर भी उन्होंने उसे चुना क्योंकि वह उनकी प्रकृति और उनकी विचार-पद्धति के अनुरूप था। मणिलाल के समय में ही उनका उपन्यास 'गुलाबसिंह' और गोवर्धनराम का 'सरस्वती चन्द्र' दोनों विचार-प्रेरक ग्रंथों में सर्वोत्तम माने जाते थे।

काव्य-क्षेत्र में मणिलाल ने कई गीतों की रचना की है, जो लोकगीत और भजन हैं तथा संस्कृत छन्दों में बद्ध कुछ काव्य भी हैं। इन्होंने पृथ्वी छंद का भी उपयोग किया है, जिसे बाद में बलवंतराय ठाकोर ने अधिक प्रसिद्ध किया। बालाशंकर के संपर्क के कारण मणिलाल में फ़ारसी कविता का शौक भी था। इन्होंने लगभग १२ गज़लें लिखी हैं, जिनमें सूफियों का प्रेम निहित है। उनके कुछ आलोचकों ने यह संकेत किया है कि सूफीमत के माध्यम से वेदान्त दर्शन के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने का उनका प्रयास कृत्रिम था। श्री के० एम० ज़वेरी ने उनकी गजलों में दोष भी निकाले हैं। किन्तु मणिलाल के गीत और भजन पठनीय हैं, जिनमें काव्य-कल्पना एवं भावना है। कुछ गीतों से मणिलाल की प्रेम एवं अद्वैत की भावना का ठीक-ठीक परिचय मिलता है।

मणिलाल का महत्त्व एक गद्य-लेखक तथा गंभीर, दार्शनिक एवं चिंतनपूर्ण साहित्य के आलोचक की दृष्टि से बहुत अधिक है। उनका 'सिद्धान्तसार' इस भूमि के दार्शनिक चिन्तन का स्पष्ट वर्णन करता है। इन्होंने योग, अद्वैत,

मांडूक्योपनिषद् तर्क कौमुदी, स्याद्वाद आदि पर अंग्रेजी में लिखा है, तथा इनके लेख बड़ी रुचि के साथ यूरोप-अमेरिका में पढ़े जाते थे। सर एडवर्ड आरनाल्ड ने इनकी बड़ी प्रशंसा की है और लिखा है कि मणिलाल से संभाषण करना उनका सौभाग्य था। मणिलाल को भारत के परंपरागत ज्ञान पर बड़ा गर्व था और शास्त्रीय अध्ययन के कारण वे अपने मत को बहुत अच्छी तरह पुष्ट करते थे। उनके विचार उदार थे और उनके सभी लेखों में एकता का उद्देश्य रहता था। ऐसा कहा जाता है कि उनका उद्देश्य एक उपदेशक का था, न कि एक विद्वान् का। वे अपने को अभेदमार्ग-प्रवासी कहते थे। इसी विश्वास पर उनका सारा जीवन और कार्य व्यापार यहाँ तक कि साहित्यिक गतिविधि भी आधारित थी। ४१ वर्ष की अल्पायु में उनकी मृत्यु हो गयी, किन्तु इस छोटे जीवन में भी उन्होंने अपने साहित्यिक कार्यों से विशेषतः धार्मिक एवं दार्शनिक क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

अध्याय १४

नरसिंहराव और रमणभाई

नरसिंहराव

नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया का जन्म १८५९ ई० में हुआ था। इनके पिता भोलानाथ अहमदाबाद के प्रार्थना-समाज के संस्थापक थे। परिवार अत्यन्त संस्कारी और शिक्षित था। नरसिंहराव ने प्रथम श्रेणी में बी० ए० पास किया और संस्कृत में प्रथम आने के कारण भाऊदाजी पुरस्कार प्राप्त किया। एम० ए० पास करने के पहले ही बंबई सरकार के कर-विभाग में उन्होंने नौकरी कर ली। कर-अधिकारी होने के कारण इन्हें अनेक स्थानों का भ्रमण करना पड़ा, जिससे प्रकृति के विविध रूपों के दर्शन तथा विभिन्न भाषा-भाषियों के संपर्क में आने का अवसर इन्हें मिला। प्रकृति के इस सूक्ष्म निरीक्षण का उपयोग इन्होंने एक कवि तथा भाषा-शास्त्री के नाते किया। सन् १९१२ में इन्होंने सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण किया। सन् १९२१ में बंबई के एलफ़िस्टन कालेज में आप गुजराती के अवैतनिक प्राध्यापक हो गए। वहां रहकर आपने युवक विद्वानों को पढ़ाया, प्रेरणा दी और प्रोत्साहित किया।

नरसिंहराव एक प्रमुख साहित्यकार थे। वे कवि, आलोचक, दार्शनिक और गुजराती भाषा के अग्रगण्य भाषाशास्त्री थे। वे एक दृढ़ सुधारवादी भी थे, साथ ही साथ भगवान् पर उनका अटूट प्रेम और विश्वास था। उनका अध्ययन गहन था, उनकी स्मरणशक्ति तीव्र थी और सभी मामलों में वे विधि का पूर्ण-रूपेण पालन करना चाहते थे। एक प्राध्यापक की हैसियत से भी किसी उलझन या भाषा संबंधी प्रश्न के लिए कई घंटे बिता देने को तैयार थे और जबतक कोई समाधान न मिल जाता, तब तक उन्हें संतोष न होता था। प्रायः किसी कठिन वाक्य-विन्यास के संबंध में वे अपना अंतिम निर्णय तब तक स्थगित रखते थे, जबतक काशी में रहने वाले आनंदशंकर ध्रुव से पत्र द्वारा सम्मति न प्राप्त कर

लेते थे। नरसिंहराव सर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर के विद्यार्थी थे, जो 'संस्कृत स्टडीज़ इन वेस्टर्न इंडिया' के सबसे पुराने और प्रमुख सदस्य थे। उन्हीं से इन्हें संस्कृत भाषा के प्रति प्रेम तथा भाषा-विज्ञान के प्रति उत्कट रुचि प्राप्त हुई।

अपने पिता भोलानाथ तथा गुरु भंडारकर की भांति नरसिंहराव भी प्रार्थना-समाज तथा सुधारवादी विचारों पर विश्वास रखते थे। जिस प्रकार गोवर्धन-राम और मणिलाल भारतीयता के कुछ अच्छे अंगों की ओर—विशेषकर धर्म और दर्शन की बातों में—जनता का मन आकर्षित करने की चेष्टा कर रहे थे, उसी प्रकार नरसिंहराव और रमणभाई अपने-अपने ढंग से हिन्दू धर्म तथा समाज की कुछ रीतियों की आलोचना कर रहे थे तथा सुधारवाद का प्रचार कर रहे थे। इस प्रकार नर्मदा शंकर ने अपने आरंभिक जीवन में जिस काम को आरंभ किया था तथा अन्य लोगों ने भी जिसे अपनाया था, उसे नरसिंहराव ने आगे बढ़ाया।

नरसिंहराव कई काव्य-संग्रह के रचयिता हैं; वे हैं 'कुसुममाला', 'हृदयवीणा' 'नूपुर झंकार', 'स्मरण संहिता', तथा 'बुद्धचरित'। उनकी गद्य-रचनाएँ हैं—मनोमुकुर' (४ भागों में), 'स्मरण मुकुर', 'विवर्तलीला' 'अभिनय कला' और 'नरसिंह रावनी रोजनीशी'। बंबई विश्व विद्यालय में इन्होंने 'विल्सन फाइला-लाजिकल लेक्चर्स' नाम से भाषा-विज्ञान पर अंग्रेजी में कई भाषण दिए, जिनका संग्रह 'गुजराती लैंग्वेज ऐंड लिटरेचर' (गुजराती भाषा और साहित्य) नाम से हुआ है। वहीं इन्होंने 'ठक्करजी वसनजी लेक्चर्स' के अंतर्गत भी कई भाषण दिये।

नरसिंहराव का प्रथम काव्य-संग्रह 'कुसुममाला' सन् १८८७ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसका प्रभाव कुछ विचित्र पड़ा। एक ओर रमणभाई जैसे आलोचकों ने इसे मरुभूमि का हरा-भरा स्थान बताकर प्रेमानंद तथा अंग्रेज कवि बायरन से भी अधिक श्रेष्ठ समझा। किन्तु दूसरी ओर कुछ आलोचकों ने इसे 'गोल्डेन ट्रेज़री' के चतुर्थ भाग का—विशेषकर वर्ड्सवर्थ की कविताओंका—अनुकरण-मात्र माना। फिर भी अधिकांश ने, जिनमें निष्पक्ष आलोचक आनंदशंकर जैसे भी हैं, इस संग्रह की सराहना की है। पश्चिम से प्रभावित आधुनिक कविता यद्यपि नर्मदाशंकर के समय में ही आरंभ हो गयी थी, किन्तु इसका कलात्मक रूप प्रथम बार नरसिंहराव की रचनाओं में ही पाया गया। एक आलोचक ने

इन्हें आधुनिक कविता की गंगोत्री माना है, दूसरे ने शकुंतला रूपी आधुनिक कविता का कण्व इन्हें कहा है। इनकी रचनाओं के अंतर्मुखी तत्त्व भाव ने रमण-भाई को इतना प्रभावित किया कि उन्होंने लिखा, "उत्तम काव्य 'गीत-काव्य' है; इसमें अंतर्मुखी तत्त्व तथा भावों की प्रमुखता होनी ही चाहिए।"

नरसिंहराव ने बड़ी सुन्दरता से काव्य में अंतर्मुखी तत्त्व प्रविष्ट किया है। महान् एवं गौरवपूर्ण विषयों में, प्राकृतिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति में, काव्यात्मक चिंतन में तथा अन्तर्द्वन्द्वों के चित्रण में इनका मन विशेष रूप से लगता था। 'स्मरण संहिता' में—जो उनके पुत्र की मृत्यु पर लिखा शोकगीत है—करुणा, विश्वास, आत्मसंयम, मानव-गौरव, प्रभु-समर्पण आदि तत्त्व बड़ी सुन्दरता के साथ सन्निविष्ट किये गये हैं और वस्तुतः समस्त भारतीय साहित्य में इस रचना का एक विशिष्ट स्थान है। इनमें से कई तत्त्व गुजराती साहित्य में पहली बार सन् १८८७ ई० में वे लाये।

इन्होंने आन्तरिक संघर्ष के साथ-साथ काव्य में कलपना तथा विचार का प्रवेश कराया; इनका प्रस्तुतीकरण कलात्मक है; भावों के उपयुक्त शब्दों का उपयोग हुआ है और छन्द भी काव्य-विषय के उपयुक्त चुना गया है। ये ऐसी विशेषताएँ हैं जो इनके पूर्ववर्ती कवियों में कुछ अंशों तक नहीं पायी जाती थीं। पहली बार इन विशेषताओं को प्रकट करने के कारण ही इन्हें आधुनिक काल के सच्चे मार्ग-दर्शक होने का गौरव प्राप्त हुआ।

'कुसुम माला' का प्रधान विषय है प्रकृति और प्रेम। इसके गीत उस समय के हैं, जब कवि तरुण था। इसीलिए ये गीत कवि के तरुण उत्साह एवं जीवन के आनंद का आभास देते हैं। शीघ्र ही इन गीतों ने शिक्षित व्यक्तियों को आकर्षित किया। दूसरा काव्य-संग्रह था 'हृदय-वीणा'। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, कवि का मन प्रकृति से हटकर हृदय की गहन भावनाओं की ओर मुड़ गया। इसी संग्रह में कुछ खंड काव्य भी हैं। इसमें आये हुए विषयों का क्षेत्र भी अधिक विस्तृत है। कई गीतों में चिन्तन का तत्त्व प्रमुख है, साथ ही विषाद की भी ध्वनि है। कवि ने कुछ बहिर्मुखी कविताओं की भी रचना की है। तृतीय काव्य-संग्रह 'नूपुर-झंकार' में कुछ अच्छे खंडकाव्य हैं, जैसे 'चित्र विलोपन' और 'तद्गुण'। यह ग्रंथ कवि की परिपक्व अवस्था का लिखा हुआ है। इसमें

भी चिन्तन तत्त्व की प्रधानता है। कवि ने बुद्ध चरित की कुछ घटनाओं का वर्णन बड़े अनूठे ढंग से किया है। 'बुद्धचरित' शीर्षक से इन कविताओं का संग्रह हुआ है। 'स्मरण संहिता' कवि के ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु पर लिखा गया शोकगीत है, जिसमें दार्शनिक विचारों एवं भगवान् को भक्तिपूर्ण समर्पण की सहायता से असह्यवेदना का दमन करना बताया गया है। टेनीसन के 'इन मेमोरियम' के ढंग पर यह एक करुणप्रशस्ति है। जीवन-मरण के गंभीर प्रश्न पर काव्यात्मक ढंग से इस पर विचार किया गया है। यह कवि की सर्वोत्तम कृति है और आधुनिक भारतीय साहित्य के उत्तम ग्रंथों में से एक है।

यद्यपि नरसिंहराव के खंड काव्यों की अपेक्षा कान्त के खंड काव्य अधिक श्रेष्ठ हैं, किन्तु लघुगीतों में वे सबके आगे बढ़ गये हैं। उनका प्रकृति-प्रेम उन्हें वर्ड्सवर्थ की कविताओं से प्राप्त हुआ है। उनका लक्ष्य था अंग्रेजी-काव्य के कुछ श्रेष्ठ तत्त्वों का गुजराती साहित्य में समावेश करना। इस उद्देश्य में वे विशिष्ट प्रकार से सफल हुए हैं, किन्तु अपनी कुछ सीमाओं के साथ। उनकी सीमाएँ हैं—भाषा-शुद्धता एवं विशिष्ट शैली के प्रति रुचि, विषय एवं भावों की पुनरावृत्ति, विस्तार और परवर्ती कवियों की अपेक्षा भावों का कुछ सीमित प्रवाह।

गुजराती साहित्य में एक आलोचक के रूप में नरसिंहराव का स्थान बहुत ऊँचा है। उनका कहना था कि एक अच्छे आलोचक को कवि और विद्वान् होना ही चाहिए। कवि तथा आलोचक दोनों के पास प्रतिभा एवं कल्पना का होना आवश्यक है। कवि समन्वय करता है, और आलोचक विश्लेषण। उनकी साहित्यिक आलोचनाएँ 'मनोमुकुर' के ४ भागों में संगृहीत हैं। उनकी आलोचना-पद्धति इस प्रकार है—पहले वे पुस्तक के सब दोष सामने रखते हैं, फिर संक्षेप में पुस्तक की सामग्री देते हैं, अंत में वे पुस्तक के कुछ गुणों और लेखक की विशेषताओं का विश्लेषण करते हैं। वे सहानुभूतिपूर्वक एक कलाकार की दृष्टि रखते हुए ग्रंथ की अच्छाइयों पर प्रकाश डालते हैं। उनका विश्लेषण अत्यन्त सूक्ष्म और मर्मपूर्ण होता है, उनका मत संतुलित और पाश्चात्य-साहित्यिक-आलोचना तथा संस्कृत-अलंकार-शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुकूल तर्कों पर आधारित होता है। उनके तर्क विद्वत्तापूर्ण

तथा जानकारी देनेवाले हैं। कभी-कभी आलोचित पुस्तक के कुछ अंशों की वे विस्तृत व्याख्या आरंभ कर देते हैं। निस्सन्देह ऐसा करने में उनका उद्देश्य रहता है कि किसी विशेष अंश का रस पूर्णतया प्रकट हो जाय। किन्तु यह शैली उन्हें भाष्यकार का रूप प्रदान कर देती है। कई बार उन्होंने अपनी रचनाओं की तुलना दूसरों की रचनाओं से करके उदारतापूर्वक उनकी प्रशंसा की है। जब वे दोष निकालते हैं तो यह काम भी पूरी तरह से करते हैं। वर्ण-विन्यास, व्याकरण, शब्द-प्रयोग तथा भाषा-शुद्धता के विषय में ये बहुत कट्टर हैं। कभी-कभी लंबे और सूक्ष्म विचारों में ये अनुपात खो बैठते हैं, जिससे संस्कृत के प्रसिद्ध भाष्यकारों का स्मरण हो जाता है। ऐसी दशा में इनकी शैली रूक्ष, उद्धरणबहुला, विषम और विस्तारपूर्ण हो जाती है। तब एक निबंध के गुण उसमें नहीं रह जाते। ये विवादों के बड़े प्रेमी हैं और बड़े उत्साह तथा निश्चित मत से उनमें भाग लेते हैं। इसके लिए वे बड़ी विद्वत्तापूर्ण तैयारी करते हैं। उत्तर रामचरित, विलासिका, जमाजयन्त, गुजरात नाथ पर उनके आलोचनात्मक निबंध; असत्य भावारोपण, असंभव, संगीतकाव्य, मुक्त छंद आदि पर उनके विचार तथा नवलराम, नारायण हेमचन्द्र एवं अन्य लोगों के विषय में उनके जीवन चरित संबंधी लेख उनके ऐसे साहित्यिक कार्य हैं, जिनमें उनकी प्रतिभा के दर्शन होते हैं। वे जब किसी पर आक्रमण करते हैं तो अत्यन्त निर्भीक होकर। इन्होंने प्रमाणसहित सिद्ध कर दिया कि प्रेमानंद के लिखे हुए कहे जानेवाले नाटक वस्तुतः प्रेमानंद द्वारा लिखित न होकर इधर हाल के लिखे हुए हैं। ज्ञान बाल उपनाम से इन्होंने 'चर्चापत्र' लिखा था।

'स्मरणमुकुर' में उन्होंने कुछ उन विशिष्ट व्यक्तियों के स्मृति-चित्र दिये हैं, जिनके संपर्क में वे जीवन काल में आये थे। ये लेख अंतर्मुखी दृष्टि से लिखे गये हैं और उन व्यक्तियों से सम्बन्धित पूर्ण सामग्री मिलने की आशा इन लेखों से नहीं की जा सकती। इस कृति से उनके समय के समाज पर प्रकाश पड़ता है और कुछ रुचिकर विस्तृत बातें हैं। ये लेख कुछ हलकी और वर्णनात्मक शैली से लिखे गये हैं। सब मिलाकर कह सकते हैं कि लेखक ने शब्द-चित्र के लिए चुने हुए व्यक्तियों में से प्रत्येक के साथ न्याय किया है। इनकी 'विवर्तलीला' नये ढंग पर लिखी हुई है। यह निबंध की शैली में न होकर असम्बद्ध डायरी के रूप

में है, जिसमें दार्शनिक तथा कल्पनाप्रधान विचार हैं। आदि से लेकर अंत तक लेखक का ईश्वर के प्रति विश्वास इसमें स्पष्ट है। उचित उदाहरणों के साथ गंभीर विषयों पर लेखक ने मुक्त एवं तीखी शैली से विचार किया है। इनके 'अभिनय करा' में गुजराती रंगमंच की वर्तमान और भावी स्थिति पर शास्त्रीय ढंग से विचार किया गया है। बंबई विश्वविद्यालय में इन्होंने ठक्कर वसनजी भाषणमाला के अंतर्गत कुछ भाषण दिये, जिनमें कुछ मध्यकालीन कवि; जैसे नरसिंह और अखो आदि के विषय में विस्तारपूर्वक कहा।

नरसिंहराव की प्रमुख ख्याति अपने समय के एक विशिष्ट भाषाशास्त्री के रूप में अधिक है। अपने पूर्ववर्ती विद्वानों की अपेक्षा ये कहीं अधिक श्रेष्ठ और सक्षम हैं। इनके पहले जलाल कालीदास शास्त्री ने सन् १८६६ में 'गुजराती भाषा नो इतिहास' तथा १८७० में 'उत्सर्गमाला' लिखा था और नवलराम ने १८८७ में 'व्युत्पत्ति पाठ' लिखा किन्तु ये ग्रंथ उच्च शास्त्रीय परीक्षा में खरे नहीं उतरे। ये ग्रंथ तो बस आरंभ के मार्गदर्शक प्रयत्न के रूप में हैं। नर्मदाशंकर ने 'नर्म व्याकरण' और 'नर्मकोश' की रचना की। नरसिंहराव ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और पुरानी तथा आधुनिक गुजराती का गहन अध्ययन किया था; साथ ही उन्होंने पश्चिम की ऐतिहासिक, आलोचनात्मक तथा तुलनात्मक शैली का भी ज्ञान प्राप्त किया। ये डा० आर० जी० भंडारकर के शिष्य थे, जिनसे इन्हें संस्कृत और भाषा शास्त्र का प्रेम मिला। इन विषयों से इन्हें इतना प्रेम था कि इन्होंने लगभग सारा जीवन इनमें बिता दिया। भाषा शास्त्र संबंधी इनके सिद्धान्त नियंत्रित एवं तर्कपूर्ण थे। सन् १९०५ में इन्होंने वर्ण विन्यास के संबंध में १०० से अधिक पृष्ठों का एक विस्तृत निबंध लिखा था। जीवन भर ये अपने प्रिय विषय के संबंध में अथक परिश्रम तथा लगन से काम करते रहे। इन्होंने 'विल्सन भाषा शास्त्रीय व्याख्यान माला' के अंतर्गत गुजराती भाषा और साहित्य पर कुछ भाषण दिये, जो दो भागों में प्रकाशित हुए। इस कार्य नें इन्हें भारत के एक प्रमुख भाषाशास्त्री का पद दे दिया। इन्होंने प्रतिसंप्रसारण के नियमों पर, अनुस्वार के उच्चारण पर, विवृत-अर्ध विवृत तथा ए० ओ के संवृत्त पर, व्यस्त और समस्त अवस्थाओं पर बड़ी योग्यतापूर्वक विचार किया। भाषा को शुद्ध रखने की दिशा में इनका बहुत बड़ा योग है। इनकी आयु दीर्घ

थी, अतः एक भाषा-शास्त्री की दृष्टि से भाषा के स्वरूप-निर्माण का अवलोकन तथा एक आलोचक की दृष्टि से महारथी की भाँति अन्य साहित्यिक ग्रंथों का आगमन देखते रहे।

रमणभाई

सर रमणभाई महीपतराम नीलकंठ का जन्म सन् १८६८ में हुआ था। कालेज में ये एक अच्छे विद्यार्थी थे और इनकी शैक्षणिक स्थिति बड़ी आशापूर्ण थी। ये बंबई के एलफिस्टन कालेज में पढ़ते थे। इनके पिता महीपतराम प्रार्थना समाजी तथा सुधारवादी थे। बी० ए० पास होते ही रमणभाई को 'ज्ञानसुधा' के संपादक की जगह मिली। 'ज्ञानसुधा' प्रार्थनासमाज का पाक्षिक पत्र था, जो अहमदाबाद से गुजराती में प्रकाशित होता था। कालेज के दिनों में इन्होंने 'कविता नी उत्पत्तिअनेस्वरूप' शीर्षक से एक विद्वत्तापूर्ण लिखित भाषण पढ़ा था। ये न्यायालय में सरिश्तेदार फिर उपन्यायाधीश हुए तथा अंत में एक वैधानिक वकील बनकर जीवन बिताने लगे। इनकी प्रथम पत्नी का देहान्त हो गया और तब इन्होंने लेडी विद्यागौरी के साथ विवाह किया, जो गुजरात की सर्वप्रथम बी० ए० पास महिला थीं। इनका दूसरा विवाह बड़ा सुखप्रद रहा। विद्यागौरी भी अपने ढंग की समाज तथा साहित्य क्षेत्र की एक प्रमुख महिला थीं। अपने पिता की भाँति रमणभाई भी सुधारवादी थे और समाजसेना की ओर उनका झुकाव था। उन्होंने नगरपालिका के मामलों में भाग लेना आरंभ किया और उसके मंत्री बन गये, बाद में सभापति हुए। कई वर्षों तक ये सामाजिक सेवा करते रहे।

ये शिक्षा-शास्त्री, समाज-सुधारक, संपादक, साहित्यिक व्यक्ति, जन-नेता तथा धार्मिक विश्वास के मनुष्य थे। चूँकि प्रायः सभी प्रधान क्षेत्रों में इन्होंने कार्य किया और लगभग आधी शताब्दी तक विभिन्न प्रकार की सेवाएँ इन्होंने कीं, अतः आनन्द शंकर ध्रुव ने जो इन्हें गुजरात का 'सकल पुरुष' कहा है, यह उचित ही है।

इनकी साहित्यिक आलोचनाओं के निबंधों का संग्रह 'कविता अने साहित्य' नाम से ४ भागों में प्रकाशित हुआ है। धर्म तथा समाज विषय पर लिखे गये

निबंधों का संग्रह 'धर्म अने समाज' शीर्षक से २ भागों में हुआ है। ये 'भद्रंभद्र' तथा 'हास्य-मंदिर' उपन्यासों के प्रणेता भी हैं, जो हास्यरस से पूर्ण हैं। इन्होंने एक नाटक लिखा है 'राईनो पर्वत' तथा कुछ कविताएँ भी लिखी हैं। प्रार्थना-समाजी तथा सुधारवादी पत्र 'ज्ञानसुधा' के संपादक की हैसियत से ये आर्यधर्म-प्रचारक 'सुदर्शन' के संपादक मणिलाल के साथ अनेक विषयों पर विवाद करते रहे। विवाह संबंधी संमतिवय के प्रश्न पर बड़ा कटु विवाद चला था। एक वकील होने के कारण रमणभाई अपनी पूर्ण योग्यता और विद्वत्ता के साथ अपने सबल तर्कों को बराबर उपस्थित करते थे। अपने 'भद्रंभद्र' हास्यरसपूर्ण एवं व्यंग्यात्मक उपन्यास में भी रमणभाई ने समाज के प्राचीनतावादी अंग पर बड़े तीखे कटाक्ष किये हैं। पहले यह उपन्यास 'ज्ञानसुधा' में धारावाही रूप से निकला था, बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। हास्यरस से जनता का मनोरंजन करने के कारण यह उपन्यास बहुत अधिक जनप्रिय और प्रख्यात हुआ। इसे लिखने में लेखक ने डान क्विक्ज़ोट के ग्रंथ तथा डिकेन के 'पिकविक पेपर्स' से प्रेरणा प्राप्त की थी। इस समस्त पुस्तक का मूल स्रोत वैयक्तिक मतभेद है और कुछ विशिष्ट व्यक्तियों पर आक्रमण करने के उद्देश्य से यह लिखी गयी है। भद्रंभद्र पात्र वेदजड़ता का प्रतिनिधित्व करता है, जो अत्यन्त प्राचीनतावादी और कट्टर है तथा जो उचित अथवा अनुचित सभी अवसरों पर बड़ी कठिन एवं असंतुलित संस्कृत-गर्भित भाषा बोलता है। वह अनोखे तर्कों से कुछ प्राचीन रीतियों को पुष्ट करता है। यहाँ लेखक कुछ तो मणिलाल द्वारा आर्यधर्म के समर्थन का उपहास करता है और कुछ मनसुखराम की संस्कृतगर्भित भाषा पर कटाक्ष करता है। मणिलाल की मृत्यु के बाद उनके काम को आनंदशंकर ध्रुव ने गंभीरतापूर्वक जारी रखा और वे 'सुदर्शन' के संपादक हो गये। उन्होंने 'भद्रंभद्र' की बड़ी कड़ी आलोचना की है। उन्होंने लिखा है कि रमणभाई ने केवल मणिलाल तथा दूसरों पर कटाक्ष करने के लिए हिन्दू धर्म के कुछ गंभीर और मर्यादित विषयों का उपहास किया है, जिन पर बड़ी गंभीरता और मर्यादा के साथ उच्चस्तर पर विचार होना चाहिए था। उन्होंने यह भी कहा है कि किसी का किसी से निर्गुण या सगुणमत पर व्यक्तिगत मतभेद हो सकता है, किन्तु किसी को द्वैत या अद्वैत मत का इस प्रकार उपहास करने का अधिकार

नहीं है, जैसाकि इस उपन्यास में बहुत ओछेपन के साथ किया गया है। देखा जाय तो मणिलाल ने ही वेदान्त को सर्वसाधारण के समझने योग्य उपस्थित किया फिर उनकी सेवाओं की प्रशंसा करने के बजाय उन पर छींटा कसना उनके प्रति घोर अन्याय है। उपन्यास में प्राचीनतावादियों को नशेबाज बताया गया है, किन्तु यही दुर्गुण सुधारवादियों में बहुत बड़े अंश में था। इसमें ऐसी घटनाओं का वर्णन है, जिनमें हास्य और व्यंग्य उच्चतम कोटि से लेकर निकृष्टतम कोटि तक का पाया जाता है। कुछ आलोचकों ने तो इस उपन्यास को बहुत अनावश्यक लंबा बताया है, जिसके उत्तर भाग में रुचि मन्द पड़ जाती है। किन्तु जब यह उपन्यास प्रकाशित हुआ था, उस समय यह बड़ा मनोरंजक पाया गया था, क्योंकि हास्य और व्यंग्य का यह पहला ही उपन्यास था। 'भद्रंभद्र' के अनुकरण पर नरसिंहराव ने 'उत्तर भद्रंभद्र' की रचना की, किन्तु यह बड़ा क्षीण प्रयास था। रूढ़िवादियों ने इस व्यंग्य का उत्तर 'भद्रभ्रमण-मीमांसा' जैसे निबंधों से दिया। इस उपन्यास को प्रकाशित हुए कई दशक व्यतीत हो गये और मूल विवाद का बल भी समाप्त हो चुका है, किन्तु अब भी पढ़ने में यह बड़ा मनोरंजक है, क्योंकि हास्य-व्यंग की दृष्टि से इसके कई स्थानों पर रमणभाई की उत्कृष्टता दिखाई देती है।

'हास्य मंदिर' में रमणभाई ने कुछ हास्यात्मक खाके, कुछ संवाद और हास्य पर एक लंबा विद्वत्तापूर्ण निबंध दिया है। इसके कुछ अंश बहुत प्रसिद्ध हुए थे।

'मकरन्द' उपनाम से रमणभाई ने कुछ कविताएँ भी लिखी हैं। इन्होंने 'शोधमां' शीर्षक से एक और अपूर्ण कृति की रचना की है, जो साधारणकोटि की एक कहानी है। रमणभाई और नरसिंहराव दोनों सुधारवादी थे, किन्तु रमणभाई केवल उपदेश देने में नहीं, वरन् व्यवहार में भी ऐसे थे। ये द्वैतमत को मानते थे और मायावाद तथा केवलाद्वैत सिद्धान्त के कट्टर विरोधी थे। नरसिंहराव भी यद्यपि इसी मत पर विश्वास रखते थे, किन्तु दर्शन संबंधी उनके विचार कुछ उदार थे और इसका कारण संभवतः आनंदशंकर के साथ उनका सम्पर्क था, जिनके दर्शन संबंधी विचारों का तथा योग्यता का ये बड़ा आदर करते थे। रमणभाई वेदान्तियों को प्रच्छन्न नास्तिक कहते थे। पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर उनका विश्वास नहीं था और पुराणों की वे कड़ी आलोचना करते थे। वे नीति-

पालन और एकमेव सर्वशक्तिमान् प्रभु की प्रार्थना-स्तुति पर बहुत बल देते थे। ये मूर्तिपूजा के विरोधी थे। 'धर्म अने समाज' शीर्षक से इनके धार्मिक निबंधों का संग्रह दो भागों में हुआ है।

रमणभाई ने एक नाटक लिखा था—'राईनो पर्वत'। एक प्राचीन भवाई के एक अंश में वर्णित कथा वस्तु के आधार पर यह लिखा गया है। इस नाटक में लेखक ने एक मध्यकालीन विषय पर समाज की कुछ प्रमुख समस्याओं पर विचार किया है। लेखक का ईश्वर-विश्वास, उसकी सत्यारूढ़ता, नीति-शास्त्र, समाजसुधार के प्रतिलेखक की रुचि, विधवा-विवाह, महिला-सम्मान आदि विषय प्रमुखता के साथ इसमें लाये गये हैं। नायक एक हारे हुए राजा का पुत्र है; जो अपनी मां के साथ एक गुप्त स्थान में छिपा हुआ था। विजयी राजा बूढ़ा था और एक दिन किसी एकांत स्थान में नायक उसका वध कर देता है। ऐसी योजना बनाई गई कि मृत राजा को आरोग्य लाभ करने के लिए किसी दूसरे स्थान पर गया हुआ घोषित कर दिया जायगा और ६ मास तक नायक मृत राजा का भेष बनाकर राजभवन में रहेगा। कुछ दिनों तक तो नायक ने ऐसा किया, किन्तु मृत राजा की रानी का पति बनकर उससे अन्त तक नहीं रहा गया। किसी भी परिणाम की परवाह किये बिना वह गुप्त रहस्य प्रकट कर देता है। उसकी इस सत्य-प्रियता और उसके उच्चनैतिक सिद्धान्तों के कारण लोगों ने उसे अपना राजा मान लिया और मृत राजा की कन्या के साथ उसका विवाह हो गया, जो बाल-विधवा थी। मणिलाल के नाटक 'कान्ता' की भांति यह नाटक भी कुछ शिष्ट नाटकों में एक है। रंगमंच की दृष्टि से पूर्ण उपयुक्त न होते हुए भी एक साहित्यिक कृति के रूप में इसका बहुत ऊँचा स्थान है। इसका कथानक सुन्दर, चरित्र-चित्रण उत्तम और कुछ काव्यांश श्रेष्ठ कोटि के हैं। मणिलाल के 'कान्ता' से ही लेखक ने प्रेरणा प्राप्त की थी। इस नाटक ने लेखक को साहित्य जगत् में एक ऊँचे आसन पर बैठा दिया और कई वर्षों तक यह स्कूल-कालेजों में पाठय पुस्तक के रूप में रहा।

साहित्यिक आलोचना-क्षेत्र में रमणभाई का योग बहुत बड़ा है। ऐसे निबंधों का संग्रह 'कविता अने साहित्य' नाम से चार भागों में हुआ है। विविधता और परिमाण दोनों दृष्टियों से इनकी कृतियां बड़ी महत्वपूर्ण हैं। कुछ पुस्तकों

की आलोचना इन्होंने बड़ी मार्मिकता से की है, लेखकों का मूल्यांकन किया है, साहित्य की प्रवृत्ति का विवरण उपस्थित किया है और आलोचना-शास्त्र के सिद्धान्तों पर विचार प्रस्तुत किये हैं। काव्य-निर्माण के पूर्व कवि के हृदय में अन्तः क्षोभ का होना इनके मत से आवश्यक है। सर्वानुभवरसिक की अपेक्षा ये स्वानुभवरसिक काव्य को श्रेष्ठ मानते हैं। अलंकारशास्त्र के वर्णन में इन्होंने लिखा है कि रस काव्य की आत्मा है तथा इन्होंने संस्कृत-काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों का पोषण किया है। पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र का इन्होंने गहन अध्ययन किया था और विस्तार से उन पर विचार किया। हास्य रस पर इनका आलोचनात्मक निबंध पाश्चात्य साहित्य में पाये जानेवाले हास्यरस के प्रकारों पर प्रकाश डालता है, क्योंकि वहीं इसका अधिक प्रचार है। इन्होंने ऐसे काव्य की आलोचना की है, जिसमें केवल शब्द चमत्कृति रहती है और भाव अथवा ऊर्मि-जैसे काव्य-गुणों का अभाव रहता है। इसीलिए इन्होंने नरसिंहराव को श्रेष्ठ कवि माना है और उनकी 'कुसुममाला' की बड़ी प्रशंसा की है किन्तु अन्तर्मुखी कविता का महत्त्व उन्होंने आवश्यकता से अधिक बताया है और जैसा कि आनंदशंकर ने कहा है उन्होंने काव्य के दूसरे लक्षणों का महत्त्व पूरी तरह से समझा नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि 'कुसुममाला', 'पृथ्वीराजरासो' तथा भोलानाथ के काव्यों का महत्त्व उन्होंने साहित्य-प्रेमी जनता के सामने प्रकट किया, किन्तु कहीं-कहीं उन्होंने बिना अनुपात के कृतियों की प्रशंसा की है। इनकी आलोचनाएँ लंबी हैं और नरसिंहराव या आनंद शंकर के समान संस्कृत-काव्यशास्त्र का ज्ञान भी इनका नहीं है। इनके कुछ विचार एवं विवेचन निरर्थक हैं। शैली की दृष्टि से भी इनकी आलोचना की जाती है। इतना होते हुए भी जिस काम को इन्होंने हाथ में लिया, उसके पक्ष में अच्छा काम किया। इनकी शैली सादी, स्पष्ट, तर्कपूर्ण और एक वकील के उपयुक्त है।

मणिलाल के साथ इनके लंबे-लंबे विवाद चलते रहे और इन विवादों ने गुजराती भाषा को निखार दिया। आलोचक के रूप में कई दृष्टियों से ये नवलराम की अपेक्षा एक श्रेष्ठ आलोचक थे। 'भद्रंभद्र' और 'राई नो पर्वत' के लिए भी बहुत दिनों तक इनकी स्मृति बनी रहेगी।

अध्याय १५

केशवलाल और आनंदशंकर

केशवलाल

केशवलाल हर्षदराय ध्रुव का जन्म १८५९ में हुआ था। बचपन से ही संस्कृत पढ़ने की रुचि उनमें थी और इस विषय में उन्हें अपने बड़े भाई हरी हर्षदध्रुव से प्रेरणा मिली। केशवलाल पहले एक स्कूल के हेडमास्टर थे, फिर गुजरात कालेज अहमदाबाद में गुजराती के प्रोफेसर हो गये। नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया बंबई के एलफिंस्टन कालेज में गुजराती के प्रोफेसर थे, केशवलाल ने इसी के समकक्ष अहमदाबाद में पद प्राप्त किया। प्राचीन गुजराती काव्य के क्षेत्र में इन्होंने बहुत अधिक मात्रा में शोध-कार्य किया तथा ऐसे कुछ काव्य-ग्रंथों का सम्पादन बड़ी कुशलता से किया। ये भाषाविज्ञान और पिंगल-शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे। प्रकृति की ओर से इन्हें काव्य-संबंधी प्रतिभा मिली थी, किन्तु अधिकतर इस प्रतिभा का उपयोग इन्होंने प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथों का गुजराती में कुशल अनुवाद करने में किया तथा प्राचीन एवं मध्यकालीन गुजराती साहित्य के ग्रंथों का शोध अथवा सम्पादन करने में भी अपनी प्रतिभा का उपयोग किया।

भालण की 'कादंबरी' का सम्पादन इन्होंने दो भागों में किया। इन्होंने 'पंदरमांशतकनां प्राचीन गुर्जर काव्यो', रतनदास के 'हरिश्चन्द्राख्यान' तथा अखो के 'अनुभव बिन्दु' का भी सम्पादन किया। इन सभी संपादित ग्रंथों में इन्होंने पाठ-भेद का सूक्ष्म निरीक्षण किया, पर्याप्त टिप्पणियाँ दीं और विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनाएँ लिखीं। इन्होंने कालिदास, विशाखदत्त, भास और हर्ष के संस्कृत ग्रंथों का गुजराती में अनुवाद किया। 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद 'मेलनी मुद्रिका' नाम से तथा 'विक्रमोर्वशीय' का 'पराक्रमनी प्रसादी' नाम से किया। 'प्रधाननी प्रतिज्ञा', 'साचुं स्वप्न', 'मध्यम', 'प्रतिमा' तथा 'विन्ध्यवननी कन्यका' भास

तथा हर्ष के नाटकों के अनुवाद हैं। इन्होंने कवि अमरु का 'अमरुशतक एवं जयदेव का 'गीतगोविंद' भी अनूदित किया। इन सभी कृतियों में शब्द-चयन के विषय में ये बड़े सतर्क और सावधान रहे। ये अनुवाद ऐसी कुशलता से हुए हैं कि ऐसा प्रतीत होता है मानो कला एवं सौन्दर्य का हम मूल ग्रंथ पढ़ रहे हैं। इन सभी ग्रंथों की भूमिका में इन्होंने लेखक के काल पर तत्कालीन सामाजिक अवस्था पर तथा लेखक अथवा ग्रंथ से संबंधित अनेक बातों पर विचार किया है। ये भूमिकाएँ विद्वत्तापूर्ण हैं, जो इनके पांडित्य एवं अध्ययन का परिचय देती हैं। प्रायः इन्होंने अत्यन्त सूक्ष्मता तथा योग्यता पूर्वक निर्णीत पाठभेदों-को भूमिकाओं में दिया है और अन्य हस्तलिपियों में पाये गये पाठों को अस्वीकार करके कई स्थलों पर इन्होंने अपने अनुमानित पाठ दिये हैं। कहीं-कहीं तो इनके अनुमानित पाठ ठीक हैं, किन्तु बराबर पाठों का अनुमान करते रहने के इनके इस स्वभाव की आलोचना कुछ योग्य विद्वानों ने की है, क्योंकि कुछ अनुमानित पाठों का कोई आधार किसी हस्तलिपि में नहीं मिलता। फिर भी इनके अनुवाद ऐसे कलात्मक तथा उच्चकोटि के हैं और इनकी भाषा इतनी मधुर और मुहावरेदार है कि इस अनुवाद-कार्य ने इन्हें साहित्य में वही स्थान प्रदान किया, जो एक मूल और स्वतंत्र लेखक को प्राप्त होता है। संस्कृत नाटकों में संवादों की भाषा संस्कृत और प्राकृत है, किन्तु अपने अनुवादों में केशवलाल ने ऐसी भाषा का उपयोग किया है, जिससे विभिन्न रंग झलकते हैं और संस्कृत तथा प्राकृत का अंतर स्पष्ट हो जाता है। 'गीतगोविंद' का गुजराती रूपांतर अत्यन्त सफलतापूर्वक हुआ है और केशवलाल मूल कृति की मधुरता, अनुप्रास एवं गेयता को लाने में पूर्ण सफल हुए हैं। 'अमरुशतक' के प्रत्येक पद में एक भिन्न शब्द-चित्र है, जिसमें प्रेमभावना की विभिन्नता वर्णित है। केशवलाल ने सभी सूक्ष्म भावों को प्रकट किया है और कोमल तथा मधुर शब्दों के प्रयोग द्वारा उन्होंने गुजराती भाषा को सबल एवं सक्षम बनाया है। कुछ अनुवाद तो मूल से भी श्रेष्ठ हुए हैं। उनकी भूमिकाओं में ऐतिहासिक सूचनाएँ तथा शोध-कार्य बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। भालण की 'कादम्बरी' का अनुवाद इन्होंने आधुनिक गुजराती में किया है। अपनी टिप्पणियों में इन्होंने जो भाषाशास्त्र संबंधी विचार उपस्थित किये हैं, वे बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। अपने ग्रंथ 'पद्य रचनानी ऐति-

हासिक आलोचना' में इन्होंने वैदिक काल से लेकर आज तक के छन्द का ऐतिहासिक विकास बताया है। उच्चारण पर इनके कुछ विद्वत्तापूर्ण लेख हैं, पुरानी गुजराती के व्याकरण के आलोचनात्मक पर्यवेक्षण के रूप में इनका 'मुग्धावबोध औक्तिक' है एवं 'गुजराती भाषा अने साहित्य' इनकी अन्य मूल्यवान रचना है। 'साहित्य अने विवेचन' शीर्षक से साहित्य तथा आलोचना संबंधी इनके निबंधों का संग्रह २ भागों में हुआ है। सन् १९०७ में बंबई में होनेवाले द्वितीय 'गुजराती साहित्य परिषद्' के ये अध्यक्ष थे और अपने अध्यक्षीय भाषण में इन्होंने साहित्य की प्रकृति पर विचार उपस्थित किये तथा गुजराती साहित्य को तीन युगों में विभक्त किया। १० से १४ वीं शताब्दी तक के काल को इन्होंने प्रथम युग, १५ से १७ वीं शताब्दी तक के काल को द्वितीय युग तथा उसके बाद के काल को तृतीय युग माना है।

साहित्यिक आलोचना-क्षेत्र में ये न केवल संस्कृत-काव्य-शास्त्र के सिद्धान्तों के पक्ष में थे, वरन् अलंकार-छन्द संबंधी संस्कृत ग्रंथों में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द ग्रहण करने पर भी जोर देते थे। नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया ने अपने 'प्रेमानंदना नाटको' नामक आलोचनात्मक निबंध में लिखा है कि प्रेमानंद द्वारा लिखित कहे जानेवाले नाटक उनके नहीं हैं, बल्कि बाद के लिखे हुए हैं। केशवलाल ध्रुव का संबंध पुरानी गुजराती के ग्रंथों के सम्पादन कार्य से था। अतः कई विद्वान् ऐसा संदेह करते हैं कि इन तथाकथित नाटकों को सिद्धहस्त केशवलाल का सहयोग प्राप्त हुआ है। केशवलाल बराबर कहा करते थे कि ये नाटक मूलतः प्रेमानंद के ही हैं; उनके इस कथन से लोगों का सन्देह और भी दृढ़ हो गया।

आनन्दशंकर ध्रुव

आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव का जन्म १८६९ में हुआ था। इनके पिता बड़े धार्मिक थे, अतः आस्तिकता और धर्मप्रियता के गुण इन्हें अपने पिता से प्राप्त हुए। पारंपरिक रीति से इन्हें संस्कृत की बहुत अच्छी शिक्षा मिली। पहले इन्होंने भास्कर शास्त्री से संस्कृत पढ़ी और बाद में मैथिल पंडितों से। इन्हीं विद्वानों की सहायता से इन्होंने संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन किया, जो विश्व विद्यालय के पाठ्य-क्रम में नहीं था। जैसे ही इनकी विश्व-

विद्यालय की शिक्षा समाप्त हुई, इनको गुजरात कालेज, अहमदाबाद में संस्कृत का प्रोफेसर नियुक्त कर लिया गया। पहले इनका विचार वकील बनने का था, किन्तु संस्कृत के प्रोफेसर का पद स्वीकार करने पर इन्हें राजी कर लिया गया। कुछ समय बाद इन्हें दर्शनशास्त्र पढ़ाने के लिए भी कहा गया। इस बात से इन्हें पूर्व और पश्चिम के दर्शन का आलोचनात्मक, ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन करना पड़ा। संस्कृत के प्रकांड पंडित तथा अद्वैत वेदान्ती होने के कारण आनन्दशंकर मणिलाल के निकट सम्पर्क में आये। आनन्दशंकर लिखते हैं कि बी. ए. पास करने के बाद इन्होंने मणिलाल का 'सिद्धान्तसार' पढ़ा और उसका इतना प्रभाव इनके ऊपर पड़ा कि ये एक बैठकी में ही सारा ग्रंथ समाप्त कर गये। ये मणिलाल की ओर आकर्षित हुए तथा उन्हें 'प्रियंवदा' एवं 'सुदर्शन' के पुराने अंक वी० पी० से भेजने के लिए लिखा। मणिलाल ने इनकी गंभीरता तथा उत्साह को देखकर उन अंकों को उपहार स्वरूप भेजा। मणिलाल के साथ इनकी यह घनिष्ठता सात वर्षों तक चली। इसके बाद मणिलाल की मृत्यु हो गयी। इसके बाद 'सुदर्शन' का सम्पादन-भार आनन्दशंकर को वहन करने के लिए कहा गया। अभी तक इसका सम्पादन मणिलाल कर रहे थे। इन्होंने उसे स्वीकार किया और दो वर्षों के बाद इन्होंने एक अपना पत्र 'वसन्त' नाम से प्रकाशित किया, जिसका सम्पादन ये कई सालों तक करते रहे।

सन् १९१९ में आनंदशंकर की नियुक्ति हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में प्रो-वाइसचांसलर के पद पर हुई। अतः ये अहमदाबाद से बनारस चले गये। इस उच्च पद पर रहकर वर्षों तक इन्होंने शिक्षा संबंधी बहुत बड़ी सेवाएँ कीं और वहाँ से अवकाश ग्रहण करने पर ये अहमदाबाद में जाकर बस गये। कुछ समय के लिए 'वसन्त' का सम्पादन इन्होंने रमणभाई नीलकंठ को सौंप दिया था, किन्तु कुछ वर्षों के बाद ये फिर 'वसन्त' का सम्पादन करने लगे। सन् १९४२ में अहमदाबाद में इनकी मृत्यु हो गयी।

आनन्दशंकर पंडित-युग के एक विशिष्ट और प्रतिभाशाली प्रतिनिधि थे। संस्कृत और दर्शनशास्त्र के वे एक प्रकांड पंडित और योग्यतम प्राध्यापक थे। 'सुदर्शन' तथा बाद में 'वसन्त' के सम्पादक के रूप में उनकी सेवाएँ अनुपम हैं। वे मणिलाल के उत्तराधिकारी थे। शिक्षा-केन्द्र वाराणसी में रहकर उन्हें

एक उत्तम अखिल भारतीय प्राचीन विद्या विशारद के रूप में ख्याति मिली। दर्शनशास्त्र, धर्म, नीति, साहित्य, इतिहास तथा सामाजिक एवं राजनीति की प्रमुख समस्याओं के विषय में इनका अध्ययन अत्यन्त गहन और अद्भुत था। अपने निबंधों, टिप्पणियों और सम्पादकीय लेखों में इन्होंने इन विषयों पर अनेक दृष्टियों से विचार किया है। इनकी भाषा गंभीर, चिंतनपूर्ण और शिष्ट है और इनके विस्तृत अध्ययन तथा विद्वत्ता का परिचय देती है। इनकी शैली मिताक्षरी है, जो अर्थपूर्ण तथा विषयानुकूल है। यद्यपि इन्होंने संस्कृत शब्दों का अधिक प्रयोग किया है, किन्तु शैली तनिक भी आक्रमणात्मक नहीं है और पाठक के मन में यह भाव उत्पन्न नहीं करती कि लेखक अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करना चाहता है। संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य का इनका अध्ययन बड़ा गहन, विस्तृत और बहुमुखी था। यद्यपि ये शंकरमत के केवलाद्वैत सिद्धान्त के लिए मणिलाल को पसंद करते थे, किन्तु इन्हें अन्य दर्शनों में भी गुण दिखाई पड़ते थे और किसी भी सिद्धान्त को हीन दृष्टि से नहीं देखते थे। इनका कहना है कि सभी दर्शनों का अपना-अपना एक उचित स्थान है। इन दर्शनों के परस्पर विरोध की व्याख्या ये दो प्रकार से संभव मानते थे। ये कहते थे कि एक तो इनका विरोध प्राचीन दृष्टिकोण से अधिकार-भेद द्वारा समझा जा सकता है और दूसरे नवीन दृष्टि-कोण से ऐतिहासिक ढंग द्वारा अर्थात् किसी आचार्य ने तत्कालीन देश-काल की परिस्थिति के कारण ही किसी विशेष सिद्धान्त पर जोर दिया है, और ऐसा करना आवश्यक था। अब इन विवादों की शक्ति और आवश्यकता क्षीण हो चुकी है, क्योंकि परिस्थिति में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। विभिन्न दर्शनों एवं संप्रदायों के अनुयायियों को अत्यन्त सूक्ष्म अन्तरों पर ध्यान न देना चाहिए, किन्तु किसी दर्शन के आधारभूत तत्त्व पर विचार करना चाहिए।

धर्म, दर्शन और साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में आनन्दशंकर का बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान है। 'वसन्त' में प्रकाशित उनके लेखों का संग्रह इन चार ग्रंथों में हुआ है—'काव्य तत्त्व विचार', 'साहित्य विचार', 'दिग्दर्शन' तथा 'विचार माधुरी'। इन चार पुस्तकों में विभिन्न विषयों पर उनके चिंतनपूर्ण लेख हैं। उन्होंने 'नीति-शिक्षण', 'धर्म-वर्णन', 'हिंदू धर्म' एवं 'हिंदू धर्मनी बाल-पोथी' भी लिखी है। इन पुस्तकों में इन्होंने हिंदूधर्म के स्वरूप का वर्णन किया

है और संसार के प्रमुख धर्मों से इसकी तुलना की है।' 'आपणो धर्म' में इनके कुछ महत्त्वपूर्ण दार्शनिक और धार्मिक लेखों का संग्रह है।

आनन्दशंकर की आलोचना में संतुलन बराबर पाया जाता है। यह कार्य करते समय में कभी क्षुब्ध नहीं हुए। किसी मत की चरमसीमा तक पहुँचने को ये बराबर बचाते रहे। इनकी रुचि सदा विचार-सामञ्जस्य की ओर रही है। अपने प्राचीन साहित्य और दर्शन के विस्तृत अध्ययन का उपयोग इन्होंने बराबर किया है। पाश्चात्य साहित्य तथा दर्शन के अध्ययन के बल पर इन्होंने पूर्व के धर्म, दर्शन और काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों पर नयी दृष्टि से विचार किया है इतिहास के विद्यार्थी होने के कारण ये प्रत्येक प्रश्न पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी विचार करते थे। केवल साहित्य की दृष्टि से नहीं, वरन् प्रत्येक समस्या पर दार्शनिक और ऐतिहासिक दृष्टि भी डालते थे। मणिलाल तथा गोवर्धनराम की भांति आनन्दशंकर भी यह मानते थे कि साहित्य का विवेचन अथवा मूल्यांकन करते समय साहित्यिक आलोचना के सिद्धान्तों के साथ-साथ दर्शनशास्त्र के सिद्धान्तों को भी लगाना चाहिए। अपने विस्तृत अध्ययन तथा समन्वय की रुचि के कारण आनन्दशंकर ने साहित्यिक आलोचना का स्तर ऊँचा करके उसे गौरव, गांभीर्य और उच्च उद्देश्य प्रदान किया। रमणभाई का दृढ़ मत था कि काव्य में सर्वाधिक आवश्यक तत्त्व चित्तक्षोभ या ऊर्मि है और इसी लिए केवल स्वानुभव-रसिक काव्य ही सर्वश्रेष्ठ काव्य हो सकता है। किन्तु आनन्दशंकर ने इस मत का खंडन किया और कहा कि चित्तक्षोभ के अतिरिक्त काव्य में कल्पनाशक्ति का होना भी आवश्यक है। इन्होंने भवभूति के शब्दों में काव्य की परिभाषा दी है है "अमृतां आत्मनः कलाम्" और बताया कि काव्य समस्त चेतन तन्त्र का आविर्भाव है, अतः ऊर्मि के अतिरिक्त दूसरे अवाश्यक तत्त्व जैसे प्रतिभा, बुद्धि, अनुभव, रसवृत्ति एवं कल्पना आदि भी काव्य के लिए बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। इस कारण से यह कहना ठीक नहीं है कि केवल स्वानुभवरसिक काव्य ही सर्वोत्तम काव्य है। इनका यह भी कहना था कि काव्य के संयमन और नियमन के लिए छन्द भी बहुत आवश्यक है। इन्होंने साक्षर (कवि) शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है—वह व्यक्ति जो पाठक को अक्षर तत्त्व का दर्शन करा दे।

आनंदशंकर का कहना है कि महाभारत का प्रधान रस शांत है, जो निर्वेद

द्वारा स्थापित किया गया है। 'वसंत' में इन्होंने कुछ गंभीर अर्थवाले संकेतात्मक भजनों की व्याख्या की है। पहले वे लेख के आदि में वह भजन देते थे, फिर उसमें छिपे हुए दार्शनिक अर्थ या संकेत की व्याख्या भाष्यरूप में बड़े आकर्षक और मौलिक ढंग से करते थे। इन्होंने काल-मीमांसा पर बड़ी योग्यता से विचार किया है, जिसमें अपनी तत्त्व-दृष्टि से काम लिया है। कुछ प्रसिद्ध साहित्यिक ग्रंथों के विषय में इनका किया हुआ मूल्यांकन एवं इनकी विद्वत्ता पूर्ण और संतुलित सम्मतियों को सबने प्रमाणयुक्त और निश्चयात्मक स्वीकार किया है। ये नरसिंहराव की भांति किसी रचना के गुण-दोषों पर बहुत सूक्ष्मता और विस्तार से विचार नहीं करते थे, वरन् समग्ररूप से उस ग्रंथ के प्रभाव के विषय पर ध्यान देते थे और यद्यपि इनकी आलोचनाएँ अपेक्षाकृत छोटी हैं, किन्तु सारपूर्ण और प्रमुख अंग पर केन्द्रित हैं। सन् १९२८ में नड़ियाद में होनेवाले गुजराती साहित्य-परिषद के नवें अधिवेशन के सभापित के पद से आपने समस्त आधुनिक गुजराती साहित्य का विवेचन संक्षेप में किन्तु बड़ी योग्यतापूर्वक किया और उचित शब्दों में लेखकों का मूल्यांकन किया।

गोवर्धनराम की भांति आनन्दशंकर ने भी वानप्रस्थ का गौरवपूर्ण जीवन बिताया। इन्होंने दार्शनिक, साहित्यिक, राजनीतिक और सामाजिक सभी धाराओं की व्याख्या निष्पक्ष मस्तिष्क से की। मणिलाल द्वारा संपादित 'स्याद्-वाद मंजरी' का सम्पादन इन्होंने फिर से किया और जीवन की विभिन्न समस्याओं पर इन्होंने स्याद्वाद का दृष्टिकोण अपनाकर विचार किया है। इसी कारण सभी विषयों के प्रति ये सहानुभूति एवं उदारता की दृष्टि रख सके। इनका मूल्यांकन अतिशयोक्ति, कटुता, कटाक्ष, अनावश्यक भावुकता तथा न्यून कथन से सर्वथा रहित है। विवादों में न तो ये भटकाये जा सकते थे न स्वयं बहकते थे और क्षुब्ध भी नहीं होते थे, वरन् अपने मत पर दृढ़ निष्पक्ष तथा संतुलित और सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि वाले थे।

गोवर्धनराम और मणिलाल की भांति आनन्दशंकर ने भी आर्यभावना की प्रशंसा की है। गोवर्धनराम ने सर्जनात्मक साहित्य के माध्यम से अपने विचारों को प्रकट किया। मणिलाल अद्वैत वेदान्त के प्रचारक थे और बड़ी शक्ति से इसका समर्थन किया तथा एक योग्य शिक्षक की भांति अत्यन्त स्पष्टता से इस

मत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। अपने भक्त-जीवन में जो दैवी अनुभव उन्हें हुए थे, उन्होंने उनको भी व्यक्त किया। आनन्दशंकर को यद्यपि अद्वैत दर्शन का उतना ही ज्ञान था पर वे उसके प्रचारक न थे। इनका विश्वास था कि दूसरे दर्शन भी उसी आर्यभावना के एक या दूसरे अंग को प्रकट करते हैं। इन्होंने एक शिक्षा-शास्त्री की दृष्टि से प्रश्नों पर विचार किया। इनकी धारणा थी कि सभी बातों पर इस ढंग से विचार करना चाहिए कि समग्र अर्थ में धर्म मध्यबिन्दु पर रहे। किन्तु मणिलाल की तरह पहले छेड़छाड़ करनेवाले नहीं थे। ये ऐतिहासिक और तुलनात्मक शैली का प्रयोग भी करते हैं और इनकी अभिव्यक्ति एक वकील की हैसियत से कम वरन् एक न्यायाधीश की हैसियत से अधिक है। शांकरवेदान्त के संबंध में कई शंकाओं का इन्होंने निराकरण किया है और सिद्ध किया है कि यह न तो नीति-विरुद्ध है न भक्ति-विरुद्ध इन्होंने हिन्दू धर्म और दर्शन के कुछ प्रमुख भावों की व्याख्या इस ढंग से की है, जो इस आधुनिक युग के लोगों को भी सरलता से मान्य हो सकती है। विशेषता यह है कि ऐसा करने में इन्होंने मूल भावों के तात्पर्य को न छोड़ा है न कम किया है। इन्होंने बलपूर्वक कहा है कि वैदिक धारणा को समझने के लिए भक्ति, कर्म और ज्ञान तीनों का होना आवश्यक है। मणिलाल की भाँति इनका भी यही कहना है कि प्रेमलक्षणा भक्ति और अपरोक्ष ज्ञान समान अनुभूतियाँ हैं। इनका कथन है कि धर्म आत्मा की कोई विशेष वृत्ति नहीं है, वरन् आत्मा के सम्पूर्ण व्यापारों में रमा हुआ है, अतः सभी कर्म धर्मोन्मुख होने चाहिए। इन्होंने अस्पृश्यता के विरुद्ध अपने विचार दो कारणों से प्रकट किये हैं—एक तो यह कि प्राचीन काल में जिन जाति के लोगों को छूना निषेध था, उनकी वर्तमान काल में सत्ता ही नहीं है और दूसरे दर्शन-क्षेत्र को किसी एक वर्ग में आबद्ध करने का न तो किसी को अधिकार है और न करना चाहिए, साथ ही जीवन पर पूर्णता की दृष्टि से विचार करना चाहिए और हमारे सभी कार्य उस धर्मोन्मुखता के द्वारा संचालित होने चाहिए, जो अध्यात्मवाद के दृष्टिकोण से युक्त है। उन्होंने यह भी कहा कि धर्म-कार्य के रूप में पुराणों का अपना महत्त्व है। इन्होंने समझाया है कि जैनधर्म, बुद्धधर्म और वैदिक धर्म तीनों एक ही मान्यता की तीन शाखाएँ हैं। इन्होंने बताया कि कपिलमुनि का मूल्य सांख्य शास्त्र सेश्वर था; बुद्ध ब्रह्मवाद के विरोधी

नहीं थे; शंकराचार्य योगाभ्यास द्वारा नाना प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करना अच्छा नहीं समझते थे; शंकर के दर्शन का सार या तत्त्व वर्ण-धर्म नहीं है। इनका कहना था कि विभिन्न दर्शनों और सम्प्रदायों में नीति-सिद्धान्त, जीवन की पवित्रता तथा साधनाओं के विषय में पायी जानेवाली समानता का महत्त्व उनके सूक्ष्म अन्तरों की अपेक्षा बहुत अधिक है। इन्होंने अपना कोई नया दर्शन नहीं दिया, किन्तु शांकरवेदान्त की व्याख्या इस प्रकार से की है जिससे उसे एक नया रूप प्राप्त हो गया है। इनकी शैली की मुख्य विशेषताएँ हैं—स्पष्टता, सूक्ष्मता, साहित्यिकता और संतुलन। वे मानते थे कि सत्य अपना समर्थन अपनेआप प्राप्त कर लेगा। 'वसन्त' के अंतिम पृष्ठों पर दिये गये उद्धरणों से पाश्चात्य विचारों के सम्बन्ध में इनके शास्त्रीय और गहन अध्ययन का परिचय मिलता है। मणिलाल के कार्य को इन्होंने पूरा किया और आगे बढ़ाया। इन्होंने वाद-विवाद का उच्च स्तर स्थापित किया।

अध्याय १६

'कान्त' और 'कलापी'

मणिशंकररत्नजी भट 'कान्त'

'कान्त' नाम से विख्यात श्री मणिशंकर रत्नजी भट्ट का जन्म १० नवंबर १८६८ को सौराष्ट्रान्तर्गत चावंड में हुआ था। ये प्रश्नोरा नागर ब्राह्मण थे। इनके पितामह की रुचि काव्य की ओर बहुत अधिक थी और मणिशंकर को बचपन से ही यह रुचि विरासत में मिली। आरंम्भिक काल में ये दलपतराम की शैली पर कविता करते थे, किन्तु उनकी प्रकाशित रचनाओं में से कोई भी ऐसी नहीं है। बंबई के एलफिन्स्टन कालेज में इन्होंने शिक्षा पायी और रमणभाई के साथ मित्रता स्थापित की, जिन्होंने बाद में मणिशंकर का 'वसन्त विजय' खंडकाव्य अपनी टीका के साथ प्रकाशित किया। बाद में भी बहुत समय तक दोनों में साहित्यिक, सामाजिक तथा धार्मिक मामलों में लिखा-पढ़ी चलती रही। इनके दूसरे घनिष्ठ मित्र थे प्रोफेसर बलवन्तराय कल्याणराय ठाकोर, जिन्होंने इनकी कुछ कृतियों के विषय में सुझाव दिये, उन्हें सुधारा, उनकी प्रशंसा की और इस प्रकार मणिशंकर को प्रोत्साहित किया। मणिशंकर ने भी अपनी कुछ रचनाएँ इन्हीं को संबोधित करते हुए की हैं। समस्त 'पूर्वालाप', जो मणिशंकर की कविताओं का संग्रह है, अहमदाबाद में ठीक १६ जून १९२३ को प्रकाशित हुआ, जिस दिन रावलपिंडी से लाहौर आते समय ट्रेन में मणिशंकर की अचानक मृत्यु हुई थी। यह 'पूर्वालाप' उपहार शीर्षक की एक कविता द्वारा प्रो० ठाकोर को समर्पित किया गया था।

मणिशंकर ने दर्शनशास्त्र लेकर बी० ए० पास किया। कालेज छोड़ने पर ये अध्यापक बने और बाद में सूरत, बड़ौदा तथा भावनगर में शिक्षा-अधिकारी के रूप में रहे। अध्यापक की हैसियत से इन्हें अच्छी ख्याति मिली। जब ये बड़ौदा में थे, तब ईसाईधर्म तथा उसके रहस्यवादी साहित्य का इन्होंने बड़ा गहन

अध्ययन किया, विशेषकर स्वीडेनबर्ग की कृतियों का। उस साहित्य से ये इतने प्रभावित हुए कि ३३ वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। इसके परिणामस्वरूप इन्हें अपने मित्रों और संबंधियों की सहानुभूति तथा सम्पर्क से हाथ धोना पड़ा। स्वभाव से ये बहुत ही भावुक थे, अतः अपने सामाजिक संबंधों को फिर प्राप्त करने के लिए ये फिर हिन्दू हो गये, किन्तु ईसाईधर्म के प्रति उनकी आन्तरिक आस्था मृत्यु पर्यन्त बनी रही।

ये कवि नानालाल और मणिलाल के सम्पर्क में भी रहे। 'कलापी' की मृत्यु के बाद इन्होंने 'कला पीनो केकारव' और 'हमीर काव्य' का सम्पादन भी किया।

ये अति संवेदनशील, चिन्तक, सत्य-प्रिय और मानसिक मंथन के व्यक्ति थे। इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'पूर्वालाप' है। इस संग्रह में अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी दोनों प्रकार की कविताएँ हैं। इनमें से कई कविताएँ उनके जीवन से ही संबंधित हैं तथा जीवन की कुछ घटनाओं ने उन्हें वे कविताएँ लिखने को वाध्य किया। उनका पहला विवाह नर्मदा के साथ कुछ छोटी अवस्था में ही हुआ था, जो बड़ा आनन्दमय था। किन्तु १८९१ में नर्मदा की मृत्यु से मणिशंकर को बड़ा दुख हुआ। विवाहित जीवन का आनंद तथा विरह-व्यथा की छाया उनकी कुछ कविताओं में स्पष्ट है। उनकी दूसरी पत्नी का नाम भी संयोग से नर्मदा ही था।

मणिशंकर (कान्त) ने सर्वोत्तम खण्डकाव्य दिये हैं। उनका जीवन मन्थन एवं संघर्षपूर्ण था और इनका पर्याप्त वर्णन उन्होंने अपनी कलापूर्ण रचनाओं में किया है। शीघ्र ही गुजरात के लोगों का ध्यान उनकी कविताओं की ओर आकर्षित हुआ। 'वसन्त विजय', 'चक्रवाक मिथुन' और 'देवयानी' आदि इनके कुछ उत्तम खंड काव्य हैं। इन खंडकाव्यों में तथा 'सागर अने शशी' जैसी दूसरी रचनाओं में भी शब्द, अर्थ, वृत्त और अलंकार का बहुत उत्तम प्रयोग हुआ है, साथ ही इनमें कला, सौंदर्य तथा काव्यत्व भी बहुत अधिक मात्रा में है। यद्यपि संख्या में इनकी रचनाएँ अधिक नहीं हैं, फिर भी प्रो० बलवन्तराय ठाकोर जैसे आलोचक ने लिखा है कि मणिशंकर विगत सौ वर्षों में अन्तर्मुखी कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। इनके खंडकाव्यों का रूप बाद के कवियों ने भी

स्वीकार किया। किसी कविता में मोड़ आते ही या भाव-परिवर्तन होते ही वृत्त बदल देने की प्रथा इन्होंने चलायी।

मणिशंकर की रचनाओं में ढीलेपन या कलाहीन अभिव्यक्ति का अभाव है। ये अपने ढंग पर पूर्ण विश्वास के साथ लिखते हैं। किसी का अनुकरण करने की प्रवृत्ति इनमें नहीं है। इनकी कविताओं का सर्जन कला एवं सौंदर्यपूर्ण है। इन्हें विश्वविद्यालय की शिक्षा मिली थी और अध्ययन बहुत विस्तृत था। नवीन विचारों और भावों को भी बड़ी सफलतापूर्वक इन्होंने आकर्षक शैली में व्यक्त किया है। इनकी कविताओं के संग्रह का 'पूर्वालाप' के नाम से ही भास होता है कि उसका अधिकांश ईसाईधर्म स्वीकार करने के पहले लिखा गया था। समूचा ग्रंथ सब अंगों में संतुलित है। मराठी का अंजनीवृत्त उन्होंने गुजराती में प्रतिष्ठित किया। प्रत्येक पंक्ति के अंत में विरामचिह्न देने की प्रथा का उन्होंने परित्याग किया और भाव व्यक्त करने के आवश्यकतानुसार दूसरी या तीसरी पंक्ति में भी बीच में विराम लगाते थे। प्रत्येक चरण के अन्त में यति लगाना भी इन्होंने छोड़ा। किन्तु यति-भंग-दोष तक ये नहीं बढ़े और न वृत्त-संबंधी स्वतंत्रता का उपयोग किया। यद्यपि इनकी भाषा संस्कृत बहुला थी, किन्तु इनके शब्दों का चयन बहुत उपयुक्त और अवसर के अनुकूल होता था।

ये खंडकाव्य में निष्णात थे। किसी कहानी या घटना का विकास ये लघुकथा की भाँति करते थे; आदि और अंत कलापूर्ण तथा आकर्षक होते थे; इनमें नाटक तत्त्व भी अधिक होता था और भाव-परिवर्तन के साथ ही ये छन्द बदल देते थे। मणिशंकर में प्राचीन एवं नवीन दोनों प्रकार के कवियों के गुण थे। हम उनकी रचनाओं में एक ओर अनुप्रास, शब्द चमत्कृति, अर्थ चमत्कृति, अलंकार, छन्द-प्रतिभा पाते हैं और दूसरी ओर नवीन कविता के सभी अच्छे अंग भी देखते हैं। मानसिक संघर्षों को प्रस्तुत करते हुए सत्य की खोज करने में उनकी रुचि अधिक थी। उन्होंने किसी कहानी पर आधारित लंबी कविताओं की रचना की है, छोटे गीत लिखे हैं और विशिष्ट घटनाओं या अवसरों पर कविता की है। वे छोटे-छोटे पदों में मनोदशा या वातावरण का वर्णन बड़ी सफलता से कर देते थे। उन्होंने कुछ ऐसे भावों का भी चित्रण किया है, जो गुजराती साहित्य में तबतक नहीं आये थे। उन्होंने प्रकृति-चित्रण भी किया है, किन्तु किसी पात्र

के मानसिक भावों की पृष्ठभूमि के रूप में। संसार में पाये जाने वाले अन्याय की शिकायत उन्होंने स्थान-स्थान पर की है। दुख तथा करुणभाव-वर्णन में वे सब में श्रेष्ठ थे। 'वसन्त विजय', 'रमा', 'अतिज्ञान', 'चक्रवाक मिथुन', 'देवयानी' तथा 'मृगतृष्णा' आदि उनके कुछ उत्तम खंडकाव्य हैं। बहुत थोड़े शब्दों में ये वस्तुस्थिति का चित्रण कर देते थे। इनकी भाषा कहीं बहुत सादी है और कहीं संस्कृत शब्दों से पूर्ण है, किन्तु प्रत्येक दशा में भाषा अवसर के उपयुक्त है। ये अनेक अलंकारों का प्रयोग नहीं करते थे, किन्तु जिनका भी प्रयोग किया है, उनका चुनाव बहुत ठीक किया है। इन खंडकाव्यों में इन्होंने करुणरस का वर्णन किया है। जगत की रहस्यमय विषमता तथा दुर्भाग्य का संकेत इन्होंने बराबर किया है। ईसाई होने के बाद इनकी रचनाओं की संख्या बहुत घट गयी। उनके छोटे-छोटे गीतों में ईसाई धर्म की बातें रहती थीं और वे गीत भगवान् के प्रति होते थे। अपने वैयक्तिक जीवन की घटनाओं पर भी कई गीत उन्होंने लिखे। अपनी पत्नी के साथ का सुखमय जीवन तथा उसकी मृत्यु के बाद मिलनेवाली व्यथा दोनों उनके गीतों के माध्यम से प्रकट हुए हैं। अपनी गहरी मित्रता का चित्रण करते हुए अपने कुछ मित्रों को संबोधित करके उन्होंने कुछ गीत भी लिखे हैं। उन्होंने देश प्रेम पर भी दो गीत लिखे हैं, जो राष्ट्रीय गान के रूप में अक्सर गाये जाते रहे हैं। यद्यपि इनके गीत भी उच्चकोटि के हैं, किन्तु मणिशंकर का नाम खंडकाव्यों के लिए बहुत समय तक बना रहेगा। बाद के कई कवियों ने खंडकाव्य के उस रूप को प्रस्तुत करने का भरसक प्रयत्न किया, किन्तु मणिशंकर का 'वसन्त विजय' आज भी अद्वितीय है। इसमें एक ऋषि द्वारा महाराज पांडु को पत्नी-संसर्ग न करने का शाप, उन्मत्त बना देनेवाले वसंतऋतु के कारण उनका अपने मन पर नियंत्रण न रख सकना तथा अमिट नियति का शिकार बनना बड़ी मार्मिकता से वर्णित है। उनकी कुछ कविताएँ ऐसी असाधारण हैं, जिनमें सूक्ष्मभावों की अभिव्यक्ति बड़ी कुशलता से हुई है तथा काव्य का रूप भी साङ्गोपाङ्ग है। उनके विषय में ऐसा कहा गया है कि यद्यपि उन्होंने कोई महाकाव्य नहीं लिखा, किन्तु एक महाकवि की प्रतिभा उनमें अवश्य थी।

मणिशंकर की कुछ गद्य-कृतियाँ भी हैं। उनका एक ग्रंथ है 'शिक्षणनो इतिहास', जिसमें शिक्षा विषय पर उन्होंने अपना गंभीर चिंतन दिया है। एक

योग्य शिक्षा-अधिकारी होने के कारण वे ऐसा ग्रंथ लिखने के अधिकारी थे। मणिलाल के 'सिद्धान्तसार' की उन्होंने आलोचना भी लिखी और रमण भाई के साथ पत्र-व्यवहार आरंभ किया, जिसमें मणिलाल और वेदान्त के सम्बन्ध में कुछ हलके विचार व्यक्त किये, किन्तु मणिलाल के ग्रंथों को तथा वेदान्त को और अधिक पढ़ने पर उन्होंने विषय के महत्त्व को स्वीकार किया और अपने पूर्व विचारों में सुधार किया। 'कान्तमाला' नाम से उनके पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने दो नाटक भी लिखे हैं, 'गुरु गोविंदसिंह' और 'रोमन साम्राज्य'। कुछ अंग्रेजी सामग्री का अनुवाद भी उन्होंने गुजराती में किया है। इनका गद्य सबल और स्पष्ट है। इन गद्य-रचनाओं के होते हुए भी ये अधिकांश में अपनी कविताओं के लिए ही प्रसिद्ध हैं। नर्मदाशंकर की भांति मणिशंकर भी बड़े भावुक थे और दोनों ने अपने अंतिम दिनों में विचार बदल डाले, किन्तु अपने-अपने ढंग से। यद्यपि गुजराती काव्य को मणिशंकर का योगदान बहुत बड़े परिमाण में नहीं है, किन्तु जो कुछ भी है, उसीके बल पर उनका स्थान बहुत ऊँचा है।

कलापी

सूरसिंहजी तख्तसिंहजी गोहेल का उपनाम 'कलापी' था। ये सौराष्ट्र के एक देशी रियासत लाठी के शासक थे। इनका जन्म १८७४ में हुआ था और २६ वर्ष की छोटी आयु में ही सन् १९०० में इनका देहान्त हो गया। १५ वर्ष की अवस्था में ही इनका विवाह कच्छ की राजकुमारी राजबा के साथ हुआ और कोटडा सांगाणी की राजकुमारी आनंदीबा के साथ भी इनका विवाह हुआ। 'कलापी' राजकोट के राजकुमार कालेज में पढ़ते थे, किन्तु आंखों की ज्योति कम हो जाने के कारण ९वीं कक्षा से ही पढ़ाई छोड़नी पड़ी। फिर भी घर में अध्यापक रखकर इन्होंने अंग्रेजी साहित्य तथा अन्य विषय पढ़े और अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय कवियों के विषय में अच्छी जानकारी प्राप्त की। केवल कवि ही नहीं, श्रेष्ठ आलोचकों और दार्शनिकों के विषय में भी पढ़ा, साथ ही गुजराती तथा संस्कृत के भी प्रसिद्ध ग्रंथों का अध्ययन किया। १८ वर्ष की अवस्था में ये काश्मीर गये और सन् १८९२ में 'काश्मीर' तो प्रवासन नाम की गद्य-पुस्तक लिखी। इसी कृति के साथ इन्होंने गुजराती में लिखना आरंभ किया।

'कलापी' की दूसरी पत्नी के साथ शोभना नाम की एक दासी आयी थी। इनका मन उसकी ओर झुका और ये उसे पढ़ाने में रुचि लेने लगे। धीरे-धीरे उनके स्वामीपन का भाव प्रेम में बदल गया। किसी तरह की समस्या न उठ खड़ी हो, इससे बचने के लिए रानी ने शोभना का विवाह एक साधारण (खवास) नौकर के साथ कर दिया। यह विवाह शोभना और 'कलापी' दोनों के लिए दुखदायी सिद्ध हुआ, क्योंकि कलापी उसके बिना जीवित नहीं रह सकते थे। अपने पति की दशा पर रानी को दया आयी और उसने खवास से शोभना के लिए त्यागपत्र प्राप्त करा लिया। बाद में कलापी ने शोभना के साथ शादी कर ली। इसके बाद कलापी काव्य जगत् को कुछ अधिक नहीं दे सके और दो वर्ष बाद १९०० में उनका देहान्त हो गया।

कलापी की काव्य-कृतियां हैं—'कलापीनो केकारव' और 'हमीर जी गोहेल'। 'माला अने मुद्रिका' तथा 'नारी हृदय' दो उपन्यासों के रूपान्तर हैं। इनके पत्र 'कलापीनी पत्रधारा' शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं।

अठारह वर्ष की अवस्था में 'कलापी' ने कविता लिखना आरंभ किया और छब्बीस वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया। किन्तु केवल आठ वर्षों में ही उनकी रचना परिमाण की दृष्टि से कान्त से सातगुना है। हां, कान्त की रचना निस्सन्देह इनकी अपेक्षा अधिक परिष्कृत है।

'कलापी' की रचना में मुख्यतः खंडकाव्य, गज़लें और सूफ़ी कविताएँ हैं। प्रकृति से ये बड़े भावुक थे और इनकी अधिकांश रचनाएँ इन्हीं के जीवन से संबंधित हैं, जो शोभना के साथ विवाह होने के पूर्व लिखी गयी थीं। ये अन्तर्मुखी कवि थे। प्रायः इनके विषय प्रेम और दर्शन होते थे तथा प्रकृति संबंधी चिंतन भी इनमें अधिक था। तरुण भावना से ये पूर्ण थे और आंसू बहाना इन्हें प्रिय था। इनकी रचनाओं के इस गुण ने तरुण पाठकों को अधिक प्रभावित किया।

इनकी अधिकांश रचनाएँ अंग्रेजी के कवियों की कविताओं से अनूदित हैं अथवा रूपान्तरित हैं या उनसे प्रभावित हैं। इन पर वर्ड्सवर्थ का विशेष प्रभाव था। इन्होंने मणिलाल से भी विचार-विमर्श किया था और उन्हें अपना गुरु मानते थे। ये मणिलाल के वेदान्त-दर्शन से बहुत प्रभावित थे। किन्तु

इनकी अधिकांश कविताएँ आत्मदर्शी हैं, जिनमें इन्होंने व्यक्तिगत-अनुभवों का चित्रण किया है। उनकी कश्मीर-यात्रा ने प्रकृति की महत्ता की एक अमिट छाप उन पर लगा दी तथा उनकी व्यक्तिगत समस्याओं और शोभना के लिए उनकी तड़पन ने उन्हें प्रेम का विषय दिया जो सभी रूपों से युक्त है। इन्होंने प्रकृति-वर्णन स्वतंत्र रूप से नहीं किया, वरन् जहाँ कहीं भी प्रकृति चित्रण है वह मानव-भावनाओं को उभारने के लिए पृष्ठभूमि के रूप में है।

'कलापी' ने कुछ गजलें भी लिखी हैं, जिनमें भोलाशंकर का अनुकरण स्पष्ट दीखता है। न तो इन्हें फारसी भाषा का अधिक ज्ञान था और न सूफी सिद्धान्तों की ही अच्छी जानकारी थी। गजल-रचना के नियमों की भी इन्होंने उपेक्षा की है और प्रायः फारसी के शब्दों का प्रयोग गलत अर्थ में किया है। इन दोषों के होते हुए भी सादे, अत्यन्त भावनात्मक और आकर्षक ढंग से इन्होंने अच्छे विचारों, प्रेम, त्याग, सौन्दर्य आदि को गजल के रूप में व्यक्त किया है। इसीलिए इनकी कुछ गजलों को प्रथम कोटि की कविताओं में स्थान प्राप्त है।

इनकी कविताओं में सहज प्रवाह है और इनका लघु जीवन देखते हुए इनकी रचनाओं का परिमाण भी अपेक्षाकृत अधिक है। यह ठीक है कि इनका कृतित्व अधिक कलात्मक नहीं है, किन्तु विचारों और भावों को ये बड़ी सूक्ष्मता तथा गौरव के साथ व्यक्त करते थे। इनकी कुछ अन्तर्मुखी कविताएँ प्रथम कोटि के गीत हैं। इनके एक प्रसिद्ध प्रेम-काव्य 'हृदय त्रिपुटी' में रमा, शोभना तथा स्वयं इनका चित्रण है। शोभना के साथ विवाह होने के पूर्व ही यह काव्य पूरा हो चुका था। यद्यपि आरंभ में अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन करते समय कवि में बहिर्मुखी सजगता दीखती है, किन्तु कथा के अन्तिम भाग में वह धारा को बदल देता है। काव्य की नायिका दयालु हो जाती है, फिर भी नायक-नायिका के विवाह के पहले ही दोनों का मर जाना बताया गया है। मृत्यु की यह भविष्यवाणी 'कलापी' के जीवन में बड़े दुर्भाग्य के साथ सत्य का रूप धारण करती है। यथार्थतः वह शोभना के साथ विवाह करता है, किन्तु शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जाती है। अपने प्रेम-गीतों में कवि केवल प्रेम के पीछे तड़पता ही नहीं है, वरन् वह विचार भी करता है और दार्शनिक ढंग से सोचता है।

'कलापी' ने अनेक खंड-काव्य लिखे हैं, जैसे 'हमीरजी गोहेल', 'ग्राम्य माता',

'बिल्वमंगल', 'कन्याअने क्रौंच', 'महात्मा मूलदास' आदि। काव्य के इस रूप की प्रेरणा इन्हें 'कान्त' से मिली थी, किन्तु 'कान्त' की सी कला या सुन्दरता ये नहीं ला सके। इन्होंने ललित सूक्ष्मता के साथ भावों का चित्रण किया है। किन्तु इनमें से अधिकांश चित्रण बहुत लंबे हैं। 'हमीरजी गोहेल' को 'कलापी' महाकाव्य का रूप देना चाहते थे, किन्तु इसे पूरा न कर सके। अतः इसकी गणना खंड-काव्य में ही होती है। यद्यपि इसमें महाकाव्य की सी गहराई तो नहीं है, किन्तु इस दिशा की ओर यह एक प्रयत्न अवश्य है।

'कलापी' शृंगाररस के कवि हैं और प्रेम का साक्षात् अनुभव इन्हें था। अपने सूक्ष्म मानसिक संघर्षों की अभिव्यक्ति इन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक की है। पाठकों को इनकी कविताओं में आँसू बहुत अधिक दिखाई देते हैं। कुछ आलोचकों ने तो आँसुओं की इसी अधिकता की कड़ी आलोचना की है। फिर भी ये अपनी भावनाओं को स्वाभाविक, सादे और सहज रूप में व्यक्त करते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि इनकी रचनाओं में युवकों को अधिक आकर्षित किया। इनकी कुछ रचनाओं तथा गजलों को गुजराती कविता में उच्च स्थान प्राप्त है।

अध्याय १७

न्हानालाल

कवि न्हानालाल दलपतराम आधुनिक गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ तथा अद्वितीय कवि हैं। ये कवि दलपतराम डायाभाई के चौथे पुत्र थे, जो आधुनिक गुजराती काव्य के निर्माताओं तथा संवर्द्धकों में से एक थे। न्हानालाल श्री माली जाति के ब्राह्मण थे। इनका जन्म सन् १८७७ में चैत्रशुक्ल प्रतिपदा (गुडी पाडवा) को अहमदाबाद में हुआ था और मृत्यु १९४६ में हुई। वचपन में ये बड़े चंचल और ऊधमी थे, अतः कवि दलपतराम ने इन्हें सौराष्ट्र के मोरवी नामक स्थान में प्रोफेसर काशीराम दवे के संग में रख दिया। इससे न्हानालाल के जीवन में एक परिवर्तन हुआ और काशीरामजी का उन पर इतना प्रभाव पड़ा कि बाद में उन्होंने अपने कई ग्रंथ अत्यन्त सम्मानपूर्वक उनको समर्पित किये। सन् १९०१ में इन्होंने अपनी विश्वविद्यालय की शिक्षा पूर्ण की और पहले सादरा में एक स्कूल के हेडमास्टर फिर राजकोट में राजकुमार कालेज के प्रोफेसर नियुक्त हुए। कुछ समय तक ये वही प्रधान न्यायाधीश और दीवान भी रहे। राजकुमार कालेज के ये वाइस प्रिंसिपल हो गये और फिर शिक्षा-अधिकारी बने। सन् १९२१ में देश व्यापी असहयोग आंदोलन की पुकार पर आपने नौकरी छोड़ दी। गुजरात विद्यापीठ में आप की नियुक्ति प्रिंसिपल के रूप में होनेवाली थी, किन्तु किसी कारण से ऐसा न हो सका, जिससे इनके जीवन में एक निराशा और कटुता उत्पन्न हुई। उसके बाद से आपने किसी भी नौकरी को स्वीका र नहीं किया। अहमदाबाद में आप बस गये और पूरा जीवन साहित्य की सेवा में बिता दिया। दलपतराम और उनके पुत्र न्हानालाल, जो उनसे भी अधिक परिश्रमी थे, के बीच का समय सौ वर्षों से भी अधिक है, जिसमें पिता-पुत्र बराबर साहित्य-सेवा करते रहे। नौकरी छोड़ने के बाद यद्यपि न्हानालाल की जीविका एकमात्र साहित्य-निर्माण पर ही चल रही थी, किन्तु

देशी रियासतों के शासक उनके प्रशंसक थे, अतः वे या तो बहुत अधिक संख्या में उनके ग्रंथ खरीद लेते थे अथवा किसी और तरह से उनकी सहायता किया करते थे। फिर भी प्रिंसिपल के पद में उनकी नियुक्ति न होने के कारण कुछ नेताओं के प्रति सदा उनकी शिकायत बनी रही। इस घटना के पूर्व उन्होंने गांधीजी पर एक बहुत सुन्दर काव्य 'गुजरात नो तपस्वी' लिखा था। किन्तु इसके बाद वे गांधीजी के आंदोलन से बिलकुल अलग हो गये। यह ठीक है कि अपने उत्तर काल में वे यह विरोध सबल न रख सके और कस्तूरबा गांधी की मृत्यु पर उन्होंने श्रेष्ठ रचना की। यह गुजराती साहित्य का दुर्भाग्य है कि न्हानालाल की इस उपरामता के कारण देश वर्तमान घटनाओं से संबंधित एक श्रेष्ठ महाकाव्य से वंचित रह गया।

कवि की रचनाएँ विविध प्रकार की हैं, यथा—नाटक, लघुकथा, खंडकाव्य, उर्मिकाव्य, भजन, रास आदि। सामाजिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं पर और धार्मिक तथा दार्शनिक विषयों पर आपने विचार किया है। इतिहास के अच्छे विद्यार्थी होने के नाते आपने देश की घटनाओं के महत्त्व एवं विकास पर अपने ढंग से प्रकाश डाला है। इन्होंने विद्वानों की जीवनियां (साक्षर चरित्र) तथा साहित्यिक आलोचनाएँ लिखी हैं। कई ग्रंथों का आपने गुजराती में अनुवाद किया है और माध्यमिक शालाओं की कई पाठ्य-पुस्तकें भी लिखी हैं। इनके सब ग्रंथ पचास से भी अधिक हैं, जिनमें गद्य, पद्य और रागबद्ध गद्य, जिसे ये 'अपद्यागद्य' कहते थे, सम्मिलित हैं।

उनके कुछ ग्रंथों के नाम ये हैं—'कुरुक्षेत्र', इसे वे महाकाव्य कहते थे; 'केटलांक काव्यो', भाग १ से ३; 'नाना नानारास', भाग १ से ३; 'राज-सूत्रोनी काव्यत्रिपुटी'; 'प्रेमभक्ति भजनावली'; 'दाम्पत्य स्तोत्रो'; 'ओज अने अगर'; 'वसन्तोत्सव'; 'महेरामणना मोती'; 'गीतमंजरी'; 'बाल-काव्यो'; 'पानेतर'; 'कर्णावती'; 'सोहागण' और 'लोलिंगराज'।

इनके नाटक ये हैं—'इन्दुकुमार' भाग १ से ३; 'जयाजयन्त'; 'विश्व-गीता'; 'राजर्षि भरत'; 'संघमित्रा'; 'प्रेमकुंज'; 'गोपिका'; 'पुण्यकन्था'; 'वेणुविहार'; 'हरिदर्शन'; 'जगत्प्रेम'; 'द्वारिकाप्रलय'; 'प्रज्ञाचक्षुना—प्रज्ञाबिन्दु'; 'जहांगीर-नूरजहां' और 'शहंशाह अकबरशाह'।

न्हानालाल ने बहुत-से भाषण भी दिये हैं। इन्होंने 'साहित्य मंथन' नामक ग्रंथ लिखा और अपने पिता दलपतराम का जीवन चरित्र लिखा है—'दलपत-राम' भाग १ से ३। इनका 'आपणां साक्षर रत्नो' २ भागों में है।

'उषा', 'सारथी' तथा 'पांखड़िओं' आदि इनकी लघुकथाएँ हैं।

इन्होंने कालिदास के 'शकुन्तला' तथा 'मेघदूत' का, 'श्रीमद्भगवद्गीता' का, वल्लभ संप्रदाय के षोडश ग्रंथों का, पाँच उपनिषदों का तथा स्वामी नारायण के 'शिक्षापत्री' का गुजराती पद्य में अनुवाद किया है।

इनकी मृत्यु के बाद 'हरि संहिता' कई भागों में प्रकाशित हुई है।

न्हानालाल ने सन् १९०५ में अपना 'वसन्तोत्सव' प्रकाशित कराया, जिसका स्वागत कान्त (मणिशंकर रत्न जी भट्ट) ने इन शब्दों में किया—"ऊग्यो प्रफुल्ल अमीवर्षण चन्द्रराज; ये स्वयं न्हानालाल के भी शब्द हैं। ये 'प्रेमभक्ति' उपनाम से लिखा करते थे। गुजराती साहित्य में न्हानालाल के आगमन को वसन्त-आगमन के समान कहा गया है। १९०५ में दो महत्वपूर्ण घटनाओं के घटित होने का संयोग हुआ—एक तो न्हानालाल के 'वसन्तोत्सव' का प्रकाशन, दूसरे 'गुजराती साहित्य परिषद' के प्रथम अधिवेशन का होना। न्हानालाल के अपद्यागद्य अथवा रागबद्ध गद्य ने गुजरात की कल्पना को सजीव करके लोगों का मन मोहित कर लिया, इसका जादू कई वर्षों तक नहीं उतरा। इस शैली के प्रति लोगों के मन में कुतूहल उत्पन्न हुआ और कुछ ने प्रशंसा की तथा कुछ ने आलोचना किन्तु कोई भी सफलतापूर्वक इस शैली का अनुकरण नहीं कर सका। न्हानालाल इसे 'डोलन शैली' भी कहते थे। उन्होंने गुजरात के सम्पूर्ण वातावरण को परिवर्तित कर दिया। गुजराती साहित्य में कवि की हैसियत से इन्हें सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ तथा संसार के काव्य क्षेत्र में भी इन्हें सम्मान का पद प्राप्त है। इनके शब्द तेज से गढ़े हुए लगते हैं—(शब्दो तेजे घड़्या)। इनके काव्य की कुछ विशेषताएँ हैं—भावना में अपूर्वता, अर्थ गौरव, पद लालित्य, अलंकार प्रभुत्व, अलंकार बाहुल्य; वाक्छटा और प्राचीन आर्य दर्शन के प्रति सम्मान की भावना। इनकी रचना का परिमाण बहुत अधिक है। इन्होंने मुख्यतः भावना और आदर्शों के गीत गाये हैं और अपनी डोलन शैली द्वारा गद्य-पद्य दोनों को समृद्ध किया। इन्होंने दाम्पत्य प्रेम का चित्रण

बड़े आकर्षक और सुन्दर ढंग से किया है, जो भावनामय भी है और तेजोमय भी। इनकी श्रेष्ठ रचनाएँ हैं इनके रास और ऊर्मिगीत। ये असाधारण और अद्वितीय साथ ही अत्यन्त काव्यात्मक हैं, जिनकी गणना संसार की उत्तम कविताओं में है।

न्हानालाल की रचनाओं में गुजराती काव्य का रसपूर्ण नया रूप प्रकट होता है। कवि ने केवल डोलन शैली में ही नहीं, वरन् नियमित छन्दोबद्ध शैली में भी रचना की है। यह ठीक है कि कवि ने डोलन शैली में जितना लिखा है, वह सबका सब समान रूप से श्रेष्ठ नहीं है और कभी-कभी कवि की उत्तमता शब्द बाहुल्य और अलंकार बाहुल्य में है, किन्तु इनकी कुछ छन्दोबद्ध और अपद्यागद्य की भी रचनाएँ ऐसी हैं, जिनमें उत्तम काव्य के गुण हैं। इनकी विशिष्ट डोलन शैली ने तो गुजराती साहित्य को रचनात्मक तथा काव्यात्मक साहित्य बहुत अधिक मात्रा में प्रदान किया है।

कवि ने अपने नाटक भी डोलन शैली में लिखे हैं। इनके प्रसिद्ध नाटक हैं—'इन्दुकुमार'' ३ भागों में, 'जयाजयन्त', 'गोपिका ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित 'शहन्शाह अकबरशाह' और 'जहांगीर-नूरजहां'; प्राचीन भारतीय इतिहास से संबंधित 'राजर्षि भरत' तथा 'संघमित्रा' आदि।

'इन्दुकुमार' में कवि ने विवाह की समस्याओं और जीवन पर उसके प्रभाव का विचार किया है। सम्पूर्ण समस्यापर सूक्ष्मता, मनोरंजकता, आदर्शवादिता और मधुरता के साथ प्रकाश डाला गया है। नाटक ३ भागों में है। दीर्घता तथा नाटकीय तत्त्वों के अभाव के होते हुए भी इसका अच्छा स्वागत हुआ। यह भावना प्रधान नाटक अथवा गीतात्मक नाटक माना जाता है, जैसे 'मेघदूत', 'गीतगोविन्द' और 'भागवत' 'भावप्रधान' काव्य माने जाते हैं। वस्तुओं की भव्यता चित्रित करने में कवि की रुचि अधिक है तथा वास्तविक चित्रण की ओर कम। इस नाटक में कथा अंश बहुत अधिक नहीं है, कार्य-व्यापार की गति भी बहुत मंद है। हां, कवि के दूसरे नाटक 'जया जयन्त' में कार्यव्यापार कुछ अधिक है, क्योंकि इसे रंगमंच पर अभिनय करने की दृष्टि से कवि ने लिखा है। इसी प्रकार ऐतिहासिक नाटकों में भी कुछ कार्य व्यापार है। 'जया-जयन्त' के नायक-नायिका जयन्त और जया कामविनय से युक्त आत्मलग्न की सिद्धि प्राप्त

करने के प्रयत्न में दिखाये गये हैं, जो असंभव तो नहीं, पर अत्यन्त दुष्कर कार्य है। इनके नाटकों का वातावरण काव्य-कल्पना तथा प्रेम से पूर्ण होता है। ऐतिहासिक नाटकों में कवि दैवी तत्त्वों का समावेश भी स्वतंत्रतापूर्वक करता है, जैसे महात्माओं का आकाश में उड़ना, आकाशवाणी, अप्सराओं का प्रत्यक्ष होना तथा इसी प्रकार के और भी बहुत से कार्य। कवि की भाषा-शैली विशिष्ट प्रकार की है, जो अलंकारों से पूर्ण और अपने ही ढंग की वाक्छटा से युक्त है। कवि ने पुरानी गुजराती तथा सौराष्ट्री के कुछ शब्दों का भी उपयोग किया है, जो गौरवपूर्ण, सुन्दर, मधुर, भव्य, तथा साथ-ही-साथ सबल हैं। भावों के अनुसार भाषा में भी आरोह-अवरोह है तथा एक लय है। हां, जहाँ कहीं काव्य-तत्त्व कुछ क्षीण है, वहाँ भाषा आडम्बरमयी और अधिक शब्दों वाली हो गयी है। संवादों के बीच में कहीं-कहीं कवि ने बड़े उत्तम गीत रख दिये हैं, जो गाये जा सकते हैं और जिनमें काव्यत्व बहुत ऊँचा है। 'विश्वगीता' में कवि ने जीवन की कुछ सनातन समस्याओं पर और मानसिक संघर्षों पर विचार किया है तथा कुछ सनातन मूल्यों की ओर संकेत किया है। इसकी कुछ घटनाएँ धार्मिक ग्रंथों में से ली गयी हैं, महाकाव्यों से तथा कुछ 'शंकर दिग्विजय' से प्राप्त हैं और कुछ काल्पनिक भी हैं। प्रेम-काव्य के पुनरुत्थान की दृष्टि से यह ग्रंथ सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

कवि ने स्नेह-लग्न और लग्न-स्नेह के संबंध में बहुत कुछ लिखा है। जैसे गोवर्धनराम ने अपने 'सरस्वतीचन्द्र' में स्नेहलग्न के विषय में बहुत कुछ कहा है, उसी प्रकार न्हानालाल ने अपनी कविताओं और नाटकों में लिखा है।

अपने अंतिम दिनों में कवि ने 'हरि संहिता' की भी रचना की, जो उसकी मृत्यु के पश्चात् ३ भागों में प्रकाशित हुई। यह 'भागवत' की शैली में लिखी गयी है और कुछ चुने हुए प्रसंगों का वर्णन इसमें है। इन्हीं प्रसंगों में उसने कुछ गद्य-खंड भी रख दिये हैं। जिन्हें वह उपनिषद् कहता है। यह ग्रंथ भक्ति-रस से पूर्ण है तथा कवि के अन्य ग्रंथों के समान इसमें भी काव्य के गुण भरे हैं। यह ध्यान देने की बात है कि इनके पिता दलपतराम ने भी अंत में 'हरिलीलामृत' लिखकर अपने दीर्घ साहित्यिक जीवन को समाप्त किया था।

कवि ने डोलन शैली में महाभारत की कथा अपने 'कुरुक्षेत्र' ग्रंथ में लिखी

है। कवि इसे महाकाव्य कहता है। यद्यपि कथानक में संतुलन नहीं है, किन्तु घटनाओं को भव्यता प्रदान करने में कवि को सफलता मिली है। इसमें कुछ बहुत उत्तम उर्मि गीत भी हैं।

प्राय: कवि प्राचीन ऋषियों की भाषा का प्रयोग करता है और एक सिद्ध की भाँति मंत्र-वाणी बोलता है। किन्तु इसमें स्पष्टतः वह कुछ सीमाओं में बद्ध है। प्रधान रूप से वह कवि है, एक प्रेम-काव्य का कवि, और बड़ी कुशलता से उसने ऊर्मि-तत्त्व का चित्रण किया है। यद्यपि उसकी भाषा में काव्य-कल्पना का समावेश है, किन्तु फिर भी जगद्गुरुओं की गहनता तथा उनके अनुभवों का अभाव है।

ऊर्मिकाव्य न्हानालाल की सर्वोत्तम रचनाएँ हैं। ये उनके नाटकों तथा अन्य ग्रंथों में बिखरी हुई हैं तथा "केटलांक काव्यो भाग १ से ३ में," 'नाना-नानारास' भाग १ से ३, 'गीतमंजरी', 'प्रेमभक्ति भजनावलि', 'दाम्पत्य स्तोत्र' 'महेरामणना मोती', 'पानेतर' तथा 'प्रज्ञाचक्षुना प्रज्ञाबिन्दु' में अलग से भी प्रकाशित हैं। जब नानालाल गेय पद लिखते हैं, तब उनकी श्रेष्ठता प्रकट होती है और इस रूप में इन्हें असाधारण सफलता मिली है। ऐसे गीतों की भाषा बड़ी मधुर और बोलचाल की है और शब्दों में भाव भरपूर रहता है। इन पदों में ध्वनि का बाहुल्य होता है, जो काव्य की आत्मा कही जाती है। इनकी कविताओं में रसतत्त्व बहुत रहता है। अपने 'प्रेमभक्ति' उपनाम को उन्होंने पूर्णरूप से सार्थक किया है, क्योंकि प्रेम और भक्ति उनके काव्य का मुख्य विषय है। इन्होंने राष्ट्रभक्ति, वीरभक्ति और प्रकृति प्रेम आदि विषयों पर भी रचनाएँ की हैं। गुजरात के विषय में उनकी प्रसिद्ध कविता 'धन्य हो धन्यज पुण्य प्रदेश' से उनकी गुजरात-भक्ति स्पष्ट है। इन्होंने सूक्ष्म रासों की भी रचना की है, जिनमें लय, माधुर्य, व्यंजना और अर्थगाम्भीर्य पूर्णरूप से है। गरबी और रास के क्षेत्र में इन्होंने दयाराम तक को पीछे छोड़ दिया है। इस रूप में न्हानालाल ने लोक-गीतों का अच्छा विकास किया है। इनके प्रसिद्ध रास ये हैं—'झीणा झरझर बरसे मेह, भींजे मारी चुँदडली'—'फूलडां कटोरी गूँथी लाव जगमालणी रेलोल, चन्द्रीए अमृत मोकल्यां रे लोल'—'हलके हाथे ते नाथ महिडां वलोवजो'—'गोपिका नी गोरसी भरेली'। उनके कुछ अन्य प्रसिद्ध गीत ये हैं—'एक

ज्वाला जले तुज नेनन मां रस ज्योत निहाली नमूँ हुं नमूँ'—'स्नेहीना सोणलां आवे साहेलडी उरना एकान्त म्हारा भडके बले'—'रूपला रातल डीमां उघड़े उरनां बारणां हो ब्हेन झूले रस पारणां हो ब्हेन'—'सूनां मन्दिर सूनां मालियां ने म्हारा सूना हैयाना महेलरे स्नेहधाम सूनां सूनां'—

'विराटनो हिंडोलो झाकमझोल ।
के आमने मोभे बांध्या एना दोर ॥ विराटनो० ॥
पुण्य पाप दोर ने त्रिलोकनो हिंडोलो,
फरती फूमतडानी फोर;
फूमतडे फूमतडे विधिना निर्माण मन्त्र,
ठमके तारलियाना मोर ॥ विराटनो० ॥'
'नीलो कमल रंग वींझणो हो नन्दलाल,
रढियालो रत्नजडाव मोरा नंदलाल ॥'—
'निरखो आ रास लोकलोकना, रमे सृष्टि ना सृजनार,
अंगुलिमां अंगुलि परोविने, खेले तेजने अन्धार,
रसनां उछले रंगहेलियाँ ॥'—
'त्हारे नेणले ठमके मोर, त्हारी कीकी मां चमके चकोर ॥'—
'म्हारा नयणांनी आलस रे न नीरख्या हरि ने जरी ॥'

श्रीरमणभाई ने कहा है कि काव्य अन्तः क्षोभ से प्रकट होता है। इस कथन का सुधार न्हानालाल ने इस प्रकार किया कि काव्य का अमृत चित्तक्षोभ से नहीं, वरन् आत्मा की प्रसन्नता से उत्पन्न होता है। प्रासादिक कविता का मूल चित्त-क्षोभ में नहीं, किन्तु चित्त की प्रसन्नता में है।

न्हानालाल ने कुछ गद्य-ग्रंथ भी लिखे हैं—'साहित्यमंथन', 'उद्‌बोधन', 'अर्धशताब्दीना अनुभव बोल', 'आपणां साक्षर रत्नो', 'जगत्कादंबरी मां सरस्वती चन्द्र नु स्थान' आदि। 'उषा' में कवि ने अत्यंत आलंकारिक शैली में एक प्रेम-कथा कही है। 'सारथि' में कवि देश की कुछ राजनीतिक समस्याओं पर विचार करता है। 'पांखड़ियों' में कवि की छोटी कहांनियाँ संगृहीत हैं। कविने अपने पिता दलपतराम की जीवनी ३ भागों में लिखी है। उसमें दलपतराम से संबंधित कई आन्तरिक बातें कवि ने बतायी हैं और तत्कालीन वातावरण की अच्छी

झाँकी दी है। अपनी साहित्यिक आलोचनाओं में कवि निस्सन्देह बहुत विस्तार में चला गया है, किन्तु उत्तमोत्तम विशेषणों द्वारा वस्तु की प्रशंसा करने की ओर कवि की रुचि अधिक है। कभी-कभी तो प्रशंसा करने में कवि काफी बहक गया है।

निस्सन्देह न्हानालाल आधुनिक गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इन्होंने एक ऐसी भाषा को विकसित किया है, जो नवीन, कोमल और मधुर शब्दों से पूर्ण है तथा जिसमें व्यंजना और लालित्य है। इन्होंने अपद्यागद्य अथवा डोलन नामक एक विशिष्ट शैली का प्रारंभ किया है, जिसमें अपने ढंग की एक विचित्र वाक्छटा है। ऐसी शैली के लिए आवश्यक भावना एवं प्रतिभा की गहराई के अभाव के कारण न तो उनके समकालीन कवि और न परवर्ती कवि उस शैली का सफलतापूर्वक अनुकरण कर सके। नीति और पुण्य पर इन्होंने बहुत जोर दिया है और उच्च भावों को अधिक चित्रित किया है; विशेषकर दाम्पत्य प्रेम और उसकी पवित्रता को। गुजराती साहित्य में सर्वोच्च स्थान दिलानेवाली कवि की कुछ विशेषताएँ ये हैं—इनकी काव्य-कल्पना, उच्च आदर्शवाद, नवीन तथा मधुर छन्दोबद्ध रचनाएँ, इनके अननुकरणीय रासों में सूक्ष्म नारी-भावनाओं का चित्रण, प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा इसके आर्ष-दर्शन के प्रति कवि की गौरवयुक्त भावना और कुछ मुगल सम्राटों की महत्ता का प्रशंसक होना।

अध्याय १८

बलवन्तराय तथा अन्य

श्री बलवन्तराय कल्याणराय ठाकोर का जन्म २३ अक्टूबर, सन् १८६९ में हुआ था। ये जाति के ब्रह्म-क्षत्रिय थे और भड़ोंच के रहनेवाले थे। इनका कुलनाम सेहेनी था और कुछ समय तक ये इसी उपनाम से लिखते रहे। रमणभाई, मणिशंकर, सर मनुभाई मेहता, कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी, मानशंकर पीताम्बरदास और बलवन्तराय एक ही कालेज में पढ़ते थे। कराची, अजमेर और डेकन कालेज पूना में ये इतिहास और अर्थशास्त्र के प्राध्यापक के रूप में काम करते रहे फिर वड़ौदा कालेज में कुछ दिनों तक अंग्रेजी और तर्कशास्त्र के प्राध्यापक रहे। सौराष्ट्र के शिक्षा-अधिकारी के पद पर भी इन्होंने काम किया। सन् १९२४ में इन्होंने अवकाश ग्रहण किया और तब 'इंडिया एजुकेशन सर्विस' (I. E. S.) के समकक्ष इनका पद हो गया।

इनके प्रिय विषय थे इतिहास और साहित्यिक कार्य। ये 'हिस्टारिकल रेकर्ड्स कमीशन' के सदस्य तब से थे, जब से उसका जन्म हुआ था। उसमें रहकर आपने बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सन् १९०९ में गुजराती साहित्य परिषद का जो तीसरा अधिवेशन राजकोट में हुआ था, उसकी सफलता का सारा श्रेय आपको ही था। वही आपने परिषद् के लिए बहुत धन एकत्र किया और १९२६ तक परिषद के मंत्री रहकर आपने उसका सुचारु रूप से प्रबंध किया। गुजरात के कई स्थानों पर आपने 'परिषद व्याख्यानमाला' के अंतर्गत अनेक भाषण दिये। सन् १९२० में आप साहित्य परिषद् की इतिहास शाखा के अध्यक्ष चुने गये।

उनके काव्य-ग्रन्थ हैं—'भणकार', 'मारा सोनेटो', और 'गोपीहृदय'। उनकी साहित्यिक आलोचनाएँ हैं—'लिरिक', 'नवीन कविता विषे व्याखानो', 'कविता शिक्षण', 'विविध व्याखानो, 'परिषद् प्रवृत्ति' तथा '१९३५ के ठाकोर

व्याखानो' (बंबई विश्वविद्यालय)। इन्होंने गुजराती में कई ग्रंथों का अनुवाद किया है, जैसे कालिदास की 'शकुन्तला' तथा 'मालविकाग्नि मित्र', 'सोविएट नवजवानी', 'रजनी' और 'प्लूटार्क नां जीवन चरित।' इनकी लघु कथाएं, 'दर्श नियुं' में संगृहीत हैं। 'आपणी कविता समृद्धि' शीर्षक ग्रंथ में इन्होंने कुछ चुनी हुई गुजराती कविताओं का संपादन किया है, साथ ही टिप्पणी और परिचयात्मक प्रस्तावना भी दी है। इन्होंने 'कान्तमाला' का भी सम्पादन किया है। इन्होंने अम्बालाल भाई पर एक पुस्तक लिखी है और इतिहास पर 'इतिहास दर्शन' लिखा है।

काव्य में रमणभाई ने ऊर्मितत्त्व को और न्हानालाल ने भावना तत्त्व को, किन्तु बलवन्तराय ने विचारतत्त्व को प्रमुख माना है। ठाकोर का कहना है कि केवल विचार प्रधान कविता ही सर्वोच्च कोटि की कविता है, जिसे वे द्विजोत्तम जाति की कविता कहते थे। काव्य में आँसुओं तथा कोमल भावों को वे निर्बल पोचटता कहकर उनकी कड़ी आलोचना करते थे और कहते थे काव्य में ऐसे भावों को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। उनके मत से कविता के मुख्य गुण थे अर्थघनता और वस्तु परामर्श। वे यह भी कहते वे कि वस्तुतः कविता के लिए चार बातें आवश्यक हैं---ऊर्मि, कल्पना, बुद्धि और प्रतिमा। वे मानते थे कि काव्य में विषय-महत्ता की अपेक्षा दृष्टिकोण की महत्ता अधिक महत्त्वपूर्ण है।

बलवन्तराय ने नवीन छन्दों पर भी प्रयोग किया है। इन्होंने यह स्थापित किया है कि अच्छी कविता के लिए गेयता का गुण अनिवार्य नहीं है। कोई कविता गायी जाने योग्य न होकर पढ़ी जाने योग्य होते हुए भी अच्छी हो सकती है। पृथ्वी छन्द में इन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक रचना की है और काव्यक्षेत्र में 'सानेट' (चतुर्दशपदी) को प्रसिद्ध किया। इन्होंने कहा है कि किसी भी वृत्त में यह आवश्यक नहीं है कि एक ही चरण में वाक्य पूरा हो जाय; वह दूसरे चरण तक बढ़ाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि वे प्रवाही छन्द के पक्ष में थे। उनके मत से कवियों को यह स्वतंत्रता भी होनी चाहिए कि किसी वृत्त में जहाँ एक गुरुमात्रा वाले अक्षर का विधान है, वहाँ वे दो लघुमात्रा वाले अक्षरों का उपयोग कर सकें। कविता में इन्होंने कई चरणों में पूरे होनेवाले लंबे वाक्यों का तथा उपवाक्यों का भी प्रवेश कराया। इनकी कविता द्राक्षपाक नहीं,

वरन् नारिकेल पाक के रूप में मानी गयी है। निर्बल और कोमल काव्यों की आलोचना करने के कारण ये काव्य में ओजस्विता के महाभट माने जाते हैं। इनका अध्ययन बड़ा गहन और विश्लेषणात्मक था और जिस विषय पर भी लिखा, अपनी विद्वत्ता का प्रमाण दे दिया। ये पंडितयुग के एक असाधारण विद्वान् थे। इन्होंने अनेक नवीन कवियों को प्रोत्साहित किया और उन्हें मार्ग दिखाया तथा अनेक उदीयमान कवियों के काव्य-संग्रहों में विद्वत्तापूर्ण लंबी प्रस्तावनाएँ लिखीं। अधिकांश वर्तमान कवियों पर बलवन्त राय ठाकोर का बहुत गहरा प्रभाव है और ये उन्हें अपना कुलगुरु मानते हैं।

'भणकार' में बलवन्तराय ने जानबूझकर छन्द और यति सम्बन्धी स्वतंत्रता का उपयोग किया है, क्योंकि इनकी दृष्टि में सच्चे काव्य में स्वयम्भू प्रवाह के लिए छन्द-लय-यति का बन्धन एक प्रकार का अन्तराय (बाधा) है। उनका विश्वास था कि विचारघन काव्य के लिए प्रवाही और अगेय पृथ्वीछन्द––जिसमें यति का कोई बंधन नहीं है––उत्तम है। ठाकोर के पश्चात् इनके प्रसिद्ध किये हुए सानेट छन्द में बहुत-से कवियों ने रचना की। ठाकोर ने विषय सम्बन्धी क्रान्ति भी उत्पन्न की। इनका कहना था कि विषय का उदात्त होना बहुत आवश्यक नहीं है, वरन् दृष्टिकोण और चित्रण आवश्यक है, क्योंकि इन्हीं के कारण कोई रचना कविता कही जा सकती है। इनके मत का प्रतिपादन इनके बाद के कवियों ने बहुत अधिक किया। बहुत ही साधारण विषयों पर भी कविताएँ लिखी गयीं। किन्तु ठाकोर की बतायी विचारघनता से पूर्ण कविता का आनंद केवल कुछ चुने हुए लोग ही ले पाते थे, जिससे काव्य जन-साधारण से दूर हटता गया। ठाकोर ने इस बात पर भी जोर दिया कि शब्दों का वर्ण-विन्यास (हिज्जे) उनके उच्चारण के अनुसार ही होना चाहिए। स्पष्टता के पक्षपाती तथा अपने मन के दृढ़ होने के कारण कुछ शब्दों का प्रयोग ऐसी विचित्रता से इन्होंने किया है कि इनकी भाषा रूक्ष, कठोर और दुरूह हो गयी है, जिसे अधिक प्रयत्न करने पर ही समझा जा सकता है। हाँ, यह बात अवश्य है कि इनकी भाषा में अभिव्यक्ति का बल है, जिसे उन्होंने बलकट कहा है।

ठाकोर बहुमुखी प्रतिभा के विद्वान् थे। एक आलोचक के रूप में वे स्वतंत्र और गंभीर थे तथा बड़ी निर्भीकता एवं कठोरता से अपने विचार व्यक्त करते

थे। गीत के विषय पर इनका विवाद नरसिंहराव से हो गया। दोनों वड़े विद्वान् और सूक्ष्म तर्क के प्रकांड पंडित थे, अतः बहुत लंबे समय तक दोनों का विवाद चला। ठाकोर के तत्सम्बन्धी विचार उनकी पुस्तक 'लिरिक' में प्रकाशित हैं और नरसिंहराव ने अपने विचार एक छोटी पुस्तिका में प्रकट किये हैं। ठाकोर लिरिक को ऊर्मिगीत और नरसिंहराव संगीत काव्य कहते थे। ठाकोर ने 'सरस्वतीचन्द्र' की वहुत विद्वत्तापूर्ण आलोचना की है। कुछ चुनी हुई कविताओं का संपादन ठाकोर ने 'आपणी कविता समृद्धि' शीर्षक से किया है और कविताओं के गुण-दोष पर प्रकाश डाला है।

'आरोहण' इनका एक चिन्तनात्मक खंडकाव्य है। ठाकोर द्वारा प्रतिपादित विचारघन कविता लिखने के लिए यह ग्रंथ परवर्ती कवियों के समक्ष एक आदर्श के रूप में है। भणकार, वधामणी, जूनुँ पियरघर आदि ठाकोर की सर्वोत्तम कविताएँ हैं, जिनकी भाषा गौरवपूर्ण है, जिनमें गहन विचार हैं और जिनमें आत्मसंयम की भावना से युक्त उत्तम भावनाएँ हैं। इनकी 'प्रेम नो दिवस' और 'विरह' कविताओं में कुछ अपूर्व सानेट हैं। इनकी रचनाएँ सोद्देश्य होती थीं। इन्होंने कुछ कविताएँ अपने मित्रों तथा विद्यार्थियों पर लिखी हैं।

पद्य की भाँति इनका गद्य भी ऐसा है, जो असंतुलित और क्लिष्ट है तथा जो प्रयत्न करने पर ही समझा जा सकता है। किन्तु एक वार इनकी विशेषताएँ समझ लेने पर पाठक इनके लेख का आनन्द भी ले सकता है। जानबूझकर ये बोलचाल के कड़े शब्दों का प्रयोग करते थे और कोमल तथा निर्बल शब्दावली को पास नहीं फटकने देते थे। ये तर्क प्रधान थे और सीधे आक्रमण करते थे।

गुजराती कविता को इन्होंने एक नयी दिशा दिखायी, नयी पीढ़ी के कवियों को प्रोत्साहित किया; विचार तत्त्व, मौलिकता, दृष्टिकोण के स्वातंत्र्य और सबल शैली पर जोर दिया तथा छन्द, भाषा, विषय, रचना, शैली आदि में अनेक नये प्रयोग किये।

खबरदार

कवि आरदेशर फरामजी पारसी थे, जिनका जन्म ६ नवंबर, १८८१ को दमन (डामन) में हुआ था, जो पुर्तगाली उपनिवेश का एक भाग था।

वहरामजी मलबारी के बाद ये दूसरे पारसी कवि थे, जो सुव्यवस्थित गुजराती में कविता लिखने के कारण प्रसिद्ध हुए। बचपन से ही कविता करने की ओर इनका झुकाव था। इनका प्रथम काव्य-संग्रह 'काव्य रसिका' था, जो १९०१ में प्रकाशित हुआ था। पहले इन्होंने दलपतराम की शैली पर रचना आरंभ की थी, किन्तु कालान्तर में इन्होंने नरसिंहराव, 'कान्त', 'कलापी' तथा दूसरों का अनुकरण किया। अंग्रेजी काव्य से कुछ अच्छी बातें इन्होंने लीं और बिनोद प्रधान प्रति काव्य (पैरोडी) को विकसित किया। खबरदार सदा समय के साथ चले और हर नयी प्रवृत्ति को स्वीकार करके उसके अनुसार रचना करते रहे। इनकी भाषा सादी, किन्तु संस्कृतमय और आडम्बरहीन है। छन्दों पर इनका विशेष अधिकार था। इन्होंने नये छन्दों का भी प्रयोग किया, जिन्हें वे 'मुक्तधारा अमीरी महाछन्द' कहते थे। अंग्रेजी के ब्लैंकवर्स (मुक्त काव्य) का गुजराती में अनुकरण करने की दृष्टि से उन्होंने इन छन्दों को आरंभ किया था। इन्हें एक महाकाव्य के लिए उचित माध्यम भी वे समझते थे। न्हानालाल की अपद्यागद्य शैली की इन्होंने आलोचना की और महात्मा गांधी की प्रशंसा में न्हानालाल ने 'गुजरात नो तपस्वी' की जो रचना की थी, उसका प्रतिकाव्य खबरदार ने लिखा 'प्रभातनो तपस्वी' (मुर्गा)। इस प्रतिकाव्य की भी वही अपद्यागद्य शैली थी और यह एक अत्यंत सफल तथा मनोरंजक प्रतिकाव्य है। नरसिंहराव ने इनके काव्य-संग्रह 'विलासिका' की बड़ी अच्छी समालोचना की। बाद में कवि की रचनाओं के अन्य संग्रह प्रकाशिका, भारत नो टंकार, संदेशिका, कलिका, भजनिका, रासचन्द्रिका भाग १; २, कल्पाणिका, कीर्ततिका, गांधी युग नो पवाड़ो, प्रभातगमन, राष्ट्रिका, केटलांक प्रतिकाव्यो, लखे गीतो, गांधी बापु, श्री जी ईरानशाह नो पवाड़ो, नंदनिका, श्री अशो जर थुस्त्रनी गाथा, दर्शनिका, युगराज महाकाव्य, प्रभात नो तपस्वी, कुक्कुट दीक्षा प्रकाशित हुए। इन्होंने 'मनु-राज' और 'अमरदेवी' नाम के दो नाटक भी लिखे हैं। इनके गद्य-ग्रंथ हैं— 'गुजराती कविता अने अपद्यागद्य', 'गुजराती कवितानी रचनाकला' और गद्य संग्रह'। इन्होंने दो अंग्रेजी कविताएँ भी लिखी हैं जिन्हें 'सिल्केन टैसल लीफ ऐंड फ्लावर' तथा 'रेस्ट हाउस आफ़ स्पिरिट' के नाम से प्रकाशित कराया।

सन् १९०८ से खबरदार व्यापार के सिलसिले में मद्रास जाकर बस गये।

अपने अन्तिम दिनों में इनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। किन्तु साहित्यिक कार्यों में भाग लेना एवं पद्य रचना बराबर जारी रहा। 'काव्य रसिका' में इन्होंने दलपतराम की शैली पर कविताएँ लिखीं; 'विलासिका' में नरसिंहराव जैसे ऊर्मिगीत लिखे; 'प्रकाशिका' में वीर रस की कविताएँ तथा खंडकाव्य हैं; 'भारत नो टंकार' और 'संदेशिका' देशभक्ति की कविताएँ हैं; 'रासचन्द्रिका' में विभिन्न प्रकार के रास हैं; 'दर्शनिका' में विचार प्रधान तथा दार्शनिक ढंग के ८ पंक्ति वाले मुक्तक हैं जो झूलणाछन्द में हैं; 'कलिका' में दूसरे मुक्तक, 'नन्दनिका' में सानेट और अनेक प्रतिकाव्य लिखे हैं। बंबई विश्वविद्यालय में आपने 'गुजराती कवितानी रचनाकला' नाम से ठक्करवसनजी भाषण दिये।

इनकी भाषा सादी, स्पष्ट और वर्ण माधुर्य से पूर्ण है। भाषा पर इनका पूरा अधिकार था। 'दर्शनिका' में इन्होंने तत्त्वज्ञान, नीति, धर्म और विज्ञान संबंधी अपना जीवन-दर्शन देने की चेष्टा की है तथा प्रवाही, रोचक एवं गौरव-युक्तशैली में अनेक गंभीर विषयों पर विचार प्रस्तुत किये हैं। १९४१ में बंबई के उपनगर अँधेरी में होने वाले गुजराती साहित्य परिषद् के १४ वें अधिवेशन के आप अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। यद्यपि ये जन्म के पारसी थे, किन्तु इनकी गुजराती में पारसी पुट लेशमात्र भी नहीं था और शुद्ध एवं व्यवस्थित गुजराती भाषा का ज्ञान इन्होंने अर्जित किया। काव्य में ये गेयता की प्रधानता मानते थे और वह गुण इनकी कविता में है। ये गुजराती तथा अंग्रेजी के कुछ श्रेष्ठ कवियों से बहुत प्रभावित थे और गुजराती साहित्य में इनके योगदान की मात्रा प्रचुर तथा कोटि में विविधता है। यद्यपि प्रतिभा की दृष्टि से इनकी गणना प्रथम कोटि के कवियों में नहीं होती, किन्तु इन्होंने काव्य के १४ संग्रह दिये हैं तथा 'दर्शनिका' में कुछ बहुत श्रेष्ठ राष्ट्रगीत, भजन, रास और दार्शनिक मुक्तक हैं।

बोटादकर

दामोदर खुशालदास बोटादकर २७ नवंबर, १८७० को सौराष्ट्र के बोटाद ग्राम में उत्पन्न हुए थे। ये जाति के मोढवणिक थे। जब ये छोटे थे तभी इनके पिता का देहान्त हो गया था। इसीलिए ये आगे नहीं पढ़ सके। ये बंबई आये

और पुष्टि संप्रदाय की एक पत्रिका का संपादन करने लगे। इससे इन्हें संस्कृत और गुजराती के अध्ययन का अच्छा अवसर मिला। इस अध्ययन को इन्होंने बराबर जारी रखा। विकट परिस्थितियों से विवश होकर इन्होंने भावनगर राज्य के शिक्षा-विभाग में एक नौकरी कर ली।

इनके अनेक काव्य-संग्रह हैं, यथा—'कल्लोलिनी', 'स्रोतस्विनी', 'निर्झरिणी', 'रास तरंगिणी' और 'शैवलिनी'। इनका 'रासतरंगिणी' संग्रह बहुत प्रसिद्ध हुआ। नरसिंहराव ने इनके 'शैवलिनी' संग्रह में बड़ी विद्वत्तापूर्ण एवं प्रशंसात्मक भूमिका लिखी थी। 'लालसिंह सावित्री' नाम का एक नाटक भी बोटादकर ने लिखा है।

इन्होंने संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था और 'सुभाषित रत्न-भाण्डार' से बहुत-से अच्छे श्लोक कंठस्थ कर लिये थे। आधुनिक शिक्षा उन्हें अधिक प्राप्त नहीं हो सकी थी। यद्यपि उनकी भाषा में संस्कृत के शब्दों की अधिकता है, फिर भी वह सरलता से समझ में आ जाती है। यह ठीक है कि इनकी गणना प्रथम कोटि के प्रतिभासम्पन्न कवियों में नहीं है, किन्तु इनकी महत्ता इस बात में है कि निर्धनता, शिक्षा का अभाव तथा इसी प्रकार की अन्य कमजोरियों के होते हुए भी इन्होंने कविताओं के कई संग्रह दिये और कुटुम्ब जीवन के कुछ चित्र बड़ी ही कुशलता के साथ चित्रित किये हैं।

अपनी आरंभिक रचनाओं म बोटादकर ने दलपतराम की शैली का अनुकरण किया, किन्तु बाद के संग्रहों में उन्होंने नवीन धारा और प्रवृत्ति को ग्रहण किया। गृहजीवन और ग्रामजीवन के विविध रूपों में उनके चित्रणों से गुजरात के लोग उनकी ओर आर्कषित हुए। यद्यपि अंग्रेजी कविता से उनका सीधा सम्पर्क नहीं था, किन्तु तत्कालीन गुजराती कवियों की रचनाओं का ये विधिवत् अध्ययन करते थे तथा विषय, छन्द, शैली और रूप के मामले में उनका अनुसरण करते थे। मूलरूप से वर्ड्सवर्थ की रचनाओं को पढ़े बिना एक प्रकार से वे वर्ड्सवर्थ का अनुकरण कर सकते थे। सीधा सम्पर्क न होने से उन्हें अंग्रेजी की सर्वोत्तम रचनाओं का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सका, साथ ही उनकी प्रतिभा भी सीमित थी।

यद्यपि उनकी भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से भरी हुई है, किन्तु कर्णकटु

नहीं है और समझने में कठिन भी नहीं है। इनकी भाषा में पदलालित्य और माधुर्य है। ये रोचक अनुप्रासों को बड़ी कुशलता से प्रस्तुत कर सकते थे। अर्थ की दृष्टि से इनकी रचनाएँ स्पष्ट हैं।

'रासतरंगिणी' में कवि ने लोकगीतों की सरल शैली का अनुसरण किया है। ये रास बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। कवि ने गुजराती नारी के हृदय को खूब अच्छी तरह समझा है और उसके सभी सूक्ष्म भावों को, विशेषकर गृहजीवन संबंधी, सुन्दरता से चित्रित किया है। इनमें से कुछ तो अत्यन्त श्रेष्ठ गीत हैं। इनकी कविताओं की पृष्ठभूमि में हमें करुणा के दर्शन होते हैं और यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कवि को अपने जीवन में कठिन परिस्थितियों का सामना करने के लिए कठिन संघर्ष करना पड़ा था। इनकी कुछ उत्तम कविताएँ हैं—मातृगुंजन, भाईबीज, जननी, उर्मिला, रामलवालो, बुद्ध नुंगृहगमन आदि।

ललित

जन्मशंकर महाशंकर बुच का उपनाम ललित था। इनका जन्म जूनागढ़ में ३० जून, १८७७ को हुआ था। ये जाति के वडनगरा नागर थे। कुछ समय तक एक अंग्रेजी दैनिक पत्र 'काठियावाड़ टाइम्स' के ये सम्पादक थे, फिर कई वर्षों तक न्यायालय में अनुवादक का काम करते रहे। कुछ समय तक इन्होंने बड़ौदा के पुस्तकालय विभाग में काम किया और फिर राष्ट्रीय महाविद्यालय में गुजराती के प्रोफेसर हो गये।

प्रकृति से ये बड़े कोमल और प्रेमी थे और पारिवारिक जीवन के अनेक भावों का चित्रण बड़ी कोमलता, रोचकता और गेयता के साथ किया है। इनकी रचनाओं का विशाल संग्रह 'ललित नो ललकार' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इनकी कुछ कविताएँ लालित्य से पूर्ण हैं और उनकी धुन का चुनाव (काव्यनो उपाड) वस्तुतः बहुत ही सुन्दर है। इनका शब्दचयन बड़ा कोमल और सूक्ष्म है तथा गीत-लय को बनाये रखने और में ये बड़े सतर्क हैं। गृहजीवन को चित्रित करने में इन्होंने कुछ उदात्त भावों की अभिव्यक्ति की है, फिर भी इनकी प्रतिभा सीमित है। प्रथम कोटि की सुचारु रचनाएँ देने में इन्हें सफलता नहीं मिली। न्हानालाल ने ठीक ही कहा है कि ये ललित और सुन्दर तो हैं, पर 'लगीर' (लघु)

हैं। न्हानालाल का यह भी कहना है कि यद्यपि ललित ने ऊर्मितत्त्व को बड़ी सूक्ष्मता और संगीतात्मकता के साथ व्यक्त किया है, किन्तु इनमें विचार तत्त्व बहुत क्षीण है। ललित पर उनके मित्र न्हानालाल और कलापी का बहुत बड़ा प्रभाव था। इनके अन्य संग्रह हैं—'सीता वनवास', 'ललितना काव्यो', 'वडोदरा ने वडले' और 'ललितनां बीजां काव्यो'। ये अपनी कविताओं को मंजीरा के साथ गाया करते थे और असाधारण रूप से उपाड (आरंभ) के सुन्दर होने तथा अपने संगीत के कारण ललित और प्रसिद्ध हो गये। इन्होंने अनेक पत्र-पत्रिकाओं में भी कविताएँ लिखी हैं और ये अपनी रचनाएँ—विशेषकर भक्ति और गृहजीवन संबंधी—प्रशंसक श्रोताओं के समक्ष गाया करते थे। इनकी कुछ उत्तम कविताएँ ये हैं—मढूली, विजोगण, बांसलडी, एकलराम आदि। ये एक अच्छे उपकवि के रूप में माने जाते हैं।

अध्याय १९

गांधीजी एवं उनके सहयोगी

पश्चिम के सम्पर्क ने सुधारकों को जन्म दिया तो विश्वविद्यालय की शिक्षा ने 'पंडित युग' को। इस युग के जो अच्छे प्रतिनिधि थे, वे उच्चकोटि के विद्वान् थे और उनकी शैली संस्कृतमय थी। उनकी रुचि केवल महान् और गौरवपूर्ण विषयों की ओर ही झुकती थी, साथ ही उनकी लेखनी में एक संयम था। सन् १९१४ तक गुजराती साहित्य में दो नवीन सबल व्यक्तित्व उत्पन्न हो चुके थे—एक गांधीजी, दूसरे श्री क० मा० मुन्शी। दोनों ने गुजराती साहित्य में नवीन प्राणों का संचार करके उसे शक्ति और नयी दिशा दी। भाषा को सरलता प्रदान की गयी। जैसे ठाकर नवीन कवियों के गुरु थे, वैसे ही गांधीजी ने जीवन तथा जनता को एक भिन्न दृष्टि से देखना सिखाया।

गांधीजी का स्थायी प्रभाव न केवल गुजरात पर वरन् सारे भारत पर पड़ा और कुछ अंशों में समस्त जगत पर भी उनका प्रभाव पड़ा। वे एक महान् युग-पुरुष थे, उनमें संतों के सभी गुण थे, उनमें असाधारण नैतिक बल था, जनता को आंदोलित करने तथा साम्राज्यों को हिला देने की अद्‌भुत शक्ति उनमें थी। अफ्रीका से लौटने के बाद उन्होंने देश का नेतृत्व-भार सँभाला। उन्होंने सोयी जनता को जगाया। वे सीधी, सादी और स्पष्ट भाषा में बात करते थे, जो लोगों के हृदय को स्पर्श करती थी। इसी शैली में वे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य समस्याओं पर विचार-विमर्श करते थे। वे प्रत्येक दशा में सत्य का आधार लेते थे; और सत्य भी कैसा—कायिक, वाचिक और मानसिक। उन्होंने लोगों को सत्याग्रह—जिससे वे आत्म-बल कहते थे—करना सिखाया और कहा कि सत्याग्रही का सहायक मात्र ईश्वर होता है। असहयोग तो उसका एक अंग था और उसकी सीमाएँ थीं। एक सत्याग्रही अपनी आत्मा और परमात्मा की आज्ञा का पालन करता है। किन्तु किसी नागरिक

को यह अधिकार नहीं है कि वह कानून को अपने हाथ में ले। ऐसे कई अवसर आये, जब उन्हें अपनी आत्मा की ध्वनि सुनायी पड़ी। उन्होंने स्वयं कहा है—"जब कभी मुझे आत्मा की सम्मति की आवश्यकता प्रतीत हुई, तभी मेरी छठी ज्ञानेन्द्रिय जागृत हो जाती थी और काम हो जाने पर फिर विश्राम करने चली जाती थी।" उनका ईश्वर-विश्वास अपार था और वे सत्य को ईश्वर का रूप मानते थे, जो सत्-चित्-आनंद मय कहा जाता है। उन्होंने अपने जीवन का आधार गीता को बना लिया था, जिसको उन्होंने अनूदित किया और उसकी नवीन व्याख्या की। गीता को वे अनासक्तियोग मानते थे और कहते थे, कौरवों और पांडवों के युद्ध को अच्छाई-बुराई के युद्ध का रूपक मानना चाहिए। वे प्रार्थना और उपवास की शक्ति पर बहुत विश्वास रखते थे। सत्य के बाद अहिंसा, प्रेम, सहिष्णुता और नम्रता आदि गुणों का उनमें उदय हुआ। अहिंसा का अर्थ ही प्रेम है। उन्होंने निर्धनों, पीड़ितों, अछूतों और निर्बलों को उठाने का बीड़ा उठाया। विशेषता यह थी कि वे साधन में भी वही पवित्रता चाहते थे, जो उद्देश्य में हो। बस, यही गुण उन्हें मार्क्सवादियों में भिन्न कर देता था। वे इतिहास की आर्थिक व्याख्या पर विश्वास नहीं करते थे। उनका कहना था, "मैं इस पर विश्वास नहीं करता कि पुरुष की विचार-प्रक्रिया को प्रकृति प्रेरित और नियंत्रित करती है।" वे उच्च स्तरवाले जीवन का विरोध करके सादे जीवन को अच्छा समझते थे। वे कहते थे कि राजनीति को धर्म से पृथक् नहीं करना चाहिए। उनकी इच्छा थी कि राजनीति को दिव्यता प्रदान की जाय। उन्होंने सभी धर्मों को सहन करना तथा आदर देना सिखाया और हिंदुत्व की परिभाषा यह की कि जो सदैव सत्य की खोज में लगा रहे। वे सब धर्मों की मौलिक एकता पर विश्वास करते थे। उन्होंने नारियों की स्थिति सुधारी तथा घरेलू एवं सार्वजनिक जीवन में उन्हें उचित स्थान प्रदान किया। उन्होंने देश की अनेक कठिन समस्याओं को समझा तथा लोगों को सलाह दी कि उनका सामना सत्य एवं अहिंसा के द्वारा करो। विदेशी शासन, गरीबी, सामाजिक तथा आर्थिक विषमता एवं ऐसी ही दूसरी अनेक समस्याएँ थीं, जिनका सामना गांधीजी ने अपने ढंग से किया। भाषा, वस्त्र तथा धार्मिक विश्वासों के आधार पर किये जानेवाले अद्भुत व्यवहार—इन मामलों को भी उन्होंने सुलझाने

का प्रयत्न किया। उन्होंने बड़े पैमाने पर प्रयोग आरंभ किये और प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव की स्थापना केवल विचारों के द्वारा नहीं, वरन् उस प्रकार का जीवन अपनाकर की। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन महाव्रतों को उन्होंने आधार बनाया। जिन उच्च आदर्शों का उपदेश वे करते थे, उनको व्यवहार में लाते थे। उन्होंने भारतीय जनता की पूरी दृष्टि ही बदल दी। केवल सर्वसाधारण जनता को ही नहीं, वरन् श्रेष्ठ विद्वानों को भी उन्होंने प्रभावित और प्रेरित किया। कवि और लेखकों की दृष्टि निर्धनों तथा पीड़ितों पर गयी और तब स्वातंत्र्य एवं क्रान्ति के गीतों की रचना हुई। लोक-साहित्य का पठन आरंभ हुआ; काव्य के लिए विविध विषयों की उत्पत्ति हुई और वह केवल महान् विषयों तक ही सीमित न रहा। राजनीतिक आंदोलन से एक नवीन स्फूर्ति तथा साहस का उदय हुआ। इसके अतिरिक्त दो विश्व-युद्ध हो चुके थे, रूसी क्रान्ति हुई, और अन्य प्रान्तीय भाषाओं का गुजराती पर प्रभाव पड़ चुका था।

महात्मा गांधीजी, मोहनदास करमचंद गांधी, का जन्म सौराष्ट्र के अंतर्गत पोरबंदर में सन् १८६९ को प्राचीन विचारोंवाले वैष्णव वणिक-परिवार में हुआ था। बचपन से ही उन्हें सत्य से प्रेम था। बैरिस्टरी पास करने के लिए जब वे इंग्लैंड जा रहे थे, तब उनकी माता ने उनसे शपथ करायी थी कि वे मांस-मदिरा का सेवन तथा पर-स्त्री-गमन नहीं करेंगे। उन्होंने उस संकल्प का पालन दृढ़तापूर्वक किया और बड़ी सादगी से वहाँ रहे। इंग्लैंड से लौट कर वे राजकोट में वकालत करने लगे, पर शीघ्र ही दक्षिण अफ्रीका चले गये, जहां उन्होंने भारतीयों का संगठन किया। गोरों के अत्याचारों के विरुद्ध उन्होंने सत्याग्रह किया और सफलता प्राप्त की। सन् १९१४ में वे भारत आये और सन् १९२० में सत्याग्रह के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत किया। उन्होंने साबरमती आश्रम और बाद में सेवाग्राम आश्रम की स्थापना की। सन् १९२१ में बंदी कर लिये गये और सन् १९२३ में छोड़े गये। सन् १९२८ में उन्होंने बारडोली के किसानों का मामला हाथ में लिया और नमक-सत्याग्रह किया। सन् १९३० में डांडी-अभियान हुआ। गांधीजी पकड़ लिये गये। बाद में उन्हें 'गोलमेज परिषद' के लिए आमंत्रित किया गया, जो असफल रही और वे फिर बंदी बना लिये गये। सन्

१९३७ में कांग्रेस-मंत्री थे, पर शीघ्र ही उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। तब गांधीजी ने व्यक्तिगत आंदोलन आरंभ किया और सन् १९४२ में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास हुआ। सभी नेता पकड़ लिये गये और सन् १९४५ में छोड़े गये। देश का विभाजन हुआ, स्वराज्य मिला, बड़े पैमाने पर जातीय दंगे हुए तथा गांधीजी के उदार एवं सहिष्णु विचारों के कारण उनकी हत्या हुई। इस प्रकार सन् १९१४ से भारत का इतिहास इस राष्ट्रपिता के जीवन के साथ गुथा हुआ है।

गांधीजी ने कई पुस्तकें लिखी हैं—हिन्द स्वराज, सत्यना प्रयोगो, दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रह नो इतिहास, धर्मयुद्ध नुं रहस्य, धर्म मंथन, मंगल प्रभात, रचनात्मक कार्यक्रम , आरोग्य नी चावी, नवजीवन, हरिजन बन्धु (पत्र) आदि। इन ग्रंथों में इन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा नैतिक समस्याओं पर और सत्याग्रह, असहयोग, स्वतंत्रता एवं स्वदेशी आंदोलन आदि विषयों पर अपने विशिष्ट विचार व्यक्त किये हैं। इनका जीवन राजनीति से भरपूर था, अतः नाना विषयों पर ये अपने विचार पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकट करने लगे। गुजराती और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में वे लिखते थे। कुछ प्रमुख पत्र, जिनमें वे लिखते थे, ये हैं—इंडियन ओपीनिअन, नवजीवन, हरिजन, यंग इंडिया और हरिजन-बंधु।

उनका आत्मचरित 'सत्य ना प्रयोगों' संसार के सर्व श्रेष्ठ आत्म-चरितों में से है। इसके छोटे-छोटे वाक्य सीधे हृदय से निकले हुए उद्‌गार हैं। सत्यता, दिव्यता और नैतिकता के प्रति लेखक की अपार श्रद्धा होने के कारण पाठकों के ऊपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। लेखक की दूसरी विशेषता है निर्भीकता तथा नम्रता के साथ आत्म-विश्लेषण करना। यह आत्मचरित केवल साहित्य की एक कृति ही नहीं है, वरन् एक दृढ़ निश्चयी व्यक्ति का सत्य-प्राप्ति के लिए अनवरत प्रयास है और जीवन तथा उसकी विविध समस्यांओं को देखने की एक विशेष दृष्टि है।

उपर्युक्त पत्रों में नियमित रूप से सामग्री देने के लिए गांधीजी ने अनेक विषयों पर बहुत-से निबंध लिखे। सभी में उनकी अपनी शैली थी, सीधी-सादी और विषयानुकूल। विषय को प्रस्तुत करने का उनका अपना निराला ढंग था।

जिन विषयों में उन्होंने आवश्यकता समझी, उनको दैवी क्रोध से पूर्ण सशक्त भाषा में व्यक्त किया।

गांधीजी उन सबके बापू बन गये, जो उनके सम्पर्क में आये। वे गांधीजी का बहुत सम्मान करते थे और सभी मामलों में यहाँ तक कि बड़े से बड़े व्यक्तिगत मामलों में भी उनकी सलाह लिया करते थे। इस प्रकार गांधीजी की डाक बहुत भारी हो जाती थी। प्रतिदिन बहुत-से पत्र आते थे, जिनका उत्तर उन्हें देना पड़ता था। उत्तर देने में उनकी ममता प्रकट होती थी। ये पत्र ही उनके अपने साहित्य 'पत्र-साहित्य' का निर्माण करते हैं। जिन्हें भी सलाह की आवश्यकता थी, उन सब का मार्ग-दर्शन गांधीजी ने किया।

दैनिक प्रार्थना पर गांधीजी का बहुत बड़ा विश्वास था और नित्य करते थे। सामूहिक प्रार्थनाओं में छोटा-सा भाषण भी दिया करते थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद वे दिल्ली में प्रार्थना चलाया करते थे। डायरी के रूप में उनके दिये हुए ऐसे भाषण संगृहीत हैं। इन भाषणों से हमें ज्ञात होता है कि विषवत् साम्प्रदायिक घृणा को देखकर उन्हें कितनी पीड़ा होती थी। अपनी सबल लेखनी और सशक्त चरित्र के द्वारा इस घृणा और हिंसा को मिटाने का उन्होंने अनवरत प्रयत्न किया।

उनका 'अनासक्तियोग' गीता की एक व्याख्या है। गीता का जैसा अध्ययन उन्होंने किया था और जो कुछ समझा था, उसीको 'अनासक्तियोग' में प्रकट किया है। सभी मामलों के निश्चय करने में वे इसी महान् ग्रंथ का सहारा लेते थे और जब कभी कोई उलझन उपस्थित होती, तो एकांत में बैठकर, एकाग्रचित्त होकर इसी अमरवाणी से प्रकाश पाने की प्रतीक्षा करते थे।

अपने शक्तिशाली व्यक्तित्व, उच्च नैतिकता, दिव्यता, त्याग, सादगी और आत्मगौरव के कारण उनके साथ बहुत-से सच्चे तथा कुशल कार्यकर्ता हो गये थे। गांधीजी से प्रेरणा पाकर उन सबने भी एक सबल और प्रथम कोटि के साहित्य-सर्जन में योग दिया।

गांधीजी ने कुछ नये लेखकों को प्रोत्साहित किया, जो सादी, किन्तु प्रभावपूर्ण शैली पसंद और कोरे पांडित्य-प्रदर्शन को नापसंद करते थे। अधिक शब्दों में वर्णित आलंकारिक भाषा की अपेक्षा वे छोटे-छोटे और सादे वाक्यों में भाव

व्यक्त करते थे। इसीलिए उस समय के कई लेखकों में 'पंडित-युग' की गंभीर और विद्वत्तापूर्ण विशिष्ट दृष्टि का अभाव दीख पड़ता है। गांधी-विचार-धारा के कुछ श्रेष्ठ लेखकों ने राष्ट्रीयता, आत्मसम्मान, भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रति आदर, अध्यात्मवाद, रूढ़िवादिता, उच्चनैतिक सिद्धान्तों और संयम आदि पर बड़ा बल दिया है। दूसरी ओर श्री क० मा० मुन्शी ने भी लेखकों के एक वर्ग को प्रेरणा प्रदान की। ये भी सादी, सीधी और प्रभावपूर्ण शैली में लिखते थे, किन्तु उनके ढंग आधुनिक और उनकी दृष्टि विस्तृत थी। वे सौंदर्य, आकर्षण, प्रभाव और कुशल अभिव्यक्ति पर बल देते थे।

इस प्रकार पंडित-युग के बाद नवीन युग का आरंभ गांधीजी और मुन्शीजी से आरंभ होता है। यद्यपि गांधीजी अपने को साहित्यकार नहीं मानते थे, किन्तु इस महान् विश्ववन्द्य विभूति तथा युग पुरुष ने समूचे राष्ट्र में उच्च भावना और लहर भर दी और इस प्रकार अनक साहित्यकारों का प्रेरणा-स्रोत बन गया। उन्होंने गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की, जहाँ राष्ट्रीय शिक्षा दी जाती थी। यहाँ शिक्षकों और विद्यार्थियों का एक ऐसा दल तैयार हुआ, जिसने विविध प्रकार से गुजराती साहित्य की वृद्धि की। उन लेखकों में से कुछ के नाम ये हैं—कालेलकर, महादेवभाई, रामनारायण पाठक, अमृतलाल सेठ, नरहरि पारिख, किशोरलाल मशरूवाला, गीजूभाई बधेका, जुगतराम दवे, रसिकलाल पारिख, मुनि जिन विजयजी, पंडित सुखलालजी, सुन्दरम्, उमाशंकर जोशी, नागरदास पारिख, स्नेहरश्मि तथा अन्य। गांधीजी के जीवन ने गुजराती साहित्य की अभिवृद्धि की और केवल गुजरात के ही नहीं, वरन् विदेशी लेखकों को भी प्रेरणा और विचार दिये।

कालेलकर

काकासाहेब दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर गौड सारस्वत ब्राह्मण हैं और इनका जन्म सन् १८८६ में बेलगाम के समीप शहापुर में हुआ था। सन् १९१७ में इन्होंने महात्मा गांधी के सत्याग्रह आश्रम में प्रवेश किया था। यद्यपि इनकी मातृभाषा मराठी है, किन्तु ये गुजराती में पढ़ाते और लिखते थे। उपनिषद् और ज्योतिष का इनका अच्छा अध्ययन है। इन पर विवेकानंद, टैगोर, गांधीजी,

रानडे, अरविंद, कुमारस्वामी, सिस्टर निवेदिता तथा तिलक के लेखों का बहुत अधिक प्रभाव है। इन्होंने भ्रमण बहुत अधिक किया है, विशेषकर उत्तर भारत और हिमाचल प्रदेश में। पहले ये बड़ौदा के गंगनाथ विद्यालय में अध्यापक थे, किन्तु बाद में गुजरात विद्यापीठ में चले गये और वहाँ आचार्य हो गये। गांधीजी के शिष्य बनकर इन्होंने गांधीवादी दर्शन को अपना लिया। ये कई बार जेल भी गये। अब ये गांधी-स्मारक-निधि तथा राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति का काम सँभालते हैं। इन्होंने शिक्षा तथा सार्वजनिक कार्यों के लिए अपना जीवन समर्पित कर रखा है।

काका कालेलकर गुजराती के कुछ प्रमुख गद्य-लेखकों में से एक माने जाते हैं। अपनी पुस्तक 'स्मरण यात्रा' में जो आत्मचरित सरीखी है, इन्होंने अपने आरंभिक जीवन की घटनाएँ बड़े रोचक ढंग से लिखी हैं। प्रवास सम्बन्धी इन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं, जैसे हिमालय नो प्रवास, पूर्व आफ्रिका मां, ब्रह्मदेश नो प्रवास और लोकमाता आदि। कालेलकर ना लेखो, जीवन नो आनन्द, जीवन-भारती, जीवन संस्कृति, जीवनविकास, रखड़वानो आनन्द और जीवता तहेवारो पुस्तकों में इनके निबंध संगृहीत हैं। इन्होंने गीतासारे, गीताधर्म, ओतरानी दिवालो तथा मानवी खंडियेरो पुस्तकें भी लिखी हैं और इनके कुछ पत्र भी प्रकाशित हुए हैं।

मुख्यतः इन्होंने निबंध लिखे हैं, जो विचारप्रधान, रुचिकर और उपदेशात्मक होते थे। इनका गद्य तीक्ष्ण, गरिमायुक्त और कलात्मक होता था। संस्कृत साहित्य के विस्तृत अध्ययन, विशेषकर पौराणिक साहित्य के, कारण भारतीय संस्कृति के साथ इनकी पूर्ण सहानुभूति थी और उसके प्रसंगों की व्याख्या का इनका ढंग मौलिक एवं काव्यात्मक होता था। इन सब विशेषताओं के कारण पाठकों पर इनके गद्य का काफी प्रभाव पड़ता था। इन्होंने हिमालय प्रदेश की पैदल यात्रा का आनन्द लिया था और भारत की नदियों के दर्शन किये थे, जिन्हें ये लोकमाता कहते हैं। ये अपने को 'कुदरतघेला' (प्रकृति के पीछे पागल) कहते हैं। इन्होंने आकाश के तारों का सूक्ष्म अवलोकन किया है और आनन्द प्राप्त किया है। उसी आनन्द का वितरण पाठकों को अपने 'जीवननो आनन्द' में किया है। अपने चारो ओर फैली हुई वस्तुओं में

सौंदर्य देखने की शक्ति उनमें है, तभी उनका गद्य काव्यात्मक और रसपूर्ण हो जाता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति आदर की भावना एवं गांधीवादी जीवन के प्रति प्रेम के साथ-साथ उनमें एक कवि और कलाकार की दृष्टि का विकास हुआ है, जिससे वातावरण के सौंदर्य का अवलोकन कर वे कला और सौंदर्य का वर्णन मुहावरेदार गद्य में कर सके। लिखते समय संस्कृत साहित्य के उद्धरण उन्होंने प्रायः प्रस्तुत किये हैं। विषयानुकूल ये अपनी शैली में परिवर्तन कर देते हैं। 'स्मरणयात्रा', जिसमें इनका आरंभिक जीवन वर्णित है, में शैली कुछ सुगम और आनन्दप्रद है। 'कालेलकरना लेखो' में इनके गंभीर विचारात्मक निबंध हैं। इनके लेखों में कुछ नयी और मौलिक बात कही हुई होती है। जब ये साधारण ढंग से लिखते हैं, तब भी उसके पीछे कोई गंभीर विचार रहता है। इन्होंने अनेक नये शब्द बनाये हैं। इनका प्रकृति-निरीक्षण तथा यात्रा-वर्णन इनके साहित्य का सर्वोत्तम अंश माना जाता है। निबंध-लेखन में इनका स्थान गुजराती साहित्य के श्रेष्ठ निबंधकार नर्मदाशंकर, मणिलाल, आनन्दशंकर और गांधीजी के समकक्ष बड़ी सरलता से रखा जा सकता है। भारत की नदियों का इनका वर्णन बड़ा काव्यात्मक और रंगीन ह। 'ओतरानी दिवालो' में इन्होंने जेल के जीवन का वर्णन किया है। 'जीवन-भारती' में इनके कुछ विवेचन हैं। इन्होंने धार्मिक विषयों, त्यौहारों, आचारों, सामाजिक रीतियों, समाज, कला, ग्राम-जीवन तथा दूसरे अनेक विषयों पर लिखा है। यद्यपि इनकी अपनी मौलिक दृष्टि होती थी, फिर भी गांधीवादी दृष्टिकोण को इन्होंने कभी नहीं छोड़ा। इन्होंने कला और नैतिकता के समन्वय का समर्थन किया है। अपने गद्य में इन्होंने संस्कृत शब्दों का उपयोग स्वतंत्रतापूर्वक किया है और साहित्यिक विषयों पर विचार करते समय तो संस्कृतगर्भित आलंकारिक शैली को ग्रहण किया है। इन्होंने लगभग ४००० पृष्ठ गुजराती गद्य के लिखे हैं, जिससे निबंध, यात्रा और आतमचरित विधाओं की अभिवृद्धि हुई है।

मशरूवाला

किशोरलाल मशरूवाला सूरत के एक वैश्य थे। इनका जन्म सन् १८९० में हुआ था। १९१३ में इन्होंने वकालत शुरू की, किन्तु १९१७ में छोड़ दिया

और गांधीजी के आश्रम में प्रविष्ट हो गये। गुजरात विद्यापीठ के ये प्रथम रजिस्ट्रार थे। स्वामी नारायणसाहित्य, उस सम्प्रदाय के साधुओं तथा गांधीजी के विचारों का आप पर बहुत बड़ा प्रभाव था। यद्यपि सभी मामलों में वे गांधीजी के पास दौड़े नहीं जाते थे, किन्तु उनकी सच्चाई और सत्य की परम पिपासा के कारण उन्हें गांधीजी का प्रेम और ममत्व प्राप्त था। अपनी आध्यात्मिक साधना के लिए उन्होंने केदारनाथजी का मार्ग-निर्देशन प्राप्त किया था। १९४२ के आंदोलन के समय तथा महात्माजी की मृत्यु के बाद कई वर्षों तक उन्होंने गांधीजी के पत्र 'हरिजन' का सम्पादन किया था। जीवन पर्यन्त वे दर्शन-शास्त्रों का अध्ययन करते रहे और एक साधु की भाँति कठोर जीवन बिताते हुए साधना में रत रहे।

उनका सर्व श्रेष्ठ ग्रंथ 'जीवन शोधन' है, जिसमें उन्होंने दार्शनिक समस्याओं पर स्वतंत्र ढंग से विचार किया है। वे सावधानचित्त से तार्किक विश्लेषण करते हुए विषय पर विचार करते थे। उनके धार्मिक और दार्शनिक निबंध उनके दूसरे ग्रंथों में संगृहीत हैं, जैसे 'गीता-मन्थन', 'अहिंसा-विवेचन', 'सत्यमय-जीवन', 'समूली क्रान्ति' तथा 'संसार अने धर्म'। इन सभी पुस्तकों में इन्होंने जीवन के आधारभूत मूल्यों पर अपने मौलिक विचार निर्भीकता के साथ व्यक्त किये हैं। इनके क्रान्तिकारी विचारों ने लोगों को गंभीर चिंतन के लिए विवश कर दिया। इन्होंने कुछ जीवन-चरित भी लिखे हैं, जैसे 'राम अने कृष्ण', 'बुद्ध अने महाबीर', 'सहजानंद स्वामी' और 'ईशुख्रिस्त'। इन चरितों में उन्होंने उनके जीवन का विश्लेषण बड़ी सूक्ष्मता से किया है, जिससे उन महापुरुषों के पवित्र जीवन का उत्तम अंश सामने प्रत्यक्ष हो जाता है। इनकी कुछ शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकें भी हैं, जैसे 'केलवणीविवेक', 'केलवणीना पाया' आदि, जिनमें उन्होंने बताया है, कि हमारी शिक्षा-पद्धति में क्या-क्या मौलिक परिवर्तन होने चाहिए। इनकी पुस्तक 'समूली क्रान्ति' में कुछ धार्मिक और सामाजिक समस्याओं की बड़ी तीव्र आलोचना है। खलील जिब्रान के ग्रंथ का गुजराती अनुवाद 'विदाय वेलाए' नाम से इन्होंने किया है और हेलन केलर के ग्रंथ का अनुवाद 'तिमिरप्रभा' नाम से। इनका 'उधाईनु जीवन' भी एक अनुवाद ही है, जिसमें इन्होंने उधाई—एक कीड़ा—का सूक्ष्म वर्णन किया है। अपनी 'स्त्री-पुरुष-

मर्यादा' पुस्तक में उन्होंने स्त्री-पुरुष के काम-सम्बन्ध को अत्यन्त संयमित रखने पर बल दिया है। 'गांधी-विचार-दोहन' में उन्होंने गांधीजी के विचारों का संग्रह किया है। वे गांधीमत के एक आदर्श व्यक्ति थे और बड़ी निर्भीकता के साथ देश के बड़े से बड़े व्यक्ति की आलोचना कर देते थे। उनका जीवन अत्यन्त पवित्र और साधु-सम था। दर्शन, धर्म और शिक्षा के विषयों में गुजराती साहित्य की आपने अमूल्य सेवा की।

महादेवभाई देसाई

महादेव देसाई अनाविल ब्राह्मण थे। इनका जन्म बलसार तालुका के अन्तर्गत दिहण में सन् १८९२ में हुआ था। इनमें साहित्यिक क्षमता अधिक थी। नरहरि पारिख के साथ मिलकर इन्होंने टैगोर की 'चित्रांगदा' का अनुवाद किया था। अंग्रेजी तथा भारत की प्रान्तीय भाषाएँ मराठी, बंगाली और हिन्दी से गुजराती अनुवाद करने में आपने बड़ी पटुता प्राप्त कर ली थी, किन्तु अपना सारा जीवन आपने महात्मा गांधी के चिर-संग और उनके मंत्री बने रहने में बिता दिया। महात्मा गांधी के आत्मचरित्र का अनुवाद आपने अंग्रेजी में किया और उनके कुछ लेखों का अनुवाद अंग्रेजी से गुजराती में और गुजराती से अंग्रेजी में किया। नरहरि पारिख के सहयोग में इन्होंने टैगोर के प्राचीन साहित्य और विदाय अने अभिशाप बंगाली से अनूदित किया। शरदबाबू की कुछ पुस्तकों का तथा पं० जवाहरलाल नेहरू के अंग्रेजी आत्मचरित्र का भी अनुवाद आपने किया। गुजराती के सर्वश्रेष्ठ अनुवादकों में इनकी गणना है। कठिन से कठिन और सूक्ष्म भावों को भी आप प्रवाहमयी, मधुर और प्रासादिक गुजराती में व्यक्त कर देते थे। 'महादेव भाईनी डायरी' ५ भागों का एक विशाल ग्रंथ है, जिसमें आपने गांधीजी के जीवन तथा विचारों पर टिप्पणियाँ लिखी हैं। डायरी साहित्य की दृष्टि से यह एक अमूल्य ग्रंथ है, साथ ही गांधीजी के मंत्री की दृष्टि से भी। आपने 'वल्लभभाई का जीवन' और 'बे खुदाई खिदमतगारो' तथा 'बारडोली सत्याग्रह नो इतिहास' का सर्जन भी किया है।

इन्होंने सब कुछ त्याग कर अपने मालिक-महात्मा की सेवा सच्चाई से की और उनके हृदय में भी अपने महादेव के लिए प्यार तथा ममत्व था। १९४२ के आंदोलन के समय आपकी मृत्यु जेल में हुई।

नरहरि पारिख

नरहरि द्वारकादास पारिख एक खड़ायात वैश्य थे। इनका जन्म खेडा जिले में सन् १८९१ में हुआ था। मशरूवाला की भाँति इन्होंने भी १९१३ में वकालत शुरू की थी, किन्तु १९१७ में सत्याग्रह आश्रम में आ गये। महादेवभाई के साथ इन्होंने टैगोर के ग्रंथों का अनुवाद किया। इन्होंने टाल्सटाय के कुछ ग्रंथों का भी अनुवाद किया था। नवल ग्रंथावलि का संपादन इन्होंने किया और 'जोडणी कोश' तैयार करने में इन्होंने बड़ा परिश्रम किया। कालेलकर के साथ आपने 'मानव अर्थशास्त्र पूर्वरंग' लिखा तथा यंत्रनी मर्यादा, वल्लभभाई और महादेव भाई की जीवनियाँ लिखीं। महादेवभाईनी डायरी का सम्पादन भी आपने ही किया। आपने गुजरात विद्यापीठ में प्रवेश करके गांधीदर्शन का प्रतिनिधित्व अपने विविध लेखों द्वारा बड़ी ईमानदारी से किया।

अध्याय २०

क० मा० मुन्शी

गुजराती साहित्य में कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी कई दृष्टियों से विशेष उल्लेखनीय हैं। ये वकील, देशप्रेमी, समाज सुधारक, विधायक, शासक, मानवता-प्रेमी, कला-प्रेमी तथा आदर्शवादी हैं। इतना ही नहीं, ये उपन्यासकार, नाटक-कार, विद्वान्, शिक्षा-शास्त्री, पत्रकार और निबंध-लेखक भी हैं। आपने बहुत-से ऐसे कार्य किये हैं, जिनसे आपकी ख्याति देशव्यापी हो गयी है। अधिक अवस्था होने पर भी आज आप देश के कतिपय विशिष्ट विद्वानों में से हैं। आप प्रतिभासम्पन्न, साहसी, तीव्र बुद्धि और सामञ्जस्यकारी हैं। अपने विभिन्न कार्यक्रमों तथा कार्यों में ये सदा व्यस्त रहते हैं। आप तरल प्रकृति के हैं, तथा आप में इस बात की असाधारण मानसिक शक्ति है कि एक ही क्षण में आपका मन एक विषय से दूसरे विषय में उतनी ही तीव्रता और एकाग्रता के साथ लग जाता हैं।

कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी का जन्म भड़ोंच में सन् १८८७ में हुआ था। इनके पिता एक सरकारी कर्मचारी थे, जो उन्नति करके डिप्टी कलेक्टर के पद तक पहुँचे। बचपन में मुन्शीजी गुजराती नाटक देखने के बड़े शौकीन थे जो प्रांयः खेले जाते थे। नरसिंह मेहता, प्रेमचन्द्रिका आदि नाटकों का, जिन्हें ये प्रायः प्रतिदिन देखा करते थे, इनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। जब ये बड़ौदा में पढ़ते थे, तब ये श्री अरविंद के सम्पर्क में आये, जो उस समय इनके शिक्षक थे। श्री अरविंद से ये बहुत प्रभावित हुए। ये सूरत के कांग्रेस-अधिवेशन में उपस्थित रहे, और अपने एक उपन्यास में इन्होंने अपनी धारणाओं को व्यक्त किया है। वकालत पास करके ये बंबई में बस गये और वकालत करने लगे। सन् १९१२

में इनका पहला कहानी-संग्रह 'मारी कमला' प्रकाशित हुआ और १९१३ में इनका सामाजिक उपन्यास 'वेरनी वसूलात' एक साप्ताहिक गुजराती पत्रिका में धारावाही रूप में प्रकाशित हुआ। १९१५ में इन्होंने 'यंग इंडिया' को आरंभ किया और अपना दूसरा सामाजिक उपन्यास 'कोनोपांक' प्रकाशित कराया। गुजराती साहित्य की सेवा मुन्शीजी ने विविध अंगों से की। उन्होंने उपन्यास, कहानी, रोमांचकारी कथा, पौराणिक और ऐतिहासिक नाटक, जीवनचरित, विवेचनात्मक निबंध, सभी कुछ लिखा। अंग्रेजी में भी आपने कई ग्रंथ लिखे, जिसमें गुजराती साहित्य का इतिहास भी है। ५० वर्षों की अवधि में आपके साहित्यिक योगदान का परिमाण ही अधिक नहीं है, वरन् वह विविधता और शक्ति से भी पूर्ण है। आपकी कृतियों का वर्गीकरण निम्न-प्रकार से हो सकता है :—

लघु कहानियाँ—'मारी कमला'।

सामाजिक उपन्यास—वेरनी वसूलात, कोनोपांक, स्वप्नदृष्टा, स्नेह-संभ्रम, तपस्विनी भाग १, २, ३।

सामाजिक नाटक—बाबा शेठनुं स्वातन्त्र्य, बे खराब जण, आज्ञांकित, काकानी शशी, ब्रह्मचर्याश्रम, पीड़ाग्रस्त प्रोफेसर, डॉ० मधुरिका, छीए तेज ठीक, वाह रे में वाह।

ऐतिहासिक रोमांचकारी कथाएँ—पाटणनी प्रभुता, गुजरातनोनाथ, राजाधिराज, पृथ्वीवल्लभ, भगवान कौटिल्य, जय सोमनाथ।

ऐतिहासिक नाटक—ध्रुवस्वामिनी देवी।

पौराणिक नाटक और उपन्यास—पुरन्दर पराजय, अविभक्त आत्मा, तर्पण, पुत्र समोवडी, लोपामुद्रा, शम्बर कन्या, देवेदीधेली, विश्वामित्र ऋषि, लोमहर्षिणी, भगवान् परशुराम।

आत्मचरित संबंधी—अर्धेरस्ते, सीधांचढाण, स्वप्नसिद्धिनी शोधमां, मारी बिनजवाबदार कहाणी, यूरोपनी यात्रा, शिशु अने सखी।

फुटकर—केटलाकलेखो भाग १—२, गुजरातना ज्योतिर्धरो, थोडांक रस-दर्शनो, नरसैंयो भक्त हरिनो, नर्मद, आदि वचनो भाग १—२, गुजरातनी अस्मिता, परिषदने प्रमुख पदेथी।

आपने अंग्रेजी की कई पुस्तकें लिखी हैं।*

बचपन में मुन्शीजी डुम्मस में एक लड़की के सम्पर्क में आये, जो सदैव उनके सपने में आने लगी। अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के बाद मुन्शीजी ने सन् १९२६ में श्रीमती लीलावती सेठ से विवाह कर लिया, जो बहुत ही आनन्द-प्रद और सफल सिद्ध हुआ। उन्होंने कांग्रेस में प्रवेश किया, जेलयात्रा की और १९३७ में बम्बई के गृहमंत्री बन गये। इन्होंने एक गुजराती मासिकपत्र आरंभ किया, साहित्य-संसद की स्थापना की, कई वर्षों तक ये साहित्य-परिषद् का संचालन करते रहे और तीन बार इसके सभापति चुने गये। बंबई विश्वविद्यालय में आपने 'ठक्कर वसनजी व्याख्यान-माला' के अन्तर्गत' गुजरात के आदि आर्य' विषय पर भाषण दिये।

आपने १९३८ में 'भारतीय विद्या भवन' की नींव बम्बई में डाली, जिसका अब इतना विकास हुआ है कि यह संस्था शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में सर्वोत्तम संस्थाओं में से एक है और संस्कृत तथा भारतीयता के क्षेत्र में शायद सर्वश्रेष्ठ। इसकी शाखाएँ दिल्ली, मद्रास, कलकत्ता, बँगलोर, कानपुर, इलाहाबाद, गुजरात आदि स्थानों में हैं। मुन्शीजी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भी अध्यक्ष बन चुके हैं। आपने १९५१ में 'संस्कृत विश्व परिषद्' की स्थापना की जिसके आप कार्याध्यक्ष हैं। इसकी लगभग ६०० शाखाएँ तथा केन्द्र, भारत में एवं विदेश

*अँग्रेजी कृतियाँ—'Gujarat and its literatures' 'Articles in social welfair, 'kulpati's latters. 'Early Aryans in Gujarat Desha; The saga of Indian sculpture; I follow the Mahatma; Akhand Hindustan; The Indian Deadlock; The ruin that Britain wrought; The changing shape of Indian Politics; Gandhi : the Master; The End of an Era; The creative art of Life; Bhagwad Gita and Modern life; Our greatest need and other Essays; Sparks from the Anvil; Jonu's death and other Kulpati's letters; City of Paradise and other Kulpati's letters; To Badrinath; The wolf boy and other Kulpati's letters; and sparks from a Governor's Anvil.

में, हैं। संस्कृत-शिक्षा के प्रचार-प्रसार का बहुत बड़ा कार्य यह परिषद् कर रही है। ये हैदराबाद में भारत सरकार के एजेंट जनरल, भारत सरकार के कृषि तथा खाद्यमंत्री और उत्तर प्रदेश के पाँच वर्षों तक राज्यपाल रहे।

मुन्शीजी ने 'घनश्याम' उपनाम से अपना साहित्यिक जीवन आरंभ किया था। उस समय परम्परा के विरुद्ध जाने के लिए इनकी कड़ी आलोचना हुई थी, किन्तु साथ ही कुछ ने इनकी प्रशंसा भी की। बहुतों की मान्यता थी कि उपन्यास-कला की पूर्णता, सबल चरित्र-चित्रण तथा शिष्ट और सशक्त शैली के कारण मुन्शीजी गोवर्धनराम से भी आगे बढ़ गये हैं, जो उनसे बड़े थे। जो कुछ भी मुन्शीजी ने लिखा, उसपर उनके व्यक्तित्व की छाप है। कुछ साहित्यिक परंपराओं का उन्होंने उल्लंघन किया है और इससे उन्हें असाधारण सफलता मिली है। इन्होंने मौलिक विचारों और नयी विधि का सन्निवेश किया है। ये आधुनिक भारतीय साहित्य के निर्माताओं में से एक हैं, भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रेमी हैं तथा अपनी प्रज्ज्वलित प्रतिभा और सबल कल्पना के द्वारा आपने अनेक रूपों में साहित्य को बहुत कुछ दिया है।

कालेज-दिनों से ही इनके प्रिय लेखक और कवि रहे हैं कार्लाइल, डि क्विन्सी, लांडोर, स्काट, गाथे, शेली, ह्यूगो, मिचले, ड्यूमस और इब्सन। गुजराती में ये सूरत, भड़ोंच और बंबई की बोली ले आये, साथ ही उग्र शैली भी। समयानुसार ये अपनी शैली में परिवर्तन भी कर देते हैं तथा एक विशेष चमक पैदा कर देते हैं। अपनी कहानी में ये इतनी अधिक रोचकता ले आते हैं कि पाठक सांस रोक कर पढ़ता जाता है। ये परिस्थितियों को अत्यन्त नाटकीय और रंगीन बना देते हैं। इनके संवाद बड़े सजीव कहानी आकर्षक और पात्र सप्राण तथा स्वाभाविक होते हैं; कार्य-व्यापार पग-पग पर आगे बढ़ता है और पाठक विना पूरी किये पुस्तक छोड़ नहीं पाता। मुन्शीजी मानव-चरित्रों का चित्रण करते हैं, साधुओं का नहीं; और जीवन की वास्तविक घटनाओं से वे कहानी लेते हैं, कोरी नैतिकता के समर्थक ये नहीं हैं। इनकी ऐतिहासिक प्रेम-कथाएँ, जो इनकी सर्वोत्तम कृतियाँ मानी गयी हैं, अतीत के प्रेम-साहस से पूर्ण कल्पनाएँ हैं और अतीत के पर्दे पर वर्तमान-जीवन के नाटक की छायाएँ हैं। अपने पात्रों को केवल खिलौना बना देना उन्हें पसंद नहीं, वरन् मानव-पुट देने में उन्हें आनन्द

आता है; यहाँ तक कि पुराणों के आदरणीय पात्रों का चित्रण भी इस प्रकार मानवता युक्त हुआ है, जिससे पता चलता है कि वे पात्र इसी धरती के हैं। मुन्शीजी अत्यन्त साहस के साथ अधिकार प्राप्त करने के इच्छुक स्त्री-पुरुष पात्रों का संघर्ष दिखाकर गंभीर स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। ये नैतिक सिद्धान्तों तथा आदर्शों को भूलकर वास्तविक जीवन के प्यार की बात करते हैं। इनकी कृतियों की महिलाएँ पहले पुरुषों का विरोध करती हैं, फिर अपने पसंद के किसी सबल पुरुष को आत्म-समर्पण करती हैं। यदि परिस्थिति में कलात्मकता की संभावनाएँ रहती हैं, तो मुन्शीजी फिर यह परवाह नहीं करते कि यह चित्रण प्रतिष्ठा के नियमों अथवा मध्यकालीन नैतिकवादियों के अनुकूल है या नहीं। मुन्शीजी की नायक-नायिकाएँ पाठक के हृदयों में स्थान पाते हैं। इनके कई ग्रंथों का अनुवाद हिन्दी, तमिल, बंगाली, अंग्रेजी और संस्कृत में भी हुआ है तथा कुछ नाटकों का रंगमंच पर अभिनय हुआ है और कुछ कहानियों की फ़िल्में बनी हैं।

इनके सामाजिक नाटक बड़े उग्र और स्थानीय हैं, साथ ही आधुनिक और परंपरा-विरुद्ध हैं। मुन्शीजी के चार सामाजिक उपन्यासों में 'वेरनी वसूलात' प्रथम है,जो तीन भागों में है और जिसका मुन्शीजी की दृष्टि में विशेष मान है। इसका अनुवाद अंग्रेजी में भी हो चुका है। इसकी नायिका तनमन ने बहुतों के हृदय को जीत लिया, यहाँ तक कि उन बड़ी उमर वाले वकीलों का भी, जिनसे मुन्शीजी अपने लेखक होने की बात छिपाते थे। जब उन्होंने यह जान लिया तो उन्होंने मुन्शीजी को क्षमा भी कर दिया। इस उपन्यास में यह सत्य बताया गया है कि प्रतिशोध अपने आप हो सकता है, किन्तु जो दूसरों को दुख पहुँचाना चाहते हैं, वे स्वयं दुख पाते हैं। 'कोनोपांक' में सामाजिक दोषों और कुरीतियों की कड़ी आलोचना की गयी है। 'स्वप्नद्रष्टा' में इस शताब्दी के आरंभ में भारत की राजनीतिक व्यवस्था का वर्णन है। 'स्नेहसंभ्रम' हास्यरस प्रधान कृति है। इनकी कहानियों का क्षेत्र बहुत व्यापक है, जो अनेक विषयों और भावों पर विविध रूपों में लिखी गयी हैं।

मुन्शीजी की साहित्यिक सेवा विविधांगी और अधिक है। किन्तु इनकी श्रेष्ठ कृतियाँ हैं इनके ऐतिहासिक उपन्यास और नाटक। पाटणनी प्रभुता,

गुजरातनो नाथ, राजाधिराज, पृथ्वीवल्लभ, जय सोमनाथ, भग्नपादुका और ध्रुव स्वामिनी ने इन्हें गुजरात का सर्वश्रेष्ठ तथा भारत के श्रेष्ठ उपन्यास-कारों में से एक उपन्यासकार बना दिया। इनके ये ग्रंथ गुजराती साहित्य में अमर स्थान रखते हैं। प्रथम ३ उपन्यासों में हिन्दू गुजरात का अत्यन्त वैभवपूर्ण काल—सिद्धराज जयसिंह का शासन वर्णित है। ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं को एक विचित्रता और काल्पनिकता का पुट दे दिया गया है। राजा मूँज, सिद्धराज तथा कर्ण वघेला के काल का वर्णन ऐसा ही है। कहानीकार के रूप में मुन्शीजी अद्वितीय हैं। संवाद जोरदार, छोटे, सारपूर्ण, प्रभावशाली होते हैं; चरित्र-चित्रण अत्युत्तम होता है और उनमें अद्‌भुतता तथा कल्पना का समावेश रहता है। भूतकाल को वर्तमान की सी सजीवता ये प्राप्त करा देते हैं। मुन्शीजी में एक महान् कलाकार का साहस है, जिससे ये अन्तर्मन को अपनी दृष्टि से देखकर चित्रित कर सके। कुछ परिस्थितियाँ तो बहुत ही काव्यात्मक हो गयी हैं, जिन्हें गीतात्मकता के साथ वर्णित किया गया है। आर्यसंस्कृति पर इनका अटल विश्वास है। ये तीक्ष्ण किन्तु निर्दोष हास्य उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं। मूँज, मूँजाल, काक, मिनल, मंजरी आदि इनके पात्र बहुत ही महान् हैं, किन्तु साथ ही जीवन की सत्यता भी उनमें है। नारी का हृदय उलझनों में किस प्रकार काम करता है, यह मुन्शीजी ने बड़ी कुशलता से दिखाया है। इनकी विधि पूर्ण है, इनकी कथा और उपकथा की बुनावट सावधानी से की गयी होती है, सम्पूर्ण कृति में एक समरसता तथा पारस्परिक सम्बन्ध होता है। मुन्शीजी वातावरण को प्रभावपूर्ण तथा भावनाशील बना सकते हैं, परिस्थिति को नाटकीयता तथा कथानक को गीतात्मक सौंदर्य प्रदान कर सकते हैं। इनका गद्य यद्यपि स्पष्ट और सादा होता है, किन्तु विविध प्रसंगों की अनुकूलता ग्रहण करने की शक्ति उसमें रहती है, साथ ही उसमें एक बल और बुद्धिमत्ता का प्रकाश रहता है। मुन्शी जी ने जिन विशिष्ट और तेजस्वी व्यक्तियों का निर्माण किया है, वे गुजरात को उत्तराधिकार में मिले गौरव, अमूल्यता तथा शूरता से पूर्ण व्यक्तित्व हैं। इनका ग्रंथ 'पृथ्वी वल्लभ' गद्य काव्य माना जाता है; जो उचित ही है। मुंज में असाधारण शक्ति और वीरता है; और मृणालवती एक आकर्षक मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। 'जय सोमनाथ' परिपक्व शैली में

लिखा गया है, जिसमें गज़नी के सुलतान महमूद के आक्रमण को रोकने का वर्णन है। 'भग्न पादुका' अलाउद्दीन खिलजी के समय की दुःखान्त रचना है।

मुन्शीजी ने भारत के प्रागैतिहासिक काल से सम्बन्धित कुछ नाटक-उपन्यास लिखे हैं, जिनमें प्राचीन आर्यों की महत्ता वर्णित है। ये इनकी श्रेष्ठतम रचनाएँ हैं। 'पुत्र समोवडी' में कच-देवयानी की कथा अत्यन्त रोचक ढंग से लिखी गयी है। 'पुरन्दर-पराजय' सुकन्या और च्यवन की कहानी है। 'अविभक्त आत्मा' में भारतीय तथा मिस्र देश के भावों का सम्मिश्रण है और इसमें एक ही आत्मा के दो अर्धांश दो प्रेमियों की--, अरुन्धती और वसिष्ठ--कहानी है। 'विश्वरथ', 'शंबरकन्या', 'देवदीघेली', तथा 'विश्वामित्र' चार नाटकों में और 'लोमहर्षिणी' तथा 'भगवान् परशुराम' दो उपन्यासों में आर्य-संस्कृति के प्रसार की कथा बड़े आकर्षक ढंग से कही गयी है और लोपामुद्रा, विश्वामित्र एवं परशुराम जैसे जाज्ज्वल्यमान पात्रों को केन्द्र बनाकर कथानक तैयार किया गया है। 'तर्पण' श्रेष्ठ पौराणिक नाटकों में से एक है, जिसमें करुण, वीर, श्रृंगार और भयानकरस हैं।

तीन भागोंवाली 'तपस्विनी' में एक लंबे समय के वाद मुन्शीजी ने फिर सामाजिक कथानक लिया है। यह इनकी परिपक्व कृति है, जिसमें १८५७ से १९३७ तक के गुजरात के राजनीतिक और सामाजिक विकास का वर्णन है। इन्होंने अपने जीवन से सम्बन्धित कुछ पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें काफी स्पष्टता, अन्तर्मुखता, हास्यरसता और कहानी कहने की कला-पूर्णता है। 'शिशुअने सखी' की शैली कुछ विशेष है, जो न्हानालाल की डोलन शैली से मिलती-जुलती है। मुन्शीजी ने साहित्यिक आलोचना सम्वन्धी कुछ लेख और पुस्तकें लिखी हैं। 'गुजरात ऐंड इट्स लिटरेचर' में आपने उपयुक्त उद्धरण देते हुए गुजराती साहित्य का पूरा इतिहास और उसका मौलिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। 'मध्यकालनो साहित्य प्रवाह' में मुन्शीजी ने भक्ति के प्रभाव पर लिखा है। 'थोडांक रस दर्शनो 'आदिवचनो' तथा नर्मद और नरसिंह, सम्बन्धी इनकी कृतियां पांडित्यपूर्ण हैं; और यद्यपि वहुत-से विद्वान् किन्हीं बातों में इनसे मतभेद रखते हैं, किन्तु सभी ने यह स्वीकार किया है कि मुन्शीजी की लेखनी से जो भी निकलता है, वह विचारणीय होता है और उसका कुछ अंश

तो बहुत ही निर्दोष, आकर्षक और साहित्यिक, छटायुक्त भाषा-सम्पन्न होता है। 'ग्लोरी दैट वाज़ गुर्जर देश' में इन्होंने बृहत्तर गुजरात के इतिहास में कुछ खोजें की हैं और प्रतिहार गुर्जरों के शासनकाल पर कुछ अतिरिक्त प्रकाश डाला है।

मुन्शीजी का व्यक्तित्व अत्यन्त महान् और प्रबल है तथा कानून, साहित्य एवं राजनीतिक क्षेत्र में आपने बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त किया है। आप एक कार्य-निष्ठ व्यक्ति हैं और जीवन में आनन्द लेते हैं। मुन्शीजी एक समाज-सुधारक हैं, साथ ही श्री मद्भगवद्गीता, योगसूत्रों, अरविन्द घोष तथा गांधीजी का आप पर बहुत बड़ा प्रभाव है और आर्य-संस्कृति तथा संस्कृत की समर्थता पर आपका अमिट विश्वास है। आपने अपने विचारों को केवल साहित्य में ही व्यक्त नहीं किया, वरन् उन्हें कार्य में परिणत करने के लिए संस्थाओं को भी जन्म दिया है। आपने साहित्य-संसद की स्थापना की और कई दशकों तक साहित्य-परिषद् का मार्ग-दर्शन करते रहे। आपने भारतीय विद्याभवन की स्थापना की, जो आप की कीर्ति का अमर स्तंभ है। भारत की एक विशिष्ट संस्था के रूप में भारतीय विद्याभवन अपने विभिन्न विभागों और केन्द्रों द्वारा जो अमूल्य कार्य कर रहा है वह किसी से छिपा नहीं है। मुन्शीजी ने 'संस्कृत विश्व-परिषद्' की भी स्थापना की, जो अपने अनेक केन्द्रों और शाखाओं द्वारा संस्कृत के प्रचार-प्रसार का कार्य कर रहा है। आप राष्ट्रीय प्रेरणा और वर्तमान आवश्यकताओं के अनुकूल होनेवाली भारतीय संस्कृति की समग्रता चाहते हैं, जिससे हमारी संस्कृति के सर्वोत्तम का समन्वय पाश्चात्य संस्कृति के सर्वोत्तम से हो सके। आप राष्ट्रीय एकता के सबल समर्थक हैं, इसीलिए आपने हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के अध्ययन का समर्थन किया है।

मुन्शीजी गुजराती गद्य के अधिकारी विद्वान् हैं। प्रायः इनकी तुलना गोवर्धनराम से की जाती है, किन्तु गोवर्धनराम की ख्याति उनकी कला के कारण नहीं, वरन् उनके उपदेशों के कारण है। मुन्शीजी एक शुद्ध कलाकार हैं और इस रूप में अद्वितीय हैं। वे जीवन का वैसा ही चित्रण करते हैं, जैसा देखते हैं और अनुपात का बोध सदैव उनमें जागृत रहता है। मुन्शी जी की कृतियों में पात्र, नाटकत्व, संवाद और रूप की एकलयता—ये सब मिलकर कला और सौन्दर्य की सृष्टि करने में समर्थ होते हैं।

मुन्शीजी का रचनात्मक साहित्य बहुत विशाल तथा विविध रूपोंवाला है। आपने आधुनिक नारी का निर्माण किया है, जो अपने ढंग से प्यार करने तथा जीने का अधिकार चाहती है और आपने ऐसे पुरुष का भी निर्माण किया है, जो विजयी तथा लज्जा की भावना से रहित होकर जीने को तैयार है। आपने जीवन के उस आनंद का वर्णन किया है, जो सम्पन्नता में पाया जाता है। आपके प्रागैतिहासिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों, नाटकों और अनेक निबंधों में आपका भारत-प्रेम प्रकट है। एक कलाकार के रूप में आपने सौंदर्य का चित्रण ईमानदारी के साथ वैसा ही किया है, जैसा वह दिखाई देता है। ऐसा करते समय आपने रीति या परम्परा की परवाह नहीं की। भगवद्गीता और आधुनिक जीवन पर आपने एक अच्छी पुस्तक लिखी है। आपकी धारणा है कि अपने स्वरूप का सच्चा ज्ञान ही सच्चा मोक्ष है और वहाँ तक पहुँचने का मार्ग है, सच्ची आत्माभिव्यक्ति—'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानवः।'

आधुनिक गुजराती साहित्य में नानालाल, गांधीजी तथा मुन्शीजी में से प्रत्येक का नाम अपने ढंग का अनुपम और सर्वोत्कृष्ट नाम है। भारत की अमूल्य विरासत की व्याख्या, आधुनिक जागृति तथा उनकी रचनात्मक कला एवं कृतियों की अधिक मात्रा ने मुन्शीजी की गणना भारत के कुछ श्रेष्ठ आधुनिक लेखकों में कर दी और उपन्यास-लेखक के रूप में तो वे प्रेमचंदजी तथा शरद्बाबू के समकक्ष माने जाते हैं।

अध्याय २१

रमणलाल, धूमकेतु तथा अन्य

रमणलाल वसन्तलाल देसाई, वडनगरा नागर ब्राह्मण, का जन्म सन् १८९२ में सिनोर में हुआ था। वैसे ये कलोल के रहने वाले हैं। इनकी शिक्षा सिनोर और बड़ौदा में हुई। सन् १९१६ में इन्होंने गुजराती विषय लेकर एम० ए० पास कर लिया और बड़ौदा राज्य में नौकरी कर ली। क्रमशः उन्नति करके ये सूबा के पद पर पहुँचे गये। इन्होंने १९१७ से लिखना आरंभ किया और अपने दो नाटकों—'संयुक्ता' और 'शंकित हृदय'—के कारण विशेष प्रख्यात हुए। ये नाटक अव्यवसायी लोगों द्वारा खेले जाने की दृष्टि से लिखे गये थे। ये विशेषतः न्हानालाल और 'कलापी' की रचनाओं से अधिक प्रभावित थे और उनकी पंक्तियों को अपने उपन्यासों में उद्धृत करते थे। बाद में इन्होंने बहुत अधिक संख्या में उपन्यास लिखे। 'सयाजी विजय' के सम्पादक ने आपको उस पत्र में धारावाहिक उपन्यास बराबर लिखते रहने के लिए आमंत्रित किया। उस पत्र में भेट नवल कथा शीर्षक से बराबर उपन्यास प्रकाशित हुआ करते थे। रमणलाल ने सम्पादक के निमंत्रण को स्वीकार करके एक के बाद एक उपन्यास लिखने आरम्भ किये। उपर्युक्त उनके दो नाटकों का अच्छा स्वागत हुआ, क्योंकि उनमें साहित्यिकता और अभिनेयता—दोनों गुण थे। सन् १९२५ और १९३० के बीच, जबकि मुन्शी जी राजनीति-क्षेत्र में फँस गये थे, रमणलाल ने कई उपन्यास गुजराती-साहित्य को दिये।

अपने जयंत, कोकिला, पूर्णिमा, हृदयनाथ, दिव्यचक्षु आदि उपन्यासों में इन्होंने आधुनिक गुजरात के सुसंस्कृत मध्यमवर्गीय समाज का अच्छा चित्रण किया है। उनके द्वारा चित्रित पुरुषों और स्त्रियों के आदर्शों, विचारों, त्यागों, व्यवहारों तथा सेवा के प्रति उनकी गौरवपूर्ण भावनाओं में हमें समाज और उसके उस सांस्कृतिक का विकास की झलक मिलती है, जो महात्मा गांधी के

प्रभाव से पैदा हुआ था। रमणलाल में मुन्शीजी की भाँति छींटाकशी या कठोरता न पाकर हम कोमल संस्कारिता, नागरिकता, सूक्ष्मता और आदर्शवादिता पाते हैं। इन्होंने मुख्यतः गुजराती-समाज का ही चित्रण किया है। 'पूर्णिमा' में इन्होंने एक वेश्या-पुत्री का आदर्श दिखाया है। 'दिव्यचक्षु' में सत्याग्रह आंदोलन तथा प्रधान पात्रों के बलिदानों का वर्णन है। 'ग्रामलक्ष्मी' में ग्राम्य जीवन तथा ग्राम-सुधार है। 'बंसरी' और 'कोकिला' के कथानक जासूसी कहानियों की भाँति हैं। 'भारेलो अग्नि' में १८५७ के विद्रोह का प्रभाव वर्णित है। 'क्षितिज' में आर्य-अनार्य संघर्ष है। 'कालभोज' में बाप्पा रावल के समय का युद्ध वर्णित है। 'झंझावात' और 'प्रलय' में उन दोषों का वर्णन है, जो स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारत में तथा दो महायुद्धों के बाद विश्व में आये, साथ ही यह भी बताया गया है कि किस प्रकार संसार संकट और विनाश की ओर द्रुत गति से बढ़ रहा है। बाद के अपने कुछ उपन्यासों में इन्होंने नेताओं की आलोचना करते हुए वामपंथियों के विचार प्रस्तुत किये हैं।

महान् आलोचक विश्वनाथ भट्ट ने रमणलाल को युगमूर्ति वार्ताकार की उपाधि दी है, क्योंकि गांधीयुग के गुजरात के लोगों का जीवन एवं उनके विचारों को इन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक चित्रित किया है। सामाजिक उपन्यासों के लेखक के रूप में ये बहुतों से आगे बढ़ गये हैं। बहुतों के मत से इस क्षेत्र में इनका नाम गोवर्धनराम के बाद दूसरा है। इनके पात्र मुख्यतः मध्यमवर्ग के शिष्ट गुजराती नर-नारी हैं, जिनमें आदर्शवाद की भावना जागृत है। कई आलोचकों ने संकेत किया है कि इनके विभिन्न उपन्यासों में कथानक, परिस्थिति, चरित्र-चित्रण, वातावरण आदि की समानता रहती है। ये अपने विचारों को उपन्यासों में प्रस्तुत करके गोवर्धनराम के ढंग पर विचार करते हैं। इनकी शैली यद्यपि विस्तारपूर्ण है, फिर भी शिष्ट है। इनमें व्यंग्य करने की भी क्षमता है। कहानी कहने का इनका ढंग स्पष्ट और प्रभावपूर्ण है। इनके उपन्यास बहुत ही प्रसिद्ध हुए हैं। इन्होंने २५ से अधिक उपन्यास लिखे हैं।

'निहारिका' इनकी कविताओं का संग्रह है, जिस पर 'कलापी' और न्हानालाल का प्रभाव स्पष्ट है। साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में इन्होंने 'जीवन अने साहित्य' भाग १–२ तथा 'साहित्य अने चिंतन' लिखा है। सयाजी साहित्य

माला के अन्तर्गत आपने युवकों के लिए कई छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ लिखी हैं। 'गईकाल' और 'मध्याह्ननां मृगजल' में इन्होंने अपने जीवन से सम्बन्धित कुछ घटनाओं का वर्णन किया है। ५ भागोंवाली 'अप्सरा' में वेश्याओं का इतिहास है। 'गुजरातनुं घड़तर' में इन्होंने गुजरात का ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विकास दिया है। इन्होंने हेनरी फोर्ड का जीवन अंग्रेजी से गुजराती में अनूदित किया है। 'सुवर्णरज' में इनके ओजस्वी कथन, विचार और चुटीले सूत्र संगृहीत हैं। इनके ग्रंथ 'भारतीय संस्कृति' में इनके पांडित्य और शोधों की झांकी मिलती है। इसे इन्होंने बड़ौदा विश्वविद्यालय की प्रेरणा से लिखा था, जिसमें आदिकाल से लेकर आजतक के भारतीय संस्कृति का इतिहास बड़ी विद्वत्ता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार उपन्यासों के अतिरिक्त आपने कविताएँ, नाटक, निबंध, आत्म-चरित तथा साहित्यिक आलोचनाएँ भी लिखी हैं। ये रूस-भ्रमण को गये थे तथा अपनी यात्रा का वर्णन 'एशिया' और 'मानव-शान्ति' में किया है। एकांकी-नाटकों के भी इनके ३ संग्रह हैं।

इन अनेक विविध विधाओं के होते हुए भी रमणलाल मुख्यत: अपने उप-न्यासों के लिए स्मरण किये जायँगे और सामाजिक उपन्यासों के क्षेत्र में इनका स्थान गुजरात में वस्तुत: बहुत ऊँचा है।

धूमकेतु

गौरीशंकर गोवर्धनराम जोशी, जो 'धूमकेतु' नाम से प्रसिद्ध हैं, खेडावाल ब्राह्मण हैं। इनका जन्म सौराष्ट्र के अंतर्गत गोंडल के निकट वीरपुर में सन् १८९२ में हुआ था। ये जूनागढ़ से १९२० में बी० ए० पास हुए तथा इनके प्रिय विषय थे साहित्य और इतिहास। कुछ समय तक अध्यापकी करने के बाद आप सर चीनु भाई के घर में अध्यापक नियुक्त हो गये, जहाँ कई वर्षों तक रहे। साहित्य-क्षेत्र में इनका मुख्य योगदान छोटी कहानियों और उपन्यासों का रहा है।

धूमकेतु के पूर्व कई लेखकों ने लघुकथाओं का क्षेत्र विकसित किया था, किन्तु धूमकेतु ने जिस रूप की स्थापना कलात्मक ढंग से की, उसकी पूर्णता उन्हीं से हुई। अंग्रेजी से अनुवाद करने वाले भी कई लेखक थे। नारायण

हेमचन्द्र, रणजीतराम बाबा भाई, मलयानिल, राममोहनराय देसाई, रमणभाई नीलकंठ तथा मुन्शी जैसे लेखकों ने भी धूमकेतु की शैली पर लिखने का प्रयत्न किया। मलयानिल की छोटी कहानियों का संग्रह 'गोवालणी अने बीजी वातो' है। इन कहानियों में आपने कलात्मक रूप दिखाया है और आलोचकों को यह कहना पड़ता है कि आधुनिकता एवं कलात्मकता की दृष्टि से कहानी-लेखन मलयानिल से आरंभ होता है। किन्तु दुर्भाग्य से इस लेखक का देहान्त जल्दी हो गया। श्रीराममोहन राय देसाई मासिक पत्रिका 'सुन्दरी सुबोध' के सम्पादक थे। इन्होंने सरल शैली में जीवन की दैनिक समस्याओं पर कहानियाँ लिखी हैं। मुन्शी के कहानी-संग्रह 'मारी कमला अने बीजीवातो' में हम इस शैली का विकास पाते हैं। मुन्शी की ये कहानियाँ भी सामाजिक समस्याओं पर लिखी गयी हैं। लघुकथा के रूप का उच्चतम विकास धूमकेतु ने किया, जो कहानीकार के रूप में न केवल गुजरात में, वरन् सारे भारत में प्रसिद्ध हैं और इनकी एक कहानी को संसार की श्रेष्ठ कहानियों के संग्रह में स्थान मिला है; इनकी कुछ कहानियों का अनुवाद हिन्दी में भी हुआ है।

धूमकेतु के कहानी-संग्रह हैं—तणरवा—भाग १ से ४, प्रदीप, अवशेष परिशेष, त्रिभेटो, मल्लिका, आकाशदीप, वनकुञ्ज आदि। इनके उपन्यास हैं—राजमुगट, पृथ्वीश, अजिता, वाचिनीदेवी, चौलादेवी, राजसन्यासी, कर्णावती, राजकन्या, सिद्धराज जयसिंह, महाअमात्य चाणक्य आदि। इन्होंने कई नाटक भी लिखे हैं, जैसे—'पडधा', 'एकलव्य अनेबीजा नाटको' आदि। इनके द्वारा लिखे जीवन-चरित 'हेमचन्द्राचार्य', 'परशुराम', 'नेपोलियन' आदि में संगृहीत हैं। जीवनपंथ और जीवनरंग शीर्षक के अन्तर्गत इन्होंने आत्मचरित भी लिखा है। इतिहास, निबंध तथा अन्य विषयों पर भी इनके ग्रंथ हैं।

अपनी छोटी कहानियों में—जो १५ से भी अधिक संग्रहों में संगृहीत हैं—इन्होंने दुर्बल तथा पीड़ित व्यक्तियों का जीवन चित्रित किया है। इनमें मानवता का पुट अधिक स्पष्ट है और विषय को चरम सीमा तक अत्यन्त भावुकता के साथ ले जाने में ये दक्ष हैं। इनकी कुछ कहानियों को विश्व भर की मान्यता प्राप्त है। इनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं—भैयादादा, जुमोभिश्ती, पोस्ट आफिस, मशहूर गवैयों, आदि। इन्होंने अपनी कहानियों के पात्र समाज के सभी वर्गों

तथा जीवन के सभी क्षेत्रों से लिये हैं, साथ ही पुराणों से भी। मध्य युग, कृषक-जीवन, ग्राम्य जीवन, पीड़ित वर्ग इनके कथानकों के स्रोत हैं। इनकी शैली भावोत्पत्ति के लिए बहुत अनुकूल है, जो सशक्त है, काव्यात्मक है और प्रत्यक्ष है। दृश्य-चित्रण में ये कल्पना से काम लेते हैं। प्रत्येक कहानी में एक मुख्य भाव रहता है, जिसे केन्द्र बनाकर लेखक अपने कथानक, चरित्र-चित्रण, वातावरण और भावों का विकास करता है। कभी-कभी इनमें अत्युक्ति दोष भी आ गया है और विभिन्न कहानियों में चरित्र-चित्रण, परिस्थिति तथा वातावरण की समानता भी देखी जाती है। इतने पर भी ये गुजरात के सर्वश्रेष्ठ एवं भारत के श्रेष्ठ कहानी लेखकों में से एक माने जाते हैं, जो उचित ही है।

धूमकेतु ने कई उपन्यास भी लिखे हैं। इनके आरंभिक उपन्यास उतने सफल नहीं हैं। गुजरात तथा मालवा की ऐतिहासिक घटनाओं पर इनके उपन्यास हैं और एक दूसरी पुस्तकमाला के अंतर्गत इन्होंने गुप्तकाल की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करते हुए उपन्यास लिखे हैं। चौलादेवी, वाचिनी देवी, आम्रपाली, वैशाली, महा अमात्य चाणक्य आदि इनके कुछ ऐतिहासिक उपन्यास हैं। मुन्शीजी की भाँति इन्होंने भी अपने उपन्यासों में राजनीति कुशल एवं तड़क-भड़कवाले व्यक्तियों, साथ ही साधुओं आदि का चित्रण किया है। अनेक उपन्यासों में इन्होंने भी चमत्कारिक अथवा अति मानुषिक तत्त्वों का समावेश किया है। इन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार के चरित्रों को चित्रण करने का प्रयत्न किया है, किन्तु मुन्शीजी के पात्रों की तुलना में ये फीके और कुछ कम कलात्मक लगते हैं। इनकी दूसरी कृतियाँ हैं—निबंध-संग्रह, एकांकी-नाटक, बालकों के लिए नाटक और कहानियाँ, विचारों और सूत्रों के संग्रह गुजराती साहित्य में अनेक प्रकार का योगदान होते हुए भी धूमकेतु का सबसे अधिक स्मरण होगा अधिकृत कहानी लेखक के रूप में।

मेघाणी

झवेरचन्द कालीदास मेघाणी दशा श्रीमाली जैन वणिक थे। इनका जन्म सन् १८९७ में सौराष्ट्र के चोटीला ग्राम में हुआ था। अपनी आरंभिक अवस्था में आप ने सौराष्ट्र की रियासतों में भाटों तथा चारणों के मुख से लोक साहित्य

तथा लोकगीत सुने थे। तभी से आपकी रुचि उस ओर हुई और आपने लोक-साहित्य के संग्रह करने में विशेषता प्राप्त की। लोकगीतों की रचना करके बड़े जनसमूह के सामने आप उच्चकंठ एवं मधुर धुन में गाते थे। जूनागढ़ से बी० ए० पास करके आप पत्रकारिता में प्रविष्ट हुए। 'सौराष्ट्र' के तत्कालीन सम्पादक श्री अमृतलाल सेठ ने आपको आमंत्रित किया। परिणामस्वरूप आपको अध्ययन, पुस्तक-समीक्षा और लोकसाहित्य पर—जो आपका प्रिय विषय था——काम करने का अवसर प्राप्त हुआ। यहाँ रहकर आपने लोकसाहित्य का अच्छा संग्रह किया, उसका विधिवत् अध्ययन किया, कुछ ग्रंथों का सम्पादन किया और लोककथा, लोकगीत एवं लोकजीवन पर अनेक कहानियाँ तथा कविताएँ लिखीं। बाद में आप बम्बई के पत्र 'जन्मभूमि' में चले आये और कुछ वर्षों के बाद सौराष्ट्र के राणपूर में 'फूलछाब' को फिर सजीव किया।

यद्यपि इन्होंने उपन्यास, कहानी, कविता, साहित्यिक आलोचना——सभी कुछ लिखा है, किन्तु इनका मुख्य योगदान, जिस पर इनकी ख्याति आधारित है, इनकी लोकसाहित्य-सेवा है। इनके मुख्य ग्रंथ हैं——सौराष्ट्रनी रसधार–५ भाग; सोरठी बहारवटिया–३ भाग; दरियापारना बहार वटिया; रठियाली रात——४ भाग; चुँदड़ी–२ भाग; कंकावटी–२ भाग; दादाजीनी वातो; सोरठी सन्तो; सोरठी सन्तवाणी; पुरातन ज्योत आदि। इनमें मेघाणी जी द्वारा सम्पादित अथवा पुनर्लिखित लोककथाएँ हैं। इस ढंग का एक विशाल साहित्य आपने संगृहीत किया है। आपने गुजरात एवं सौराष्ट्र के इतिहास पर आधारित कई उपन्यास भी लिखे हैं——जैसे, समरांगण; रा' गंगाजलियो; गुजरातनो जय आदि। आपने सौराष्ट्र जीवन के वीरतापूर्ण प्रसंगों का वर्णन बड़ी कुशलता के साथ प्रेरणात्मक, सबल तथा प्रवाहपूर्ण शैली में किया है। कथा कहने की चारण-शैली को आपने अच्छी तरह ग्रहण कर लिया था और उसी आकर्षण-गुण के साथ आप कहानी लिखते थे। इनके कई कहानी-संग्रह हैं।

मेघाणी जी के कई कविता-संग्रह भी हैं, जैसे युगवन्दना, किल्लोल, वेणीनां फूल आदि। इनमें आपने तत्कालीन स्वतंत्रता-आन्दोलन के प्रति देशप्रेम एवं वीर भावों को व्यक्त किया है। आपने गृह-जीवन का भी अच्छा चित्रण किया है विशेषतः इसके करुणापूर्ण अंगों का। इनमें से अधिकांश रचनाएँ लोकभाषा में

तथा लोकगीतों की धुन में लिखी गयी हैं। इन गीतों की बहुत प्रसिद्धि हुई। लोगों ने प्रेरणा प्राप्त की। कुछ गीत तो अंग्रेजी कविताओं का अनुवाद अथवा रूपान्तर थे, कुछ पुराने लोकगीतों पर आधारित थे और कुछ स्वतंत्र रचनाएँ थीं। आपने बच्चों के लिए भी स्वरचित कविताओं के संग्रह प्रस्तुत किये हैं। इनकी कुछ उत्तम कविताएँ हैं—शिवा जीनूँ हालर हुं, घणरे बोले रे, कसूँबी रंग, कवि तेने केम गमे, तलवारनो वारसदार, कोईनो लाडकवायो। मेघाणी ने चारणी धुन के अतिरिक्त बंगाली धुन में भी गीत लिखे हैं। इनके गीतों में मधुरता, करुणा, वीरता, स्वदेश-प्रेम कूट-कूटकर भरा है। ये राष्ट्रकवि माने जाते हैं।

इन्होंने कुछ नाटक लिखे हैं, जैसे राणो प्रताप, शाहजहां आदि; और कुछ यात्रा सम्बन्धी पुस्तकें भी लिखी हैं। दयानन्द सरस्वती, संत देवीदास, ठक्करबापा, बे देशदीप को आदि इनके द्वारा लिखित कुछ जीवनचरित हैं। वेरोनमां तथा परिभ्रमण—२ भाग इनकी आलोचनाओं के संग्रह हैं। 'जन्मभूमि' के प्रसिद्ध 'कलम अने किताब' स्तंभ के अन्तर्गत ये पुस्तक-समीक्षा लिखते थे। साहित्य-समीक्षा का उच्चस्तर आपने सदैव स्थिर रखा। आपने कुछ सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं पर भी विचार प्रस्तुत किये हैं। इनकी शैली में हमें मधुर, उपयुक्त, अभिव्यंजक और सशक्त शब्द मिलते हैं, जो लोकबोली के हैं; साथ ही बोलचाल के पद, शब्द और मुहावरे हैं, जिन्हें मेघाणी ने प्रस्तुत किया है। इन्हीं शब्दों-मुहावरों के प्रयोग से दूसरों ने भी बाद में गुजराती भाषा को समृद्ध किया। इस प्रकार गुजराती साहित्य को मेघाणी का बहुत बड़ा योगदान है।

चुनीलाल वर्धमान शाह

चुनीलाल वर्धमान शाह सौराष्ट्रान्तर्गत बढवान के जैन वणिक हैं, जिनका जन्म सन् १८८७ में हुआ था। अब ये सुरेन्द्र नगर में रहते हैं। इन्होंने पत्रकार-जगत में प्रवेश किया और बहुत समय तक ये 'प्रजाबन्धु' के सम्पादन-विभाग में रहे। ये उसी पत्र में 'साहित्यप्रिय' उपनाम से साहित्यिक ग्रंथों की समीक्षा किया करते थे। आलोचना का उच्च मानदंड आपने स्थापित किया। आपकी समीक्षा निर्णयात्मक, विचारपूर्ण और उच्च स्तरीय होती थी। उनके साहित्यिक

स्तंभ ने दूसरों के समक्ष आदर्श उपस्थित किया। पत्रकार की अपेक्षा उपन्यास-कार के रूप में आपकी ख्याति अधिक है। पहले पहल इन्होंने जासूसी उपन्यास लिखे, बाद में 'प्रजाबन्धु' के लिए भेट उपन्यास लिखने लगे। इन्होंने ३० से अधिक उपन्यास लिखे हैं। इनके कुछ ऐतिहासिक उपन्यास उच्चकोटि के हैं। यद्यपि इनमें ऐतिहासिक तत्त्व अधिक है, फिर भी पाठक की रुचि बनी रहती है। इनके कुछ श्रेष्ठ उपन्यास हैं—'कर्मयोगी राजेश्वर'—यह मूलराज सोलंकी का चित्रण करता हुआ सोलंकी युग पर प्रकाश डालता है—, 'अवन्तीनाथ', 'नीलकंठनुं वाण', 'रूपमती' आदि। 'जिगर अने अमी' इनका सामाजिक उपन्यास है, जो बहुत लोकप्रिय हुआ। 'एकलवीर' किसी पुरानी हस्तलिपि का रूपान्तर है। इन्होंने कहानियाँ भी लिखी हैं, जो 'एक दंडियो महेल' तथा 'रूपानो घंट' आदि संग्रहों में संगृहीत हैं। उनकी प्रसिद्धि मुख्यतः उनके ऐति-हासिक उपन्यासों के कारण है। इनकी शैली प्रवाहमय, शिष्ट और सरल है।

गुणवन्तलाल आचार्य

गुणवन्तलाल आचार्य जामनगर के वडनगरा नागर ब्राह्मण हैं, जिनका जन्म १९०२ में हुआ था। इन्होंने ऐतिहासिक नाटक अधिक संख्या में लिखे हैं, साथ ही साहसिक और जासूसी भी। इनका सम्बन्ध 'फूलछाव' और 'सौराष्ट्र' पत्रों से था। 'सक्करवार सरफरोश' और 'हरारी' आदि उपन्यासों में इन्होंने समुद्री साहसों का वर्णन किया है। इन्होंने इतिहास तथा दूसरे देशों की दन्तकथाओं का अच्छा अध्ययन किया था और आपने उपन्यासों में उसका उपयोग भी किया है। इनकी शैली सबल और सोरठ लक्षणों से युक्त है। इन्हें सोरठी साहस और वीरता का वर्णन करने में बड़ा आनंद आता है। ऐतिहासिक घटनाओं को ये नयी पृष्ठभूमि के साथ वर्णन करते हैं, तथा वर्तमान युग के लिए उससे प्रेरणा ग्रहण करने की चेष्टा करते हैं। इनके कुछ अन्य प्रख्यात उपन्यास हैं, 'दरियालाल', 'देशदिवान हाजी कासम तारी वीजली।'

अध्याय २२

रामनारायण तथा अन्य

रामनारायण विश्वनाथ पाठक प्रश्नोरा नागर थे। इनका जन्म धोलका तालुका के गाणोल ग्राम में सन् १८८७ में हुआ था। इनके पिता विश्वनाथ ने कुछ धार्मिक एवं दार्शनिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का अनुवाद गुजराती में किया था, जैसे—पंचदशी, गीता शांकर भाष्य, महिम्नस्तोत्र, नचिकेता कुसुम गुच्छ आदि। रामनारायण ने दर्शनशास्त्र विषय लेकर बी० ए० पास किया; फिर वकालत पास करके सादरा में कई वर्षों तक वकीली करते रहे। अंत में गुजरात विद्यापीठ में गुजराती के प्राध्यापक हो गये। यहाँ रहकर आप अनेक परिश्रमी और प्रतिभासम्पन्न विद्यार्थियों के गुरु बने, जो आगे चलकर प्रसिद्ध विद्वान्, कवि और लेखक बने। आपने कहानियाँ, निबंध, कविताएँ लिखी हैं और कुछ साहित्यिक समीक्षाएँ, जो आप का मुख्य क्षेत्र था।

उनके आलोचनात्मक ग्रंथ हैं—अर्वाचीन गुजराती काव्य-साहित्य; अर्वाचीन काव्य-साहित्य नां वर्हणो; काव्यनी शक्ति; साहित्य विमर्श; आलोचना; साहित्यालोक; नर्मद—अर्वाचीन गद्य-पद्यनो प्रणेतो; प्राचीन गुजराती छन्दो और बृहद् पिंगल, जो इनका पिंगल संबंधी अमर ग्रंथ है। भिन्न-भिन्न विधाओं के इनके भिन्न उपनाम थे। ये कहानी 'द्विरेफ' उपनाम से, निबंध 'स्वैरविहारी' उपनाम से और कविता 'शेष' उपनाम से लिखते थे। इनकी कहानियाँ 'द्विरेफनी वातो' शीर्षक से ३ खंडों में संगृहीत हैं और कविताएँ 'शेष ना काव्यो' में। इनके सरल निबंधों का संग्रह 'स्वैरविहार' २ भागों में है। आपने कई ग्रंथों का संपादन किया है; उनमें कुछ चुनी हुई कविताएँ हैं और कुछ 'कान्त' की भी कविताएँ हैं; आनन्दशंकर ध्रुव के ग्रंथ भी उनमें सम्मिलित हैं। आपने 'काव्यप्रकाश' के प्रथम ६ उल्लासों का तथा 'धम्मपद' का अनुवाद किया है और तर्कशास्त्र पर गुजराती में एक पुस्तक लिखी है—प्रमाणशास्त्र प्रवेशिका।

सुन्दरम् एवं स्नेह-रश्मि जैसे लेखक इनके शिष्य थे। कुछ दिनों तक इन्होंने 'युगधर्म' का सम्पादन किया और कई वर्षों तक आप 'प्रस्थान' नामक मासिक

पत्र के संपादक रहे। इन दोनों पत्रों का स्तर बहुत ऊँचा था। कुछ दिनों तक ये बंबई के एस. एन. डी. टी. महिला महाविद्यालय में गुजराती के प्राध्यापक भी थे। इन्होंने अपनी एक प्रतिभासम्पन्न छात्रा हीरा बहेन मेहता से विवाह कर लिया। उसके बाद आप बंबई के भारतीय विद्याभवन कालेज में गुजराती के प्राध्यापक हुए और बाद में आकाशवाणी भारत में गुजराती कार्यक्रमों के परामर्शदाता हो गये। सन् १९४६ में राजकोट में होनेवाले गुजराती साहित्य-परिषद् के अधिवेशन के आप अध्यक्ष चुने गये।

इनकी शैली तर्क युक्त, कांच सदृश विशद और निर्मल, आडम्बरहीन, मुख्य विषय की ओर उन्मुख रहनेवाली, अन्तरंग अर्थ को खोलनेवाली और अनूठी है। इनकी उक्तियां और व्याख्याएँ नवीन होती हैं। समीक्षा करते समय ये लेखक की प्रतिभा और रस की परख तत्काल कर लेते हैं। इन्होंने संस्कृत अलंकार-शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया था और उसी आधार पर इन्होंने ग्रंथों की समीक्षाएँ लिखी हैं। इनकी आलोचनाओं ने अनेक आधुनिक ग्रंथकारों को प्रोत्साहित करके उनका मार्ग-दर्शन किया है। बलवन्तराम ठाकोर और रामनारायण—इन दोनों ने अपने आगे की पीढ़ी के बहुत-से साहित्यिकों को प्रेरणा प्रदान की है। आलोचक के रूप में इनकी गणना रमणभाई के समकक्ष है। इनका विश्लेषण गहन और पूर्ण होता है तथा उसकी भाषा शिष्ट और स्पष्ट होती है। इन्होंने पिंगल विषय में विशेषता प्राप्त की है और इनके सर्वोत्तम ग्रंथ 'बृहत् पिंगल' को केन्द्रीय सरकार से पुरस्कार प्राप्त हुआ है। कहानियों के क्षेत्र में इनका स्थान 'धूमकेतु' के बाद आता है। खेमी-जक्षणी आदि इनकी कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। 'द्विरेफनी बातो' में इनकी कहानियाँ संगृहीत हैं। 'स्वैर विहार' में इनके सरल और हास्यात्मक निबंध हैं, जिनमें व्यंग, सहानुभूति और हास्य है। इन्होंने सामाजिक जीवन पर इन निबंधों में बड़ी कुशलता से विचार किया है।

विजयराय

विजयराय कल्याणराय वैद्य भावनगर के वडनगरा नागर हैं। इनका जन्म १८९७ में हुआ था। विद्यार्थी अवस्था में ही ये 'बीसमी सदी' में लेख

लिखते थे। बी० ए०, पास करने के बाद आपने साहित्यिक जीवन अपनाया और १९२० में मासिक पत्र 'चेतन' के सह-सम्पादक हो गये। आपने 'विनोद-कान्त' उपनाम से लिखना आरम्भ किया। 'हिन्दुस्तान' साप्ताहिक, मुन्शीजी के 'गुजरात' और 'युगधर्म' से भी आप का सम्बन्ध था। १९२४ में आपने 'कौमुदी' का प्रकाशन आरंभ किया, जिसका स्तर सदैव ऊँचा रखा। किन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण 'कौमुदी' इन्हें बन्द करनी पड़ी। कई वर्षों तक ये सूरत के सार्वजनिक कालेज में गुजराती के प्राध्यापक रहे। कौमुदी के बाद आपने 'मानसी' आरम्भ किया। ये दोनों पत्रिकाएँ कभी मासिक रहीं, कभी त्रैमासिक। यद्यपि इनकी सामग्री अत्यन्त साहित्यिक और उत्तम रहती थी, किन्तु ग्राहक संख्या कम होने के कारण विजयराम सदा आर्थिक संकट से ग्रस्त रहते थे। श्री क० मा० मुन्शी के साथ काम करते हुए भी उनसे विजयराम का मतभेद था और इसीलिए इन्हें 'कौमुदी' आरंभ करनी पड़ी। बाद में यह मत-भेद दूर हो गया और आपने भारतीय विद्याभवन में पिछली शताब्दी के गुजराती-साहित्य के इतिहास पर बारह भाषण दिये। इनके भाषणों का सार 'गतशतकनुँ साहित्य' शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

साहित्यिक आलोचना क्षेत्र में आपके ग्रंथ हैं—साहित्य-दर्शन, जुई अने-केतकी, गुजराती साहित्यनी रूपरेखा, बत्रीसनुँ ग्रन्थस्थ वाङ्मय एवं गतशतकनुँ साहित्य। इन्होंने कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं, जैसे 'नाजुक सवारी' और 'प्रभात नारंग' आदि। इनका 'ऋग्वेदकालनु जीवन अने संस्कृति' ग्रंथ अध्ययन और पांडित्यपूर्ण है। 'शुक्रतारक' में आपने नवलराम का जीवनचरित लिखा है। सब मिलाकर इनके लगभग २० ग्रंथ हैं।

आलोचक के रूप में ये रामनारायण, विश्वनाथ भट्ट तथा विष्णु प्रसाद त्रिवेदी की कोटि के हैं। इनका अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन बहुत गहन है। 'कौमुदी' और 'मानसी' में लिखने के लिए इन्होंने अनेक विद्वान् लेखकों को प्रेरित तथा आकर्षित किया था। सादी भाषा पर ये बहुत बल देते थे। हां, इनकी शैली अवश्य जटिल है और कहीं-कहीं कठिन हो गयी है। इनका ग्रंथ 'गुजराती साहित्यनी रूपरेखा' बड़ा अध्ययनपूर्ण है, जिसमें विस्तार से सब कुछ दिया गया है, किन्तु उसकी भाषा जटिल और कठिन है। इनके 'गतशतकनुँ

साहित्य' द्वारा पिछली शताब्दी के कुछ उन लेखकों-कवियों पर नवीन प्रकाश पड़ता है, जिनके विषय में इतनी अच्छी तरह और किसी ग्रंथ में विचार नहीं किया गया। आलोचक की दृष्टि से इनका स्थान बहुत ऊँचा है और सम्पादक के रूप में आपने 'कौमुदी' तथा 'मानसी' जैसे अनेक पत्रों का कुशल सम्पादन करके साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की है।

विष्णुप्रसाद त्रिवेदी

विष्णुप्रसाद रणछोड़लाल त्रिवेदी उमरेठ के बाज खेडावाल ब्राह्मण हैं। इनका जन्म १८९९ में हुआ था। सन् १९२३ में एम. ए. पास करके आप सूरत के सार्वजनिक कालेज में अंग्रेजी और गुजराती के प्राध्यापक हो गये। वहाँ कई वर्षों तक आप रहे और वहाँ से अवकाश ग्रहण करने पर अब आप 'चुनीलाल गांधी रिसर्च इन्स्टीटचूट' के डाइरेक्टर हैं। आपने पहले 'गुजरात', 'कौमुदी' और अन्य पत्रों में लिखना आरंभ किया। इनके प्रिय विषय हैं, काव्य, चिन्तनात्मक साहित्य, साहित्यिक आलोचना तथा भाषा शास्त्र। आपकी आलोचनाएँ और समीक्षाएँ अध्ययन पूर्ण और विचारप्रधान होती हैं। इनकी भाषा सुव्यवस्थित, शुद्ध एवं उपयुक्त किन्तु कुछ कठिन होती है। इनका पांडित्य और अध्ययन तत्काल पाठक को आकर्षित कर लेता है। एक आलोचक की दृष्टि से आपका स्थान बहुत ऊँचा है और वर्तमान आलोचकों में तो आप सर्वश्रेष्ठ हैं। अभी हाल ही दिसंबर १९६१ में कलकत्ता में होनेवाले गुजराती साहित्य परिषद् के अधिवेशन के आप अध्यक्ष चुने गए थे। अध्यक्षीय पद से आपने अत्यन्त सारगर्भित और अध्ययनपूर्ण भाषण दिया था, जिसमें आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियों पर अच्छा प्रकाश पड़ता था। इनके ग्रंथ हैं—विवेचना, परिशीलन, अर्वाचीन चिन्तनात्मक गद्य और भावना सृष्टि। अंग्रेजी तथा संस्कृत साहित्य का आपने अच्छा अध्ययन किया है। आप के ही कथनानुसार आप पर गोवर्धनराम का बहुत अधिक प्रभाव है। प्रकृति से आप चिन्तनशील हैं और साहित्यिक आलोचनाओं में साहित्यिक सिद्धान्तों की सूक्ष्मता पर आप अधिक बल देते हैं। इनके 'अर्वाचीन चिन्तनात्मक गद्य' में आधुनिक गुजराती साहित्य के चिन्तनात्मक गद्य की शास्त्रीय ढंग से विवेचना की गयी है और यह बड़ा विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ है।

विश्वनाथ भट्ट

विश्वनाथ मगनलाल भट्ट औदीच्य ब्राह्मण हैं। इनका जन्म १८९८ में भावनगर के पास हुआ था। अंग्रेजी और संस्कृत विषय लेकर आपने बी. ए. पास किया, फिर १९२० के आंदोलन तथा 'भरुच केलवणी मंडल' में भाग लिया। उसके बाद साहित्यिक गतिविधि के लिए इन्होंने विजयराय के 'कौमुदी सेवकगण' में प्रवेश किया। १९२६ में आपने गद्य नवनीत का सम्पादन किया। गुजराती वर्नाकुलर सोसाइटी ने आपको पारिभाषिक कोश तैयार करने का काम सौंपा। आलोचक के रूप में आप बहुत ऊँचे उठे और रामनाराण, विष्णु प्रसाद, विजयराम तथा अन्य आलोचकों की कोटि में आ गये। इनके कुछ आलोचनात्मक ग्रंथ हैं—साहित्यसमीक्षा, विवेचन मुकुर, निकषरेखा। रामनारायण और विष्णुप्रसाद के समान तो नहीं, फिर भी आप की शैली शिष्ट और पठनीय है। आपने 'नर्मदनु मंदिर' तथा निबंधमाला' का सम्पादन किया है। आप शैली की विशिष्टता को बहुत पसंद करते हैं। आप के कुछ अनूदित ग्रंथ भी बहुत अच्छे हैं, जैसे प्रेमनो दम्भ, लग्न सुख, स्त्री ठाने पुरुष आदि।

डोलरराम मांकड

डोलरराम रंगीलदास मांकड कच्छ के वडनगरा नागर हैं। इनका जन्म १९०२ में हुआ। आप पहले संस्कृत के प्राध्यापक थे, किन्तु बहुत दिनों से अब अलिया बाड़ा में एक कालेज चला रहे हैं, जो ग्रामीण क्षेत्र में एक प्रयोग के रूप में है। अलंकार शास्त्र और नाटच-शास्त्र के आप विशेष पंडित हैं और इन विषयों पर आपका अध्ययन बहुत गहन है। आपका ग्रंथ 'काव्य विवेचन' बहुत पांडित्यपूर्ण है। आपके पौराणिक तथा भारतीयता विषयक निबंधों में शास्त्रीय खोज का पता चलता है, साथ ही उनमें संतुलित विचार हैं। "भगवान नी लीला' आपकी धार्मिक कविता है। आपकी गणना कुछ उन गिने-चुने पंडितों में है जिन्होंने रसशास्त्र का बड़ी सूक्ष्मता से विधिवत् अध्ययन किया है।

रामप्रसाद वक्षी

रामप्रसाद वक्षी बहुत दिनों तक पोद्दार हाई स्कूल सांताक्रूज, बंबई में संस्कृत के अध्यापक तथा प्रधानाचार्य थे। अलंकार और रसशास्त्र के आप दूसरे महा-

पंडित हैं। दर्शन शास्त्र पर भी आपका अच्छा अधिकार है। इन तीनों विषयों के द्वारा आपने साहित्य सर्जन में अच्छा योग दिया है।

धनसुखलाल कृष्णलाल मेहता

धनसुखलाल हास्यरस के प्रमुख लेखकों में से हैं। आपने उपन्यास, कहानियां, नाटक, अनुवाद ग्रंथ, आलोचनाएँ, रूपान्तर और आत्मचरित लिखा है तथा हास्यपूर्ण प्रसंगों का वर्णन किया है। ज्योतीन्द्र दवे के साथ मिलकर आपने 'अमे बधां' लिखा है। हास्यविहार, विनोदविहार, वार्ताविहार आदि आपके उपन्यास हैं और छेल्लोकाल आदि कहानियां हैं। 'धूम्रसर' गुलाबदास ब्रोकर के सहयोग में आपने लिखा है। 'सरोजनुं सूरत' में प्राचीन सूरत की कहानी है। आपने मोलियर के नाटकों का, शेरलाक होम्ज़ की जासूसी कहानियों का तथा मेटरलिंक के निबंधों का अनुवाद भी किया है। अनुवादों एवं रूपान्तरों के अतिरिक्त हास्यरस का मौलिक साहित्य भी आपने प्रदान किया है। आप का व्यंग्य कटु अथवा आक्षेपयुक्त नहीं होता। समाज के मध्यमवर्गीय लोगों की दशा पर आपका व्यंग्य अधिक प्रकाश डालता है। ये अतिशयोक्ति द्वारा नहीं, वरन् वास्तविक घटना से हास्य उत्पन्न करने की चेष्टा करते हैं।

बटुभाई उमवाड़िया

बटुभाई एकांकी नाटक लिखने के लिए प्रसिद्ध हैं। 'बटुभाईनां नाटको' में इनके एकांकी संगृहीत हैं। इनके नाटक 'लोमहर्षिणी' का पाठक-जगत में बहुत बड़ा स्वागत हुआ। 'मत्स्यगंधा' और 'गांगेय' में मत्स्यगंधा और भीष्म के आख्यान बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से वर्णित हैं, किन्तु पात्र पौराणिक नहीं वरन्, आधुनिक लगते हैं। बटुभाई की लेखनी से हास्य की फुलझड़ियां भी निकली हैं और इनके पात्र सजीव हैं। इनके 'शकुन्तला रस दर्शन' तथा 'मालादेवी' को विशेष ख्याति मिली है। 'कीर्तिदाने कमलना पत्रो' में इन्होंने गुजराती के साहित्य और इतिहास पर पत्रशैली में विचार किया है। इनके कुछ निरीक्षण बड़े तीव्र और प्रभावोत्पादक हैं। आपने आधुनिक कहानियों के दो संग्रह भी उपस्थित किये हैं। नाटक लिखने में, नवीन विचार प्रस्तुत करने में, सहसा

दिशा परिवर्तन करने में और विषयों की विविधता में आपने इब्सन की शैली ग्रहण की है। आपके नारी पात्र चित्ताकर्षक और संवाद-प्रभावमय होते हैं। आप वातावरण को कल्पना द्वारा मनोरम बना देते हैं। आप सर्वप्रथम एकांकी लिखनेवाले हैं और सफल एकांकी-लेखकों में से एक हैं।

लीलावती मुन्शी

लीलावती मुन्शी एक सफल लेखिका हैं, जिनकी अपनी निजी शैली है। 'जीवनमांथी जडेली' में आपकी कहानियां हैं; जिनमें सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। आपकी अंतर्दृष्टि अत्यन्त गहन और मनोवैज्ञानिक है, जिससे नर-नारियों के जीवन की कठिनाइयों को आप बहुत शीघ्र भांप लेती हैं। आपने विविध विषयों पर लिखा है, विशेषकर नारियों की दुर्दशा और सामाजिक असमानता पर। इनके नाटक 'कुमारदेवी' में गुप्तवंश की सम्राज्ञी—जो चन्द्रगुप्त प्रथम की जीवनसंगिनी बनी—का चरित्र अत्यन्त सबल, प्रेरक, महत्त्वाकांक्षी और मनोरम है।

इनकी शैली सादी है, फिर भी उसमें एक आभा है। पहले आपका जीवन सीमित क्षेत्र में बीता, किन्तु श्री क० मा० मुन्शी के साथ विवाह होने के बाद दोनों को कला, साहित्य, सामाजिक कार्य, शिक्षा और राजनीतिक क्षेत्र में बहुत सफलता मिली और इनका मिलन अत्यन्त आनन्ददायी सिद्ध हुआ। विवाह के बाद आपने अपना ध्यान संसद, भारतीय विद्या भवन, स्त्री सेवासंघ-जैसी संस्थाओं के विकास की ओर केन्द्रित किया। आपने निगम, विधानसभा और संसद में भी बड़ी लगन से काम किया। प्रदर्शनी, नाटक, संगीत, कला और साहित्य द्वारा आपने जनता की सौंदर्य-भावना जगाने का प्रयास किया। भारतीय विद्याभवन के कलाकेन्द्र का सफल संचालन आपने कई वर्षों तक किया। 'रेखाचित्रों अने बीजा लेखों' में आपने छोटे वाक्यों और सीधी शैली में अपनी अंतर्दृष्टि का उपयोग करते हुए अच्छे शब्द-चित्र प्रस्तुत किये हैं।

अध्याय २३

उन्नीसवीं शताब्दी के कुछ अन्य साहित्यकार

पंडित गट्टूलालजी——इनका जन्म १८०१ में जूनागढ़ में हुआ था। ये तैलंग ब्राह्मण थे। ९ वर्ष की अवस्था में ये अंधे हो गये थे। संस्कृत साहित्य और शास्त्रों के आप प्रकांड पंडित थे। इन्हें भारत मार्तण्ड की पदवी प्राप्त हुई थी। आप आशुकवि थे। संस्कृत और गुजराती में इन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे। इनकी मृत्यु पर इनकी पत्नी ने बोलना छोड़ दिया और दूसरे दिन उनकी भी मृत्यु हो गयी।

हरजीवन कुबेरजी त्रवाड़ी–ऋषिराय——(१८३५–१९२७) ने दलपत-राम की शैली में अनेक प्रसिद्ध भजनों की रचना की, जिसमें काव्यत्व अच्छा है।

वल्लभजी हरिदत्त आचार्य——(१८४०) की रुचि शोध भारतीय संस्कृति की ओर अधिक थी। आपने गुजराती और संस्कृत में अनेक कविताएँ लिखी हैं तथा कुछ संस्कृत ग्रंथों और स्तोत्रों का गुजराती में अनुवाद किया है।

अनवरमियां काजी (ज्ञानी)——(१८४३–१९१६) ने गुजराती में कई पद और गरबियां लिखी हैं। आपने उर्दू में भी कविताएँ लिखी हैं, जो दार्शनिक और भक्तिरस प्रधान हैं। इनकी रचनाएँ सूफीमत की भाषा में प्रेमरूपा भक्ति का प्रतिपादन करती हैं।

लालशंकर उमियाशंकर——(१८४५) एक सार्वजनिक कार्यकर्ता, समाज-सुधारक और शिक्षा-शास्त्री थे। इनकी ख्याति लेखक के रूप में न होकर एक गणितज्ञ के रूप में विशेष है यद्यपि इन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं।

भाईशंकर नाना भाई भट्ट——(१८४५) आप एक सफल वकील थे। आपने अनेक नाटक और कहानियाँ लिखी हैं।

हरिकृष्णलाल शंकर दवे——सूरत के वडनगरा नागर थे। इनका जन्म १८४९ में हुआ था। ये राजकोट में राजकुमार कालेज के प्राध्यापक थे, जहाँ

सौराष्ट्र के अनेक भावी शासकों ने इनसे शिक्षा पायी थी। वे सब इनका बड़ा आदर करते थे। कुछ के तो जीवन भर आप पथ-प्रदर्शक रहे। इनके शिष्य गोंडल के राजा ने इनसे गोंडल में बस जाने की प्रार्थना की थी। इन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें गोंडल का इतिहास भी सम्मिलित है। गोंडल के राजा भगवतसिंहजी तथा उनकी रानी के आप साहित्य-गुरु थे। आपने सौराष्ट्र के शासकों को प्रेरित किया था कि वे दादाभाई नौरोजी की आर्थिक सहायता करें, जिससे दादाभाई का चुनाव ब्रिटिश पार्लियामेंट में हो सके। नृसिंहाचार्य, नाथूराम शर्मा, मणिलाल तथा दूसरों की भाँति ये भी सनातनी मत के थे। ग्रंथ-रचना के अतिरिक्त ये अखिल भारतीय ख्याति–प्राप्त संन्यासिगण के पोषक बन गये, जो भारतीय संस्कृति का प्रचार कर रहे थे। उनमें से मुख्य थे--कृष्णानंद, ब्रह्मानंद, प्रज्ञानानन्द और आनन्दाश्रम। इनके लिए आपने वाराणसी में एक मठ की स्थापना की और कृष्णानंद के ग्रंथ 'विचारत्रयी' का सम्पादन किया, जो धर्म और दर्शन का मौलिक, शोधपूर्ण और पांडित्यपूर्ण ग्रंथ है। लोकमान्य तिलक ने अपनी गीता लिखने में इस ग्रंथ का आभार स्वीकार किया है।

अरजुन भगत--(१८५०–१९००) का ग्रामीण भाषा पर अच्छा अधिकार था। इन्होंने सीधी-सादी किन्तु प्रभावपूर्ण भाषा में अनेक कविताएँ लिखी हैं।

छोटालाल नरभेरामभट्ट--(१८५०) संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। बड़ौदा की प्राचीन काव्य माला से आपका सम्बन्ध था। आपने गुजराती में कई मौलिक ग्रंथ लिखे हैं तथा संस्कृत के दर्शन, आयुर्वेद और ज्योतिष विषयक ग्रंथों का अनुवाद भी किया है।

इन्दिरानंद ललितानंद पंडित--(१८५१) नर्मद और दयानन्द से अधिक प्रभावित थे। इन्होंने कुछ काव्य ग्रंथों की रचना की है, जो द्वितीय कोटि के हैं। आपने कुछ धार्मिक पुस्तकें भी लिखी हैं।

श्री मन्नृसिंहाचार्यजी--विस नगरा नागर का जन्म १८५४ में सूरत जिले के कडोद में हुआ था। आपने श्रेयः साधक वर्ग की स्थापना की, जिसकी ओर बहुत-से शिक्षित व्यक्ति आकर्षित हुए। अपने महान् व्यक्तित्व, आत्मिक बल, धर्म सम्बन्धी गहन अध्ययन, दर्शन, योग और मन्त्रशास्त्र के बल पर आप

वह शक्ति पुंज बन गये, जिसने नवशिक्षितों में आयी हुई अविश्वास की लहर को समाप्त कर दिया तथा गुजरात की जनता के हृदयों में आर्य धर्म और संस्कृति के प्रति फिर विश्वास उत्पन्न कर दिया। इन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे हैं, जैसे भामिनी-भूषण, त्रिभुवन विजयी खड्ग, नृसिंहवाणी विलास, सिद्धान्त सिन्धु आदि। ४३ वर्ष की अल्पायु में इनका देहान्त हो गया। इनके सुन्दर कार्य को इनके बाद छोटालाल जीवणलाल ने चालू रखा। श्रेयः साधक वर्ग ने 'महाकाल' जैसे अनेक धार्मिक और दार्शनिक पत्रों का सम्पादन किया। छोटालाल के बाद नृसिंहाचार्य के पुत्र भगवान् उपेन्द्राचार्य और उपेन्द्राचार्य की पत्नी जयन्तीदेवी द्वारा ये कार्य आगे बढ़ाये जाते रहे। इन्होंने तथा इनके शिष्यों ने गुजरात को अनेक धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथ प्रदान किये।

कमलाशंकर प्राणशंकर त्रिवेदी—वडनगरा नागर ब्राह्मण का जन्म सूरत में १८५७ में हुआ था। आप अहमदाबाद के प्रेमचंद रामचन्द्र ट्रेनिंग कालेज के प्रिंसिपल थे। आपने परम्परागत और आलोचनात्मक दोनों प्रणालियों से अपना संस्कृत का अध्ययन बढ़ाया और अनेक शास्त्रों के, विशेषकर व्याकरण के, आरूढ़ पंडित हो गये। आपने गुजराती वाचनमाला तैयार की और 'काव्य साहित्यमीमांसा' तथा 'अनुभव विनोद' आदि ग्रंथ लिखे। आपने संस्कृत के कुछ ग्रंथों का समीक्षात्मक सम्पादन किया, जैसे भट्टि काव्य, रेखागणित, एकावली, प्रतापरुद्रीय, षड्भाषाचन्द्रिका और प्रक्रिया कौमुदी। आप वेदान्त के अच्छे ज्ञाता थे और शंकर के सूत्र भाष्य की गुजराती में टीकाएँ लिखी हैं। आपने इंग्लैंड का इतिहास लिखा है। आपने गुजराती भाषा का बृहद् व्याकरण लिखा था, जो अब भी बी० ए० और एम० ए० के पाठ्यक्रम में है। भावनगर में १९२४ में होनेवाले गुजराती साहित्य परिषद् के अधिवेशन के आप अध्यक्ष चुने गये थे। अनेक शास्त्रों के पंडित के रूप में आप का मान पूरे प्रान्त में था और आपकी गणना सर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर के साथ होती थी।

डाह्याभाई पीताम्बरदास देरासरी—एक विसनगरा नागर ब्राह्मण थे, जिनका जन्म सूरत में १८५७ में हुआ था। आपने कई ग्रंथों का अनुवाद किया तथा कुछ मौलिक ग्रंथ भी लिखे। आपने गुजराती साहित्य का इतिहास 'साठीनुं साहित्य' लिखा और 'कहान उदे प्रबंध' का समीक्षात्मक सम्पादन किया तथा

सादी और सुपठनीय भाषा में काव्यानुवाद भी किया। आपने 'पौराणिक कथा कोष' की रचना की। आपकी कविताएँ 'बुलबुल' और 'चमेली' में संगृहीत हैं। आपकी कविताओं में मधुरता है तथा गेय हैं।

छगनलाल ठाकोरदास मोदी—सूरत के दशादिशावाक वणिक् हैं, जिनका जन्म १८५७ में हुआ था। आप उन्नति करके बड़ौदा के विद्याधिकारी के पद पर पहुँच गये। आपने कई ग्रंथ लिखे हैं, जैसे इरावती, नलाख्यान (सटीक) आदि। 'बृहत्काव्य दोहन' के कई भागों का सम्पादन करने में आप इच्छाराम सूर्यराम देसाई के सहयोगी थे। आप शिक्षा प्रेमी थे। सूरत का महिला विद्यालय आपकी ही प्रेरणा से स्थापित हुआ था। सूरत के एम० बी० बी० आर्ट्स कालेज को एक बड़ी रकम दान करने के लिए आपने अपने भाई मगनलाल को प्रेरित किया था। यह कालेज अब बहुत बड़ी संस्था के रूप में हो गया है।

श्रीमान् नाथूराम शर्मा—औदीच्य सहस्र ब्राह्मण थे। इनका जन्म लीमडी के पास मोजीदंड में १८५८ में हुआ था। आपने सौराष्ट्र के बीलखा में एक आश्रम की स्थापना की थी। आपके बाद आपके शिष्यों द्वारा अनेक आनन्दाश्रमों और श्रीनाथ मन्दिर की स्थापना हुई। आप संस्कृत साहित्य, योग, वेदान्त और अध्यात्म विद्या के अच्छे पंडित थे। आपने अनेक ग्रंथ लिखे और सार्वजनिक सभाओं में भाषण दिये। गुजरात की जनता की धार्मिक प्यास बुझानेवाले कुछ विशिष्ट व्यक्तियों में से आप एक हैं। गुजरात भर में आपके शिष्य थे। एक महा आचार्य के रूप में आपका आदर था। आप के ग्रंथों की संख्या लगभग १०१ है, जो विविध विषयों पर हैं, जैसे धर्म, दर्शन, योग और वेदान्त।

गोकुलजी झोला—जूनागढ़ के दीवान तथा गौरीशंकर झोला भावनगर के दीवान थे। दोनों वडनगरा नागर ब्राह्मण थे। दोनों वेदान्ती ज्ञानी, चरित्रवान्, शिक्षा-प्रेमी और महान् व्यक्ति थे। आगे चलकर गौरीशंकर संन्यासी हो गये थे।

छगनलाल हरिलाल पंड्या—नडियाद के वडनगरा नागर ब्राह्मण थे, जिनका जन्म १८५९ में हुआ था। आपने बाण की कादम्बरी का गुजराती (गद्य) में अनुवाद किया था। इस ग्रंथ के कई संस्करण निकले और इसका बड़ा सम्मान हुआ। आपके और भी कई ग्रंथ हैं।

मान शंकर पीताम्बरदास महतो—भावनगर में कुंडला के वडनगरा नागर थे। इनका जन्म १८६३ में हुआ था। आपने नागरोत्पत्ति तथा मेवाड़ना गुहिलो पर एक अध्ययनपूर्ण ग्रंथ लिखा है। आपने वेदान्त के कई ग्रंथों का अनुवाद भी किया है और कई मौलिक ग्रंथ भी लिखे हैं।

रणछोड़दास वृन्दावनदास पटवारी—(१८६४) पुष्टिमार्ग के प्रबल समर्थक थे और सम्प्रदाय साहित्य के कई ग्रंथ लिखे हैं।

त्रिभुवन प्रेमशंकर त्रिवेदी—(१८६५) जिनका दूसरा नाम 'मस्त कवि' था विभावरी स्वप्न, मित्रनो विरह, स्वरूप पुष्पांजलि और कलापी नो विरह के लेखक हैं।

जीवणलाल लक्ष्मीराम दवे—(१८६४) जो जटिल नाम से प्रसिद्ध थे—भी 'कलापी' के मित्र थे। आपने कुछ गीतों की रचना की है और भामिनी-विलास का अनुवाद किया है।

रामचन्द्र रवी भाई पचाण—श्रीमद्‌राजचन्द्र के नाम से विख्यात थे। इनका जन्म १८६७ में हुआ था। आरंभ से ही आप की प्रवृत्ति अध्यात्मविद्या की ओर थी। आपने जैन दर्शन का अध्ययन किया था। आपकी स्मरणशक्ति असाधारण थी। महात्मा गांधी आपसे बहुत प्रभावित थे। आपने प्रौढ़, शिष्ट तथा संस्कृतमय शैली में, साथ ही छोटे-छोटे वाक्यों में, कई मौलिक ग्रंथ लिखे हैं। ३३ वर्ष की अल्पायु में आपका देहान्त हो गया। आप कुछ इने-गिने दार्शनिकों और कवियों में हैं।

भानुसुखराम निगणराम मेहता—(१८६७) ने मध्यकालीन गुजराती साहित्य के कुछ ग्रंथों का सम्पादन किया और वैज्ञानिक विषयों पर बहुत-कुछ लिखा। किन्तु इनका प्रधान कार्य है 'गुजराती-इंगलिश कोश', जिसे इन्होंने अपने पुत्र भरतराम के सहयोग से पूरा किया था।

मनु भाई नन्द शंकर मेहता—(१८६८) बहुत समय तक बड़ौदा के दीवान रहे थे। आप शिक्षा-प्रेमी थे। इनका शिक्षा-प्रेम इनके विद्वत्तापूर्ण भाषणों से प्रकट होता है। आपने हिन्द राजस्थान और प्रमाणशास्त्र पर भी लिखा है।

कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी—(१८६८) जीवन भर अनेक शिक्षा-संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित रहकर सक्रिय योग देते रहे।

१९३३ में लाठी में होनेवाले गुजराती साहित्य परिषद् के अधिवेशन के आप अध्यक्ष चुने गये थे। मृत्यु पर्यंत आप परिषद् के सभी अधिवेशनों में उपस्थित रहे। आप बंबई के स्माल काजेज़ कोर्ट के चीफ़ जज तथा हाईकोर्ट के एक जज थे। अन्य फारसी और बँगला के प्रकांड पंडित थे। आपने अनेक ग्रंथ लिखे तथा सम्पादित किये और फारसी-बंगाली के कई महत्वपूर्ण ग्रंथों का अनुवाद भी किया। कई वर्षों तक 'माडर्न रिव्यू' में आप गुजराती पुस्तकों की समीक्षा बराबर करते रहे। आपने गुजराती साहित्य का इतिहास अंग्रेजी में ३ खंडों में लिखा है। आप अंत तक नवीन तथा प्राचीन का योग-सूत्र बने रहे।

किलाभाई घनश्याम भट्ट––(१८६९) ने 'मेघदूत', 'विक्रमोर्वशीय' तथा 'पार्वती परिणय' का ललित गुजराती में अनुवाद किया।

मणिलाल छेबाराम भट्ट––(१८७०) का सम्बन्ध अनेक पत्रों से था।

अमृतलाल सुन्दरजी पढियार––(१८७०) ने साधारण पाठकों के लिए बहुत सरल भाषा में कई पुस्तकें लिखी हैं। इनमें से कई के शीर्षक 'स्वर्ग' शब्द से आरंभ होते हैं, जैसे स्वर्गनी कुंची, स्वर्गनी सीढ़ी आदि। आप एक बड़े सामाजिक कार्यकर्ता भी थे।

नर्मदा शंकर देवशंकर मेहता––(१८७१) दर्शन शास्त्र के महापंडित थे और २ खंडों में 'हिन्द तत्त्वज्ञान नो इतिहास' लिखा है। आपने शक्ति संप्रदाय पर भी एक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ लिखा है और अखो के ग्रंथों का सम्पादन किया है।

दीपक बा देसाई––(१८७१) पेटलाद की बडनगरा नागर महिला थीं। इनकी कविताएँ इनके 'स्तवन मंजरी' और 'खंडकाव्यो' में संगृहीत हैं और 'संजीवनी' में इन्होंने मराठी नाटक 'विद्याहरण' का रूपान्तर प्रस्तुत किया है।

हरगोविन्द प्रेमशंकर त्रिवेदी––(१८७२) मस्त कवि त्रिभुवन प्रेमशंकर के छोटे भाई थे। आपने 'शिवाजी अने ज़ेबुन्निसा' और 'काठियावाड़नी जूनी वातो' पुस्तकें लिखी हैं तथा कुछ गीत एवं खंडकाव्यों की रचना की है।

राममोहनराव जसवन्तराय देसाई––(१८७३) कई वर्षों तक महिलाओं की पत्रिका 'सुन्दरी सुबोध' के सम्पादक थे। आपने कहानियाँ, उपन्यास, कविताएँ और रास लिखे हैं। आपके दो उपन्यास 'योगिनी' और 'बाला' तथा कविता-संग्रह 'तरंगावलि' अधिक प्रसिद्ध हैं।

मगनलाल गणपतराम शास्त्री--(१८७३) डेकन कालेज, पूना में संस्कृत के प्राध्यापक थे तथा पुष्टि मार्ग के अच्छे विद्वान् थे। आपने संस्कृत के अनेक ग्रंथों का संपादन तथा अनुवाद किया है और वल्लभ संप्रदाय के ३० से अधिक ग्रंथों का समीक्षात्मक संपादन किया है, जिनमें इनकी विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनाएँ भी हैं।

कौशिकराम विघ्नहरराम मेहता--(१८७४) धर्म तथा दर्शन के अच्छे ज्ञाता थे। आपने 'सर्वयान' ग्रंथ लिखा है। 'महाकाल' और अनेक अन्य पत्रों में आप के लेख प्रकाशित होते थे।

भिक्षु अखण्डानन्द--(लल्लूभाई जगजीवन ठक्कर)--का जन्म बोरसद में १८७४ में हुआ था। आप १९०४ में संन्यासी हो गये। साधारण जनता के लाभ के लिए आप बहुत सस्ते दामों में पुस्तकें प्रकाशित करने लगे। कुछ समय बाद आपका प्रयास 'सस्तुं साहित्य वर्धक कार्यालय' के रूप में परिणत हुआ, जिसने समूचे गुजरात में ज्ञान तथा शिक्षा के प्रचार की अद्भुत सेवा की है। आपने कुछ अच्छी पुस्तकें चुनीं और उन्हें सबके लिए सुलभ कर दिया। अपने सतत प्रयास, सच्ची लगन और व्यावहारिक ज्ञान के कारण सस्ती पुस्तकों द्वारा जन-सेवा करने में आपको महान् सफलता मिली।

मुनि बुद्धिसागर--(१८७४) ने 'अध्यात्म ज्ञान प्रसारक मंडल' की स्थापना की और अनेक ग्रंथों का प्रकाशन किया, जिनमें भजन, धर्म और दर्शन की पुस्तकें सम्मिलित हैं। आपने गुजराती तथा संस्कृत के अनेक जैन-ग्रंथों का सम्पादन भी किया।

भोगीन्दराव रतनलाल दिवेटिया--(१८७५) एक उपन्यासकार के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं। आपके दो उपन्यास 'मृदुला' तथा 'उषाकान्त', जिनमें गुजरात के नारी-जीवन का चित्रण है, आपको प्रकाश में ले आये। आपने कई सामाजिक उपन्यास प्रदान किये हैं, जिनमें समाज की वर्तमान प्रमुख समस्याओं पर विचार किया गया है। ४२ वर्ष की आयु में आपका देहान्त हो गया।

विद्यागौरी रमणभाई नीलकंठ--(१८७६) का विवाह छोटी अवस्था में रमणभाई के साथ हो गया था, किन्तु विवाह के बाद भी आपने पढ़ाई बंद नहीं की और बी० ए० पास होनेवाली गुजरात की प्रथम महिला होने का गौरव

प्राप्त किया। अपने पति के साथ आप साहित्य-सेवा करने लगीं। इनकी बहन शारदा बहन सुमन्तराय मेहता ने भी बी० ए० पास किया। इन दोनों बहनों ने कालेज जानेवाली लड़कियों के लिए मार्ग खोल दिया। दोनों ने शिक्षा तथा समाज की अच्छी सेवा की है। विद्यागौरी १९४३ में बड़ौदा में होनेवाले 'गुजराती-साहित्य-परिषद' के अधिवेशन की अध्यक्षा चुनी गयी थीं।

मगनभाई चतुरभाई पटेल––(१८७६) धर्म तथा दर्शन के अच्छे विद्वान् थे। आपने उपनिषद-ज्योति, गीता ज्योति तथा ब्रह्म मीमांसा ज्योति नामक ग्रंथ लिखे, शाकुन्तल का अनुवाद किया तथा कुसुमांजलि आदि में कविताएँ लिखीं।

हाजी महम्मद अलारखिया शिवजी––(१८७७) की रुचि सचित्र कलात्मक पत्रिका निकालने की ओर थी। १९१४ में आपने 'बीसमी सदी' आरंभ की, जो बहुत उच्चकोटि की थी। आपने इस पत्रिका को असाधारण स्तर की बनाया, भले ही ऐसा करने में आप निर्धन हो गये। अपने लेखों के अतिरिक्त आपने कई ग्रंथों का अनुवाद भी किया है। १९२१ में आपकी मृत्यु हो गयी। आपके मित्रों ने 'हाजी महम्मद स्मारक ग्रंथ' प्रकाशित किया।

हिम्मतलाल गणेशजी अंजारिया––(१८७७) ने अंग्रेजी काव्य-संग्रह 'गोल्डेन ट्रेज़री' की भांति गुजराती कविताओं का संग्रह प्रकाशित किया, जो बहुत प्रसिद्ध हुआ। आपने 'साहित्य प्रवेशिका' नाम से गुजराती साहित्य का संक्षिप्त इतिहास लिखा। 'कविता प्रवेश' तथा 'संगीत मंजरी' भी आपकी पुस्तकें हैं और हाईस्कूल के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी कुछ और पुस्तकें भी आपने लिखीं।

मुनि मंगल विजय––(१८७७) ने धर्म और दर्शन सम्बन्धी अनेक पुस्तकें गुजराती तथा संस्कृत में लिखीं और प्रकाशित कीं।

वाडीलाल मोतीलाल शाह––(१८७८) एक गंभीर चिंतक थे। आपने तीन पत्रों का सम्पादन किया और ३५ वर्षों तक साहित्य-सेवा करते रहे। आपने स्वतंत्र चिंतन से युक्त कई मौलिक एवं श्रेष्ठ ग्रंथ लिखे हैं। 'एक', 'आर्य धर्म', 'मृत्युना म्होंमां', 'मस्तविलास', 'जैन दीक्षा' आदि आपके कुछ परिपक्व ग्रंथ हैं।

हरिप्रसाद व्रजराय देसाई--(१८७९) ने कहानियाँ तथा जीवन चरित लिखे हैं। स्वास्थ्य और औषधि आप का मुख्य विषय था। आपने लगभग ८ ग्रंथों का प्रकाशन भी किया है।

पुरुषोत्तम विश्राम मावजी--(१८७९) प्राचीन इतिहास, कला तथा भारतीय शास्त्रों के अच्छे पंडित थे। कला, हस्तलिपियों तथा पुरातन वस्तुओं का एक असाधारण संग्रहालय आपने बनाया था। आपने धनी व्यक्तियों के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित किया। आपने 'सुवर्णमाला' नाम की एक पत्रिका आरंभ की, जिसमें बड़े कलात्मक चित्र रहते थे। आपने कुछ पुस्तकें तथा कहानियाँ भी लिखी हैं, जिनका मुख्य विषय इतिहास है।

पंडित सुखलाल संघजी संघवी--(१८८०) बचपन में ही अंधे हो गये थे, फिर भी बड़ी कठिनाई से आपने संस्कृत और दर्शन शास्त्र का अध्ययन किया और कई शास्त्रों के आरूढ़ पंडित हो गये। आप हिन्दू-विश्व-विद्यालय तथा भारतीय-विद्या-भवन में दर्शन विभाग के अध्यक्ष थे। आपने जैन-दर्शन-शास्त्र के कई ग्रंथों का समीक्षात्मक संपादन किया है, जिनमें इनकी विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियाँ तथा प्रस्तावनाएँ हैं। आप यद्यपि जैन हैं; किन्तु आप के विचार उदार और पुरातन हैं। आपने प्रायः सभी शास्त्रों का सूक्ष्म अध्ययन किया है और उनपर अधिकार प्राप्त किया। आपके निबंधों का संग्रह कई भागों में हुआ है। आप अखिल भारतीय ख्याति के एक उच्च दार्शनिक एवं विद्वान् हैं।

प्रहलाद चन्द्रशेखर दिवानजी--(१८८१) भारतीय शास्त्रों तथा शोध के अच्छे विद्वान् थे। आपने कई विद्वत्तापूर्ण विस्तृत निबंधों का प्रकाशन किया तथा 'सिद्धान्त बिन्दु' का संपादन किया है। आपने 'भगवद्गीता' की शब्द-सूची भी तैयार की। 'रश्मि कलाप' में आपके गुजराती निबंध संगृहीत हैं।

चिमनलाल डाह्याभाई दलाल--(१८८१) बड़ौदा के पुस्तकालय विभाग में थे। आपने कई दुष्प्राप्य तथा बहुमूल्य पांडुलिपियों का संग्रह किया। जैन-भांडार की हस्तलिपियों की तालिका बनाने के लिए आपकी नियुक्ति पाटन में हुई थी। आपके शोध-कार्य के कारण ही अनेक महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित पुस्तकें प्रकाशित हुईं तथा संस्कृत, अपभ्रंश और पुरानी गुजराती के कई ग्रंथों का पता चला। इनमें से कई का संपादन आपने किया। आपने जैसलमेर,

सिरोही, बीकानेर, जोधपुर आदि के भांडारों का भी अवलोकन किया। आपने 'गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज' के कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का, 'प्राचीन गुर्जर-काव्य-संग्रह' और 'वसन्त विलास' का सम्पादन किया तथा पाटन और जैसलमेर आदि पुस्तकालयों का सूचीपत्र तैयार किया।

गिरिजाशंकर वल्लभ जी आचार्य--(१८८१) बंबई के 'प्रिंस आफ़ वेल्स' संग्रहालय के क्यूरेटर थे। आपने अनेक शोधपूर्ण निबंधों तथा 'गुजरातना ऐतिहासिक लेखो' का प्रकाशन किया।

जयसुखराम पुरुषोत्तम राय जोमीपुरा--(१८८१) बड़ौदा के शिक्षा-विभाग में थे। आपने 'सयाजी साहित्य माला' तथा 'बाल-साहित्यमाला' के विकास में अच्छी सहायता की। आपने वैज्ञानिक शब्द-संग्रह तैयार किया। आपने कुछ मौलिक ग्रंथ लिखे और कुछ का अनुवाद किया।

जयेन्द्रराय भगवानलाल दूरकाल--(१८८१) पहले एक पत्रकार थे, फिर सूरत में अंग्रेजी तथा गुजराती के प्राध्यापक हो गये। इनकी माता जसबा अच्छी कवयित्री थीं, जिन्होंने वेदान्त सम्बन्धी अनेक पदों की रचना की थी। जयेन्द्रराय की रुचि धार्मिक कामों की ओर अधिक थी। आपकी कविताएँ 'झरणां राठां अने ऊन्हां' में संगृहीत हैं। किन्तु सरल निबंध लिखने में आप अधिक कुशल थे और ऐसे निबंधों के कई संग्रह प्रस्तुत किये, जैसे 'थोडांक छुट्टा फूल', 'पोयणा' आदि। आपकी शैली शुद्ध, मधुर और मृदुलहास्य, प्रखर बुद्धिमत्ता तथा व्यंग्य से युक्त है। आप प्राचीनता के कट्टर पक्षपाती थे और साहित्य, धर्म तथा शिक्षा के विषय में आपने बहुत लिखा है।

सूर्य कृष्ण हरिकृष्ण दवे--(१८८१) ने गुजराती में अनेक पद तथा संस्कृत में कई स्तोत्र लिखे ह। आप एक प्रमुख वैद्य थे। आपने ऋग्वेद संहिता को विधिवत् सस्वर कंठाग्र किया था। भक्तिसाहित्य और वेदान्त के आप अच्छे ज्ञाता थे।

हीरालाल त्रिभुवनदास पारिख--(१८८२) कई वर्षों तक गुजरात-वर्नाकुलर-सोसाइटी तथा गुजरात-साहित्य-सभा से संबंधित थे। बुद्धिप्रकाश में आप पुस्तकों की समीक्षा करते थे। आपने कई विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे, पुस्तकें लिखीं और सम्पादित कीं तथा 'ग्रंथ अने ग्रंथकार माला' तैयार की।

डुँगरसिंह धरमसिंह संपट––(१८८२) ने पत्रों में अध्ययनपूर्ण लेख लिखे, एक यात्रा-पुस्तक लिखी तथा कच्छ के व्यापार और नौका-उद्योग पर प्रकाश डाला।

रणजीतराम बाबा भाई मेहता––(१८८२) एक आदर्शवादी व्यक्ति थे, जिन्होंने अनेक साहित्यकारों को प्रोत्साहित किया। आप प्राचीन और अर्वाचीन को जोड़नेवाली कड़ी थे। आपने गुजराती-साहित्य-परिषद की रूपरेखा तैयार की और ठोस आधार पर उसे प्रस्तुत किया। आपने गुजरात की महत्ता की कल्पना की और अनेक कार्यकर्ताओं को योग देने के लिए प्रोत्साहित किया। पत्रों में आपने कई लेख लिखे। इनकी कहानियां तथा नाटक 'साहेबराम आदि कृत्यानो संग्रह' तथा 'रणजीतरामना निबन्धों' में संग्रहीत हैं। आपका देहान्त ३६ वर्ष की छोटी अवस्था में हो गया।

राजेन्द्र सोमनारायण दलाल––(१८८३) ने कुछ उपन्यास और नाटक लिखे हैं, जैसे 'विपिन', 'मोगल संध्या' आदि।

जगन्नाथ दामोदर त्रिपाठी––(१८८३) जो 'सागर' नाम से विख्यात थे, ने कलापी और अखो के ग्रंथों का सम्पादन किया है, जिनमें विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनाएँ लिखी हैं। आप कवि और दार्शनिक थे। आपने गज़लें लिखी हैं और गुजराती गज़लों के संग्रह का प्रकाशन 'गुजराती गज़लिस्तान' नाम से किया। आपकी गज़लों में सूफीमत और वेदान्त की झलक रहती थी। आपके अनुयायी अधिक संख्या में थे। उनकी संस्थाओं के लिए आपने कई छोटी-छोटी पुस्तकें लिखीं।

मोहनलाल पार्वती शंकर दवे––(१८८३) सूरत में संस्कृत के प्राध्यापक थ। आपने लैंडोर और मैक्डानल के 'संस्कृत-साहित्य का इतिहास' का अनुवाद किया और सी० बी० वैद्य के आलोचनात्मक ग्रंथ 'महाभारत' का भी। आपके साहित्यिक तथा आलोचनात्मक अन्य निबंध पुस्तकाकार प्रकाशित हैं। आपकी शैली ललित मधुर और संस्कृत-बहुल है और आपका विवेचन पांडित्यपूर्ण है।

विनायक नंदशंकर मेहता––(१८८३) ने अपने पिता का जीवनचरित 'नंदशंकरजीवन चरित्र' नाम से लिखा। आपने एक नाटक 'कोजागरी' और एक पुस्तक 'ग्रामोद्धार' भी लिखी।

चन्द्रशंकर नर्मदा शंकर पंड्या–(१८८४) ने कविताएँ, कहानियां, निबंध, आलोचनाएँ और जीवनियां लिखी हैं। आपकी कविताएँ 'स्नेहांकुर' और 'काव्य कुसुमांजलि' में संगृहीत हैं। आप एक सामाजिक कार्यकर्ता और कुशल वक्ता थे।

ठक्कुर नारायण विसनजी—(१८८४) का उर्दू और बंगाली आदि भाषाओं पर अच्छा अधिकार था। आपने अनेक सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे, जो गुजराती के लिए उपहार-ग्रंथ के अन्तर्गत थे। बाद में आपने 'हिन्दू गौरव ग्रंथ माला' के लिए लिखा। आपने कहानियां, नाटक, कविताएँ और धर्म तथा दर्शन-संबंधी पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनमें कुछ मौलिक हैं तथा कुछ अनुवाद। आपकी कृतियों की संख्या बहुत अधिक है। जब से मुन्शीजी ने लिखना आरंभ किया, तब से आपके उपन्यासों की ख्याति मंद पड़ गयी।

शंकरलाल मगनलाल पंड्या—(१८८४) का दूसरा नाम मणिकान्त भी था। आपने 'मणिकान्त काव्यमाला' 'गजल मां गीता', 'निर्भागी निर्मला' आदि ग्रंथ लिखे हैं। आपकी कविताएँ बहुत अधिक प्रसिद्ध हुईं।

गिजूभाई भगवान जी बधेला—(१८८५) नृसिंह प्रसाद भट्ट द्वारा आरंभ किये हुए 'दक्षिणापूर्ति बालभवन' में सम्मिलित हुए और इसका बाल-भवन बनाया, जो बाल-शिक्षा की एक आदर्श संस्था है। बालकोपयोगी अनेक पुस्तकें आपने लिखीं। आपके विश्वास, निस्वार्थ सेवा, विधिवत् कार्य तथा संयोजन ने इस आन्दोलन को अत्यन्त सफल बनाया। आपने 'वसंतमाला', 'बाल साहित्यमाला', 'मान्टेसरी शिक्षा प्रचारमाला' के अन्तर्गत पुस्तकें लिखीं तथा बच्चों के लिए अनेक कविताएँ, कहानियां आदि लिखीं और अंग्रेजी एवं मराठी की पुस्तकों का अनुवाद किया।

अतिसुखशंकर कमलाशंकर त्रिवेदी—(१८८५) बड़ौदा में दर्शन शास्त्र तथा गुजराती के प्राध्यापक थे और गारडा कालेज नवसारी के प्रिंसिपल। 'निवृत्ति विनोद', 'साहित्य विनोद' आदि में आपके निबंध संगृहीत हैं। आपने तर्कशास्त्र मनोविज्ञान, नीतिशास्त्र आदि विषयों पर अंग्रेजी एवं गुजराती में लिखा है। आपने लघु और मध्य व्याकरण लिखे तथा अपने पिता के 'बृहद-व्याकरण' का पुनः सम्पादन किया। आपने कई पत्र-पत्रिकाओं में लिखा है और विगत ५० वर्षों से एक प्रमुख शिक्षा-शास्त्री के रूप में हैं।

मोहनलाल दलीचंद देसाई—(१८८५) ने 'जैन गुर्जर कवियो' नामक ग्रंथ के ३ भागों में अनेक जैन लेखकों के ग्रंथों का सम्पादन किया है। साथ ही उनमें अपनी विद्वत्तापूर्ण भूमिकाएँ भी लिखी हैं। आपने 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' लिखा है, जो तद्विषयक जानकारी के लिए सर्वोत्तम पुस्तक है।

हरसिद्धभाई बजुभाई दिवेटिया—(१८८६) गुजरात विश्वविद्यालय के ९ वर्षों तक उपकुलपति रहे, साथ ही हाईकोर्ट के एक प्रमुख न्यायाधीश भी थे। आपने 'मानसशास्त्र' लिखा है। गीता सम्बन्धी आप की पुस्तक की बड़ी प्रशंसा हुई। अनेक पत्रों में आपने निबंध लिखे। आप एक महान् शिक्षा-प्रेमी हैं और आपका सम्बन्ध अनेक संस्थाओं से है।

शंकरप्रसाद छगनलाल रावल—(१८८७) कई वर्षों तक बंबई की फ़ार्बस-सभा में थे। आपने 'भांगेलूँ गामदडूँ' लिखा, जो गोल्ड स्मिथ के 'डिज़र्टेड विलेज' का अनुवाद है। 'दयाराम जीवन चरित्र' तथा 'प्रबोध बत्तीसी' भी आपकी लिखी पुस्तकें हैं। आपकी कविताओं का संग्रह 'कथा विहार' में हुआ है। पत्र-पत्रिकाओं में आपने विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे और क० मा० मुन्शी के सहयोग में साहित्य-संसद के लिए भी बहुत-कुछ लिखा।

मुनि विद्याविजय जी—(१८८७) एक अच्छे वक्ता थे। आपने जैनमत, भारतीय संस्कृति इतिहास पर कई पुस्तकें लिखी हैं। आपने कई पत्रों का सम्पादन किया है। आपका ऐतिहासिक ग्रंथ 'सूरीश्वर अने सम्राट' बहुत अधिक प्रसिद्ध हुआ और इसकी प्रशंसा भी बहुत हुई। इसमें जैनाचार्य हरिविजय सूरि और अकबर की परस्पर घनिष्ठता का वर्णन है। आपने लोगों को समयानुसार चलने की सलाह दी। आप प्रसिद्ध गुरु विजय धर्म सूरि के शिष्य थे।

मूलचन्द्र तुलसीदास तेलीवाला—(१८८७) वेदान्त के वल्लभ मत के अच्छे विद्वान् थे तथा सम्प्रदाय के अनेक संस्कृत ग्रंथ लिखे और सम्पादित किये। उनमें विद्वत्तापूर्ण भूमिकाएँ भी लिखीं तथा उनमें से कुछ ग्रंथों के अनुवाद किये।

मुनि जिन विजय जी—(१८८८) गुजरात विद्यापीठ, शान्तिनिकेतन तथा भारतीय विद्या भवन में थे और अब आप राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर में हैं। आपने प्रसिद्ध सिंधी जैन पुस्तक माला के ग्रंथों का सम्पादन किया है, अनेक पांडुलिपियों का संग्रह किया है तथा प्राकृत, अपभ्रंश, पुरानी गुजराती और

इतिहास तथा जैनमत के आप प्रमुख अधिकारी विद्वान् हैं। भारतीय धर्म तथा शोध के क्षेत्र में आपका सहयोग अनुपम है। आप कई ग्रंथों के लेखक तथा संपादक हैं। आप की खोजों से कई विषयों पर नवीन प्रकाश पड़ा है।

जीवणचन्द साकरचन्द ज़वेरी—(१८८८) ने 'आनन्द काव्य महोदधि' के ८ खंडों का सम्पादन किया है, जिससे गुजराती में बहुत अधिक जैन-साहित्य का समावेश हो गया है। उस विषय की जानकारी प्राप्त करने के लिए यह श्रेष्ठ ग्रंथ है तथा साहित्यिक दृष्टि से भी उत्तम है।

नृसिंहदास भगवानदास विभाकर—(१८८८) ने रंगमंच के लिए नाटक लिखे। पहला नाटक था 'सिद्धार्थ बुद्ध'। मुंबई-गुजराती-नाटक-मंडली ने इनके ५ नाटक अभिनीत किये तथा लक्ष्मीकान्त-नाटक-समाज ने एक। ये सभी जनप्रिय हुए। 'आत्मनिवेदन' आपके निबंधों का संग्रह है तथा 'निपुण-चन्द्र' आपका उपन्यास है। आप अद्भुत वक्ता भी थे। साहित्य के अतिरिक्त आपकी रुचि अनेक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं की ओर भी थी। आप एक वकील थे। ३७ वर्ष की छोटी आयु में आपका देहान्त हो गया।

केशवलाल हरगोविन्ददास शेठ—(१८८९) ने 'स्वदेशगीतावलि', 'स्नेह संगीत', 'प्रभुचरणे', 'रास अंजलि', 'रासमंजरी' आदि काव्य-संग्रह दिये हैं। इन संग्रहों का अच्छा स्वागत हुआ है। आपने कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं।

गोकुलदास द्वारकादास रायचुरा—(१८९०) ने लोक साहित्य के उद्धार के लिए बहुत बड़ी सेवा की है। अत्यन्त समृद्ध और स्पष्ट भाषा में आपने दोहों की रचना की और प्रभावपूर्ण प्राचीन शैली में कहानियाँ लिखीं। आपने मेघाणी के समान ही सौराष्ट्र का कीर्तिगान करके जनसेवा तथा साहित्य-सेवा की है। नवनीत, रासमंदिर, काठियावाड़ी लोकवार्ताओं, काठियावाड़ी दुहा आदि आपके कुछ ग्रंथ हैं।

पंडित बेचरदास जीवराज दोशी—(१८९०) प्राकृत, पाली और अपभ्रंश के योग्य विद्वान् थे। गुजरात विद्यापीठ में आप इन विषयों को पढ़ाते थे और इन्हीं विषयों की ऐतिहासिक एवं समीक्षात्मक शोध की है। आपने कुछ संस्कृत और प्राकृत ग्रंथों का विद्वत्तापूर्ण सम्पादन तथा अनुवाद किया।

प्राकृत व्याकरण, गिरनार चैत्य परिपाटी अने अपभ्रंशनुं व्याकरण, सन्मति-तर्कनुं सम्पादन आदि आपके कुछ श्रेष्ठ ग्रंथ हैं।

मुनि न्याय विजय जी--(१८९०) संस्कृत साहित्य तथा दर्शन शास्त्रों के अच्छे विद्वान् थे। आपने संस्कृत में प्रासादिक काव्य की रचना की है। आपने संस्कृत तथा गुजराती में जैनमत पर स्वतंत्र ग्रंथ लिखे हैं। आपके दीक्षा सम्वन्धी विचारों ने एक विवाद खड़ा कर दिया, जिससे वड़ोदा सरकार को दीक्षा सम्वन्धी नियम वनाने में सहायता मिली।

जनार्दन नाना भाई प्रभाकर--(१८९१) ने विहारिणी तथा शरदिनी आदि में अच्छे रास प्रस्तुत किये हैं और पत्रों में साहित्यिक लेख लिखे हैं।

मंजुलाल जमनाराम दवे--(१८९१) ने पत्रों में लेख लिखे हैं। टैगोर पर थीसिस लिखकर आपने फ्रांस से साहित्य के डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। यूरोप और एशिया के साहित्य में प्रतीकवाद भी आपने लिखा। टैगोर के 'डाकघर' का आपने अनुवाद किया। आपकी पत्नी कनु बहेन भी साहित्य-प्रेमी थीं, जिन्होंने टैगोर की 'गीतांजलि' का अनुवाद किया और पत्रों में अनेक लेख लिखे। कनु बहेन ने कुछ अच्छी कविताएँ भी लिखी हैं।

जुगतराम चुनीलाल दवे--(१८९१) ने गांधीजी के प्रभाव में आकर अपने आपको समाज-सेवा के लिए अर्पण कर दिया। ग्राम-सेवा और लोकशिक्षण के काम से जो थोड़ा समय आप को मिलता था, उसमें आपने कई पुस्तकें लिखीं, जिनका शिक्षा की दृष्टि से बालकों तथा प्रौढ़ों के लिए बहुत अधिक मूल्य है।

इन्दुलाल कन्हैयालाल याज्ञिक--(१८९२) ने भी समाज-सेवा को ही जीवन का मुख्य कार्य बनाया। कुछ समय तक आपने 'नवजीवन' 'युगधर्म' का सम्पादन किया। बाद में आपने राजनीति में प्रवेश किया। आपकी आत्मकथा बहुत प्रसिद्ध हुई, जिसमें राजनीतिक आन्दोलन का इतिहास भी समाविष्ट है। कुमारनां स्त्री रत्नो, शहीदनो संदेश आदि आपके अन्य ग्रंथ हैं। आप एक सशक्त लेखक तथा निर्भय कार्यकर्ता हैं।

शंभुप्रसाद छैलशंकर जोषीपुरा--(१८९२) कुसुमाकर नाम से भी प्रसिद्ध हैं। अनेक पत्रों में रह चुके हैं। कविताएँ और लेख बराबर लिखते आ रहे हैं। इनकी कुछ कविताएँ बहुत पसंद की गयी हैं।

कंचनलाल वासुदेव मेहता—(१८९२) का उपनाम 'मलयानिल' है। आप प्रथम आधुनिक कहानी-लेखक हैं। 'बीसमी सदी' में आप लिखा करते थे। आपका कहानी-संग्रह 'गोवालणा अने बीजी वातो' बहुत अधिक प्रसिद्ध तथा प्रशंसित हुआ। ४३ वर्ष की छोटी आयु में आपका देहान्त हो गया।

दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री—(१८९२) ने शैवमत तथा वैष्णवमत के इतिहास, विशेषकर गुजरात की पृष्ठभूमि पर, लिखे हैं। गुजरात के तीर्थों पर तथा पुराणों पर भी आपने लिखा। आपने ऐतिहासिक एवं शोधपूर्ण निबंध लिखे हैं तथा गुजरात का मध्यकालीन राजपूत इतिहास भी लिखा है। आपने कई ग्रंथों का सम्पादन किया तथा एक आयुर्वेद पत्र के भी आप सम्पादक थे। आपका 'ऐतिहासिक संशोधनो' एक विद्वत्ता पूर्ण ग्रंथ है। आयुर्वेद, वेदान्त, पुराण और इतिहास विषयों का आपका गहन अध्ययन था और इन विषयों के आप प्रमुख विद्वान् थे।

नर्मदा शंकर बालाशंकर पंड्या—(१८९३) वैष्णवमत तथा चैतन्य सम्प्रदाय के गहन अध्येता थे। चैतन्य पर आपने कई पुस्तकें लिखी हैं। आपने कुछ अंग्रेजी तथा बंगाली के ग्रंथों का अनुवाद भी किया है, विशेषतः स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण परमहंस के ग्रंथों का।

रतिपतिराम ऊधमराम पंड्या—(१८९३) ने हर्ष की 'रत्नावली' का अनुवाद किया है तथा रामायण-महाभारत आदि महाकाव्यों का संक्षिप्तीकरण किया है। आपने जेम्स एलेन के 'ट्राम्फेंट' का अनुवाद 'विजयध्वज' नाम से किया। ३४ वर्ष की छोटी आयु में आपका देहान्त हो गया।

हीरालाल रसिकलाल कापड़िया—(१८९४) ने जैन दर्शन तथा भारतीय धर्म के कई ग्रंथ लिखे एवं सम्पादित किये हैं। इनमें से कुछ का प्रकाशन 'गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज़' के अन्तर्गत हुआ है। आपने कुछ प्राकृत ग्रंथों का भी सम्पादन किया है, जिनमें गणित तिलक एक है। अनुवादसहित आपके सम्पादित कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं—न्याय कुसुमांजलि, तत्त्वाख्यान, पद्मानन्द महाकाव्य, तत्त्वाधिगम सूत्र अने कांत जय पताका।

रतिलाल मोहनलाल त्रिवेदी—(१८९४) ने 'हिन्दना विद्यापीठो' लिखा है और साहित्यिक विषयों पर कुछ निबंध लिखे हैं।

भरतराम भानुसुखराम शर्मा–(१८९४) ने पुरातत्त्व-इतिहास आदि विषयों पर कई पुस्तकें लिखी हैं। अपने पिता के साथ आपने कुछ ग्रंथों का सम्पादन किया है तथा गुजराती–अंग्रेजी-कोश तैयार किया है।

डा० चार्लोट क्रौजे—(१८९५) का दूसरा नाम सुभद्रा देवी था। यद्यपि ये जर्मन महिला थीं, किन्तु गुजराती भाषा की अच्छी सेवा आपने की है। ये मुनि विद्याविजयजी के साथ ग्वालियर में रहती थीं और श्राविका के सब नियमों का पालन करती थीं। आप जर्मनी तथा भारत के पत्रों में बहुत अधिक लिखती थीं। इन्होंने 'नासकेतरी कथा' का सम्पादन किया है जो मध्ययुग का राजस्थानी और गुजराती मिश्रित ग्रंथ है, साथ ही 'पंचाख्यान' का भी सम्पादन किया जो पुरानी गुजराती के 'पंचतंत्र' का रूपान्तर है। आप की विशेष रुचि जनमत की ओर थी। आपने गुजराती, अंग्रेजी, जर्मन और हिन्दी में कई पुस्तकें लिखी हैं।

डा० रमणलाल कनैयालाल याज्ञिक––(१८९५) ने भारतीय रंगमंच विषय पर लंडन में थीसिस लिखी। आपने गजेन्द्र बुच के ग्रंथ 'गजेन्द्र मौक्तिको' का सम्पादन किया तथा कई पत्रों में विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे।

हरिहर प्राणशंकर भट्ट––(१८९५) की रुचि उच्च गणित तथा ज्योतिष की ओर बहुत अधिक है। आप कविताएँ भी अच्छी लिखते हैं। आपने 'गणित की परिभाषा' (हिन्दी) तथा ३ भागों में 'खगोल गणित' लिखा है। 'हृदयरंग' आप की कविताओं का संग्रह है। भूगोल की कई पुस्तकों का आपने अनुवाद भी किया है।

नवलराम जगन्नाथ त्रिवेदी––(१८९५)ने कई आलोचनात्मक ग्रंथ लिखे हैं, जैसे केटलांक विवेचनो, केतकीनां पुष्पो, नवां विवेचनो और कलापी।

व्योमेशचन्द्र जनार्दन पालक जी—(१८९५) ने कई पत्रों में अनेक लेख लिखे, प्रिंसिपल ए० के० द्विवेदी के साथ 'काव्य-साहित्य-मीमांसा' लिखा तथा विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियों के साथ 'गद्य कुसुम' का सम्पादन किया। ४० वर्ष की आयु में आप का देहान्त हो गया। इनकी मृत्यु के बाद इनके कुछ ग्रंथों का प्रकाशन इनकी पत्नी जयमन गौरी ने किया, जो एक श्रेष्ठ कवयित्री हैं और जिन्होंने अच्छी कविताएँ लिखी हैं।

रंजीतलाल हरिलाल पंड्या—(१८९६) का दूसरा नाम काश्मलन भी है। आपने ११ सर्गोंवाली 'रामनी कथा' में रामायण की कहानी लिखी है तथा आपकी अन्य रचनाएँ 'काश्मलननां काव्यो' में प्रकाशित हैं। इनकी कुछ कविताएँ जैसे, शकुन्तला, जमदग्नि अने रेणुका आदि बहुत प्रशंसित हैं।

मंजुलाल रणछोड़दास मजमुदार—(१८९७) ने प्राचीन तथा मध्यकालीन गुजराती साहित्य के शोध, सम्पादन, और प्रकाशन की अच्छी सेवा की है। आपकी पत्नी चैतन्यबाला भी अच्छी साहित्य-सेविका थीं, जिन्होंने कला और साहित्य पर कई लेख लिखे। मंजुलाल ने अनेक ग्रंथ लिखे तथा सम्पादित किये, काव्य के रूपों पर आपने एक श्रेष्ठ ग्रंथ लिखा है तथा अब गद्य के रूपों पर एक सुन्दर ग्रंथ लिख रहे हैं। आपने लोक वार्ता साहित्य पर कई पांडित्य अध्याय लिखे और गुजरात की काल-क्रमणिका तैयार की है।

ज्योत्स्ना बहेन शुक्ला—(१८९७) ने दो अच्छे काव्य-संग्रह दिये, मुक्तिनारास और आकाशना फूल। आपने दो मराठी उपन्यासों का अनुवाद भी किया है। आप एक उत्साही और सच्ची समाज-सेविका हैं।

हंसाबहेन जीवराज मेहता—(१८९७) ने बालकों के लिए सरल और रुचिकर शैली में बाल वार्तावलि, त्रण नाटकों तथा बावलानां पराक्रमो आदि लिखा है।

रसिकलाल छोटालाल परीख—(१८९८)मूसीकार नाम से भी प्रसिद्ध, ने भारतीय धर्म पर विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे। मूसीकार नाम से आपने कई अच्छी कविताएँ लिखीं।

नागरदास ईश्वर भाई पटेल—(१८९८) ने बाल साहित्य का विकास किया, जिसके लिए आपने बालकोपयोगी अच्छी कहानियाँ लिखीं, जिनमें कुछ जासूसी कहानियाँ भी हैं। बच्चों के पत्रों का सम्पादन भी आपने किया।

गगनबिहारी लल्लूभाई मेहता—(१९००) अमेरिका में भारत के राजदूत थे। आप प्रायः पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यिक लेख लिखा करते हैं। आपने 'आकाशना पुष्पो' का प्रकाशन किया है। आप की लेखनी में हास्य का पुट रहता है।

अध्याय २४

उमाशंकर, सुन्दरम् तथा अन्य

उमाशंकर जेठालाल जोशी का जन्म १९११ में उत्तर गुजरात के प्राचीन ईदर राज्यान्तर्गत बामणा में हुआ था। आपका उपनाम 'वासुकि' है। १९३१ में प्रकाशित होनेवाले आपके ग्रंथ 'विश्वशान्ति' ने आधुनिक गुजराती काव्य में एक नयी आधारभूमि और नये युग का प्रारंभ किया है। इनके पूर्वयुगीन आचार्य थे दलपतराम, नर्मदाशंकर; तत्पश्चात्, नरसिंहराव, कान्त और नानालाल। इस आधुनिक कविता को जन्म देनेवाली कई बातें थीं। दो विश्वयुद्ध, भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन, रूस की क्रान्ति, पश्चिम का नवीन आदर्श—इन बातों ने भारतीयों में एक जागृति, राष्ट्रप्रेम की भावना, स्वतंत्रता की उत्कट इच्छा, शिक्षा, समानता, सेवा, निर्धनों के प्रति सहानुभूति, मानव-मूल्य तथा आदर्श की भावना उत्पन्न की। विश्वविद्यालय की शिक्षा ने तथा साहित्यकारों की सामग्री ने भी लोगों को देश के दूसरे प्रान्तों के तथा अन्य देशों के साहित्य से परिचित कराया। उच्च परीक्षाओं में गुजराती भाषा का प्रवेश हो जाने से प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक गुजराती साहित्य के समीक्षात्मक अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ। नानालाल तथा बलवन्तराय ने छन्दों में अनेक प्रयोग किये। नानालाल ने मधुर-ललित भाषा दी तथा बलवन्तराय ने अर्थघन प्रवाही और सबल शैली। काव्य के लिए विषय-क्षेत्र बड़ा विस्तृत हो गया। साहित्यकारों पर गांधीवाद, समाजवाद और साम्यवाद का प्रभाव पड़ा। लोकसाहित्य से भी काफ़ी प्रेरणा मिली। बंगाली साहित्य के अध्ययन ने तथा शांतिनिकेतन की शिक्षा ने गुजराती कविता में भी बंगाली छंदों का प्रवेश करा दिया। संस्कृत-काव्य की शिष्टता, वैदिक और उपनिषदीय, भाषा का गांभीर्य, नानालाल की आलंकारिक शैली, बलवन्तराय की प्रयोगशीलता, मध्यकालीन काव्य की विरासत—इन सबने आधुनिक गुजराती काव्य के निर्माण में सहायता दी।

इस काल में अनेक ऊर्मिकाव्यों, खंडकाव्यों, सोनेटों, मुक्तकों, लोक-गीतों, रासों, गज़लों और अन्य विविध रूपों की रचना हुई।

यद्यपि 'शेष' नाम से रामनारायण पाठक ने तथा गजेन्द्र बुच ने बहुत पूर्व १९२२ में ही नयी शैली की कविता आरंभ कर दी थी, किन्तु इसका वास्तविक आरंभ उमाशंकर के 'विश्वशान्ति' नामक ग्रंथ से ही समझना चाहिए। बलवन्तराय की शैली में चन्द्रवदन मेहता के 'यमल' में सोनेट मिलते हैं। सुन्दरम्, स्नेहरश्मि, मनसुखलाल, मेघाणी, श्री धराणी तथा अन्य—इनमें से प्रत्येक ने अनेक रूपों, शैलियों और छन्दों में विविध विषयों पर लिखा है।

उमाशंकर का ग्रंथ 'विश्वशान्ति' ६ खंडों में है, जिसमें अहिंसा और शांति के लिए किये गये गांधी जी के प्रयत्नों की महिमा गायी गयी है। सम्पूर्ण ग्रंथ आदर्श की भावना से व्याप्त है तथा छन्द में गांभीर्य और भव्यता है। इसमें भव्य कल्पना, प्रसाद, माधुर्य, शिष्टता एवं प्रवाह है। इसमें पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवियों के काव्य के सर्वोत्तम तत्त्वों का सम्मिश्रण है। अत्यन्त तीव्र समालोचक नरसिंहराव को भी इस ग्रंथ की प्रशंसा करनी पड़ी।

उमाशंकर गुजरात कालेज अहमदाबाद में पढ़ते थे, किन्तु १९३० में आप असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। बाद में गुजरात विद्यापीठ में नाम लिखाया और काका साहेब कालेलकर के शिष्य हुए। आपने बंबई के एलफिंस्टन कालेज में भी शिक्षा पायी, जहाँ आप नरसिंहराव के विद्यार्थी थे। वहाँ से आपने प्रथम श्रेणी में गुजराती लेकर एम० ए० पास किया। आप कई संस्थाओं में—अहमदाबाद के बी० जे० विद्याभवन में भी—गुजराती के प्राध्यापक रहे और अब गुजरात-विश्वविद्यालय में गुजराती के डायरेक्टर हैं। आप एक मासिक पत्रिका 'संस्कृति' का सम्पादन भी करते हैं, जो बहुत ही उच्च स्तर की साहित्यिक पत्रिका है। 'विश्वशान्ति' ग्रंथ के प्रकाशित होते ही आपकी ख्याति एक प्रतिभासम्पन्न कवि के रूप में हो गयी, जो सर्वथा उचित है। इस ग्रंथ की भूमिका इनके गुरु काका साहब कालेलकर ने लिखी थी तथा नरसिंहराव ने बड़ी प्रशंसा की थी। साहित्य अकादमी तथा अन्य समितियों में भी आप गुजराती साहित्य के प्रतिनिधि हैं। साहित्य-जगत के आज आप प्रमुख व्यक्ति हैं। काव्य के अतिरिक्त आपने साहित्य के और भी कई अंगों को पोषित किया है। आपने

कहानी, नाटक, उपन्यास, साहित्यिक आलोचना और निबंध-सभी कुछ लिखा है तथा सम्पादन एवं शोधकार्य भी किया है।

आपके काव्य-ग्रंथ हैं—विश्वशान्ति, गंगोत्री, निशीथ, गुले पोलांड, प्राचीना, आतिथ्य और वसन्तवर्षा। 'गंगोत्री' में गीत और वृत्तबद्ध कविताएँ हैं। 'गुले पोलांड' पोलड के एक कवि की कविताओं का गुजराती सोनेटों में रूपान्तर है, जिसमें सोनेट रूप को समझानेवाली विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना भी है। 'निशीथ' में बहुत से मनोहर गीत हैं। इसमें अनेक चिन्तन प्रधान कविताएँ भी हैं। 'प्राचीना' में पौराणिक आख्यानों पर आधारित कविताएँ हैं। उमाशंकर और सुन्दरम् आधुनिक गुजरात के प्रमुख कवि हैं और प्रथम श्रेणी के कवियों में इन्होंने स्थायी स्थान प्राप्त कर लिया है। उमाशंकर में आदर्श, प्रसाद, निर्मलता, माधुर्य, विचार समृद्धि तथा दाक्षिण्य आदि गुण हैं तथा इनकी भाषा में आह्लादकत्व एवं अर्थगौरव है।

उमाशंकर ने 'सापना भारा' तथा 'शहीद' में एकांकी नाटक लिखे हैं, जिनकी तुलना बटुभाई उमरवाडिया तथा चन्द्रवदन मेहता जैसे एकांकी लिखनेवालों के नाटकों से भलीभाँति की जा सकती है। इनकी कहानियाँ 'त्रण अर्धुंबे। अने बीजी बातो, श्रावणी मेलो अन्तराय में संगृहीत हैं। आपने एक उपन्यास भी लिखा है; किन्तु कहानी-उपन्यास के क्षेत्र में आप अन्य प्रमुख लेखकों की समानता नहीं कर सके। आपने अनेक पांडित्यपूर्ण लेख, शोधपूर्ण विस्तृत निबंध तथा साहित्यिक आलोचनाएँ लिखी हैं। 'अखो—एक अध्ययन' और 'पुराणो मां गुजरात' इनके शोधसंबंधी दो विद्वत्ता पूर्ण ग्रंथ हैं। 'समसंवेदन' में इनकी साहित्यिक आलोचनाएँ संगृहीत हैं। आपने क्लान्त कवि के ग्रंथों का सम्पादन स्वतंत्र रूप से तथा रामनारायण के साथ मिलकर आनन्द शंकर ध्रुव के ग्रंथों का सम्पादन किया है; साथ ही अखो के छप्पयों का भी। शाकुन्तल तथा उत्तरराम चरित के बहुत सुन्दर अनुवाद आपने किये, जिनमें पांडित्यपूर्ण भूमिका भी है। 'गोष्टि' में आपके कुछ साहित्यिक तथा समीक्षात्मक निबंध संगृहीत हैं। 'संस्कृति' में, जिसके आप सम्पादक हैं, बराबर विविध साहित्यिक विषयों पर लिखा करते हैं। साहित्य के विविध रूपों पर आपने लेखनी चलायी है तथा कवि के रूप में एवं एक साहित्यिक के रूप में आपका स्थान सर्वोच्च है।

सुन्दरम्

त्रिभुवनदास पुरुषोत्तमदास लुहार का जन्म भड़ोंच जिले के मातर ग्राम में १९०८ में हुआ था। इनके दो प्रसिद्ध नाम और हैं 'सुन्दरम्' तथा 'त्रिशूल'। आप गुजरात विद्यापीठ में प्रविष्ट होकर रामनारायण के शिष्य हुए। अपनी आरंभिक अवस्था में आप 'साबरमती' पत्र का सम्पादन करते थे। बाद में आप असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हुए फिर अहमदाबाद के ज्योतिसंघ में। महात्मा गांधी तथा श्री अरविन्द का आपके जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। पिछले कई वर्षों से आप अरविन्द आश्रम में हैं। यहाँ ये 'दक्षिणा' पत्रिका का सम्पादन करते हैं, जिसमें श्री अरविन्द के दर्शन की व्याख्या करने का प्रयत्न आप करते हैं। इनके निबंध, कहानिय,ाँ साहित्यिक आलोचनाएँ पुस्तकाकार संगृहीत हैं। इन्होंने एक यात्रा-पुस्तक लिखी है तथा 'मृच्छकटिक' का अनुवाद किया है।

'कोपा भगतनी कड़वी वाणी' में सुन्दरम् ने प्राचीन ढालों और भजनों का माध्यम अपनाया है तथा भोला भगत के चावखाओं (चाबुक) की तरह समाजवाद के प्रकाश में इन्होंने तत्कालीन समाज पर व्यंग्य किया है। बलवन्तराय की प्रयोगशीलता, अगेय कविता, प्रवाहिता तथा छन्द संबंधी नवीन प्रयोग का तथा गांधीजी द्वारा चलाये राष्ट्रीय आंदोलन का इन पर बहुत प्रभाव था। 'काव्य मंगला' में ये सभी तत्त्व पराकाष्ठा पर पहुँचे दिखाई देते हैं। 'रंग रंग बादलिया', 'बसुधा' और 'यात्री' इनके अन्य काव्यसंग्रह हैं। 'वसुधा' के विषय गंभीर हैं और कवि की रुचि गेयता की ओर झुकी प्रतीत होती है। 'यात्री' संग्रह में इनका झुकाव अरविन्द के रहस्यवाद और दर्शन की ओर दीखता है। सुन्दरम् की कविताओं में भाव, प्रसाद, सुरेखता तथा भावना की अधिकता है, साथ ही विविधता भी। उमाशंकर की भाँति इनमें भी हमें आह्लादकत्व और अर्थगौरव मिलता है। दोनों आधुनिक गुजराती काव्य-क्षेत्र के प्रमुख प्रकाश-स्तंभ हैं, दोनों में विलक्षण प्रतिभा है और दोनों की प्रशंसा साहित्य-आलोचकों ने की है।

अरविन्द के महाकाव्य 'सावित्री' का अनुवाद सुन्दरम् ने गुजराती में किया है। आपने 'दक्षिणामन' नामक यात्रा-पुस्तक भी लिखी है, जिसमें उनकी

दक्षिण भारत की यात्रा का वर्णन है। मृच्छकटिक नाटक का आपने भाषान्तर किया है। आपकी कहानियों के संग्रह हैं—'पियासी हीराकणी अने बीजी बातो', 'खोलकी अने नागरिका' तथा 'उत्रपन'। इन कहानियों में आपने अनोखे ढंग तथा प्रवाहपूर्ण शैली में नवीन विषयों पर लिखा है। अरविन्द-दर्शन का प्रचार आप 'दक्षिणा' द्वारा करते हैं, जिसके आप सम्पादक हैं।

किन्तु सुन्दरम् का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'अर्वाचीन कविता' है, जो साहित्यिक समीक्षा है। इसमें इन्होंने आधुनिक गुजरात के कवियों का स्पष्ट मूल्यांकन किया है, साथ ही योग्य कवियों की प्रशंसा भी की है। गहन और विस्तृत अध्ययन के बाद यह ग्रंथ लिखा जान पड़ता है, क्योंकि इसमें विभिन्न कवियों के गुण-दोष का विवेचन बड़ी सूक्ष्मता से किया गया है और काव्य के अनेक मोड़ों का भी सूक्ष्म दिग्दर्शन है। ऐसे महान् कवि द्वारा लिखित यह ग्रंथ सचमुच अनूठा है। निस्सन्देह इसमें एक दोष भी बताया जाता है कि कुछ छोटे कवियों की प्रशंसा आवश्यकता से अधिक की गयी है। तथा कुछ प्रमुख कवियों का गुण घटा कर कहा गया है। फिर भी यह अध्ययनपूर्ण एक ठोस कृति है, जिसमें अत्यन्त निर्भयता से अपना मत व्यक्त किया गया है।

× × ×

चन्द्रवदन चीमनलाल मेहता—(१९०१) का प्रेम आरंभ से ही नाट्य-कला और रंगमंच की ओर था। आप एक कवि और नाटककार हैं। इनके नाटकों में नये विचार और कार्य, सजीव संवाद तथा विषयों और पात्रों की विविधता होती है। आप स्वयं एक कुशल अभिनेता हैं। आपने अनेक नाटकों का दिग्दर्शन तथा निदर्शन किया है। अव्यवसायी कलाकारों के रंगमंच के विकास के लिए आपने बहुत परिश्रम किया है। आपके नाटक रंगमंच की दृष्टि से बहुत अच्छे होते हैं। आपके कुछ नाटक हैं—आगगाड़ी, नागा बावा, रमकड़ांनी दुकान, धरा गुर्जरी, प्रेमनु मोती, पांजरापोल, संताकुकड़ी आदि। आपके नाटक गंभीर भी हैं और सुगम भी। आपकी गणना प्रमुख नाटककारों में है। 'आगगाड़ी' में आपने रेलवे कर्मचारियों के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। नाटक के विविध रूपों पर आपने अपनी कुशलता की परीक्षा की है—जैसे श्रृंगार रस पूर्ण, ग्राम्य गीतमय, संगीत नाटक, प्रहसन, एक पात्र अभिनीत,

ऐतिहासिक, मूक अभिनय, यथार्थवादी और आदर्शवादी। आपने रतन, इलाकाव्यो तथा रुडोरवारी में कविताएँ लिखी हैं। बलवन्तराय से प्रभावित होकर सोनेट लिखने वालों में आप सर्वप्रथम हैं। 'इलाकाव्यो' में आपने भाई-बहन के प्रेम का वर्णन किया है। रतन एक प्रवाही दीर्घकाव्य है। आपकी कविताओं की रचना तो अत्यन्त परिष्कृत है, किन्तु भावों की कमी है। 'बांध गठरिया' और 'छोड़ गठरिया' में आपने अपना जीवन चरित लिखा है। तेजपूर्ण, सबल और प्रत्यक्ष शैली के कारण ये दोनों ग्रंथ बहुत अधिक पसंद किये गये हैं।

ज्योतीन्द्र हरिहर शंकर दवे--(१९०१) की ख्याति हास्य एवं व्यंग्य लेखक की दृष्टि से अधिक है। आपमें सूक्ष्म निरीक्षण, कुशाग्र बुद्धि, गहनता, मर्मभेदी अन्तर्दृष्टि, रचनात्मकता और विधा है। हास्य के अधिक से अधिक रूपों में आपने लिखकर हास्य-भावना को जागृत किया। मारी नोंध पोथी, रंग तरंग (भाग १ से ६), हास्यतरंग, पानना बीड़ा, अल्पात्मानुं आत्म पुराण, रेतीनी रोटली तथा बीरबल अने बीना इनकी अपनी कृतियाँ हैं और धन सुखलाल मेहता के साथ में आपने 'अमे बधां' लिखा। इन सभी में सूक्ष्म तथा बौद्धिक हास्य प्रचुर मात्रा में है तथा विषय की विविधता भी है। हास्य रस का साहित्य रचने में आप की समता रमणभाई नीलकंठ से की जाती है। ज्योतीन्द्र को श्लेष आदि शाब्दिक चमत्कार में बड़ा आनन्द आता है, अतः गंभीर तर्क और अवल वाणी का उपयोग अधिक मिलता है। इनका हास्य स्वाभाविक और शिष्ट होता है। आपने साहित्यिक आलोचनाएँ भी लिखी हैं, किन्तु गुजरात की जनता का ध्यान विशेषतः अपने छोटे सरल निबंधों तथा सूक्ष्म परिहासो द्वारा ही आकर्षित किया। पहले आप सूरत कालेज में गुजराती के प्राध्यापक थे, अब घाटकोपर (बंबई) कालेज में हैं। कई वर्षों तक आप बंबई सरकार के प्राचीन साहित्य के अनुवादक थे। कुछ समय तक आप क० मा० मुन्शी के 'गुजरात' पत्र के सम्पादक रहे और अब आप 'समर्पण' के सम्पादक हैं, जो भारतीय विद्याभवन का गुजराती मासिक पत्र है।

पूजालाल रणछोडदास दलवाडी--(१९०१) पर विवेकानंद, रामकृष्ण और अरविंद का बहुत गहरा प्रभाव रहा है। स्वभावतः आपका जीवन एक आश्रम-जीवन रहा और आपने अध्यात्म, योग तथा भक्ति संबंधी विषयों पर

चिन्तनपरायण काव्य की रचना की। वर्तमान काल में भक्तिकाव्य का पोषण भोलानाथ, नरसिंह, खबरदार, न्हानालाल, केशवराम हरिराम भट्ट तथा दूसरों के द्वारा हुआ, किन्तु अभी हाल में भक्तिकाव्य का पोषण मुख्यतः पूजालाल के द्वारा तथा अंशतः सुन्दरम् और बेटाई के द्वारा हुआ। पारिजात, ऊर्मिमाला, जपमाला, गीतिका तथा अनेक अनुवाद गुजराती साहित्य को पूजालाल की देन है। प्रमुख आलोचकों ने भावना, कल्पना तथा सहज भक्ति के तत्त्व से युक्त आपकी कविताओं को सराहा है और आज आप सात्विक भाव, भक्ति तथा अध्यात्म के प्रमुख कवि हैं।

चन्द्रशंकर प्राणशंकर शुक्ल––(१९०१) ने कुछ विशिष्ट विद्वानों के––जैसे गांधी जी और राधाकृष्णन् आदि––कठिन ग्रंथों का गुजराती में अनुवाद किया है। इनके अनुवाद मूल ग्रंथ-से लगते हैं।

राजेन्द्र गुलाबराम बुच––(१९०२) ने अपनी बी० ए० तथा एम० ए० की परीक्षाओं में संस्कृत तथा पुरानी अंग्रेजी विषय लिये थे और अपनी योग्यता के कारण छात्रवृत्ति प्राप्त की। बाद में आप सूरत कालेज म अंग्रेजी के प्राध्यापक हो गये। संस्कृत, अंग्रेजी तथा गुजराती साहित्य का आपका अध्ययन बहुत विस्तृत था, किन्तु २५ वर्ष की युवावस्था में ही आप का देहान्त हो गया। आप एक होनहार लेखक थे। आपकी मृत्यु के बाद आपकी कविताओं, निबंधों और लेखों का संग्रह 'गजेन्द्र मौक्तिको' नाम से प्रकाशित हुआ, जिसमें रमणलाल याजनिक ने भूमिका लिखी है। आपकी कविताएँ आधुनिक गुजराती काव्य-क्षेत्र की निधि है।

करसनदास नरसिंह माणेक––(१९०२) करांची से बी० ए० पास करने के बाद गुजरात विद्यापीठ में पढ़ने के लिए आये। बाद में आपने पत्रकारिता स्वीकार की और जन्मभूमि कार्यालय में आप प्रविष्ट हुए। इनके काव्य-संग्रह हैं––आलबेल, महेताबने मांडवे, कल्याण यात्री तथा वैशंपायननी वाणी। आपकी कविताएँ भावपूर्ण तथा भाषा सशक्त और प्रासादिक हैं। आपने नव-लिका और नाटिकाएँ भी लिखी हैं। आपके व्यंग्यकाव्य बहुत प्रसिद्ध हैं, जो आनन्ददायी सभारंजनी शैली में लिखे हुए हैं।

जयमन गौरी व्योमेशचन्द्र पाठकजी––(१९०२) मोहनलाल दवे की

पुत्री और कमलाशंकर त्रिवेदी की नातिन हैं। आपने बहुत-सी कविताएँ तथा निबंध लिखे हैं और अपने पति व रमेशचन्द्र पाठकजी के ग्रंथों का सम्पादन भी किया है। तेजछाया, सूरदास अने तेनां काव्यो, गुणसुन्दरीना रास, रास विवेचन आदि इनकी कुछ कृतियाँ हैं। इनकी बहन चन्द्रिका का पाठकजी ने भी कुछ कविताएँ लिखी हैं।

झीणाभाई रतनजी देसाई—(१९०३) का उपनाम 'स्नेहरश्मि' है। आप अहमदाबाद में एक सुव्यवस्थित स्कूल के प्रिंसिपल हैं। आपकी रचित कविताएँ 'अर्घ्य' तथा 'पनघट' में और कहानियाँ 'तूटेला तार', 'गाता आसो-पालव' और 'स्वर्ग अने पृथ्वी' में संगृहीत हैं। इनकी कविताओं में बंगाल की लय और गेयता है। इनकी 'एकोऽहं बहुस्याम्' कविता सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इनके गीत ऊर्मिप्रधान होते हैं। कहानी लिखने में इन्होंने धूमकेतु का अनुसरण किया है। गुजरात के आप प्रमुख शिक्षा-शास्त्री हैं तथा स्कूल के विद्यार्थियों के लिए विविध विषयों की पाठ्य पुस्तकें भी लिखी हैं।

नगीनदास नारणदास पारेख—(१९०३) ने बंगाली तथा हिन्दी की कई पुस्तकों का अनुवाद गुजराती में किया है। इनके अनूदित ग्रंथों में मूल ग्रंथों के गुण सुरक्षित हैं। चुँवन अने बीजी वातो, परिणीता, पल्ली समाज, विसर्जन, चन्द्रनाथ आदि इनके कुछ अनूदित ग्रंथ हैं।

सुन्दरजी गोकुलदास बेटाई—(१९०४) नरसिंह राव के विद्यार्थी थे। अब आप 'गुजराती हिन्दु स्त्री मंडल' नामक संस्था में गुजराती के अध्यापक हैं। ज्योतिरेखा, इन्द्रधनु और विशेषांजलि आपके काव्य-संग्रह हैं। 'गुजराती साहित्य मां सोनेट' नाम का आपने एक विद्वत्तापूर्ण निबंध भी लिखा है। इनकी कविताओं में मार्दव, संयम, चिन्तन और प्रभुप्रेम दिखाई देता है। अध्यात्म तथा भक्ति संबंधी कविता करने में आपकी रुचि अधिक है। आपकी शैली शुद्ध और प्रासादिक है। इनके 'ज्योतिरेखा' संग्रह में नरसिंहराव ने भूमिका लिखी है।

किसनसिंह गोविंद सिंह चावडा—(१९०४) अरविन्दाश्रम में रह चुके हैं। बंगाली, मराठी, हिंदी साहित्य का आपने अच्छा अध्ययन किया है तथा इन भाषाओं की कई पुस्तकों का अनुवाद गुजराती में किया है। कर्वेनुं आत्म-

चरित्र, गरीबनी हाय तथा जीवननो दर्द (प्रेमचन्दजी की कहानियां), हिन्दी साहित्यनो इतिहास आपके कुछ अनूदित एवं स्वतंत्र ग्रंथ हैं।

इन्दुलाल फूलचन्द गांधी––(१९०५) ने कुछ कविताएँ तथा नाटिकाएँ लिखी हैं। खंडित मूर्तिओ, शतदल, गोरसी, आदि आपकी कविताओं के संग्रह हैं तथा 'अन्धकार बच्चे' आदि नाटिकाओं के आपके ऊर्मिगीत मंजुल तथा कर्ण-प्रिय होते हैं और आप के नाटकों में दृश्य की अपेक्षा श्राव्य गुण अधिक है।

केशवराम काशीराम शास्त्री––(१९०५) वर्तमान समय के प्रसिद्ध शोध-विद्वान् हैं और विद्वत्ता तथा अध्ययनपूर्ण अनेक ग्रंथ लिखे, जैसे आपणा कवियो, कविचरित, अक्षर अने शब्द, संशोधनने मार्गे, गुजराती साहित्यनुं रेखादर्शन अनुशीलन आदि। आपने प्राचीन तथा मध्यकालीन गुजराती साहित्य के कई ग्रंथों का सम्पादन भी किया है। आप कट्टर पुष्टिमार्गी हैं तथा महाप्रभुजी का जीवन चरित एवं कई साम्प्रदायिक ग्रंथ लिखे हैं। आप भाषा शास्त्र, प्राचीन काव्य, पुरातत्व तथा पुष्टि मार्गीय वैष्णव साहित्य के प्रकांड विद्वान् हैं। आपने मौलिक ग्रंथ भी लिखे तथा अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का अनुवाद एवं सम्पादन भी किया। आपके ग्रंथ 'कविचरित' तथा 'आपणा कविओ' अमूल्य हैं, जिनमें मध्यकालीन कवियों के विषय में अत्यन्त दुर्लभ तथा उपयोगी जानकारी है।

बचुभाई प्रभाशंकर शुक्ल––(१९०५) की शिक्षा शांतिनिकेतन तथा जर्मनी में हुई। आपने भाषा विज्ञान प्रवेशिका तथा कुछ नाटक लिखे हैं। जैसे, शुकशिक्षा, मंडूक कुंड, देवयानी आदि। आपने कुछ उपन्यास भी लिखे हैं, जो या तो रूपान्तर हैं या अनुवाद। टैगोर और बंगला साहित्य का इनपर बहुत प्रभाव है। इनके कुछ मौलिक उपन्यास भी हैं।

यशवन्त सवाईलाल पंड्या––(१९०६) ने एकांकी तथा पूरे नाटक लिखे हैं जैसे पडदा पाछल, बदनमंदिर, अ० सौ० कुमारी, शरतना घोड़ा तथा बाल-नाटको। इनके संवाद सजीव और विषय नवीन होते हैं। परम्परा-रहित ढंग से नवीन विचार प्रस्तुत करके आपने लोगों का ध्यान आकर्षित किया है।

जयन्तीलाल मफतलाल आचार्य––(१९०६) शांतिनिकेतन में रह चुके हैं और टैगोर तथा अरविंद से काफी प्रभावित हैं। बंगाल के मध्यकालीन संतों के साहित्य का आपने अच्छा अध्ययन किया है और आपकी रुचि रहस्यवाद

की ओर अधिक है। आपने 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' नामक ग्रंथ तथा रहस्यवाद पर अनेक निबंध लिखे हैं। बंगाली के कई ग्रंथों का आपने या तो अनुवाद या रूपान्तर किया है। आपने कुछ बाल गीत और कविताएँ भी लिखी हैं।

अम्बेलाल नारणजी जोशी––(१९०६) ने कहानी-लेखक के रूप में साहित्यिक जीवन आरंभ किया। १९३२ में इन्होंने इंग्लैंड का इतिहास लिखा और १९३६ से प्रमुख वकीलों, उद्योगपतियों और राजनीतिज्ञों की जीवनियां आप लिख रहे हैं, जिनमें सर चिमनलाल, भूलाभाई देसाई, होरमस जी एडेन-वाला, सर होमी मेहता, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, मोरारजी देसाई, वल्लभ भाई पटेल, डा० राजेन्द्रप्रसाद, राजगोपालाचारी, पट्टाभि सीतारमैया, टंडनजी तथा अन्य की जीवनियां हैं। इनमें से कुछ तो हजार-हजार पृष्ठों से भी अधिक हैं। जिनकी जीवनी इन्होंने लिखी है, उनके लेखन से पर्याप्त उद्धरण जोशीजी ने दिये हैं तथा उनके जीवन को कई दृष्टियों से देखा है। जीवनी लिखने में इन्होंने विशेषता प्राप्त कर ली है और आज ये गुजरात के आदर्श जीवनी-लेखक माने जाते हैं। इनकी शैली शुद्ध, आनन्दप्रद और सरल है; सामग्री बहुमूल्य तथा पूर्ण है। आप बंबई विश्वविद्यालय की सिंडीकेट के सदस्य और प्रमुख शिक्षा-शास्त्री हैं। सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं की ओर भी आपकी काफी रुचि है। आप एक अच्छे वक्ता भी हैं। जीवनियों के अतिरिक्त भी आपने कई पुस्तकें लिखी हैं और कई पुस्तकें लिखने का संकल्प किया है।

मनसुखलाल मगनलाल झवेरी––(१९०७) पहले गुजराती के प्राध्यापक थे और अब पोरबंदर में एक कालेज के प्रिंसिपल हैं। आप एक प्रमुख कवि साहित्यिक आलोचक हैं। आपके काव्य-संग्रह हैं––आराधना, अभिसार, फूलदोल, चन्द्रदूत तथा आलोचनात्मक पुस्तकें हैं–– थोडा विवेचन लेखो, वर्चेषणा, गुजराती साहित्यनुं रेखा दर्शन आदि। आपने कुछ ग्रंथों का सम्पादन भी किया है तथा गुजराती भाषा के कई व्याकरण लिखे हैं, जो बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी शैली शिष्ट एवं संस्कृतमय है और इनकी कविताओं में छन्द, भाव, विचार, चिन्तन तथा वर्णन की विविधता है। आपने कठिन छन्दों में भी बड़ी

सरलता से रचना की है और आधुनिक कवियों में इनका उच्च स्थान है। आलोचना लिखने में आप निर्भीकता से काम लेते हैं तथा विषय पर बड़ी सूक्ष्मता से विचार करते हैं।

सारा भाई मणिलाल नवाब—(१९०७) चित्रकला तथा स्थापत्य के गहन विद्यार्थी हैं तथा मन्त्रशास्त्र में भी रुचि रखते हैं। इन विषयों के कई ग्रंथों का सम्पादन आपने किया है, यथा जैनचित्र कल्पद्रुम, श्री भैरवी, पद्मावती कला आदि; साथ ही जैन धर्म के कुछ ग्रंथों एवं स्तोत्रों का भी सम्पादन किया है। अत्यन्त धैर्य तथा परिश्रमपूर्वक आपने कला के अनेक दुष्प्राप्य नमूने एकत्र किये हैं।

रमणलाल पीताम्बरदास सोनी—(१९०७) ने बालसाहित्य की कई पुस्तकें लिखी हैं। आपके युद्धगीतों का संग्रह 'रणनाद' नाम से प्रकाशित हुआ है। आपने कुछ बंगाली-पुस्तकों का अनुवाद भी किया है।

रमणलाल नरहरलाल वकील—(१९०८) बंबई के एक प्रमुख हाई स्कूल के प्रिंसिपल हैं। आपने 'उरतन्त्र अने नाटचकला' नामक पुस्तक लिखी है, जिसमें नाटक पर एक निबंध है। 'प्रणय काव्यो' आपकी कविताओं का संग्रह है। आपकी पत्नी पुष्पा वकील ने भी कुछ कविताएँ लिखी हैं। कई वर्षों तक रमणलाल ने एक गुजराती मासिक पत्र का सम्पादन भी किया।

हरजीवन सोमैया—(१९०८) ने विभिन्न प्रदेशों की सामाजिक रीतियों, इतिहास, भूगोल तथा विज्ञान को विशेष दृष्टि में रखकर कई उपन्यास लिखे हैं। पृथ्वीनो पहेलो पुत्र, समाजना त्रीजा अंग, पुनरागमन, जीवन नुं झेर (जहर) आदि इनके कुछ उपन्यास हैं। बाल-साहित्य की पुस्तकें भी आपने लिखी हैं। ३४ वर्ष की अल्पायु में आपका देहान्त हो गया।

गुलाबदास हरजीवनदास ब्रोकर—(१९०९) ने कहानियाँ और नाटिकाएँ लिखी हैं। लता अने वीजी वातो, वसुन्धरा अने बीजी वातो, ऊभीवाटे सत्य परवार्युं नथी इनकी कृतियाँ हैं। 'धूम्रसेर' नाटक आपने धनसुखलाल के साथ मिलकर लिखा। आपके पात्र अधिकतर शिष्ट समाज के उच्च मध्यमवर्ग से लिए हुए हैं। पाश्चात्य साहित्य का आपका अध्ययन विस्तृत है। आपने पाश्चात्य लेखकों की कुछ उत्तम कहानियों का रूपान्तर किया है, तथा कुछ मौलिक कहानियाँ भी लिखी हैं। आपका मुख्य विषय बहुत छोटा होता है तथा

सादे, किन्तु प्रभावपूर्ण ढंग से आप मानस-व्यापार पर अधिकार कर लेते हैं। आपका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बड़ा गहन और सूक्ष्म होता है तथा कहानी-क्षेत्र में आपको बहुत बड़ी सफलता मिली है। आपने अनेक विद्वत्तापूर्ण तथा आलोचनात्मक निबंध भी लिखे हैं। आज ये गुजरात के प्रमुख कहानीकार हैं। आपकी उत्तम कहानियों का संग्रह पृथक्रूप में है। इनका रचना-कौशल बड़ा कलात्मक होता है और बड़ी सफलता तथा प्रभावपूर्णता के साथ ये अपने पात्रों में मंगल तत्त्व का समावेश कर देते हैं।

जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण दवे—(१९०९) एक प्रतिभाशाली लेखक, प्रसिद्ध विद्वान् तथा बंबई-बार के प्रमुख एडवोकेट हैं। आपका विद्यार्थी-जीवन बहुत ही उज्ज्वल था, जिसमें आपने अनेक महत्त्वपूर्ण पुरस्कार जीते। श्री क० मा० मुन्शी के अधीन रहकर आपने वैधानिक शिक्षण प्राप्त किया। कुछ समय तक आप राजस्थान के बांसवाड़ा राज्य में चीफ जस्टिस थे। संस्कृत और धर्मशास्त्र विषयक इनके पांडित्य ने हिन्दू-विधान में इन्हें प्रामाणिक व्यक्तित्व प्रदान किया है। पृथ्वीचन्द्र के धर्मशास्त्र विषयक पांडित्यपूर्ण ग्रंथ 'व्यवहार प्रकाश' का सम्पादन इन्होंने समीक्षात्मक ढंग से किया है। वर्तमान समय में आप बंबई-विश्वविद्यालय की सिनेट तथा बनारस-संस्कृत-विश्वविद्यालय के सदस्य हैं तथा हिन्दू-विधान के आधे समय के प्राध्यापक हैं। संस्कृत की सेवा के लिए आप सदा तत्पर रहते हैं। भारत संस्कृत-आयोग की सिफारिश पर भारत सरकार द्वारा स्थापित 'दि सेंट्रल बोर्ड आफ संस्कृत स्टडीज़' के आप सदस्य हैं और संस्कृत आयोग के भी सदस्य थे। 'संस्कृत-विश्व-परिषद्' के आप इसके जन्म से ही-मानद प्रधान मंत्री हैं। आप भारतीय विद्या भवन के मानद डायरेक्टर तथा 'भवन्स जर्नल', 'भारती' एवं 'भारतीयविद्या' पत्रों के प्रबंध सम्पादक हैं। १२ वर्षों से अधिक समय तक आप गुजराती साहित्य-परिषद् के मंत्री रहे हैं।" (भवन्स बुक युनिवर्सिटी) भारत के तीर्थों तथा मुख्य स्थानों पर इनके लेखों का संग्रह 'इम्मार्टल इंडिया' (अमर भारत) नाम से ४ भागों में हुआ है। इन निबंधों को बहुत पसंद किया गया तथा चारो भागों के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं; साथ ही कई विश्वविद्यालयों में भारतीय संस्कृति विषय की पाठ्यपुस्तकों के रूप में स्वीकृत हुए हैं। वैदिक, पौराणिक तथा महाकाव्य संबंधी साहित्य

ने, ऐतिहासिक घटनाओं के विवरण ने तथा धार्मिक आन्दोलनों के वर्णन ने इन पुस्तकों को बहुत मूल्यवान् तथा पांडित्यपूर्ण बना दिया है। इन निबंधों में से कई का अनुवाद भारत की विभिन्न भाषाओं में हुआ है। आपने साहित्यिक तथा दार्शनिक विषयों पर भी अनेक विद्वत्तापूर्ण निबंध लिखे हैं। गुजराती-साहित्य-परिषद के प्रधान मंत्री की हैसियत से आपने 'गुजराती साहित्यनो सुवर्ण महोत्सव' तथा 'अर्वाचीन साहित्य प्रवाह' प्रकाशित किया है। सोमनाथ ज्योतिर्लिंग प्रतिष्ठा के अवसर पर आपने 'सोमस्तवराज' की रचना की तथा अन्य अनेक संस्कृत-काव्य रचे। विभिन्न पत्रों में प्रकाशित आपके गुजराती लेखों तथा रेडियो पर दिये हुए भाषणों की संख्या बहुत अधिक है और विषय-क्षेत्र भी विस्तृत है। द्वारका पीठ शंकराचार्य द्वारा आपको 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि प्राप्त हुई।

जयन्ती घेलाभाई दलाल––(१९०९) की रुचि रंगमंच की ओर अधिक है और आपने सामाजिक नाटक लिखे हैं, जैसे जवनिका, बीजो प्रवेश, त्रीजो प्रवेश आदि। आपके पिता घेलाभाई देशी नाटक कंपनी का संचालन कर रहे थे। अतः नाटकों की ओर जयन्ती दलाल की रुचि उनके पिता की देन है। नाटक सम्बन्धी आपका अध्ययन और अनुभव बहुत अधिक है। आपके संवाद सजीव, तर्कयुक्त और व्यंग्यात्मक होते हैं। सोयनुं नाकु, बस कन्डक्टर और अवतरण आपके नाटकों में से हैं। आपने कुछ रेडियो-रूपक और दूसरे नाटक भी लिखे हैं। आपने कुछ ऐसे सुगम और सजीव एकांकी लिखे हैं, जो रेडियो में प्रस्तुत करने के लिए बहुत उपयुक्त हैं। 'पोरट्रेट आफ ए रिबेल फ़ादर' का अनुवाद आपने 'बलवाखोर पितानी तसवीर' नाम से किया है तथा टालस्टाय के महान् उपन्यास 'वार ऐंड पीस' का रूपान्तर 'पादरनां तीरथ' में किया है। इनकी अन्य पुस्तकें हैं 'पगदिवानी पछी तेथी', 'धीमू अने विभा' आदि।

कान्तिलाल बलदेवराम व्यास––(१९१०) पहले एलफिन्स्टन कालेज, बंबई में गुजराती के प्राध्यापक थे और अब गुजरात में एक कालेज के प्रिंसपल हैं। आप प्राचीन भारतीय संस्कृति और साहित्य, प्राचीन और मध्यकालीन गुजराती साहित्य, दर्शन और अलंकार शास्त्र के विशेषज्ञ हैं। 'वसन्तविलास' का सम्पादन बड़ी कुशलता से आपने किया है और 'गुजराती

भाषानुं व्याकरण अने शुद्ध लेखन' तथा भाषावृत्त अने अलंकार' जैसी स्वतंत्र पुस्तकें भी लिखी हैं। आपने विद्वत्तापूर्ण कुछ निबंध भी लिखे हैं, जिनके लिए आपको पुरस्कार मिला है, साथ ही एक प्रमुख भाषाशास्त्री और शोध विद्वान् के रूप में महान् ख्याति भी आपको प्राप्त हुई है।

मुरलीधर रमाशंकर ठाकुर––(१९१०) गुजराती के प्राध्यापक हैं। आपने अनेक कविताओं की रचना की है, जो 'सफर अने बीजा काव्यो' में संगृहीत हैं। 'मेलो' आपके बाल-गीतों का संग्रह है।

कृष्णलाल जेठालाल श्रीधराणी––(१९११) दक्षिणामूर्ति संस्था में पढ़ते थे, जहाँ इनके अध्यापक थे नाना भाई और हरभाई। बाद में आपने गुजरात विद्यापीठ में शिक्षा पायी, जहाँ महात्माजी तथा काकासाहेब कालेलकर का इनपर बहुत प्रभाव पड़ा। आपने एकांकी नाटक लिखे हैं, जिनमें टैगोर का रहस्यवादी पुट और काव्यमय वातावरण है। 'वडलो' और 'पीलां पलाश' (बाल-नाटक), 'पियो गोरी' (सामाजिक नाटक), 'ज़बक ज्योत', 'मोरना इंडा' तथा 'पद्मिनी' आदि आपके कुछ नाटक हैं। 'मोरना इंडा' आपने इब्सन की शैली में लिखा है। 'कोडियां' आपका काव्य-संग्रह है, जिसमें कुछ मनोरम गीत हैं।

मोहनलाल तुलसीदास मेहता––(१९११) 'सोपान' नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। आप कई वर्षों तक 'जन्मभूमि' के सम्पादक थे और कई दूसरे पत्रों का भी सम्पादन आपने किया। आपने कई उपन्यास और कहानियां लिखी हैं। गांधी जी तथा राष्ट्रीय आन्दोलन से आपको काफी प्रेरणा मिली है। इनकी पत्नी लाभु बहेन भी एक अच्छी लेखिका हैं। 'सोपान' की लिखी पुस्तकें बहुत हैं, जिनमें अंतरनी वातो, संजीवनी, प्रायश्चित, सांझवानां जल, लग्न, एक समस्या, विदाय आदि सम्मिलित हैं। आपने मानव-प्रकृति का अच्छा अध्ययन किया था और बहुत अधिक परिमाण में लिखा है।

दुर्गेश तुलजाशंकर शुक्ल––(१९११) ने कहानियां, उपन्यासों, नाटिकाओं की रचना की है और कविताओं का एक संग्रह प्रस्तुत किया है। दुर्गेश ने अपनी कहानियों और नाटिकाओं में समाज के निम्नवर्ग का चित्रण किया है। 'पृथ्वीना आंसु' इनके प्रतीकात्मक तथा यथार्थवादी दोनों प्रकार के नाटकों का

संग्रह है। 'पंडना पतिका', ''हैये भार', 'मेघली रातें' इनके कुछ अन्य एकांकी नाटक हैं। 'उत्सविका' में स्कूली लड़कों के लिए लिखी हुई नाटिकाएँ हैं, जो बहुत प्रसिद्ध हुई हैं। 'झंकृति' में डा० अवसरे की ३० मराठी कविताओं का पद्यानुवाद है। इनका 'सुन्दरवन' एक प्रसिद्ध सामाजिक प्रहसन है, जो अंग्रेजी का रूपान्तर है। पूजानां फूले, छाया, पल्लव आदि इनकी कहानियाँ हैं। पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में इनका मन बहुत लगता है।

अनन्तराम मणिशंकर रावल––(१९१२) गुजरात कालेज में गुजराती के प्राध्यापक तथा बाद में एक कालेज के प्रिंसिपल थे। आपने साहित्यिक आलोचना संबंधी कई पुस्तकें लिखी हैं, जैसे राईनो पर्वतनुं विवेचन, साहित्य विहार, गंधाक्षत, गुजराती साहित्य, 'कलापी' नो काव्य कलाप, प्रेमानंद कृत नलाख्यान आदि। एक साहित्य-आलोचक के रूप में आप अपने विषय का अध्ययन बहुत विस्तार और सूक्ष्मता से करते हैं तथा इतनी जल्दबाजी कभी नहीं करते कि कोई महत्त्वपूर्ण बात छूट जाय। यद्यपि आलोच्य लेखक के प्रति आपकी सहानुभूति रहती है, किन्तु कृति के दोषों पर दृष्टि गये बिना नहीं रहती। गंधाक्षत और साहित्य विहार में इनके कुछ अध्ययनपूर्ण विवेचन हैं, जो न्हानालाल, शामल, गुजराती नाटक साहित्य के विकास तथा अर्वाचीन साहित्य आदि पर अच्छा, प्रकाश डालते हैं। आपने गुजराती साहित्य के मध्यकालीन गुजराती साहित्य का बहुत सुन्दर इतिहास लिखा है। आपने कुछ श्रेष्ठ ग्रंथों का सम्पादन भी किया है, जिनमें विद्वत्तापूर्ण भूमिकाएँ लिखी हैं। इनके विवेचन विस्तृत, सूचनाओं से पूर्ण, निष्पक्ष और सहानुभूतिपूर्ण मूल्यांकनवाले होते हैं; इनमें समभाव रहता है। ये गुजरात के प्रमुख आलोचक हैं और यद्यपि इनकी आलोचना ठोस, पांडित्य पूर्ण और सूक्ष्म होती है, किन्तु आक्रमणात्मक नहीं होती।

पन्नालाल न्हानालाल पटेल––(१९१२) साबरकांठा के एक गांव के हैं। इनके मित्रों ने 'प्रस्थान' और 'फूलछांव' आदि पत्रों में लिखने, के लिए प्रोत्साहित किया और इन्होंने ग्राम-जीवन का चित्रण करने वाले उपन्यास लिखना आरंभ किया। चल-चित्रों की कहानियाँ भी आपने लिखीं, किन्तु बाद में इसे छोड़ दिया और उपन्यास ही लिखते रहे। ग्राम निवासी होने के कारण ग्राम्य जीवन का आपको प्रत्यक्ष अनुभव था; एक तो इस कारण, दूसरे कहानीकार की विलक्षण

प्रतिभा तथा स्पष्ट परिस्थितियों और नाना प्रकार के वास्तविक पात्रों के निर्माण की शक्ति होने के कारण शीघ्र ही ये प्रकाश में आकर प्रमुख उपन्यासकार बन गये। 'मलेला जीव' आपका प्रथम उपन्यास था, जिसमें ग्रामीणों के करुणाजनक प्रेम की कहानी वर्णित है। 'मानवीनी भवाई' आपका सर्वोत्तम उपन्यास है, जिसमें दुष्काल के समय गरीब ग्रामीणों की यातनाओं का वर्णन है। भीरु साथी, सुरभी, यौवन, पाछले बातो, वलामणां, खेतरने खोले इनके कुछ अन्य उपन्यास हैं। ग्राम्य जीवन के चित्रण करने में जितनी सफलता आपको मिली है, उतनी सफलता नगर-जीवन के चित्रण करने में नहीं मिली। लोक भाषा तथा ग्रामीण मुहावरों के प्रयोग से स्वाभाविकता और बढ़ गयी है। जीवोदांड, सुख दुःखना साथी, पोनेतर नां रंग, वात्रकनां कांठे में आपकी कहानियाँ तथा जमाईराज में नाटक संगृहीत हैं। वर्तमान समय में गुजरात के आप प्रमुख उपन्यासकार हैं।

इन्द्रवदन उमियाशंकर वसावडा—(१९१२) यद्यपि जूनागढ़ के थे, किन्तु आपका बचपन राजस्थान में बीता, क्योंकि आपके पिता कोटा में नौकरी करते थे। आपने हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं में लिखा है। 'रामू भंगी' और 'घर की राह' आपके हिन्दी उपन्यास हैं, जिनकी प्रशंसा प्रेमचन्द जी ने भी की थी। 'घर की राह' का अनुवाद बाद में गुजराती में भी हुआ। गुजराती में आपने शोभा, गंगानां नीर, चंदा, प्रमाण आदि उपन्यास तथा कुछ कहानियाँ लिखीं। आपके विषय, वर्णन, संवाद आदि आकर्षक होते हैं। आपके उपन्यास गुजरात में बहुत प्रसिद्ध हैं।

प्रह्लाद जेठालाल पारेख—(१९१२) की कविताओं के संग्रह हैं बारी बहार और सरवाणी। आपकी शिक्षा दक्षिणामूर्ति भवन तथा शांतिनिकेतन में हुई और शिक्षा-क्षेत्र की ओर चले गये।

नाथालाल भाणजी दवे—(१९१२) का काव्य-संग्रह 'कालिन्दी' है और 'भद्रा' तथा 'नवुंजीवतर' आपके कहानी-संग्रह हैं। 'विराट जागे' नाम का एक नाटक भी आपने लिखा है। टैगोर के रहस्यवाद से आपको प्रेरणा प्राप्त हुई और आपने प्रासादिक कविताएँ लिखीं।

मनुभाई राजाराम पंचोली—(१९१४) 'दर्शक' उपनाम से लिखते हैं

और सौराष्ट्र के एक दक्षिणामूर्ति स्कूल में काम करते हैं। गांधीजी, स्वामी आनंद, नाना भाई, रविशंकर महाराज तथा मेघाणी से आप बहुत प्रभावित हैं। आपने सशक्त शैली में कई उपन्यास लिखे हैं, जैसे बन्धन अने मुक्ति, प्रेम अने पूजा, बन्दीघर, दीप निर्वाण, तथा झेर तो पीधां छे जाणी जाणी। आपके उपन्यासों में बड़ी मार्मिक परिस्थितियाँ होती हैं और चरित्र-चित्रण अत्यन्त प्रभावोत्पादक होता है। आप इतिहास और संस्कृति के अच्छे विद्वान् हैं। आपका गंभीर चिंतन न केवल आपके उपन्यासों में, वरन् 'आपणो वैभव अने वारसो' तथा 'त्रिवेणी तीर्थ' जैसी पुस्तकों में भी स्पष्ट है। आपका प्रथम उपन्यास 'जलियांवाला' है, जो १९३५ में प्रकाशित हुआ था।

मुकुन्दराम विजयशंकर पट्टणी––(१९१४) 'पाराशर्य' उपनाम से लिखते हैं और अब तक दो काव्य-संग्रह प्रस्तुत कर चुके हैं––'अर्चन' और 'संसृति'।

प्रेमशंकर हरिलाल भट्ट––(१९१५) गुजराती के प्राध्यापक थे और अब प्रिंसिपल हैं। आपने कविताएँ और साहित्यिक आलोचनाएँ लिखी हैं। 'चयनिका' और 'धरित्री' इनके काव्य-संग्रह हैं। इनकी कविता में गेयता-तत्त्व होता है और भाषा प्रासादिक होती है। इनकी समीक्षाओं का संग्रह 'मधुपर्क' है। 'जीवतरनी बाजी' नाम का एक उपन्यास भी आपने लिखा है।

ईश्वर भाई मोती भाई पटेल––(१९१६) 'ईश्वर पेटलीकर' के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। आप का जन्म पेटली गांव में आ था और एक गांव में अध्यापक के रूप में आपने जीवन आरंभ किया। 'प्रजाबंधु' के चुनीलाल शाह के सम्पर्क में आये और धारावाही रूप में अपना प्रथम उपन्यास 'जनमटीप' लिखने लगे, जो बहुत पसन्द किया गया। एक के बाद एक आपने कई पत्रों का सम्पादन किया, जैसे 'पाटीदार', 'आर्यप्रकाश', 'रेखा' आदि। इनके उपन्यासों में हम प्रभावपूर्ण चरित्र-चित्रण, देहातियों की मुहावरेदार सबल भाषा, वास्तविक परिस्थितियां, आकर्षक कथावस्तु और तत्कालीन समाज के नर-नारियों का मानसिक संघर्ष पाते हैं। इनके दूसरे उपन्यास हैं––लख्या लेख, धरतीनो अवतार, पंखीनो मेलो, पाताल कुवो, कलियुग, हैयासेगडी, तरणाओथे डूंगर आदि। आपकी कहानियों के संग्रह ह––ताणा वाणा, पटलाईना पेच, पारसमणि, नवलिकाओ आदि। रमणलाल देसाई का आप पर बहुत प्रभाव है। समाज-

सुधारक की दृष्टि से आप अनेक सामाजिक समस्याओं पर विचार करते हैं। आप गुजरात के प्रमुख उपन्यासकारों में से हैं।

भोगीलाल जयचन्द सांडेसरा—(१९१७) ने प्राचीन तथा मध्यकालीन गुजराती साहित्य के अनेक ग्रंथों का सम्पादन किया है और भाषा विज्ञान, भारतीय धर्म संबंधी शोध तथा जैन-साहित्य के अच्छे विद्वान् हैं।

हरिवल्लभ चुन्नीलाल भायाणी—भाषाविज्ञान, प्राचीन तथा मध्यकालीन गुजराती साहित्य, अपभ्रंश तथा प्राकृत साहित्य के प्रकांड पंडित हैं। आपने 'वांग्व्यापार' नामक ग्रंथ में भाषाविज्ञान संबंधी अपने लेखों को प्रकाशित किया है और भारतीय विद्याभवन के कई ग्रंथों का सम्पादन किया है, जिनमें सिंधी-जैनमाला भी सम्मिलित है।

चुन्नीलाल कालीदास मडिया—(१९२२) ने ग्राम्य जीवन चित्रित करने-वाले उपन्यासों से साहित्यिक जीवन आरंभ किया। आपने घूघवतो पूर तथा पद्मजा आदि में कहानियां लिखीं। 'जय गिरनार' में आपने प्रवास वर्णन लिखा और 'हुं अने पारी बहु' नाटक। 'व्याजनो वारस', 'पावक ज्वाला' और 'इंधन ओछां पड्या' मडिया के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माने जाते हैं, जिनकी बड़ी प्रशंसा हुई है। इनमें शक्तिमती लोकभाषा और सौराष्ट्र का वातावरण है। कहानी-लेखन में भी इन्हें काफी सफलता मिली है। केवल ग्राम जीवन ही नहीं, वरन् नागरिक जीवन को चित्रित करने की भी चेष्टा आपने की है। इब्सन, चेखोव, ओनील और सारोयान आपके प्रिय लेखक हैं और इन सबका प्रभाव आपकी कृतियों में यत्र-तत्र स्पष्ट है। साहित्य के विविध रूपों में सफलतापूर्वक आपने सर्जन किया है। आप उच्चकोटि के साहित्यकार हैं विविध रूपों वाले अनेक साहित्य-ग्रंथ अभी और रचने की आपकी अभिलाषा है।

आधुनिकतम काव्य-जगत् का झुकाव अतिशय अर्थघनता, अगेयता, यथार्थ-वाद और प्रवाहिता के विरुद्ध है। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप हम फिर गेयता, शब्द तथा गीत-माधुर्य, छन्द-बंधन, लोकप्रिय होने का प्रयास, सभारंजनत्व का तत्त्व, कोमल-कांत पदावली और मधुर ध्वनि से गायन आदि पाते हैं। राजेन्द्र-शाह, निरंजन भगत, वेणीभाई पुरोहित, अविनाश व्यास, पिनाकिन् ठाकोर, उशनस्, हसित कच, जयन्त पाठक, अनामी प्रजाराम तथा अन्य अनेक कवियों

में उपर्युक्त विशेषताएँ पायी जाती हैं। इस विकास को मुशायरा, कवि-सम्मेलन, रेडियो-कार्यक्रम तथा नृत्यनाटिकाओं आदि से काफी प्रोत्साहन मिला है। शयदा, घायल, रांदेरी आदि में गजब-शैली भी सुजीवित है।

× × ×

उपर्युक्त कवि तथा लेखकों के अतिरिक्त और भी बहुत-से साहित्य सर्जक हैं, जिन्होंने अपने-अपने ढंग से साहित्य के विविध क्षेत्रों में योग दिया है। उनके नाम इस प्रकार हैं :—

काव्य—जनार्दन प्रभास्कर, देशल जी परमार, जहांगीर माणिकजी - देसाई, भानुशंकर व्यास (बादरायण), कोलक, रामप्रसाद शुक्ल, हरिश्चन्द्र भट्ट, रमणलाल देसाई, पतील, अमीदास काणकिया, रतुभाई देसाई, प्रीतम दास मजमूदार, मूलजी भाई शाह, दुला भगत, स्वप्नस्थ, रमणीक अरालवाला, प्रबोधभट्ट, गोविन्द स्वामी, प्रजाराम रावल, सुरेश गांधी, मकरन्द दवे, भोगीलाल गांधी, निरंजन भगत, तनसुख भट्ट, राजेन्द्र शाह, सुधांशु, जेठालाल त्रिवेदी, मनुहृदवे, वेणीभाई पुरोहित, प्रशान्त, अविनाश व्यास, जयन्त पाठक, अनामी, मोहिनीचन्द्र, उशनस्, नन्दकुमार पाठक, रतिलाल छायो, हसिन वुच, जश भाई पटेल, प्रियकान्त मणियार, पिनाकिन, ठाकोर, गोविन्द ह० पटेल, उपेन्द्र पंड्या, गीता कापडिया, गनी दहीवाला, रमेश जानी, बकुलेश जोशीपुरा, चम्पकलाल व्यास, चन्द्रिका पाठक जी तथा अन्य।

गजल—शयदा, अमृत घायल, असीम रांदेरी, बरकत वीराणी, गनी, अमीन आज़ाद, नसीम आबुवाला, पतिल, जमीयत पंड्या, अकबर, माणेक, वेणीभाई पुरोहित, बालमुकुन्द तथा अन्य।

उपन्यास—जयभिक्खु, कृष्णप्रसाद भट्ट, रामचन्द्र ठाकुर, राजेन्द्र सोमनारायण, चन्दुलाल व्यास, धनशंकर त्रिपाठी, मोहन लाल धामी, बचुभाई शुक्ल, रामनारायण नागरदास पाठक, पुष्कर चन्दरवाकर, निरंजन वर्मा, जयमल्ल परमार, सोपान, गोविन्दभाई अमीन, विनोदिनी नीलकंठ, यशोधर मेहता, नीरुदेसाई, धीरजलाल, धनजीभाई शाह, प्रेमशंकर ह० भट्ट, प्रबोध मेहता, उछरंगराम ओझा, रघुनाथ कदम, चंदुलाल दलाल, प्राणलाल मुनशी, दिलहर भचेच तथा अन्य।

नाटक––जयन्ती दलाल के अतिरिक्त यशोधर मेहता ने भी अनेक प्रकार के नाटक लिखे हैं, जैसे रणछोडलाल अने बीजां नाटको, जिनमें इन्होंने पाँच महापुरुषों के चरित्र सशक्त-प्रभावपूर्ण ढंग, उत्तम चरित्र-चित्रण तथा सजीव संवादों द्वारा प्रस्तुत किये हैं। इनके कुछ प्रहसन भी हैं, जैसे 'घेलो बबल' और 'मंबो-जंबो' आदि। शिवकुमार जोशी ने भी कई सामाजिक नाटक लिखे हैं, जिनमें मानसिक संघर्ष तथा पात्रों की विविधता है। ये नाटक शिष्ट तथा रंगमंच के लिए बहुत ही उपयुक्त हैं। आपने कई रेडियो-रूपक भी लिखे हैं। 'सुमंगला', 'अंधारा उचेलो' आपके लंबे नाटक हैं। डाह्याभाई धोलशाजी, मूलशंकर मूलाणी, प्रागजी डोसा, जशवन्त ठाकोर, फ़ीरोज़ आंटिया, अनन्त आचार्य, भगवानदास भूखणवाला, अदी मर्ज़बान, गजेन्द्रशंकर पंड्या, इन्दुलाल याज्ञिक, भास्कर व्हारो, गोविन्द भाई अमीन तथा अन्य नाटककार भी हैं। अन्तर्महाविद्यालय नाटक प्रतियोगिताओं, रेडियो-रूपकों तथा सरकार द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं ने नाटक के विकास में बड़ा योग दिया है।

कहानी––पुष्कर चन्दरवाकर, भवानी शंकर व्यास, उमेदभाई, रमणिकलाल जयचन्द दलाल, मुरली ठाकुर, चन्दुलाल पटेल, रमणलाल सोनी, पूर्णानन्द भट्ट, जयन्ती खत्री, अशोक, हर्ष, व्रजलाल मेघाणी, सत्यम्, बकुलेश, सुरेन्द्र त्रिपाठी, देवशंकर मेहता, स्वप्नस्थ, कुन्दनिका कापडिया, डाह्याभाई पटेल, विनोदिनी नीलकंठ तथा अन्य।

महिला साहित्यकार––दीपकबा देसाई, जसबा दूरकाल, लीलावती मुन्शी, सुमति लल्लूभाई शामलदास, जयमनगौरी पाठक जी, विद्याबहेन नीलकंठ, शारदाबहेन मेहता, विजयालक्ष्मी त्रिवेदी, सरोजिनी मेहता, ज्योत्स्ना शुक्ल, ताराबहेन मोडक, श्रीमती चार्लोटे, हीराबहेन पाठक, विनोदिनी नीलकंठ, चैतन्यबाला मजमूदार–हंसाबहेन मेहता, कुंदनिका कापडिया, गीताकापडिया, चन्द्रिका पाठकजी, धीरुबहेन पटेल, लाभुबहेन मेहता, रम्भाबहेन गांधी, धैर्यबाला वोरा, सरला जगमोहन, कलावती वहोरा, प्रेमलीला मेहता तथा अन्य।

हास्य-साहित्य––दलपतराम, नवलराम, रमणभाई, नरसिंहराव, क० मा० मुन्शी, धनसुखलाल, ज्योतीन्द्र दवे, गगनविहारी मेहता, किशोर वकील, औलिया

जोशी, मस्त फकीर, जागीरदार, जदुराय खंधडिया, रामू ठक्कर, बेकार, बकुल त्रिपाठी, चिनुभाई पटवो, मूलराज अंजारिया तथा अन्य।

शोध-विज्ञान—पंडित सुखलाल जी, जिन विजय जी, दुर्गाशंकर शास्त्री, केकाशास्त्री, पंडित बेचरदास, मधुसूदन मोदी, डा० टी० एन० दवे, प्रबोध पंडित, दत्तात्रय डिस्कलकर, एरच्च तारापोरवाला, हसमुख सांकलिया, गौरी-प्रसाद झाला, कान्तिलाल व्यास, डोलरराम मांकड, सांडेसरा, भायाणी, मंजु-लाल मजमूदार।

प्रकीर्ण—अमृतलाल पढियार, नटवरलाल इच्छाराम, न्हानालाल च० मेहता, डा० जहांगीर संजाणा, पोपटलाल गो० शाह, फ़ीरोज़ दावर, मनहरराम मेहता, नागरदास पटेल, बचुभाई रावत, मणिलाल इच्छाराम, डा० हरिप्रसाद देसाई, रत्नमणिराव जोटे, अम्बालाल पुराणी, वीरचन्द गांधी, मोतीलाल घोडा, रामलाल पु० मोदी, नानाभाई भट्ट, प्रभुदास गांधी, हरभाई त्रिवेदी, रविशंकर रावल, मनुभाई जोधाणी, नटवरलाल बीमावाला, स्वामी आनन्द, रविशंकर महाराज, रंग अवधूत, मगनलाल प्रभुभाई देसाई, शिवशंकर शुक्ल, धर्मानंद कोसाम्बी, पुरातन बुच तथा अन्य।

विवेचन—विष्णुप्रसाद त्रिवेदी, विजयराय, विश्वनाथ भट्ट, अनन्तराय रावल, उमाशंकर, सुन्दरम्, नवलराम त्रिवेदी, मनसुखलाल झवेरी, धीरुभाई ठक्कर, रामप्रसाद शुक्ल, बिपिन झवेरी, भूपेन्द्र त्रिवेदी, उपेन्द्र पंड्या, कान्ति-लाल व्यास, चन्द्रकान्त मेहता, हीरा बहेन पाठक।

साहित्य-सामग्री

अनुवाद—कालिदास, भवभूति, भास, गीतगोविन्द, कादम्बरी, नागानन्द, मुद्राराक्षस, स्तोत्र तथा वेदान्त के संस्कृत ग्रंथ; अंग्रेजी से शेक्सपियर, इब्सन, टाल्सटाय, ह्यूगो, मोपासां, इमर्सन, चेखोव, गोल्डस्मिथ, लैन्डोर, प्लेटो आदि; बंगाली से शरत् बाबू, बंकिमचन्द्र, टैगोर, सेनगुप्त, सान्याल, सौरीन्द्रमोहन आदि; हिन्दी से प्रेमचन्द, जैनेन्द्रकुमार, सियारामशरण, राहुल सांकृत्यायन आदि; मराठी से खांडेकर, अत्रे, तिलक, पेंडसे, फडके, साने गुरूजी।

पत्र-पत्रिकाएँ—बुद्धिप्रकाश, गुजरातशाला पत्र, ज्ञान प्रसारक, दांडियो,

प्राचीन काव्य त्रैमासिक, सुदर्शन, ज्ञानसुधा, समालोचक, वसन्त, साहित्य, वीसमी सदी, महाकाल, प्रातःकाल, सुन्दरी सुबोध, गुजरात, सुवर्णमाला, कौमुदी, मानसी, गुणसुन्दरी, नवचेतन, ऊर्मि, पुरातत्त्व, युगधर्म, प्रस्थान, कुमार, कविता, शिक्षण अने साहित्य, नागरिक, अखण्डानन्द, संस्कृति, दक्षिण, समर्पण, फार्बस त्रैमासिक, प्रजाबन्धु, फूलछांव, जन्मभूमि, नवजीवन, हरिजन आदि।

संस्थाएँ––ज्ञान प्रसारक मंडली, पुरातत्त्व मंदिर, गुजरात साहित्य सभा, गुजरात विद्यासभा, साहित्य परिषद्, भारतीय विद्या भवन, गुजरात विद्यापीठ, फार्बस गुजराती सभा, सस्तुं साहित्य कार्यालय, गुजरात संशोधन मंडल, विविध विश्व विद्यालय।

बाल-साहित्य––गिजुभाई बघेका, नानाभाई सोमाभाई, भावसार, नागरदास पटेल, जीवराम जोषी, शारदाप्रसाद वर्मा, किशोर गांधी, मनुभाई जोधाणी तथा अन्य।

काव्य के रूप––महाकाव्यों का प्रयास, खंडकाव्य, ऊर्मिगीत, रास, गज़ल, सोनेट, करुण प्रशस्ति, प्रतिकाव्य, देशभक्ति काव्य, बालकाव्य, भजन, मुक्तक आदि।

गद्य के रूप––ऐतिहासिक, सामाजिक तथा जासूसी उपन्यास; वर्णनात्मक, चिन्तनात्मक, साहित्यिक और सुगम निबंध; जीवनचरित्र, आत्म चरित्र, रेखा-चित्र, डायरी, नोंधपोथी, पत्र-साहित्य; नाटक–दीर्घ, एकांकी, धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, प्रणय एवं साहसयुक्त, दृश्य, श्राव्य, गद्य में–पद्य में, संगीत, प्रहसन, यथार्थवादी, आदर्शवादी आदि; साहित्यिक समीक्षा के ग्रंथ; हास्यरस का साहित्य; बाल साहित्य; तत्त्वज्ञान-साहित्य; संशोधन; राजनीति; अनुवाद; सामयिक तथा वर्तमानपत्र-साहित्य आदि।

अध्याय २५

व्याकरण तथा भाषा-विज्ञान आदि

पाणिनि ने अनेक व्याकरण-शास्त्रियों का उल्लेख किया है, जिनमें १२ के नाम 'अष्टाध्यायी' में हैं। बोपदेव ने इन्द्र-चन्द्र तथा अन्य छ का उल्लेख किया है। कात्यायन, पतञ्जलि तथा दूसरों ने पाणिनि की परंपरा को ही विकसित किया। इन संस्कृत-व्याकरणाचार्यों के अतिरिक्त प्राकृत में भी कई व्याकरण-ग्रंथ पाये जाते हैं; जिनमें वररुचि, चंड, हेमचन्द्र, त्रिविक्रम तथा लक्ष्मीधर के व्याकरण प्रमुख हैं। प्रथम भाग के प्रथम अध्याय में हम यह बता चुके हैं कि किस प्रकार अपभ्रंश से गुजराती का विकास हुआ। हेमचन्द्र के व्याकरण 'सिद्धहैम' के अंतिम अध्याय में अपभ्रंश-व्याकरण का वर्णन है।

आधुनिक काल में १९ वीं शताब्दी के आरंभ से ही अनेक विद्वानों ने गुजराती भाषा का व्याकरण लिखा है। ड्रूमैंड (१८०८), फ़ार्बस (१८२९), गंगाधर (१८४०), राम से (१८४२), बालफ़ोर (१८४४), क्लार्कसन (१८४७), लेकी (१८५७) नर्मदाशंकर (१८५६), होप (१८५९), भरुचा (१८५९), शापुरजी (१८६७), टेलर (१८६७), हरगोविंद दास और लालशंकर (१८६९) महीपतराम (१८८०), मंचेर शाह पालनजी के कोवाद, टिसडल (१८९२), बेस्ट, तथा कुछ अन्य।

राय बहादुर कमलाशंकर प्राण शंकर त्रिवेदी का 'बृहद् व्याकरण' १९१९ प्रकाशित हुआ। इन्होंने १९१६ में 'लघु व्याकरण' तथा १९१७ में 'मध्य व्याकरण' भी प्रकाशित किये थे। आप संस्कृत के प्रकांड विद्वान्, महाभाष्य तथा अन्य ग्रंथों के आरूढ़ पंडित और प्रमुख वैयाकरण थे। राजकीय पुस्तक माला के अन्तर्गत आपने 'षड्भाषा चन्द्रिका' तथा अन्य ग्रंथों का सम्पादन भी किया। आपके विचारों से विशेषकर व्युत्पत्ति विभाग—यद्यपि कुछ विद्वान् सहमत नहीं रहे, तथापि आपके पांडित्यपूर्ण विवेचन बहुत उपयोगी सिद्ध हुए

हैं और आज भी कई विश्वविद्यालयों में गुजराती के बी० ए० तथा एम० ए० के विद्यार्थियों के लिये 'बृहद् व्याकरण' के कुछ उत्तम अध्याय सर्वसम्मति से स्वीकृत किये गये हैं। इन अध्यायों का संशोधित संस्करण इनके पुत्र प्रिंसिपल ए० के० त्रिवेदी ने—जो कई वर्षों तक बड़ौदा कालेज में गुजराती के प्राध्यापक थे, प्रकाशित किया है।

स्कूल-कालेजों के लिए गुजराती के अध्यापकों-प्राध्यापकों ने व्याकरण लिखे, जैसे मनसुखलाल झवेरी, कान्तिलाल व्यास, केशवराम शास्त्री तथा अन्य। अधिकांश व्याकरणों में संस्कृत तथा प्राकृत व्याकरणों की शैली और परिभाषा का अनुसरण किया गया है। गुजराती एक जीवित और विकासोन्मुख भाषा है, अत: एक ऐसे व्याकरण की आवश्यकता अभी भी है, जिसमें सभी वर्तमान प्रयोगों, मुहावरों तथा बढ़ते हुए बहुविध रूपों पर विचार किया गया हो। दूसरे शब्दों में रूढ़िबद्ध व्याकरणों के स्थान पर एक वर्णनात्मक व्याकरण ग्रंथ लिखा जाना चाहिए, जो नवीन और प्रचलित धारणा के अनुकूल हो। अनेक विभक्तियों को कैसे पहचाना जाय? प्रत्ययों और अनुस्थितों में भेद कैसे किया जाय? प्रवक्ता-कथन (direct Speech) तथा अन्य-कथन (Indirect Speech) में अन्तर कैसे किया जाय? क्या व्याकरण का सरलीकरण संभव है? इन तथा इनसे सम्बन्धित अन्य प्रश्नों पर विचार अवश्य किया गया है, किन्तु नयी धारणाओं के अनुकूल कोई सम्पूर्ण व्याकरण अभी तक नहीं लिखा गया।

भाषा-शास्त्र के क्षेत्र में इस समय तक बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है। व्रजलाल शास्त्री, नर्मदाशंकर तथा नवलराम ने इस विषय का अध्ययन आरंभ किया। व्रजलाल शास्त्री के ग्रंथ 'गुजराती भाषानो इतिहास' तथा 'उत्सर्ग माला' बड़े उपयोगी हैं। नर्मदा शंकर ने अपने व्याकरण में तथा 'नर्मकोश' की भूमिका में इस विषय का विवेचन किया है। नवलराम ने १८७३ में 'व्युत्पत्तिपाठ' लिखा, जो उस समय स्कूल-कालेजों में बहुत प्रचलित था। बीम्स, ग्रियर्सन, टेसीटोरी तथा अल्फ़ेड मास्टर कुछ यूरोपीय लेखक हैं। रामकृष्ण गोपाल भांडारकर तथा गुणे ने भी तुलनात्मक भाषाशास्त्र का विवेचन किया है।

यद्यपि केशव हर्षद ध्रुव, आनन्दशंकर ध्रुव, कमलाशंकर त्रिवेदी तथा रमण-

भाई ने भाषाशास्त्र विषय पर कुछ-न-कुछ लिखा है, किन्तु नरसिंहराव दिवेटिया का प्रयास सब में उत्तम है। 'विल्सन भाषाशास्त्रीय व्याख्यान माला' के दो भागों में इस विषय का आपने गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है, जो अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण तथा मौलिक है। इनकी रुचि पांडित्य, शुद्धता तथा परिश्रम की ओर अधिक थी। यद्यपि इस क्षेत्र में इनके विचार नवीन थे, तो भी इनके ग्रंथ का अधिकांश अब भी आदर की वस्तु माना जाता है।

सी० पी० पटेल, डा० टी० एन० दवे, केशवराम शास्त्री, पंडित बेचरदास, डोलरराय मांकड, विष्णुप्रसाद त्रिवेदी, मुनि जिन-विजयजी, भोगीलाल सांडेसरा, कान्तिलाल व्यास, हरिवल्लभ भायाणी, मधुसूदन मोदी, प्रबोध पंडित, मंजुलाल मजमूदार तथा दूसरों ने भी इस विषय पर लिखा है।

पिंगल विषय पर दलपतराम, नर्मदाशंकर, हीराचंद कहाननी, जीवराम गोर, रणछोड भाई उदयराम, केशव हर्षद ध्रुव, खबरदार तथा रामनारायण पाठक का अमर ग्रंथ 'बृहत्पिंगल' है।

अलंकार और रसशास्त्र पर नर्मदाशंकर, छोटालाल नरभेराम भट्ट, सविता-नारायण, रणछोडभाई उदयराम (नाटचशास्त्र), कवि नथुराम सुंदरजी (नाटचशास्त्र एवं काव्यशास्त्र), रामनारायण पाठक, ध्रुव, डोलरराय मांकड, रामप्रसाद बक्षी तथा लक्ष्मीनाथ शास्त्री के ग्रंथ हैं।

अध्याय २६

उपसंहार

दयाराम के बाद गुजराती साहित्य पर पाश्चात्य सभ्यता का गहरा प्रभाव पड़ा। धर्म के अतिरिक्त साहित्य में दैनिक जीवन, समाज-सुधार आदि के विषय भी स्थान पाने लगे। समितियां और मंडल बने; छापाखाना शुरू हुआ; सरकारी स्कूल खुले; गुजराती में पाठ्य-पुस्तकें लिखी गयीं; सुसंस्कृत अंग्रेज अधिकारी गुजराती साहित्य के प्रति रुचि रखने लगे; "इंडियन नेशनल कांग्रेस" की स्थापना १८८५ में हुई, जिससे गुजरात को भी अन्य प्रान्तों के सम्पर्क का लाभ मिला।

दलपतराम ने ऐसी कविता लिखी, जो सभारंजनी थी और जिसमें शब्द तथा अर्थ की चमत्कृति थी। नर्मदाशंकर के काव्य में प्रेम, वीरता, आत्मचिंतन, प्रकृति-वर्णन और उद्‌बोधन सब कुछ था। १८५७ में बंबई विश्वविद्यालय की स्थापना हुई, जिसके फलस्वरूप पंडितयुग का आगमन हुआ, जिसमें लेखकों और कवियों का संस्कृत तथा अंग्रेजी का अच्छा अध्ययन था।

नर्मदाशंकर का देहान्त १८८६ में हुआ और १८८७ में नरसिंहराव ने अपनी 'कुसुम माला' प्रकाशित की। इसी वर्ष गोवर्धनराम के 'सरस्वतीचन्द्र' का पूर्वार्ध प्रकाशित हुआ। विषय तथा भाव को व्यक्त करने में नरसिंहराव ने विशेष कला का परिचय दिया और उन्होंने प्रकृति, परमात्मा, जन्म, मृत्यु एवं इसी प्रकार के अन्य गंभीर विषयों पर चिन्तनात्मक कविताएँ लिखीं। ये बड़े संयम से लिखते थे, वर्णविन्यास और अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में बहुत सावधान रहते थे तथा संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य के अच्छे विद्वान् थे। आप गुजरात में आधुनिक काव्य के मार्गदर्शक थे। अपने सुदीर्घ साहित्यिक जीवन में आपने कई काव्य-संग्रह प्रदान किये। रमणभाई ने कुसुममाला की नयी कविता का स्वागत किया। वे उन चिन्तन प्रधान काव्यों को, जिनमें भाव तत्त्व की प्रमु-

खता हो, उत्तम काव्य मानते थे। मणिशंकर भट्ट—कान्त—ने श्रेष्ठ खंडकाव्य रचे। इनके जीवन में आंतरिक संघर्ष बहुत था, इसलिए ये बहुत भावुक थे। इनके खंडकाव्य शब्द, अर्थ, भाव, सौन्दर्य, वृत्ति और अलंकार की दृष्टि से निर्दोष और उत्तम हैं। यद्यपि औरों की अपेक्षा इनके काव्य का परिमाण कम है, किन्तु बलवन्तराय ठाकोर जैसे आलोचक ने इन्हें पिछले सौ वर्षों का सर्वश्रेष्ठ कवि माना है।

नानालाल का 'वसन्तोत्सव' १९०५ में प्रकाशित हुआ। गुजराती काव्य-क्षेत्र में इनका आगमन वसन्तऋतु के आगमन के समान माना जाता है। इन्होंने अपद्यागद्य अथवा रागबद्ध गद्य लिखा। बड़ी उत्सुकता के साथ गुजरात में इस गद्य की सराहना हुई। किन्तु बाद में कोई भी सफल अनुकरण नहीं कर कर सका। इन्होंने गुजरात का समूचा वातावरण बदल दिया और अपने तेजस्वी शब्दों से पाठकों को वशीभूत कर लिया। भावना की अपूर्वता, अर्थ-गौरव, पद-लालित्य, अलंकारों पर अधिकार तथा उनका अधिकता से प्रयोग, वाक्छटा, प्राचीन आर्य-संस्कृति के प्रति आदर की भावना, रचना का अधिक परिमाण—इन सब गुणों ने इन्हें गुजरात का सर्वोत्तम कवि बना दिया। जीवन के आदर्शों तथा भावनाओं का चित्रण करने में आपको आनन्द प्राप्त होता था। अपनी डोलन शैली से इन्होंने गद्य-पद्य दोनों को समृद्ध किया। इनके रास और ऊर्मि-गीत अत्यन्त काव्यात्मक तथा अद्वितीय हैं, जिनमें से कुछ तो ऐसे हैं जो संसार की कुछ सर्वोत्तम रचनाओं में स्थान पा सकते हैं। 'कलापी' ने स्पष्टता और ईमानदारी के साथ सादे प्रवाहपूर्ण संस्कृत-छंदों में रचना की तथा सफल गज़लें भी लिखीं, जिनमें प्रेम और आंसुओं की प्रधानता है। गज़ल लिखना बालाशंकर ने आरंभ किया था, फिर 'कलापी' मणिलाल और सागर ने उनका अनुसरण किया। मणिलाल ने 'आत्मनिमज्जन' तथा 'अभेदोर्मि' में प्रेम एवं अद्वैत का वर्णन किया है। पारसी कवि खबरदार ने १९०१ से लिखना आरंभ किया और शुद्ध संस्कृत शैली में कई काव्य-संग्रह दिये, जिनसे छंदों पर उनका अधिकार सिद्ध होता है। अंग्रेजी के 'ब्लैंक वर्स' की तरह आपने गुजराती में भी मुक्तधारा तथा अमीरी महाछन्द में लिखने का प्रयोग किया। आपने कुछ राष्ट्रगीत, तत्त्वचिन्तन की कविताएँ तथा कुछ अच्छे प्रतिकाव्य लिखे। बोटादकर ने पाँच

काव्य-संग्रह प्रदान किये, जिनमें संस्कृत शब्दों की वहुलता है पर समझन में सरल हैं। छंदों पर आप का अच्छा अधिकार था। जन्मशंकर वुच-ललित जी ने कुछ अच्छे गीतों की रचना की है।

रमणभाई भावतत्त्व को काव्य के लिए परम आवश्यक मानते थे, नानालाल भावना को महत्त्व देते थे और बलवन्तराय ठाकोर विचार तत्त्व को काव्य का सर्वोत्तम अंग समझते थे। ठाकोर का कहना था कि विचार प्रधान कविता द्विजोत्तम जाति की है और केवल इसी शैली में महाकाव्य की रचना हो सकती है। आपने अनेक छन्दों का प्रयोग किया तथा प्रवाहपूर्ण पृथ्वीछन्द और सोनेट का सन्निवेश सफलता पूर्वक किया। इनके अनुसार काव्य के लिए गेय तत्त्व आवश्यक नहीं है। आंसूभरी दुर्बल कविताओं के आप घोर विरोधी थे। ठाकोर ने नयी पीढ़ी के कवियों को प्रभावित किया और उनके कुलगुरु वन गये। इस काल में और भी अनेक साहित्यकार हुए हैं, जैसे हरि हर्षद ध्रुव, बालाशंकर कंथारिया, केशवराम हरिराम भट्ट, छोटालाल नरभेराम भट्ट, श्रीमन्नृसिंहाचार्य, सागर, त्रिभुवन प्रेमशंकर, नथुराम सुन्दरजी, डाह्याभाई देरासरी तथा अन्य।

नयी पीढ़ी के कवियों ने जैसे ठाकोर को अपना कुलगुरु बनाया, उसी प्रकार उन्होंने गांधीजी से जीवन तथा जनता को एक नवीन दृष्टि से देखना सीखा। गांधीजी एक विश्ववन्द्य युगपुरुष थे और वे सादी, प्रत्यक्ष तथा गौरवपूर्ण शैली में अनेक समस्याओं पर ऐसे सबल ढंग से विचार करते थे कि समूचे वातावरण को बदल देते थे। उन्होंने भारत को अपने प्राचीन वैभव पर अभिमान करना सिखाया। उन्होंने सत्य-अहिंसा तथा अन्य मौलिक सिद्धान्तों पर जोर दिया। सर्वोदय, विश्वप्रेम, सर्वधर्म समभाव, निर्धनों तथा दलितों के प्रति सहानुभूति, राष्ट्रीय आन्दोलन, जिसका उन्होंने संचालन किया—इन सब बातों ने और विश्व-युद्ध, पश्चिम की नयी विचारधारा, रूस का समाजवाद तथा साम्यवाद, पुरानी गुजराती, संस्कृत और अंग्रेजी का अध्ययन, अन्य प्रान्तों के साहित्य का अध्ययन इन सबके कारण एक परिवर्तन उपस्थित कर दिया और कविता को एक नया रूप प्रदान किया। परिणामतः भाषा में प्रसाद गुण और वाक्छटा आयी, कठोरता को हटाने का प्रयत्न किया गया। नये छन्दों का प्रयोग हुआ। सभी विषयों पर कविता लिखी जाने लगी। निर्धनों तथा दलितों के प्रति प्रेम

की अभिव्यक्ति हुई। कविता में लोकभाषा को भी स्थान मिला। कान्त, न्हानालाल और ठाकोर का प्रभाव दृष्टिगोचर था। इस काल के प्रमुख कवि हैं चन्द्रवदन मेहता, रामनारायण पाठक, मेघाणी, गजेन्द्र बुच, सुन्दरम् तथा उमाशंकर। पाठक ने अपने संग्रह 'शेषना काव्यों' में विविध विषय दिये हैं। गजेन्द्र का देहान्त कम उम्र में हो गया था, फिर भी उनकी कविताएँ 'गजेन्द्र मौक्तिको' में संगृहीत हैं, जिनमें से कुछ तो बहुत ही कलात्मक हैं। मेघाणी ने 'युगवन्दना', 'एक तारो' और 'रवीन्द्र वीणा' की रचना की। सुन्दरम् के ग्रंथ हैं, 'काव्य मंगला', 'कोपा भगतनी कड़वी वाणी' और 'वसुधा मात्रा'। उमाशंकर ने 'गंगोत्री', 'निशीथ', 'आतिथ्य', 'प्राचीना', 'वसन्त वर्षा' आदि काव्य-पुस्तकें लिखीं। सुन्दरम् और उमाशंकर इस युग के प्रमुख कवि हैं तथा दोनों ने स्थायी साहित्य का निर्माण किया। सुन्दरम् में ऊर्मि, चिन्तन, भाव, प्रसाद, सुरेखता तथा भावनावैविध्य है। उमाशंकर में निर्मलता, आदर्श, प्रसाद, माधुर्य, विचार-समृद्धि तथा दाक्षिण्य है। दोनों की शैली रोचक है। चन्द्रवदन मेहता ने बाल-जीवन तथा भाई-बहन का प्रेम 'इला काव्य' में चित्रित किया है। पूजालाल ने अपने 'पारिजात' और 'ऊर्मिमाला' में विशिष्ट विश्वास तथा दार्शनिक चिन्तन से युक्त भक्ति सम्बन्धी सच्चे काव्य का सर्जन किया है। करसन मानिक ने कुछ व्यंग्यात्मक काव्य तथा रोचक गीत लिखे हैं। इनके ग्रंथ हैं 'आलबेल', 'महोवतने मांडवे', 'कल्याणी', और 'वैशंपायननी वाणी।' स्नेहरश्मि ने 'अर्घ्य' और 'पनघट' में कुछ अच्छे गीत और बंगला शैली में कुछ कुछ कविताएँ लिखी हैं। बेटाई ने 'ज्योतिरेखा', 'इन्द्रधनु' तथा 'विशेषांजलि' में संयम तथा कोमलता के साथ प्रभु-प्रेम एवं चिन्तन पर कुछ अच्छी कविताएँ लिखी हैं। इन्दुलाल गांधी ने, 'खंडित मूर्तिओ' तथा अन्य संग्रहों में अच्छे गीत लिखे हैं। मनसुखलाल झवेरी ने विशुद्ध शैली में संस्कृत-बहुल काव्यों तथा खंडकाव्यों की रचना की है, जिनमें छन्दों की विविधता है। इनके गीतों में वर्णन, भाव-विचार और चिन्तन है। इनके कुछ खंडकाव्यों ने आधुनिक गुजराती काव्य-क्षेत्र में इन्हें ऊँचा स्थान दिलाया है। पतील, बादरायण, स्वप्नस्थ, रमणीकलाल, अरालवाला, बालमकुन्द पटेल, दुर्गेश शुक्ला, निरंजन भगत, नाथालाल दवे, मकुन्द पाराशर्य, प्रियकान्त मनियार, राजेन्द्र शाह तथा दूसरे

कवियों ने भी अपनी रचना द्वारा काव्य की इस नवीन धारा को समृद्ध किया है।

काव्य के यथार्थवाद, विचार प्रधान, अगेय और प्रवाही गुणों की प्रतिक्रिया वर्तमान काल में हुई। कवि-सम्मेलनों और मुशायरों का आयोजन हुआ; रेडियो तथा नृत्य नाटिका में गाये जानेवाले गीतों को शब्द-माधुर्य तथा संगीत प्रदान किया गया; छन्द-बन्धन और लोकप्रियता फिर लौट आयी; कर्णप्रिय और तेजस्वी शब्दों का प्रयोग तथा जन-समूह के समक्ष गाकर कविता-पाठ करना——इन तत्त्वों का प्रवेश फिर हुआ। निरंजन भगत, राजेन्द्रशाह, वेनीभाई पुरोहित, अविनाश व्यास, पिनाकिन ठाकोर, उशनस,हसित बुच, जयन्ती पाठक, अनामी, प्रजाराम तथा दूसरे कवियों में ये गुण पाये जाते हैं। गज़ल लिखने वालों में शैदा, अमृत घायल, असीम रांदेरी, बरकत वीराणी, गनी, अमीन आज़ाद, नसीम, आबूवाला, पतील, जमियत पंड्या, अकबर मानिक, वेणीभाई, बालमुकुन्द तथा दूसरे हैं।

अब तक गुजराती में एक भी महाकाव्य की रचना नहीं हुई। अनेक छन्दों का प्रयोग अवश्य हुआ है; जैसे वनमाली, अपद्यागद्य, पृथ्वी मुक्तधारा, अनुष्टुभ्। गीत और आख्यानों की संख्या अधिक है; खंडकाव्य भी कम नहीं मिलते, जिनमें कुछ बहुत सफल और सर्वगुण सम्पन्न हैं। इन खंड काव्यों के रचयिता हैं कान्त, नरसिंहराव, खबरदार, बेटाई, मनसुखलाल तथा अन्य। अनवर, अर्जुन भगत, त्रिभुवन प्रेमशंकर तथा दूसरों ने गरबी और भजन लिखे हैं। गीत-काव्यों के रचयिता हैं भोलानाथ, नरसिंहराव, खबरदार और ललित। दीर्घ काव्यों के नाम हैं स्नेह मुद्रा, विभावरी स्वप्न, कलापीनो विरह, स्मरण संहिता, विश्वशान्ति, एकोऽहं बहुस्यां, इन्द्रधनु, खाखना पोपणां, स्मशानमां आदि। दौलतराम पंड्या ने महाकाव्य के ढंग पर 'इन्द्रजितवध' लिखा तथा इसी ढंग पर भी राव भोलानाथ ने 'पृथुराज रासा' की रचना की है। दोनों ने संस्कृत के महाकाव्यों की शैली ग्रहण की है। यद्यपि महाकाव्य लिखने के प्रयत्न अनेक हुए, किन्तु सफल एक भी नहीं हुआ। इस दिशा में दौलतराम और भीम राव के प्रयास प्रशंसनीय हैं।

आधुनिक गुजराती गद्य का विकास नर्मदाशंकर के बाद आरंभ हुआ।

इन्होंने शुद्ध, प्रवाह पूर्ण और सबल शैली में निबंध, जीवनचरित्र, आत्मचरित्र, नाटक, इतिहास और आलोचनाएँ आदि लिखीं। ये एक प्रकार से गद्य-लेखन के मार्गदर्शक बने। इनके कुछ निबंध तो बहुत ही अध्ययनपूर्ण हैं। नवलराम एक उच्चकोटि के आलोचक, संतुलित विचारवाले तथा अंतर्द्रष्टा थे। इनकी शैली सादी, किन्तु मधुर है। तत्पश्चात् पंडितयुग का आगमन हुआ। इस युग में विद्वत्ता, गहन अध्ययन, ठोसपन, संस्कृत-बहुल-भाषा, प्रौढ़ता और कहीं-कहीं दुर्बोधता थी। मनसुखराम, गोवर्धनराम, मणिलाल, नरसिंहराव, रमणभाई, बलवन्तराय ठाकोर, आनन्दशंकर——इनमें से प्रत्येक ने अपने-अपने ढंग से गद्य को पुष्ट करने में योग दिया। मणिलाल तथा आनंदशंकर का गद्य सर्वोत्तम माना जाता है। इसके बाद गांधीजी आये। ये युगपुरुष थे और इन्होंने अनेक लेखकों को प्रोत्साहित किया। इनकी शैली सचोट, अर्थघनमय एवं मिताक्षरी थी। प्राचीन संस्कृति के लिए आदर, लोकसाहित्य, दलितों के प्रति प्रेम, सेवा-भाव, भारत गौरव आदि गुण इन्हीं के प्रभाव से आये तथा अध्यात्मरंग में रंगी हुई एक जीवन दृष्टि भी लोगों को गांधीजी से मिली। कालेलकर, मशरुवाला, महादेव, भाई, नरहरि परीख और चन्द्रशंकर शुक्ल कुछ ऐसे लेखक हैं, जो गांधी जी के साथ रहकर काम करते थे। कन्हैयालाल मुन्शी अपने गद्य में सरसता, जीवन-उल्लास, ओजस्, प्रवाहिता, कथारंग, कलाविधान, नाटकीयता और चित्रात्मक निरूपण ले आये। इन्होंने गद्य के लगभग सभी रूपों में लिखा है। गोवर्धनराम सामाजिक उपन्यास लिखने में सर्वश्रेष्ठ थे और मुन्शी ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में। रमणभाई में माधुर्य, सौष्ठव और नागरिकता है। मेघाणी लोकभाषा का ओजस् ले आये। रामनारायण मुख्य विषय को ग्रहण करके सूक्ष्मता से विश्लेषण करते हैं। इनकी शैली सहज, विशद और अत्यन्त शुद्ध है। धूमकेतु को बुद्धिगत संविधान के साथ ऊर्मितत्त्व चित्रित करने में आनंद आता है। समीक्षा और साहित्यिक आलोचनाओं के लिए विजयराम ने एक नवीन और शिष्ट शैली ग्रहण की है। विष्णुप्रसाद ने उत्तम ढंग से आलो-चना के सिद्धान्तों का निरूपण किया है। इस प्रकार अनेक रूपों में गुजराती गद्य ने शक्ति, वैविध्य एवं संस्कार अर्जित किया। ये शिष्ट संस्कार जनता की साधारण भाषा, दैनिक पत्रों, रेडियो, रंगमंचों, सभाभवनों तथा साहित्यिक

पत्रों में दृष्टिगोचर होते हैं। अब उच्च शिक्षा के लिए गुजराती भी माध्यम बन गयी है तथा उन अनेक क्षेत्रों के अतिरिक्त, जिनमें गुजराती गद्य ने समृद्धि और सामर्थ्य प्राप्त की है, अनेक नये क्षेत्र भी खुल गये हैं, जिनमें इसका विकास हो सकता है।

उपन्यास-क्षेत्र में 'करणघेलो' सर्व प्रथम उपन्यास था और 'सरस्वतीचन्द्र' सर्वश्रेष्ठ सामाजिक उपन्यास। मुन्शी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों तथा प्रतापी और जीवन्त पात्रों के निर्माण के कारण इस क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। चुनीलाल वर्धमानशाह, धूमकेतु, रमणलाल देसाई, दर्शक, जयभिक्खु, गुणवन्तराय आचार्य, रामचन्द्र ठाकुर, मंजुलाल देसाई, पन्नालाल, पेटलीकर, जयन्ती दलाल, रामू अमीन, शिवशंकर शुक्ल तथा कुछ दूसरों ने भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। न्हानालाल, राममोहनराय, जसवन्तराय, मुन्शी, रमण-लाल, धूमकेतु, चुनीलाल वर्धमानशाह, पन्नालाल, पेटलीकर, चुनीलाल मडिया तथा कुछ दूसरों ने सामाजिक उपन्यास दिये हैं।

अनुवाद-क्षेत्र में बंगाली से टैगोर, सौरीन्द्रमोहन, बनफूल, निरुपमा देवी तथा दूसरों की कृतियों का अनुवाद हुआ है; मराठी से वा० म० जोषी, अत्रे, साने गुरुजी, आप्टे, खांडेकर तथा दूसरों का; हिन्दी से प्रेमचन्द, जैनेन्द्रकुमार तथा दूसरों का। टालस्टाय, पर्ल बक, कुछ साम्यवादी उपन्यासकारों तथा अन्य कृतियों का भी गुजराती में अनुवाद हुआ है। गांधी जी तथा मुन्शी के गुजराती ग्रंथों का अनवाद भारत की अन्य भाषाओं एवं अंग्रेजी में भी हुआ है।

कहानी, एकांकी, सरल निबंध--इन रूपों को पत्र-पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों तथा साहित्यिक प्रतियोगिताओं से प्रोत्साहन मिला। कहानी-क्षेत्र में मलयानिल, मुन्शी, धूमकेतु, रामनारायण, मेघाणी, गुलाबदास ब्रोकर, पन्नालाल, पेटलीकर, मडिया तथा दूसरों में से प्रत्येक ने अपने विशेष ढंग से कहानी-लेखन में सफलता पायी है।

नाटकों का उतना विकास नहीं हुआ, जितना उपन्यास-कहानियों का। कुछ शिष्ट नाटक रंगभूमि के अनुकूल नहीं थे। किन्तु इधर हाल में नाटकों के प्रति रुचि बढ़ी है। सरकार द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं, रेडियो, संस्थाओं, अन्तर्महाविद्यालय-प्रतियोगिताओं तथा बंबई, अहमदाबाद और अन्य स्थलों में

स्थापित अव्यवसायी-नाटक-मंडलों के कारण लोगों का ध्यान साहित्य के उस रूप की ओर फिर गया है, जो दृश्य और श्राव्य दोनों है। रमणभाई, न्हानालाल, ठाकोर, मुन्शी, लीलावती मुन्शी, उमरवाडिया, चन्द्रवदन मेहता, उमाशंकर, धनसुखलाल मेहता, शिवकुमार जोशी, यशोधर मेहता, जयन्तीदलाल, मडिया, तथा दूसरों ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

मोपासां, चेखोव, सारोयान के नाटकों का; बंगाली से टैगोर और द्विजेन्द्रराय के, संस्कृत से कालिदास, भवभूति, भास, विशाखदत्त, हर्ष, शूद्रक तथा तथा दूसरों के एवं शेक्सपियर, शा, इब्सन, बेरी तथा दूसरों के नाटकों का अनुवाद गुजराती में हुआ। उरेडियो द्वारा इस क्षेत्र में बहुत प्रोत्साहन और मार्ग-दर्शन मिला। चन्द्रवदन मेहता ने रेडियो-रूपान्तर करने में सबका मार्ग-दर्शन किया।

हास्यरस का साहित्य लिखने में रमणभाई, ज्योतीन्द्र दवे, धनसुखलाल, दूरकाल, रामनारायण, उमाशंकर, मुनिकुमार, नवलराम त्रिवेदी, मस्त फकीर, जदुराय खंडिया, बकुल त्रिपाठी तथा अन्योंने अधिक योग दिया है। पत्र-पत्रिकाओंके कारण भी इसके विकास का अच्छा अवसर मिला।

साहित्यिक आलोचकों में नवलराम पंड्या, मणिलाल, रमणभाई, नरसिंहराय, ठाकोर, आनन्दशंकर, केशवलाल ध्रुव, मुन्शी, रामनारायण पाठक, कालेलकर, विष्णुप्रसाद, विजयराय, विश्वनाथ, उमाशंकर, सुन्दरम्, अनंतराय रावल, मनसुखलाल झवेरी, कान्तिलाल व्यास, धीरुभाई ठक्कर, मंजुलाल मजमूदार-यशवन्त शुक्ल, नवलराम त्रिवेदी, हीरा पाठक के नाम उल्लेखनीय हैं तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों के गुजराती एवं संस्कृत के कुछ प्राध्यापकों का नाम भी सम्मिलित किया जा सकता है। पत्रों तथा रेडियो का अयलोकन विभाग, पी एच. डी. के विद्यार्थियों के शोध-निबंध, ठक्कर वसनजी व्याख्यान माला जैसी व्याख्यानमालाएँ तथा ग्रंथों की आलोचनाएँ—इन सबने मिलकर विवेचन साहित्य को बहुत आगे बढ़ाया है।

गुजराती साहित्य के विभिन्न कालों का इतिहास लिखने वाले हैं गोवर्धनराम, देरासरी, हिम्मतलाल अंजारिया, कृष्णलाल झवेरी, मुन्शी, विजयराय वैद्य, अनन्तराय रावल, केशवराय शास्त्री, मनसुखलाल झवेरी, रामप्रसाद शुक्ल तथा सुन्दरम्।

गुजराती साहित्य का संवर्धन करनेवाली प्रमुख संस्थाएँ हैं—गुजरात विद्यासभा, बड़ोदरा राज्य का प्राच्य विद्या मंदिर, भारतीय विद्या भवन, गुजराती साहित्य परिषद्, गुजरात विद्यापीठ तथा विभिन्न विश्वविद्यालय। शोध-क्षेत्र के विद्वान् हैं—दलपतराम, भगवानलाल इन्द्रजी, केशवलाल ध्रुव, नरसिंहराव, हरगोविन्ददास कांटावाला, मुनि जिनविजय जी, रसिक लाल परीख, दुर्गाशंकर शास्त्री, केशवराम शास्त्री, सांडेसरा, सांकलिया, कान्तिलाल व्यास, भायाणी, मंजुलाल मजमूदार, पंडित बेचरदास, विष्णुप्रसाद त्रिवेदी, टी. एन. दवे, मधुसूदन मोदी, प्रबोध पंडित तथा अन्य।

कंठस्थ लोकसाहित्य तथा लोकवार्ता साहित्य पर सबसे पहले शोधकार्य करनेवाले हैं दलपतराम। बाद में मेघाणी ने इस क्षेत्र में बहुत काम किया, जिनका अनुसरण रायचुरा, मधुभाई पटेल तथा दूसरों ने किया।

गुजराती का प्रथम कोश नर्मदाशंकर ने तैयार किया। गुजरात विद्यापीठ ने जोडणी कोश निकाला। विश्वकोष की भांति कई भागों में भगवद्गोमंडल कोश तयार हुआ। पोपटलाल शाह ने विज्ञान विषयक पारिभाषिक कोश तैयार किया। इसी प्रकार यशवंत नायक, विट्ठलदास कोठारी, अरविन्द कार्यालिय, विश्वनाथ भट्ट तथा दूसरों ने अनेक विषय के पारिभाषिक कोश तैयार किये। बड़ोदरा सरकार ने वैधानिक शब्दों का कोश तैयार कराया। ये सभी कोश बड़े परिश्रम से तैयार किये गये हैं।

विश्वनाथ भट्ट ने निबन्धमाला में चिन्तनात्मक निबंधों का मूल्यांकन किया है और विष्णुप्रसाद ने गुजराती में चिन्तनात्मक गद्य पर बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखा है। गोवर्धनराम, मणिलाल, आनन्दशंकर, किशोरलाल, गांधीजी, कालेलकर, नथुराम शर्मा, नृसिंहाचार्य, नर्मदाशंकर मेहता तथा दूसरों ने अनेक दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक एवं अन्य समस्याओं पर मार्मिक तथा गंभीर विचार प्रकट किये हैं। गांधीजी, मुन्शी, न्हानालाल, रमणलाल, धूमकेतु तथा दूसरों के विचार-कण संगृहीत किये गये हैं।

सिद्धान्तसार में मणिलाल तथा नर्मदाशंकर मेहता ने तत्त्वज्ञान का इतिहास लिखा है। नरहरि परीख तथा मगनभाई देसाई ने गांधीवाद का विवेचन किया है। रविशंकर महाराज, रंग अवधूत, हरकान्त शुक्ल, बबलभाई मेहता

तथा दूसरों ने अपने-अपने ढंग के चिन्तन प्रस्तुत किये हैं। चन्द्रशंकर शुक्ल ने कई दार्शनिक ग्रंथों के उत्तम अनुवाद दिये हैं। छोटालाल मास्टर, कौशिकराम मेहता तथा मगनभाई चतुरभाई पटेल ने भी साहित्य-सर्जन किया है। केदारनाथ जी तथा विनोबा भावे ने अपनी विचार सरणी द्वारा लोगों को प्रभावित किया। अम्बालाल पुराणी तथा सुन्दरम् अरविन्द के तत्त्वज्ञान से लोगों को परिचित करा रहे हैं। पंडित सुखलाल जी का असाधारण पांडित्य और दर्शन का गहन अध्ययन उनके लेखों और संपादित ग्रंथों में परिलक्षित है। कला एवं स्थापत्य में रविशंकर रावल, हरिप्रसाद देसाई, वच्चुभाई रावत, अम्बालाल पुराणी तथा रणछोड़लाल ज्ञानी के नाम प्रमुख हैं। इतिहास तथा समाज शास्त्र के क्षेत्र में भगवानदास इन्द्रजी, दुर्गाशंकर, मुन्शी, रमणलाल, विजयराय, रत्नमणिराव, अमृत पंड्या, मुनि जिनविजयजी, गिरजाशंकर आचार्य, सांडेसरा, सांकलिया, मांकड, रामलाल मोदी तथा अन्य प्रमुख हैं। भोगीलाल गांधी, नीरु देसाई तथा दूसरों ने समाजवाद, साम्यवाद आदि का परिचय दिया। रसशास्त्र तथा अलंकार पर विशेष रूप से मांकड, रामप्रसाद बक्षी तथा दूसरों ने लिखा है। गोवर्धनराम, नंदशंकर, मुन्शी, विश्वनाथ तथा न्हानालाल ने साहित्यिक व्यक्तियों का जीवन चरित लिखा है। अम्बेलाल जोशी तथा दूसरों ने राजनीतिक नेताओं की जीवनियां लिखी हैं। आत्मचरित्र में गांधीजी, नर्मद, नारायण हेमचन्द्र, कालेलकर, मुन्शी, धनसुखलाल, रमणलाल, चांपसी उदेशी, धूमकेतु, चन्द्रवदन मेहता, इन्दुलाल याज्ञिक तथा दूसरों के नाम हैं। जवाहरलाल नेहरू तथा राजेन्द्रप्रसाद के आत्मचरित्रों का गुजराती में अनुवाद हुआ है।

नरसिंहराव, लीलावती मुन्शी, रमणलाल तथा दूसरों ने रेखाचित्र प्रस्तुत किये हैं; नरसिंहराव, महादेवभाई, मनुवहन तथा दूसरों ने डायरी लिखी हैं; पत्र-साहित्य के निर्माता हैं—कलापी, कान्त, बालाशंकर कंथारिया, सागर, गांधीजी, कालेलकर, भिक्षु अखण्डानन्द, मेघाणी, अम्बालाल पुराणी। काल्पनिक नोंधपोथी गुप्ता ने तथा काल्पनिक पत्र उमरवाडिया ने लिखे।

बाल साहित्य में गिजुभाई, नानाभाई, सोमाभाई, नागरदास पटेल, जीवनराम जोशी, नटवरलाल बीमावाला, शारदाप्रसाद वर्मा, किशोर गांधी, मनुभाई जोघाणी तथा दूसरों ने अमूल्य योगदान दिया है।

गुजराती के प्रमुख सामयिक पत्रों (जिनकी सूची पिछले अध्याय में दी गयी है), साहित्य विषयक संस्थाओं, सस्तुँ-साहित्य-कार्यालय जैसी प्रकाशन-संस्थाओं तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों ने गुजराती पुस्तकों के प्रकाशन में बड़ी सहायता दी है।

रणजीतराम सुवर्ण चन्द्रक, महीडा सुवर्णचन्द्रक, नर्मद चन्द्रक आदि पुरस्कारों, सरकारी पुरस्कारों, संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों की भाषणमालाओं, रेडियो-प्रतियोगिताओं, कवि-सम्मेलनों, मुशायरों तथा कलाकेन्द्र आदि के कार्यक्रमों द्वारा भी साहित्य को पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है।

गुजराती साहित्य के विकास का यह विवरण एक संकेतमात्र है। सीमित स्थान होने के कारण कहीं-कहीं तो विशिष्ट धाराओं का उल्लेखमात्र करके ही संतोष करना पड़ा है।

अंततोगत्वा गुजराती साहित्य के आधुनिक काल का सारस्वत प्रवाह संतोषजनक है तथा गुजरात के लिए गौरव का विषय है। इसमें सर्जन एवं चिन्तन दोनों है। प्रभु-प्रार्थना के साथ गुजराती साहित्य का यह पर्यवेक्षण हम समाप्त करते हैं तथा आशा करते हैं कि भविष्य में इसकी और भी अधिक उन्नति होगी, एवं भारत की अन्य भगिनी-भाषाओं तथा संसार की अन्य भाषाओं के साहित्य के बीच यह अपना स्थान बनायेगा।

परिशिष्ट–१

ग्रन्थ-सूची

१–अनन्तराय रावल–गन्धाक्षत, साहित्यविहार, गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)

२–आनन्दशंकर ध्रुव–आपणो धर्म, दिग्दर्शन, काव्यतत्त्व विचार, साहित्यविचार।

३–उमाशंकर जोशी–अखो एक अध्ययन, समसंवेदन, गुले पोलांड, गोष्टि।

४–कन्हैयालाल मुन्शी–Gujtrat and its Literature, अर्वाचीन साहित्यनो प्रधानस्वर-जीवननो उल्लास, आदि वचनो।

५–कमलाशंकर त्रिवेदी–पाठ्य वृहद् व्याकरण (Ed. Prin. A,. K. Trivedi)

६–कान्तिलाल ब्यास–संपा०––वसन्तविलास

७–कृष्णलाल झवेरी–Milestones in Gujarati Literature, Further Milestones, the Present state of Gujarati Literature, Development of Gujarati Literature.

८–केशवलाल ध्रुव–साहित्य अने विवेचन, पद्यरचनानी ऐतिहासिक समालोचना, कादम्बरी, पंदरमा शतकनां गुर्जरकाव्य।

९–केशवराम शास्त्री–आपणा कविओ, कविचरित भाग १–२ गुजराती साहित्यनुं रेखादर्शन।

१०–गणेशजी अंजारिया–साहित्य प्रवेशिका

११–गोवर्धनराम त्रिपाठी–Classical poets of Gujrat, दयारामनो अक्षरदेह, साक्षर जीवन

१२–ग्रन्थ अने ग्रन्थकार भाग १–१०

१३–ग्रन्थस्थ वाङ्मय (वार्षिक विवेचनो)

१४–चन्द्रशंकर शुक्ल–Gandhi's View of Life
१५–जयन्तकृष्ण दवे–अखेगीतानुं तत्त्वचिन्तन, जु० सा० प० नो सुवर्ण-महोत्सव अने अर्वाचीन सारस्वत प्रवाह, 1st P. E. N. Conference Report: Gujrati Literature Immortal India Vols 1 to 4 (Chapters Connvled with Gujarat)
१६–झवेरचन्द मेघाणी–सोरठी सन्तवाणी
१७–डोलरराय मांकड–काव्य विवेचन
१८–डाह्याभाई देरासरी–साठीनुं साहित्य
१९–दुर्गाशंकर शास्त्री–शैव संप्रदायनो इतिहास, वैष्णव संप्रदायनो इतिहास
२०–धीरुभाई ठक्कर–गुजराती साहित्यनी विकासरेखा भाग १–२
२१–नरसिंहराव दिवेरिया–मनोमुकुर भाग १–४, प्रेमानन्दनां नाटको, Gujarati Language and Literature Part 1-2
२२–नर्मदाशंकर कवि–जूनुं नर्मगद्य
२३–नर्मदाशंकर महेता–शक्ति अने शाक्त संप्रदाय
२४–नवलराम त्रिवेदी–केटलांक विवेचनो
२५–नवलराम पंड्या–नवलग्रन्थावलि
२६–न्हानालाल कवि–आपणां साक्षर रत्नो
२७–न्हानालाल स्मारक, अंक
२८–परिषद् प्रमुखनों भाषणो
२९–बलवन्तराम ठाकोर–लिरिक, कविता शिक्षण, विविध व्याख्यानो, आपणी कविता समृद्धि
३०–भोगीलाल सांडेसरा–प्राचीन गुजराती साहित्यमां वृत्तरचना
३१–मंजुलाल मजमुदार–मध्यकालीन गुजराती साहित्यनां स्वरूपो
३२–मध्यकालनो साहित्य प्रवाह
३३–मनसुखलाल झवेरी–थोडा विवेचन लेखो पर्येषणा, गुजराती साहित्य नुं रेखादर्शन
३४–मोहनलाल देसाई–जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, जैनगुर्जर कविओ भाग १–२

३५–रतन मार्शल–गुजराती पत्रकारित्वनो इतिहास
३६–रमणभाई नीलकंठ–कविता अने साहित्य भाग १–४
३७–रामनारायण पाठक–अर्वाचीन गुजराती काव्य साहित्य, अर्वाचीन काव्य-साहित्यनां वहेणो, साहित्य विमर्श, आलोचना, साहित्यलोक; बृहत् पिंगल, पूर्वालाप
३८–रामप्रसाद शुक्ल अनेविपीन झवेरी–आपणुं साहित्य
३९–विजयराय वैद्य–साहित्य दर्शन, गुजराती साहित्यनी रूपरेखा, गतशतकनुं साहित्य
४०–विश्वनाथ भट्ट–साहित्य समीक्षा, विवेचन मुकुर, निकपरेखा, निबन्धमाला
४१–विष्णु प्रसाद त्रिवेदी–विवेचना, परिशीलन, अर्वाचीन चिन्तनात्मक गद्य अखा, उपर प्रस्तावना
४२–सुन्दरजी बेटाई–गुजराती कवितामां सोनेट
४३–सुन्दरम्–अर्वाचीन कविता
४४–हरिवल्लभभायाणी–वाग्व्यापार
४५–हीरावहेन पाठक आपणुं विवेचन साहित्य

परिशिष्ट–२

Thesis submitted in different Universities

(E)=English, (G)=Gujarati, (H)=Hindi, (P)=Published

1. A study of Gujarati Language in the 16th Century (U. S.) *T. N. Dave*, London, 1931, Ph. D. (E) P.
2. A study of the Shadāvashya ka Tatwāvabodha of Tarunaprabha *Prabodh Pandit*, London, Ph. D. (E).
3. A model of 15th Century Gujarati Prose (with special reference to the Yogasastra Bālāvabodha by Somasunder Suri) *Ramanlal G. Bhatt*, Bombay, 1945, M. A. (E).
4. Doubtful authorship of some of the works of Premānand (A Gujarati Poet of Medieval Period) *P. N. Vakil*, Bombay, 1947, Ph. D. (G) P.
5. Ramanbhai, a study *B. J. Jhaveri*, Bombay, 1949, Ph. D. (G).
6. Narasimha Rao Divetia, *Susmitā Mehd*, Bombay, 1950, Ph. D. (G) P.
7. Swara-Bhara Ane Teno Vyāpar *G. D. Patel*, Bombay, 1950, Ph. D. (G) P.
8. History of Gujarati Novel *R. I. Patel*, Bombay, 1950, Ph. D. (E) Partly P.
9. A critical survey of the three dramas Roshadarshikā satya bhamākhyanā, Panchaliprasannākhyana, and Tapatyākhyana : *Dushyantray D. Pandya*, Bombay, 1951, Ph. D. (G).
10. Treatment of nature in the Medieval Gujarati Literature : *Taralikā L. Dave*, Bombay, 1951, Ph. D. (G).

11. Medieval forms of Gujarati literature *C. H. Mehta*, Bombay, 1952, Ph. D. (G) P.
12. Monilāl Nabhubhai Dvivedi, a study : *D. P. Thaker*, Bombay, 1953, Ph. D. (G).
13. Dr. Anandshankar Bapubhai Dhruva in his writings : *J. C. Pandya*, Bombay, 1954, Ph. D. (G).
14. Raje—a study (with a retrospect of his predecessors' poems on Identical subjects : R. *N. Jani*, Bombay, 1955, Ph. D. (G).
15. Dialect of character, a liguistic study : *Bahanuprasād R. Choksey*, Baroda, 1956, Ph. D. (G) being P.
16. A critical Edition of the Simhāsana Batrishi (1463 A. D.) of Malyachandra with a comparative study of that story in Gujarati literature) : *Ranjitbhai M. Patel*, Baroda, 1956, Ph. D. (G).
17. Dalpatram, an approach to his poetry : *T. P. Bhatt*, Bombay, 1957, Ph. D. (G).
18. Madhyakālin Gujarati Sāhityamą̄ Bhāgavata mūlak kathās : *Parvati G. Sapara*, Bombay, 1957, M. A. (G).
19. Ranchhodbhai Udayram Ek Natakkār Tarike : *S. I. Patel* Gujarati; 1957, Ph. D. (G).
20. Kalapi Ek Adhyayan : *I. K. Dave*, Gujarat, 1958, Ph. D. (G)
21. Gujarati Vartā Sahityamā Parsi Lekhakono Phālo : *M. H. Parekh*, Gujarat, 1958, Ph. D. (G).
22. Gujarati Charitra Vāngmaya : *V.* R. *Bhatt*, Gujarat, 1958, Ph. D. (G).
23. Premanand-Shāmalnā Samayni Lok-Sthiti ane tenu Premānand ane Shāmalā Karavelu Darshan Parts 1-2. *I. J. Bhatt*, Gajarat, 1958, Ph. D. (G).
24. Ramanlāl Desai, his mind and Art : *H. M. Doshi*, Bombay, 1958, Ph. D. (G).

25. Vallabh Mevādo, Ek Adhyayan ; *J. G. Shah*, Bombay, 1959, Ph. D. (G).
26. Kavi Nākar, Ek Adhyayan : Chimanlal S. Trivedi, Bombay, 1959, Ph. D. (G).
27. Bhalornā Dashama-skandhanā Bhāvageetoni Adhikrit Vāchanā Ane Tatkālin Gujarati Bhāshānu Swarup : *D. T. Doshi*, Gujarat, 1959, Ph. D. (G).
28. Tuljaram krit "Abhimanyu Akhyan" in Adhikrit Vāchanā Ane Gujarati Sahityamā Abhimanyuni Kathano Vikas : *S. I. Jesalpura*, Gujarat, 1959, Ph. D. (G).
29. 1920 Pachnini Gujarati Kavitani Sanskritik Bhoomika, tena Paribalo ane Siddhi : *J. N. Pathak*, Gujarat, 1959, Ph. D. (G).
30. Nākarnā Nalākhyān-ni Adhikrit Vāchanā ane Madhyakalin Gujarati Sahityama Nalakhyanno Vikās : *P. V. Patel*, Gujarat, 1960, Ph. D. (G).
31. A critical edition of Jnāna Gita of Narahari (1816 A. D.) with a study of the life and work of the author and the tradition of Jnanamargi poets in old Gujarati literature : *Suresh H. Joshi*, Baroda, 1960, Ph. D. (G).
32. Meera, her life and work : *N. L. Jhaveri*, Bombay, 1960, Ph. D. (G).
33. A critical study of old Gujarati Rasa form as determined from the specimens available between 12 th and 18th century A. D. : *Bharati Madhu Kant Vaidya*, Bombay, 1960, Ph. D. (G).
34. The Development of literature of Nala and Damayanti with special reference to Gujarati literature : *Ramanlal G. Shah*, Bombay, 1960, Ph. D. (G).
35. Kevaladvaita in Gujarati Poetry : *Y. J. Tripathi*, Baroda, 1952, Ph. D. (E) P.

36. A critical Edition of Panchadoodani Vartā in old Gujarati Prose (before v. s. 1738) with a comparative study of literary works on the same theme in Sanskrit and Gujarati : *Samabhai D. Parekh*, Baroda, 1961, Ph. D. (G).

37. Hindi Aur Gujarati Krishna Kavya ka Tulanātmak Adhyayan (15th, 16th, 17th centuries A. D.) : *Jagadish Gupta*, Prayāg, 1953, Ph. D. (H).